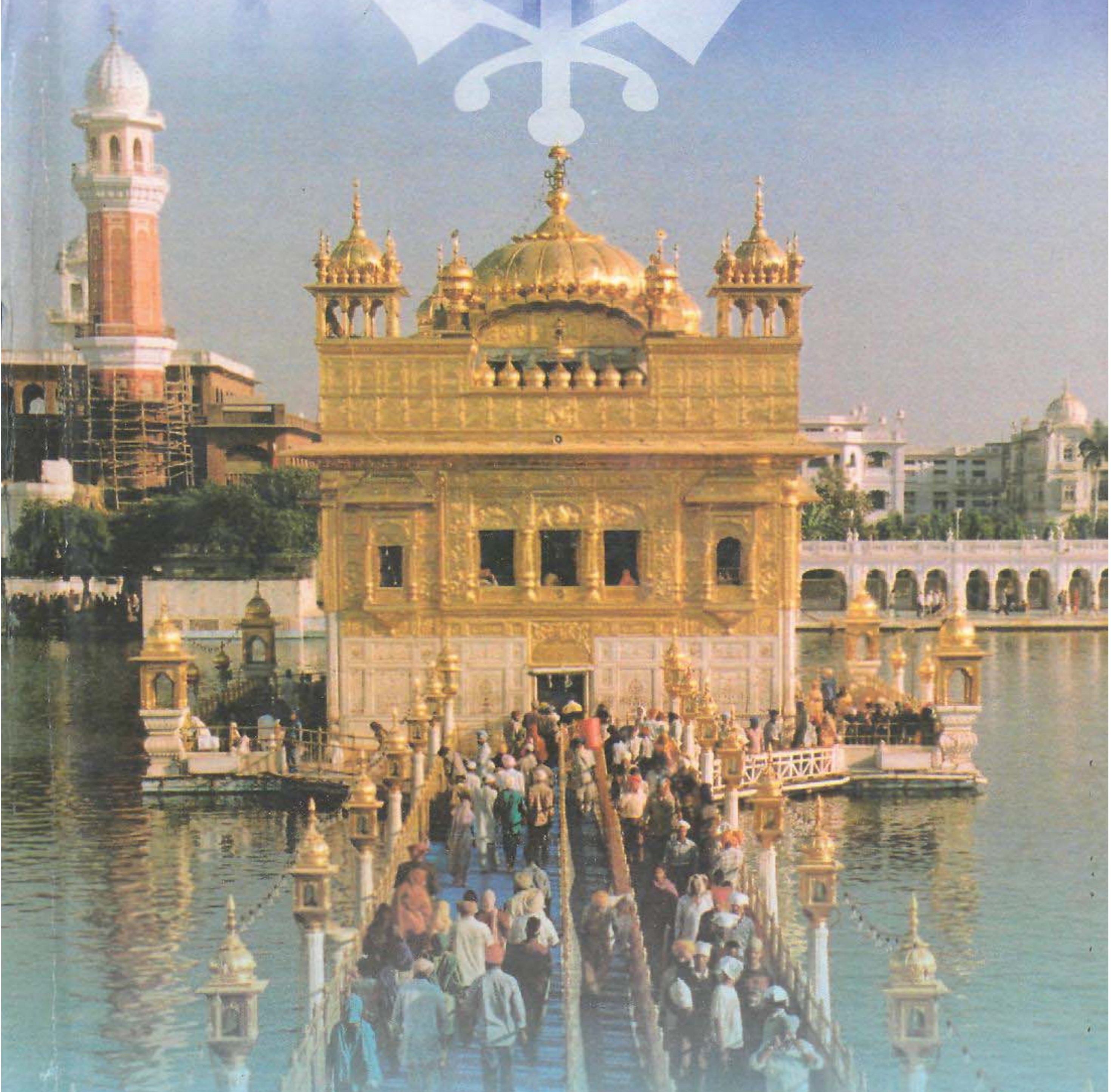
संक्षेप
सिक्ख इतिहास



प्रो. प्यारा सिंघ पदम

संक्षेप सिक्ख इतिहास

प्रो. प्यारा सिंघ पदम रचनावली :

गुरु घर, श्री गुरु ग्रंथ प्रकाश, दसम ग्रंथ दर्शन, आदि ग्रंथ दर्शन, पंथ ते पंथ दा वाली, श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी दे दरबारी रतन, पंज दरिया रबाब, नानकु साइरु एवु कहत है, गुर नानक जिन सुणिया पेखिया, गुरु नानक सागर, गोबिंद सागर, वारां श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी कीआं, चार साहिबज़ादे, रहितनामे, कलाम भाई नंद लाल, ज़फ़रनामा, प्राचीन सौ साखी, पर्ची पातशाही दसवीं की, गुरु कीआं साखियाँ, बंसावलीनामा, पंजाब रउशन, प्रसिद्ध पंजाबी, गुरबाणी कोश, पंजाबी महाराजा, पंजाबी बोली दा इतिहास, गुरमुखी लिपी दा इतिहास, पंजाबी साहित्य दी रूप रेखा, पंजाबी डाइरैक्ट्री, पंजाबी वारां, पंजाबी बारांमाहे, पंजाबी माझां, पंजाबी जंञां, पंजाबी झगड़े, हाशिम रचनावली, पंजाबी सूफ़ी काविधारा, बोलै शेख़ फ़रीद, वारसशाह, मिरज़े दीयां सद्दां, दर्शन भगत, बाबा वजीद, बाबा साधुजन, साधु ईश्रदास, जंगनामा, प्राचीन पंजाबी गद्य, कलम दे चमत्कार, कलम दे धनी, हिन्दुस्तानी कविता, हिन्दुस्तानी कवि, हिन्दुस्तानी कला, पुष्पांजलि, माली, पंछी, आज़ादी, ख़लील जिबरान दे बचन बिलास, गुरु ग्रंथ विचार-कोश, गुरु ग्रंथ संकेत कोश, गुरु ग्रंथ महिमा कोश, सुखमनी दर्शन, महात्मा संतरेण आदिक ।

संक्षेप सिक्ख इतिहास

(1469–1999 ई॰)

प्रो. प्यारा सिंघ पदम

सिंघ ब्रदर्ज़
अमृतसर

SANKSHEP SIKH ITIHAS
[A Short History of the Sikhs]
by
PROF. PIARA SINGH PADAM

ISBN 81-7205-350-9

हिन्दी अनुवाद का
प्रथम संस्करण : अगस्त 2006

मूल्य : 200-00 रुपये

प्रकाशक :
सिंघ ब्रदर्ज़
•
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर - 143 006
•
S.C.O. 223-224, सिटी सैंटर, अमृतसर-143 001
E-mail : singhbro@vsnl.com
Website : www.singhbrothers.com

मुद्रक :
प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

समर्पण

अपने माननीय पिता
सरदार गुरनाम सिंघ घुंगराणा
की सेवा में
जिन्होंने सिक्खी और सिक्ख इतिहास की
लगन लगाई !

मैं उन सभी महान आत्मायों को देख रहा हूँ जो कि किसी भी देश में अच्छे काम के लिए शहीद हुईं। चाहे बीज कम हैं मगर कोई भी फ़िकर नहीं, क्योंकि इन शहीदों की फ़सल कभी भी समाप्त होने वाली नहीं।

—वालट व्हटमैन

सूची

भूमिका प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० हरी राम गुप्ता 9

1. **गुरुवाणी युग** (1469—1606 ई०) 13
पहले पांच गुरु साहिबान

2. **कुर्बानी युग** (1606—1708 ई०) 43
छठे पातशाह से दसम गुरु तक

3. **परीक्षा युग** (1708—1748 ई०) 65
बंदा सिंघ बहादुर, सिक्ख शहीदियां, छोटा घल्लूघारा

4. **चढ़दी कला युग** (1748—1765 ई०) 95
सिक्ख मिसलें और अब्दाली, बड़ा घल्लूघारा, लाहौर पर कब्ज़ा

5. **सरदारी युग** (1765—1799 ई०) 119
पंजाब की रक्षा, गंग-दुआब पर हमले, सिंघ-आचरण और बोले

6. **राज्य-पाट युग (१)** (1799—1849 ई०) 151
शेरे पंजाब घराना

7. **राज्य-पाट युग (२)** (1764—1948 ई०) 189
फूल घराना तथा और सिक्ख रियासतें

8. **पुर्न-जागृती युग** (1849—1910 ई०) 217
निरंकारी, नामधारी और सिंघ सभा लहर

9. **क्रान्ति युग** (1910—1925 ई०) 247
ग़द्दर पार्टी एवं अकाली लहर आदि

10. **स्वराज्य युग** (1925—1989 ई०) 287
देश-आज़ादी आंदोलन, पाकिस्तानी घल्लूघारा,
स्वतन्त्रता संग्राम और वर्तमान संकट

अंतिका-1—सिक्ख-घटनावली 341
अंतिका-2—सिक्ख-पुस्तकावली 347
अंतिका-3—समकाली हाकिमों की नामावली 359

भूमिका

(प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ॰ हरी राम गुप्ता की कलम से)

स. प्यारा सिंघ पदम जी की लिखी पुस्तक *संक्षेप सिक्ख इतिहास* को मैंने पढ़ा है। इसको पढ़कर मेरी तबीयत बहुत ही ख़ुश हुई कि सरदार जी ने, आज तक जो सिक्ख इतिहास के बारे में खोंज हो चुकी है, उसको इस्तेमाल करके और अपने विचार पर खोज देकर शुद्ध, सरल तथा स्वादिष्ठ पंजाबी में सारे सिक्ख इतिहास को कलमबंद किया है। उनकी कलम में इतना जोश और सफ़ाई है कि पाठक इस ऐतिहासिक खोज को पढ़ता पढ़ता नावल की तरह साहित्यिक स्वाद लेता हुआ इससे अकता थकता नहीं, बल्कि उसका दिल यही कहता है कि आगे का भी सारा काण्ड पढ़कर समाप्त किया जाए। इस इतिहास जैसे ख़ुश्क विषय में इतनी रोचकता पैदा करना सरदार साहिब की कलम का ही चमत्कार है।

इस पुस्तक के मुख 10 अध्याय हैं। गुरु-काल को 'गुरुवाणी युग' और 'कुर्बानी युग' दो हिस्सों में बांटा गया है। पहले भाग में गुरमति सिद्धांत की स्थापना, गुरुवाणी का संकलन और उसके प्रभाव को अच्छी तरह वर्णन किया गया है। 'कुर्बानी युग' में सिक्ख शक्ति के विकास के लिए गुरु अर्जुन साहिब की कुर्बानी के बाद कैसे छठे गुरु जी ने पीरी के साथ मीरी जोड़कर सिक्खों को नए रास्ते चलाया और कैसे मुग़ल बादशाहों के नमूने पर अपनी फ़ौजी ताकत और दुनियावी ठाठ-बाठ सजाकर आत्मिक बल के साथ साथ सैनिक संगठन को विकसित किया। इस संबंधी गुरु हरिगोबिंद जी की, गढ़वाल के इलाके की ओर शिवा जी के धर्म-गुरु समर्थ स्वामी रामदास के साथ जो बात-चीत हुई, उसको लेखक ने प्राचीन हस्तलिखित सिक्ख-साखी के हवाले के साथ प्रस्तुत किया है, वह पढ़ने-योग्य है और सिक्ख नुकता-निगाह और नीति को साफ़ तौर पर स्पष्ट करने वाली है। गुरु तेग बहादुर जी की कुर्बानी को अपनी आँखों के सामने देखकर और अत्याचारों के कारण देश पर आई मुसीबत को अनुभव

करके दसवें गुरु जी ने यह फ़ैसला किया कि शाही अत्याचारों का सामना करने का एक सरल उपाय यही है कि लोगों में जागृती पैदा करके उनको जबर का सामना करने के लिए स्वयं तैयार किया जाए और यह निश्चय करवाया जाए कि वह अन्य किसी ओर से और सहायता की आस न रखें। इस तरह उन्होंने ख़ालसा पंथ की नींव रखी और अपने रहते ही ख़ालसे को यह शुरुआती सिखलाई दी कि किस तरह मुग़ल बादशाहों को चुनौती दी जा सकती है और कैसे उनकी शाही फ़ौजों का सामना किया जा सकता है। यह गुरु-काल के दोनों भागों में गुरु साहिबान के संबंध में ऐसी नई नई खोजें, जैसे कि केसर सिंघ लिखित *बंसावलीनामे, गोष्ठि मिहरवान जी की* और *प्राचीन साखियों के हवाले* और *गुरुओं के हुक्मनामे* आदि पुष्टि के तौर पर दिए गए हैं; यह अब तक किसी भी किताब में इस्तेमाल हुए दिखाई नहीं दिए। इन्होंने पुस्तक की प्रमाणिकता में सच-मुच काफ़ी बढ़ौतरी की है। सिक्ख मिसलों की जद्दो-जहद के ज़माने को उनकी ऐतिहासिक विलक्षणता को मद्दे-नज़र रखते हुए कर्ता ने तीन भागों—परीक्षा युग, चढ़दी कला युग और सरदारी युग में विभाजित किया है और यह विभाजन बड़ी सोच-समझ किया गया है। इन तीनों भागों में पहले गुरु काल, जिसमें सिक्ख सिद्धांतों का विकास भी दरशाया गया है, विद्वत्ता और खोज के कारण विशेष तौर पर पढ़ने योग्य हैं। परीक्षा युग में जब सिक्खों की शहीदियों का वर्णन किया है तो वहाँ दर्ज—माता सुन्दरी के नाम भाई मनी सिंघ जी की ऐतिहासिक चिट्ठी, बड़ी कीमती है क्योंकि उस समय के तवारीख़ी हालात पर रोशनी डालती है।

लेखक चूँकि पंजाबी का प्रसिद्ध साहित्यकार है, इसलिए जहां उसने ऐतिहासिक खोजों से पूरा पूरा लाभ उठाया है, वहाँ पंजाबी साहित्य और उस समय के लोक-साहित्य में आए हुए हवालों को भी ऐतिहासिक पक्षों की पुष्टि के लिए पूरी तरह इस्तेमाल किया है। जैसे कि सिक्ख औरतों के गीत, जिनके पति दूर मुहिंम पर या कहीं जंगलों, बीआबानों में रहते हैं, उनकी मानसिक दशा और घरेलू अवस्था समझने के लिए यह गीत काफ़ी मददगार हैं। ऐसे जैसे अठारवीं सदी के इनकलाबी सिक्खों की भाषा (ख़ालसई बोले) के बारे में की गई विचार-चर्चा बड़ी ही स्वादली और दिल को छूने वाली है।

अगला काण्ड 'राज्य-भाग युग' का है, इसमें महाराजा रणजीत सिंघ जी के ऐतिहासिक काल और सिक्ख राजाओं का वर्णन है। मेरी राय

में जैसे रणजीत सिंघ की सूझ-बूझ ने पंजाब को बड़ा बनाया, शायद लेखक ने जगह की कमी के कारण उन सभी को पूरे विस्तार के साथ अंकित करने की ओर कम ही ध्यान दिया है। 1849 से पंजाब पर अंग्रेज़ों के कब्ज़े के बाद से राष्ट्रीय ज़जबा तो लगभग ख़त्म हो गया था और देश पर एक तरह मृत्यु सी छाई हुई थी, इस समय नामधारी लहर चलाकर बाबा राम सिंघ ने जो काम किया, वह समय की मांग मुताबिक प्रशंसनीय है। लेकिन 1872 में जब इस लहर को अंग्रेज़ों ने दबा दिया तो उनके शुरु किये हुये काम को कुछ हद तक सिंघ सभा लहर ने अपने ढंग से चलाया और ख़ासतौर पर सिक्खों में विद्या-प्रचार और समाज-सुधारों की सेवा की।

अगले काण्ड बीसवीं सदी के हालात बताने वाले हैं। 'इनकलाबी युग' में अंग्रेज़-विरोधी भावना का उभार बताकर कर्ता ने ग़द्दर पार्टी और अकाली लहर की देश के गुरुद्वारा सुधार के लिए की गईं सरगर्मियों का विस्तार के साथ अच्छा प्रचार किया है और प्रत्येक घटना की तारीख दी है। अंतिम काण्ड में 1947 की गड़बड़ और इसके बाद पंजाबी सूबे के बारे में हुई जद्दो-जहद का हाल है। पुस्तक के अन्त में कुछ अंतिकाएं संकलन की गई हैं : सिक्ख-इतिहास की अहम घटनाएं, पुस्तकें, सम्प्रदायों और समकाली हाकिमों के नाम, यह सब सूचियां तारीख़ी वाकफ़ी के नुक्ते पर बहुत ही लाभदायक और ख़ासतौर पर इतिहास के विद्यार्थियों के काम आने वाली हैं। लेखक ने इनको इक्ट्ठा करके इकसार करने में बड़ी मेहनत की है।

जहाँ तक मेरी जानकारी का संबंध है, मैं कह सकता हूँ कि सिक्ख इतिहास के बारे में कुछ फ़ुटकल पुस्तकों को तो और भी लेखकों ने लिखा हैं लेकिन यह पंजाबी में पहली पुस्तक है, जो शुरू से लेकर आज तक के सम्पूर्ण सिक्ख-इतिहास का वृत्तांत बताती है। इसमें दी गईं तारीख़ें, अहम घटनाएं और वाकिआत सब प्रमाणिक हैं। फिर जिस साहित्यिक रस वाली शैली पर ज़ोरदार स्पष्ट, सरल भाषा में यह तारीख़ लिखी हुई हैं, उसको हर पंजाबी आसानी से समझ सकता है। यह सिक्ख इतिहास का आलोचनात्मिक अध्ययन है, जो पंजाब के इतिहास के विद्यार्थियों के लिए बहुत ही लाभदायक और बहुमूल्य है। पुस्तक को ज़्यादा मनोरंजक और आकर्शक बनाने के लिए सरदार जी ने अलग-अलग स्थानों से ढूँढ कर, तीन दर्जन के लगभग प्राचीन ऐतिहासिक चित्र भी दिए हैं, यह दुर्लभ तथा अनमोल संग्रह प्रशंसनीय है।

पंजाब की तारीख़ की जानकारी के लिए सिक्ख इतिहास का अध्ययन बहुत ज़रूरी है और यह पुस्तक इस आवश्यकता को पूरी तरह पूरा करती है। मैं पंजाब के तमाम इतिहास के विद्यार्थियों और आम शौकीन पाठकों को इसे पढ़ने की ज़ोरदार सिफ़ारिश करता हूँ और ऐसी सुन्दर पुस्तक तैयार करने पर विद्वान् लेखक को मुबारकबाद देता हूँ।

हरी राम गुप्ता M.A., Ph.D.
डीन आफ़ यूनीवर्सिटी इनसट्रकशन,
पंजाब यूनीवर्सिटी, चंडीगढ़

13.6.63

गुरुवाणी युग

(1469-1606 ई॰)

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला ।।

(रामकली म: १, पन्ना 943)

सबदु दीपकु वरतै तिहु लोइ ।।

(धनासरी म: ३, पन्ना 664)

गुरबाणी इसु जग महि चानणु करमि वसै मनि आए ।।

(सिरीरागु म: ३, पन्ना 67)

इका बाणी, इकु गुरु, इको सबदु वीचारि ।।

(सोरठि म: ३, पन्ना 646)

बाणी गुरू गुरू है बाणी, विचि बाणी अंम्रितु सारे ।।
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै, परतखि गुरू निसतारे ।।

(नट म: ४, पन्ना 982)

अंम्रित बचन साध की बाणी ।।
जो जो जपै तिस की गति होवै,
हरि हरि नामु नित रसन बखानी ।।

(सूही म: ५, पन्ना 744)

गुरुवाणी युग

(1469-1606 ई०)

भारतीय विचारधारा में ऐसे आदर्शों की अधिक महत्ता रही है, जिनमें विशुद्ध आत्मिक अथवा आंतरिक जीवन पर तो बहुत बल दिया गया होता है, परन्तु सामाजिक विकास और राज्य-प्रबंध संगठित करने की ओर पूरी तरह लापरवाही दिखाई गई होती है। इस उदासीन परंपरा ने सदियों पश्चात् हमारी जीवन-प्रणाली को इतना उलझाया कि हम जीवन-संग्राम से जूझने के योग्य ही न रहे और इस प्रकार भारतीय सभ्यता सामाजिक गुणों से वंचित हो, कोरी आंतरिक तथा व्यक्तिवादी बनकर निष्प्राण हो गई।

भारतीय इतिहास में पंद्रहवीं, सोलहवीं सदी युगगर्दी का समय है जबकि राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भारी परिवर्तन हुए। इस समय भक्ति-लहर (भक्ति-धारा) अपने पूरे यौवन पर थी, जिसके द्वारा गिने-चुने कुछेक जिज्ञासुओं ने तो मानसिक शांति प्राप्त कर ली, परन्तु करोड़ों की संख्या में निवास कर रहे गृहस्थी लोगों के लिये अभी तक भी 'जीवन-मुक्ति' या 'परमानंद' की प्राप्ति का घर दूर था। घर-परिवार छोड़ने वाले त्यागी-वैरागी तथा साधु-संतों ने तो सांसारिक उत्तरदायित्वों से अलग होकर व्यक्तिगत रूप से आनंद प्राप्त कर लिया, परन्तु सामाजिक कल्याण का किसी ने प्रयत्न न किया। इस सारी गड़बड़ी का कारण भारत की वही चिरकालिक चली आ रही पुरानी ग़लत विचारधारा थी, जिसने लोगों को यह निश्चय कराया हुआ था कि 'आत्म-शान्ति तथा मुक्ति' केवल 'जगत-जंजाल' को छोड़कर ही प्राप्त की जा सकती है। यद्यपि यहां समय-समय कई धर्म (मत) बदलते रहे, परन्तु सभी की तान अंत में 'त्याग' पर ही आकर टूटती रही। हाँ, बुद्ध मत ने सामूहिक कल्याण के लिये कुछ यत्न ज़रुर किए परन्तु 'संसार-त्याग' का नारा वह भी नहीं छोड़ सका। 'निर्वाण' पद प्राप्त करने के लिये 'भिक्षुक' बनना एक ज़रूरी शर्त

थी। इसके पश्चात् सिद्धों, नाथों और योगियों के पंथ चले, उनकी तो नींव ही 'विरक्ति' थी।

इतिहास ने यह बात भली-भांति स्पष्ट कर दी है कि संसार को त्यागने की दुर्बलता दिखाने वाला धर्म इस संसार का धर्म नहीं हो सकता, अपितु किसी और दुनिया का चाहे होवे। किसी भी भारतीय विचारक या धर्मात्मा ने जन-साधारण के व्यवहार में आ सकने वाले ऐसे किसी भी धर्म का मार्ग नहीं दिखाया। क्या शंकराचार्य, क्या गोरखनाथ और क्या भक्तिधारा के अन्य मुख्य संत, सभी 'त्याग' का संदेश ही देते रहे। इस 'दुर्बल त्याग' के परिणाम भी बहुत दुर्बल निकले। विदेशों से आकर मुट्ठी भर संगठित लोगों ने आक्रमण करके करोड़ों लोगों को निर्भय होकर लूटा। त्यागी-वैरागी तो पहले ही कंदरा वासी थे, इसलिये सभी आपत्तियाँ गृहस्थियों को झेलनी पड़ीं। देश का धन लूटा गया, इज़्ज़त लूटी गई और रहा-सहा सम्मान मिटाकर विदेशियों ने इस देश पर प्रभुत्व आ जमाया। ग़लत मान्यताएं और पुराने भ्रम-जाल में उलझा हुआ भारत ग़ुलाम हो गया। यह सच है कि कोई भी जाति किसी दूसरी जाति को ग़ुलाम नहीं बना सकती, जब तक ग़ुलामी के साधन प्रयाप्त न हों।

गुरु साहिब ने ठीक कहा है :

नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ॥
जे गुण होनि त कटीअनि, से भाई से वीर ॥

(सोरठि म: १, पन्ना 595)

अथवा :

जिस नो आपि खुआए करता, खुसि लए चंगिआई ॥

(आसा म: १, पन्ना 417)

ऐसे संकट काल में गुरु नानक साहिब ने एक नया प्रकाश तथा नई अगुवाई देकर सिक्ख धर्म की नींव रखी, जिस धर्म ने बाद में भारतीय जीवन के अवगुणों की ज़ंजीर काटकर मानवता को सुंदर एवं स्वच्छ गुणों से श्रृंगारा। मिस्टर कनिंघम के शब्दों में—"यह सेहरा गुरु नानक के सिर पर ही सुशोभित हुआ कि वे सुधार के सच्चे और सही सिद्धान्तों का अनुभव करें तथा ऐसी स्थापना करें, जिन पर उनके उत्तराधिकारी—गुरु गोबिंद सिंघ साहिब—नवीन राष्ट्रीयता का निर्माण कर सकें।" आगे चलकर यही लेखक फिर लिखता है—"गुरु नानक ने अपने सिक्खों (शिष्यों) को उन दोषों से बचा लिया जिनके भारतवासी सदियों

से शिकार होते आ रहे थे। गुरु साहिब ने सिक्खों को प्रभु-भक्ति तथा पवित्र आचरण की शिक्षा दी और इस प्रकार वह अपने सीधे-सादे, स्वतंत्र, असांप्रदायिक तथा रीति-रिवाजों के बंधन से मुक्त श्रद्धालुओं का एक सुन्दर 'पंथ' बना गए।"

'राजयोग' का मत चलाना उनका करामाती (आश्चर्यजनक) आविष्कार था। 'नाम सिमरन' (नाम-स्मरण) के सिद्धान्त के साथ 'किरत-कमाई' (कार्य-व्यापार) करना तथा बाँटकर खाने (वंड छकन) की मर्यादा को समान सत्र पर लाकर गृहस्थ जीवन उच्च बनाना उनका ही काम था। इसी करामात ने 'सरबत्त दा भला' (सब का भला)[1] जैसे उच्च आदर्श को व्यवहारिक रूप दिया। यह आदर्श मानसिक चिन्तन का अंग तो पहले भी कई बार बन चुका था, परन्तु इसे निरंतर दस रूपाकृतियों द्वारा कर्म क्षेत्र में लाकर बाबा नानक निराकारी ने ही प्रत्यक्ष मूर्तिमान किया।

यह सिक्ख-विचारधारा की विशेषता तथा महानता है कि यह दस परम महापुरुषों की अगुवाई में अखंड रूप से चली और इसने सिद्धान्तिक तथा व्यवहारिक पक्ष से जीवन के सशक्त मार्ग बनाए। प्रायः विचारधाराएँ पानी के उबाल की तरह उठतीं और शीघ्र ही समाप्त होती रही हैं, परन्तु यह दर्जा गुरु नानक-धारा को ही प्राप्त है कि दो सौ वर्ष अखंड रूप से प्रवाहमान रहकर इसने भारत पर स्थायी प्रभाव डाले।

गुरु नानक साहिब का जन्म पिता कालू के घर, माता तृप्ता की कोख से, राए भोएं की तलवंडी (ननकाणा साहिब), ज़िला शेखूपुरा में वैशाख शुक्ला 3, संमत विक्रमी 1526 तदनुसार 15 अप्रैल, 1469 ई. को हुआ।[2] बचपन में ही आपकी विशेषताओं ने लोगों का ध्यान आकर्षित कर लिया। जनेऊ पहनने से इंकार करने की घर-घर चर्चा होने लगी। गोपाल, पांधे तथा मौलवी कुतबदीन के पास आपको पढ़ने भेजा गया। लेकिन शिक्षक भी गुरु बालक के आश्चर्यजनक प्रश्नों का सही और पूरा उत्तर न दे सके। पिता ने भैंसें चराने का काम सौंपा, परन्तु आप बार के हरे-भरे

---

1. सर्वेः भवन्तु सुखिना, सर्वेः सन्तु निरामया, सर्वेः भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद दुख भाग्रवित। कश्चिदु दुरवयाक भवेत। *(ऋषिवाक्य)*
2. "श्री सतिगुरु जी जगतु निस्तारण कू आइया। कलिजुग विचि बाबा नानक होइ जनमिया पारब्रह्म का निज भगतु। सतिगुर प्रसादि, संमतु 1526 बाबा नानक जनमिया। वैशाख माहि तृतीया, चानणी रात्रि अमृत वेला पहरु रात्रि रहिंदी कू जनमिया।" *(पुरातन जन्मसाखी)*

जंगलों में प्रकृति में कर्ता-पुरुष को अनुभव करके मस्त रहते तथा सदा निराकार में ध्यान लगाए रखते।

एक बार पिता जी ने आपको कुछ रुपए देकर 'खरा सौदा' करने के लिए भेजा। परन्तु आप ने वे रुपए भूखे साधु-संतों को भोजन खिलाने के लिए ख़र्च कर दिए। इन छोटी-छोटी बातों ने बड़ों-बड़ों को चकित कर दिया कि यह कालू का बेटा अद्‌भुत प्रकार का है। इस प्रकार अनोखा-सा बचपन बिताकर आप अपनी बहन नानकी के पास सुलतानपुर चले गए और वहाँ नवाब दौलत ख़ान लोधी के मोदी-ख़ाने (वस्तु-भंडार) में नौकरी कर ली। श्री जयराम के प्रयत्न से गाँव 'पक्खोके' में मूल चंद की सुपुत्री श्रीमती सुलखनी के साथ आपका विवाह हुआ, जिनसे श्री चंद (1494 ई.) और लखमी दास (1496 ई.) दो पुत्र पैदा हुए। इस नौकरी की अवधि में भी आपका ध्यान प्रभु की याद में लगा रहता था और आप इस समय भी इस खोज में लगे रहते थे कि कब वह समय आए, जब मृतप्राय तथा पीड़ित जनता को जीवन का सच्चा संदेश सुनाया जाए। अंत में आप ने नौकरी छोड़ दी और अपने गाँव के साथी मर्दाने रबाबी को साथ लेकर देश-परदेस भ्रमण का विचार बनाया।

गुरु नानक साहिब की यह प्रचार-यात्राएं 'उदासियों' के नाम से पुकारी जाती हैं और दिशा-क्रम से चार भागों में बांटी गई हैं। पहले गुरु साहिब पंजाब में घूमे तथा फिर दूसरी लंबी-लंबी यात्राएं कीं।[1]

पहली उदासी, अर्थात, पहली प्रचार-यात्रा 1497 ई. अथवा कुछेक इतिहासकारों के मतानुसार 1501 ई. में पूर्व दिशा की ओर आरम्भ हुई। हरिद्वार से बिहार, बंगाल, असम तक तीर्थों की लंबी यात्राएं की और बिहार में अधरक्का, बंगाल में नूरशाह तथा असम में झंडा बाढी आदि को मुखिया बनाकर प्रचार-मंच (प्रचार-मंजियां) स्थापित कीं। लौटते हुए जगननाथपुरी में 'सच्ची आरती' का ज्ञान कराते हुए और रुहेलखंड में कई प्रकार के चमत्कार दिखाते हुए पंजाब की ओर वापिस आए और फिर यहाँ आकर करतारपुर नगर बसाया। दूसरी 'उदासी' (प्रचार-यात्रा) 1510 ई. में दक्षिण की ओर की। सतिगुरु मालवा क्षेत्र में नाम का संदेश देते हुए बीकानेर, बिदर, रामेश्वरम, मद्रास और फिर आगे शिवनाभ को उपदेश देने के लिए

---

1. बाबे भेख बणाइआ, उदासी की रीति चलाई॥
चढ़िआ सोधणि धरति लुकाई॥२४॥१॥ *(वारां भाई गुरदास जी)*

सिंहलद्वीप पहुँचे। अनुराधपुर के अजायबघर में पड़े सिंहली शिलालेख[1] में गुरु जी का कोटी के राजा धर्म प्राक्रम बाहू (1493-1529) के साथ चर्चा करने का संकेत है। पुरानी साखियों (साक्षियों) में गुरु साहिब का समुद्री यात्रा के लिए 'मच्छों की सवारी करना' लिखा है। तात्पर्य नौका-यात्राओं से है। आजकल भी नौकाओं के लिए 'मछुआ' शब्द आम व्यवहार में आता है।

पूर्व और दक्षिण की ओर रूढ़िवादी सनातनी हिन्दुपन के सुधार के पश्चात् 1514 ई० में तीसरी 'उदासी' उत्तर दिशा की ओर की। इस प्रचार-यात्रा में हिमालय की कंदराओं व गुफ़ाओं में रहने वाले सिद्धों, नाथों और योगियों के साथ गुरु जी की गोष्ठियां हुईं। तिब्बत, भूटान और चीन तथा रूस के कुछ भागों में भी सतिगुरु गए, परन्तु इसका विवरण कम ही मिलता है। तिब्बती लोग अब तक अमृतसर दर्शनों के लिए आते हैं और बतलाते हैं कि उनका पुर्वज 'लामा गुरु' पदम संभु पंजाब से ही उनके देश में गया था। यह लोग अपने मंदिरों में मूर्तियाँ रखते हैं और 'ओलग गुरु' कहकर सतिगुरुओं को आराधते हैं।

चौथी उदासी (प्रचार-यात्रा) पश्चिम की ओर 1518 ई० में हुई। यह एक प्रकार की इस्लामी देशों की यात्रा थी। सतिगुरु जी मुल्तान, सिंध में से होते हुए मक्का पहुँचे और वहाँ पर परमेश्वर की सर्व-व्यापकता तथा मनुष्यों को एकता का ज्ञान दिया। बग़दाद में शाह बहलोल नामक ईरानी फ़कीर के पास चार महीने रहे, इस संबंध में वहाँ एक प्राचीन शिलालेख भी मिलता है, जिस पर गुरु साहिब के वहाँ जाने का समय 927 हिजरी सन् (1520-21 ई०) दर्ज है। 1521 ई० में भारतवर्ष पर बाबर ने प्रथम आक्रमण किया, तब उस समय गुरु साहिब ईरान, इराक, अफ़ग़ानिस्तान में से होते हुए तथा हसन अबदाल के वली कंधारी का घमंड भंग करते हुए स्वदेश वापिस आ गए थे और भाई लालो के पास सैदपुर (एमनाबाद) ठहरे हुए थे। फ़ौजी धक्केशाही के अधीन गुरु साहिब भी बंदी बना लिए गए। परन्तु बाद में अध्यात्मिक प्रभाव देखकर मुक्त कर दिए गए। बाबर ने कहा—फ़कीर! कुछ मांग। सतिगुरु जी ने निर्भय होकर कहा—जो जाबर (आततायी) बाबर ग़ज़नी से लोगों को लूटता आ रहा है वह फ़कीर को क्या दे सकता है। "कहि नानक सुन बाबर मीर !

1. सिंहली विद्वान् डॉ. करनारतना का लेख 'गुरु नानक ऐंड सीलोन'।

तुझसे मांगे सो अहमक फ़कीर।" उन्होंने 'बाबर-वाणी' में आक्रमण के कारण हुई सम्पूर्ण दुर्दशा के कारणों की भी जांच की कि क्यों देश का स्वाभिमान, धर्म, सभ्यता, बोली, रहन-सहन तथा सम्पूर्ण सौंदर्य विदेशियों के अत्याचार के अधीन मिट्टी में मिल रहा है। डराए, धमकाए और दबाव में लाए गए भारतवर्ष को अपनी किसी भी वस्तु पर गर्व नहीं रहा। ग़ुलाम भारतीय, हाकिमों के रोब-दाब में आकर उन्हीं का सब कुछ अपना रहे हैं :

कलि परवाणु कतेब कुराणु ॥
पोथी पंडित रहे पुराण ॥ *(रामकली म: १, पन्ना 903)*

आदि पुरख कउ अलहु कहीऐ, सेखां आई वारी ॥
देवल देवतिआ करु लागा, ऐसी कीरति चाली ॥...
घरि घरि मीआ सभनां जीआं बोली अवर तुमारी ॥
(बसंतु हिंडोलु, म: १, पन्ना 1191)

खत्रीआ त धरमु छोडिआ मलेछ भाखिआ गही ॥
(धनासरी म: १, पन्ना 663)

नील बसत्र ले कपड़े पहिरे, तुरक पठाणी अमलु कीआ ॥
(वार आसा म: १, पन्ना 470)

अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा ॥ *(वार आसा म: १, पन्ना 472)*

सतिगुरु जी की इस दु:खानुभूति तथा दर्दनाक अनुभव का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उन्होंने अपने स्वामी परमेश्वर तक को भी उलाहना दिया है :

एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ ॥
(आसा म: १, पन्ना 360)

ऐसी अनुभूति भक्ति-धारा के अन्य संतों-भक्तों को नहीं हुई और न ही उन्होंने इसकी इतनी जांच-पड़ताल की। वास्तव में वे लोग जिस विचारधारा के प्रभावाधीन थे, उसमें 'आत्म-शांति' और 'आत्म-आनंद' की ही चर्चा थी, सामाजिक शांति अथवा सामूहिक कल्याण की चेतना ही पैदा नहीं थी हुई। इस बात का श्रेय गुरु नानक को ही जाता है कि उन्होंने 'नानक नाम चढ़दी कला' के साथ साथ 'तेरे भाणे सरबत्त दा भला' (अर्थात, नानक के विचार में ईश्वर-नाम की सदा उन्नति होती रहे और सभी का कल्याण हो) के ऊँचे आदर्श से युक्त संदेश को लोगों तक पहुँचाया,

जिसके कारण लोगों की सुप्त-चेतना जागृत हो और वे लोग संगठित होकर इन अत्याचारों के साथ टक्कर ले सकें। लोग नाम-जाप तो पहले भी करते थे, परन्तु वैसा नाम-जाप करने वाले अथवा मानसिक चिंतन करने वाले वे लोग थे जो निठल्ले रहकर गृहस्थियों से रोटियाँ खाते और गृहस्थ-धर्म की ही निंदा करते और स्वयं को उनसे ऊँचा समझते थे। इसलिए गुरु साहिब ने अपने धर्म के प्रारंभिक नियमों में ही यह प्रतिस्थापित किया :

1. नाम जपना;
2. कृत्य (काम) करना;
3. बांटकर खाना (वंड छकना)।

कृत्य करके बांटकर खाने की मर्यादा किसी भी पुराने शास्त्र या ग्रंथ में नहीं मिलती और न ही किसी आचार्य या पीर ने इसको धर्म का अंग बनाया है। गुरु साहिब ने देखा कि कुछ लोग नाम तो जपते हैं, परन्तु कृत्य नहीं करते और कुछ लोग कृत्य करते हैं, परन्तु नाम नहीं जपते, इसलिए दोनों बातों की ओर ध्यान देकर ही कल्याण-कार्य की शक्ति को मज़बूत किया जा सकता है। निठल्ली संत मंडलियां देश अथवा समाज का कुछ नहीं बना सकतीं। गुरु साहिब के इस सम्पूर्ण सिद्धान्त की सफलता की गवाही सिक्ख जाति के कर्मयोगी इतिहास से प्रत्यक्ष है, जबकि उनके समकालीन अन्य साधुओं के चलाए हुए सभी मत, पंथ समाज का कुछ भी सँवारे बिना मर-मिट चुके हैं।

इस प्रकार गुरु बाबा (नानक) ने क्या हिन्दुओं में और क्या मुसलमानों और क्या सिद्ध-योगियों, सभी में इस नवीन विचारधारा का प्रचार किया ताकि एक साँझी राष्ट्रीयता की पक्की नींव रखी जा सके। यह कार्य एक पीढ़ी में समाप्त होने वाला नहीं था। सदियों से जमे हुए ग़ुलामी के धब्बों को मिटाने के लिए निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता थी। राजनैतिक अथवा सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए सबसे पहले आम लोगों के विचारों में परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। जितनी देर पुराने वहम, सड़े-गले अंधविश्वास, अकारण भ्रम और परंपरागत पिता-पुरखी ग़लत रीति-रिवाजों का कूड़ा-करकट साफ़ न कर दिया जाये, उतनी देर तक नवीन विचारों के लिए स्थान नहीं बन पाता। इस मनोरथ की पूर्ति के लिए गुरु नानक साहिब ने स्थान-स्थान पर 'धर्मशालाएं' स्थापित कीं और 'संगत' (लोगों का इकट्ठे होकर बैठना) रूप में इकट्ठे होकर गुरुवाणी गायन करने का

निर्देश दिया। उन्होंने स्वयं अपनी प्रचार यात्राओं के समय—बाबा फ़रीद, नामदेव, कबीर, तृलोचन, रविदास और बेणी आदि कितने ही भारत के प्रसिद्ध संतों-भक्तों की वाणी एकत्र की और स्वयं भी एक हज़ार के लगभग 'शब्द' लिखे। प्रचार-यात्राओं के बाद गुरु साहिब लगभग 20 वर्ष करतारपुर रहे और यहाँ अपने सिक्खों (शिष्यों) से भी वाणी लिखते-लिखवाते रहे।

भाई मनसुख, भाई भागीरथ, हस्सू लोहार, सैदो घेऊ, सींहा छींबा आदि द्वारा वाणी लिखने तथा संचित करने का वर्णन प्राचीन जन्मसाखियों में प्रायः उपलब्ध होता है।[1]

इस वाणी का महत्त्व गुरु नानक साहिब की दृष्टि में क्या था, इसका पता इसी बात से चल जाता है कि जब सिद्धों ने पूछा—"आप के मत का आधार क्या है ?" तब गुरु साहिब का उत्तर था—"नवीन विचारधारा और उस विचारधारा को मानने वाली जनता" अर्थात गुरुवाणी और संगति :

गुर संगति बाणी बिना, दूजी ओट नही हहि राई ॥४२॥१॥

(वारां भाई गुरदास जी)

महापुरुषों के हृदय, मस्तिष्क अथवा पुस्तकों में सुरक्षित विचार, विचार ही होते हैं, परन्तु जब यह विचार आम जनता में घुस जाएं, तब वे विचार एक भारी परिवर्तनकारी शक्ति का रूप धारण कर जाते हैं। इसलिए गुरु साहिब ने सर्वप्रथम स्थान-स्थान पर इस बात पर ज़ोर दिया कि वाणी का गायन या पाठ किया जाए। यही वाणी या शब्द ही गुरु है, इसी ने सभी को अग्रगामी बनाना है :

सबदु गुर पीरा गहिर गंभीरा, बिनु सबदै जगु बउरानं ॥

(सोरठि म: १, पन्ना 635)

यह एक और नवीन बात थी कि गुरु साहिब ने अपने धर्म (मत) का प्रारंभ करते ही श्रद्धालुओं को व्यक्तिगत-पूजा के झंझट से बचा लिया और सभी को 'शब्द' का पल्ला पकड़ने का निर्देश दिया। जब सिद्धों ने यह सवाल किया : **तेरा कवणु गुरू जिस का तू चेला ॥** तब गुरु साहिब का अपना भी यही उत्तर था :

सबदु गुरू, सुरति धुनि चेला ॥ *(रामकली म: १, पन्ना 943)*

---

1. मनसुख तीन बरस बाबे कोल रिहा, गुरु बाबे दी बाणी बहुत लिखिआसू, पोथियां लिख लितिआं। *(पुरातन जन्मसाखी)*

इस प्रकार उन्होंने शब्द को गुरु मानकर अध्यात्मिक ज्ञान को सर्वोपरि सिंघासन पर बिठाया। वह उम्र भर इस अध्यात्मिक ज्ञान की भंडार-वृद्धि करते रहे और इसी के द्वारा उन्होंने सिद्धों की करामातों का ताना-बाना, हिन्दुओं के भ्रम-जाल, और सांप्रदायक मुसलमानों के शरह (रीति-रिवाजों) का खंडन करते हुए सत्य का मार्ग प्रकाशित किया। राय बुलार, गोपाल पांधा, हरदयाल पुरोहित, दौलत ख़ां लोधी, भाई लालो, भाई मर्दाना, मनसुख, भागीरथ, दुनीचंद, शेख़ सज्जन, शेख़ शरफ़, मियां मिट्ठा, हमज़ा ग़ौस, सालस राय, अधरक्खा, नूरशाह, झंडा बाढी, कौडा राक्षस, वली कंधारी, सुधर सेन, शिवनाभ, ब्रह्मम दास, सैदो, हस्सू लोहार, शींहा छींबा, दौदा करोड़िया, बूड़ा, भरतरी, मंगल नाथ बहलोल, जीवन, अजितां रंधावा, तारू पोपट, उबारे ख़ां, साधारण, पंडित नानू, शेख़ मालो, भूमिया आदि पता नहीं और कितनी जनता को उन्होंने निहाल किया। वह नेकी और पवित्रता का उद्‌गम थे, जिधर से भी एक बार निकल जाते, उधर ही नेकी की धाराएँ बहने लग जातीं।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि सतिगुरु जी ने जिसका भी उद्धार किया उस पर कोई जादू नहीं चलाया, करामात नहीं बताई अथवा और कोई यंत्र-मंत्र नहीं किया, बल्कि सभी का उद्धार इस वाणी के द्वारा ही किया। गुरु नानक जी के सम्पूर्ण जीवन में भाई मर्दाने की रबाब की ध्वनि हर जगह सुनाई देती है, जिससे प्रकट (प्रसिद्ध) है कि सतिगुरु जी वाणी द्वारा ही बुराईयों को भस्म करके नेकी का दीप जगाते थे। भाई गुरदास जी ने गुरु साहिब के करतारपुर में रहने के समय की दिन-चर्या बतलाते हुए इस प्रकार ठीक ही लिखा है :

बाणी मुखहु उचारीऐ, हुइ रुसनाई मिटै अंधिआरा ॥३८॥१॥

(वारां भाई गुरदास जी)

इस प्रकार गुरु बाबे ने बीस वर्ष साधु बनकर देश-विदेश की प्रचार-यात्राएं कीं और जगह-जगह पवित्र विचारों के छींटे दिए। इसके पश्चात् विरक्त अथवा उदासी वेश छोड़कर सांसारिक वेश धारणकर बीस वर्ष करतारपुर में गृहस्थी जीवन बिताते हुए, इस नवीन उठती लहर को केंद्रित करके शक्तिशाली बनाने का उपक्रम किया। करतारपुर इस लहर (आंदोलन) का गढ़ था, जहाँ गुरु साहिब सिक्खों की शंकाओं और विरोधियों के तर्कों का उत्तर देते थे। संन्यासी, वैरागी, योगी और दूसरे

अनेक गृहस्थी लोग आपके पास आते रहते और जीवन-आदर्शों के संबंध में विचार-चर्चा होती रहती। अचल वटाले में गुरु साहिब की ओर से योगियों को जो पराजय दी गई, उसका देशवासियों पर बहुत प्रभाव पड़ा। एक बार पंजाब में योगियों का चमत्कारिक तिलिस्म टूट गया और लोग उनकी वास्तविकता से परिचित हो गए।

मारिआ सिका जगत्रि विचि, नानक निरमल पंथ चलाइआ ।।४५।।१।।

(वारां भाई गुरदास जी)

यह बात लगभग 1532 ई० की है जबकि एक देवी-भक्त भाई लहना करतारपुर आकर गुरु नानक साहिब का शिष्य हुआ। सिक्खी की चर्चा तो उसने बहुत पहले ही सुन रखी थी परन्तु दर्शन करके तो बस वह करतारपुर के योग्य ही रह गया। वर्षों तक नियमतः सेवा की, सिक्खी प्राप्त की और अंत में इसी अनथक प्रयत्न के परिणाम स्वरूप गुरु-पदवी का महत्व प्राप्त किया।

थापिआ लहिणा जीवदे, गुरिआई सिरि छत्र फिराइआ ।।
जोती जोति मिलाइकै, सतिगुर नानक रूप वटाइआ ।।४५।।१।।

(वारां भाई गुरदास जी)

हमारे कई इतिहासों में उल्लेख है कि गुरु-पदवी की गद्दी देने के समय सतिगुरु ने भाई लहने को सेल्ही-टोपी (गुरुगद्दी के चिन्ह) दिए। दरअसल सेल्ही-टोपी की परंपरा श्री चंद की उदासी संप्रदाय में तो थी, गुरु घर में नहीं। गुरु घर में गुरु-पदवी की गद्दी देते समय पोथी और माला दी जाती थी। मुंशी खुशवक्त राय *तवारीख़े सिक्खां* (1911 ई०) में 'प्राण संगली' (पोथी), माला, टोपी तथा शजरा (गुरु प्रणाली)—ये चार वस्तुएं गुरु-पद के चिन्ह लिखता है। जैसा कि हमने पहले विचार किया है कि वाणी ही वह अमूल्य खज़ाना थी जो कि प्रथम गुरु अपने से आगे होने वाले गुरु को सौंपते रहे, चुनाचि *जन्म साखी* में इस प्रकार है :

'प्रसन्न होकर बाणी का खज़ाना गुरु अंगद के हवाले कीता।'

(बाले वाली जन्मसाखी, पृष्ठ 616)

पुरातन जन्मसाखी में भी यह साक्षी मिलती है :

'तितु महलि जो सबदु होआ सो पोथी
जु बानि गुरु अंगद जोग मिली।' *(पृष्ठ 132)*

इसी प्रकार *गोष्टि मिहरबान जी की* (कृत हरि जी) नामक प्राचीन लिखित से भी इसी कथन की पुष्टि होती है :

'तब गुरु बाबा नानक जी गुरु अंगद कउ 'सबद' की थापना देकर संमत 1565 असूज वदी 10 दसमी कउ आप सच्चे खंड सिधारे।'

(पन्ना 4)

गुरु नानक साहिब लगभग 70 वर्ष तक जीवित रहे और 22 सितम्बर, 1539 ई० को करतारपुर (डेरा साहिब) ज़िला गुरदासपुर में ज्योति ज्योत समा गए। जो निराकारी गुरु उम्र भर 'सर्व-साझा' संदेश देते रहे और कहते रहे—"न को हिन्दु न मुसलमान।" अंत में उन्हीं के देहान्त के समय हिन्दुओं-मुसलमानों दोनों में यह चर्चा छिड़ गई कि वह हमारे गुरुदेव थे और मुसलमानों ने कहा कि वह हमारे पीर थे।[1] परन्तु चादर उठाने पर देह नज़र न पड़ी। निर्णय हुआ कि गुरु जी की आधी चादर का दाह संस्कार किया जाए और आधी दफ़्न की जाए। लोगों की भावना के विचार से ऐसा ही हुआ, परन्तु साथ ही निराकारी तराना भी गूँज रहा था :

सबदि सूर जुग चारे अउधू, बाणी भगति वीचारी ॥

(रामकली म: १, पन्ना 908)

गुर महि आपु समोइ, सबदु वरताइआ ॥ *(वार मलार म: १, पन्ना 1279)*

---

1. उस समय की एक कहावत प्रसिद्ध है :

'गुरु नानक शाह फ़कीर। हिन्दु का गुरु मुसलमान का पीर।'

मौलवी अब्दुल करीम लिखता है :

'निज़दे नानक शाह हिन्दु व मुसलमान बराबर बूदंद,
यक्के रा ब दीगरे तरजीह न मीदाद।' *(तवारीख़े पंजाब व तुहफ़ातुल अहबाब)*

एक ईरानी मुसलमान अपने विचार प्रकट करता है :

'बाबा नानक किताब, दारद, उमत्त दारद, मोअजज़ा दारद, असहाब दारद, व बजुर्ग तर अज़ हमा फज़ाइलहा, मुसलमान हमा बकरामतिउ काइल अंद। पस बाबा नानक बिला शको शुबह नबी अस्त।' *(कुलियाते आर्य मुसाफ़िर, पृष्ठ 360)*

डॉ मुहम्मद इकबाल गुरु जी को पूर्ण पुरुष कहता है :

फिर उठी आख़िर सदा तौहीद की पंजाब से।
हिन्द को एक मर्दे कामिल, ने जगाया ख़ाब से। *(बांगे-दरा)*

डॉ. गोकल चंद नारंग :

"Nanak was the first Hindu hero who could command the allegience of all parties because he did not identify himself with any party." *(Transformation of Sikhism, p. 42)*

गुरु अंगद जी (1539-1552 ई०)

प्रायः प्रकृति संसार के कोलाहल से एक ओर होकर सुंदर-सुंदर सर्वोच्च मानवों का निर्माण छोटे-छोटे एकांत स्थलों में अकेले ही करती रहती है। गुरु अंगद देव जी भी ऐसे ही व्यक्तियों में से थे। आपका जन्म 31 मार्च, 1504 ई. को ज़िला फ़िरोज़पुर के गाँव 'मत्ते की सराय' में, फेरू नामक एक साधारण दुकानदार के घर, माता रामो की कोख से हुआ। फेरू ने बालक का नाम लहना रखा। वह नहीं जानता था कि उसका यह पुत्र लहना उच्च पदवी प्राप्त करके संसार को सच्चे अर्थों में जीवन की भेट देने योग्य हो जाएगा। कई कारणों से फेरू को यह गांव छोड़ कर खडूर ज़िला अमृतसर में आना पड़ा। यहाँ से ही भाई लहना करतारपुर गुरु नानक जी के दर्शन करने के लिए गया। बाबा जी ने मुस्कराकर पूछा, "हे पुरुष! तेरा नाम क्या है ?" "जी मेरा नाम लहना है," उसने उत्तर दिया। गुरु साहिब ने कहा, "अच्छा, यदि तू भाई लहना (लहना-कर्ज़, जो कुछ भाग्य में लिखा हो वह प्राप्तव्य) है तो हमने भी तेरा देना है।"

इन संकेत पूर्ण वचनों और कृप्यापूर्ण नेत्रों ने लहना के अंदर की ज्योति जगा दी और उसे तब 'लाटां वाली' (कांगड़ा के पास ज्वाला मुखी देवी) की भी आवश्यकता न रही। लहना ने मन लगाकर 6-7 साल गुरु जी की सेवा की और गुरु साहिब ने भी कई प्रकार की परीक्षाएं लीं। अंत में एक बार गुरु साहिब ने धाणकी वेष बनाया। जो भी शिष्य उनके पास आता, उसको सोटा मारते और वह बेचारा भाग जाता, परन्तु लहना सोटे की मार खाकर भी गुरु जी के पीछे-पीछे चलता ही रहा। बाबा जी ने कहा, "लहना ! तू क्यों नहीं अपने घर जाता ? मेरे पीछे क्यों आ रहा है ?" लहना ने कहा, "सच्चे पातशाह ! दूसरे शिष्यों के अपने-अपने घर-ठिकाने हैं, परन्तु लहना का ठिकाना आपके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं।" गुरु नानक का स्वतः दयालुता और प्रेम में उछल पड़ा, कहने लगे, "लहना ! मैंने भी सारा संसार ढूंढ लिया है, नानक को भी तुझ जैसा ठिकाना कहीं नहीं प्राप्त हुआ। अब मैं अपनी ज्योति तेरे अंदर ही रखूंगा।" 14 जून, 1539 ई० को लहना को अंगद बनाकर गुरु-पदवी दे दी गई। श्री चंद तथा लखमी दास की नाराज़गी के कारण सिक्ख-संगत (शिष्यों) में फूट का बीज न बोया जाए, इसलिए गुरु नानक जी की आज्ञानुसार आप करतारपुर छोड़कर खडूर आ गए :

फेरि वसाइआ फेरुआणि सतिगुरि खाडूरु ॥

(वार रामकली, पन्ना 967)

दिता छोड़ि करतार पुरु, बैठि खडूरे जोति जगाई ।।४६।।१।।

(वारां भाई गुरदास जी)

खडूर साहिब में कीर्तन तथा लंगर का उसी तरह प्रवाह चलने लगा। गुरु नानक के सिद्धांत को फैलाने के लिए गुरुवाणी का प्रचार अवश्य था। इसलिए गुरु अंगद देव जी ने पंजाब के जनसाधारण में प्रयोग की जा रही लिपि में, जिसका बाद में 'गुरमुखी' नाम प्रसिद्ध हुआ, गुरुवाणी लिखवानी आरंभ की। इसी तरह गुरुवाणी के महावाक्य "बाबाणीआं कहाणीआं पुत सपुत करेनि" के अनुसार आप ने भाई पैड़े मोखे से गुरु नानक साहिब के जीवन-समाचार पर एक पुस्तक 'साखी श्री बाबे नानक जी की' में क्रमयुक्त लिखवाया। पंजाब की लोक-लिपी गुरमुखी को जनसाधारण में फैलाने के लिए गुरु साहिब ने एक बाल-विद्यालय भी चलाया, ताकि बचपन से ही लोग अपनी भाषा तथा लिपी द्वारा जीवन के सत्य सिद्धांतों से परिचित होकर जन-सेवा के मैदान में आ सकें। उस समय जब कि हिन्दु समाज की प्रमाणिक धार्मिक भाषा संस्कृत तथा देवनागरी लिपी थी और शासक मुस्लिम समाज की मान्यता प्राप्त राज्य-भाषा फ़ारसी थी। उस समय केवल जनसाधारण में प्रयोग हो रही गुरमुखी लिपि तथा पंजाबी भाषा में सिक्ख सिद्धांतों तथा गुरु-इतिहास को लिखना एक महान् कार्य था। इससे जहाँ ब्राह्मणों को पुरोहिताई को बड़ा धक्का लगा, वहां लोक-भाषा के कारण लोगों की धार्मिक जानकारी में बहुत बढ़ौतरी हुई। पहले धर्म-ज्ञान केवल संस्कृत जानने वालों तक सीमित था, परन्तु अब पूर्ण गुरु की कृपा से लोगों की अपनी भाषा तथा अपनी लिपि में प्राप्त होने लगा।

इसी तरह सिक्खों का मानसिक तथा दिमाग़ी विकास करने के अतिरिक्त गुरु जी ने एक 'मल्ल-अखाड़ा' भी बनाया, जहाँ शारीरिक शक्ति के लिए व्यायाम तथा मल्ल-युद्ध करवाये जाते थे। गुरु जी जानते थे, बलवान् शरीर के बिना बलवान् मन भी बहुत प्रभावशाली सिद्ध नहीं होता। शरीर को मिथ्या बनाने वाले तथा राख मलकर देह को ख़राब करने वाले देश में एक धर्म-गुरु की घृत वाली खीर के लंगर[1] लगाना तथा कसरत के

---

1. लंगरि दउलति वंडीऐ, रसु अंम्रितु खीरि घिआली॥ *(वार रामकली, पन्ना 967)*

लिए 'मल्ल-अखाड़े' बनाना एक नितांत आश्चर्यजनक बात थी। परन्तु सतिगुरु ने सिक्खों की दिमाग़ी तथा शारीरिक उन्नति के लिए हरेक पहलू से सफल प्रयत्न किये ताकि एक बलवान् कौम बनाने का उद्देश्य पूर्ण होता जाये। यह बात उस समय के मनौती तथा दंभी धर्मियों को अच्छी नहीं लगती थी। तथापि एक बार जब वर्षा न हुई तो एक शिवनाथ नाम के तपस्वी ने जाटों को यह कहकर गुरु जी के पीछे लगा दिया कि तुम्हारे गुरु शास्त्रों के नियम समाप्त करके तथा वर्णाश्रम का ख़्याल न रखकर सभी को इकट्ठा करके खिलाते, इकट्ठा करके पढ़ाते, इकट्ठा करके मल्ल-युद्ध करवाते और इकट्ठा करके एक साथ भक्ति करवाते हैं। जब ऐसे 'पाप' हों, फिर वर्षा किस तरह हो सकती है ? सतिगुरु स्वयं खडूर से बाहर चले गये, फिर भी वर्षा न हुई। अन्त में जाटों ने क्रोध में आकर तपस्वी को घसीट घसीट कर मार दिया, जब श्री अमरदास जी के बचनों से मूसलाधार वर्षा हुई तो जाटों का भ्रम स्वयं दूर हो गया तथा वह गुरु जी के अनन्य श्रद्धालु बन गये।

आप की सुपत्नी श्री खीवी जी के उदर से बीबी अमरो तथा बीबी अनोखी, दो पुत्रियां तथा श्री दातू तथा दासू, दो पुत्र पैदा हुए थे, परन्तु पुत्रों को गुरगद्दी के योग्य न समझकर, अपने वृद्ध सेवक श्री अमरदास जी को गुरगद्दी सौंपकर आप 29 मार्च, 1552 ई० को खडूर में ही ज्योति ज्योत समा गये।

गुरु अमरदास जी (1552-1574 ई०)

गुरु अमरदास जी का जन्म जून 1509 ई० को गांव बासरके, ज़िला अमृतसर में भाई तेजो (1488-1533 ई०) के गृह माता लखो (लखमी) जी के उदर से हुआ। आरंभिक जीवन अधिकतर वैष्णव विचारों में ही व्यतीत हुआ। कई बार गंगा स्नान किया, परन्तु मानसिक शान्ति न मिल सकी। इसी यात्रा के समय कहीं बाबा श्री चंद के श्रद्धालु हरी राम से वाणी श्रवण की। फिर गुरु अंगद देव जी की सपुत्री बीबी अमरो से, जिनका विवाह गुरु अमरदास जी के भतीजे से हुआ था, गुरुवाणी की मधुर ध्वनि श्रवण की। आप ने वाणी श्रवण करके कहा—पुत्री! जिस महापुरुष की यह वाणी है, मुझे उसके दर्शन करा दो ! बीबी अमरो, आप को अपने पिता गुरु अंगद जी पास लेकर गई तथा यहाँ आप ने रिश्तेदारी

का विचार त्यागकर 8-9 वर्ष निरन्तर कठोर सेवा की। प्रतिदिन ब्यास दरिया से गुरु जी के स्नान करने के लिए सवेरे पानी की गागर भरकर लाना, सारा दिन बर्तन मांजना, पानी लाना तथा अन्य सिक्ख-संगत की सेवा करना नित्य-नियम बन गया। इस सेवा पर प्रसन्न होकर गुरु अंगद देव जी ने 29 मार्च, 1552 ई॰ को आप को गुरगद्दी सौंप दी।

इससे पूर्व ब्यास किनारे 1546 ई॰ में गोइंदवाल नगर आबाद करना आरंभ कर दिया गया था। फिर गुरु अमरदास जी ने इसे सिक्ख धर्म का केन्द्र स्थापित किया :

गोबिंद वालु गोबिंद पुरी सम, जल्यन तीरि बिपास बनायउ ॥

(सवईए महले चउथे के, पन्ना 1400)

गुरु अंगद देव जी की ओर से गुरुवाणी एकत्र करने तथा प्रचार करने के महान् कार्य को गुरु अमरदास जी ने बहुत विकसित किया। एक समय हम उनका समस्त परिवार ही—बाबा मोहन, बाबा मोहरी तथा उनके पौत्र सहंसर राम, सुन्दर तथा अनंद आदि—सभी गुरुवाणी की पोथियाँ लिखने में लीन दिखते हैं[1] और वृद्ध गुरु जी की ओर से समस्त सिक्ख-संगत को दिया गया बुलावा भी आज तक हमारे कानों में गूँजता सुनाई देता है :

आवहु सिख सतिगुरू के पिआरिहो, गावहु सची बाणी ॥
बाणी त गावहु गुरू केरी, बाणीआ सिरि बाणी ॥

(रामकली अनंदु म: ३, पन्ना 920)

वे आध्यात्मिक वाणी का विस्तृत रूप में प्रचार करके संसार को संतुष्टता प्रदान करने के आहर में थे। एक बात उन्होंने और भी कही :

सतिगुरू बिना होर कची है बाणी ॥
बाणी त कची सतिगुरू बाझहु, होर कची बाणी ॥

(रामकली अनंदु म: ३, पन्ना 920)

इससे यह विदित होता है कि गुरुवाणी की बहुत मान्यता होने के कारण 'कच्ची वाणी' लिखी जानी आरंभ हो गई तथा गुरु साहिब 'सच्ची

---

1. सतिगुर होआ सतिगुरहु, अचरजु अमर अमरि वरताइआ॥...
खोलि खजाना सबदु दा, साधसंगति सचु मेलि मिलाइआ॥१२॥२४॥

(वारां भाई गुरदास जी)

वाणी' की संभाल का विशेष प्रयत्न कर रहे थे। गोइंदवाल वाली प्राप्त दो पोथियाँ इसके बारे में प्रकाश डालती हैं। गुरु साहिब ने ख़ुद 17 रागों में वाणी लिखी और यह कार्य गुरु अर्जुन साहिब के समय में सम्पूर्ण हुआ।

सिक्खी प्रचार को जत्थेबंद करने के लिए गुरु अमरदास जी ने जो दूसरा महान कार्य किया, वह देश के कोने-कोने में 22 प्रचार-मंजियाँ स्थापित करना था। इन मंजियों (धर्म प्रचार-स्थान) के मुख्य प्रचारक थे :

1. सावण मल्ल, 2. भाई पारो जुलका, 3. हंदाल, 4. सच्चन सच्च, 5. साधारण, 6. अल्लायार पठान, 7. सुक्खण, 8. केदारी, 9. खेडा, 10. गंगू शाह, 11. दरबारी, 12. महेशा 13. माईदास, 14. माणक चन्द, 15. बेणी, 16. बूआ, 17. फेरा, 18. मुरारी, 19. राजाराम, 20. भाई लालो, 21. रंग शाह, 22. रंगदास, आदि। 22 मंजियों का ख़्याल उस समय हिन्दुस्तान के 22 प्रांतों के आधार पर किया लगता है। इसके अतिरिक्त लघु-शाख़ाएं—52 पीढ़े-स्थापन (धर्म-प्रचार स्थान) का भी इतिहास में वर्णन हुआ मिलता है। इसके पश्चात् देश परदेस की समस्त सिक्ख संगत को एकत्र करने के लिए वैशाखी के समय वार्षिक समारोह करना प्रचलित किया गया।

जाति-पाति के भेद को समाप्त करने के लिए गुरु साहिब ने एक विशेष आदेश किया—यदि कोई साझे लंगर में भोजन पान नहीं करेगा, उसको गुरु जी के दर्शन नहीं हो सकेंगे।' ये बातें उस समय धर्म की दुनियाँ में नितांत आश्चर्यजनक लगती थीं तथा इन का प्रभाव इतना पड़ा कि अकबर[1] जैसे शहनशाह तथा राजा हरिपुर जैसे पहाड़ी राजे ने भी गुरु साहिब के लंगर में ग़रीब सिक्खों की पंक्ति में बैठकर प्रसाद प्राप्त किया तथा गुरु-दर्शनों के अधिकारी बने। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार करने के लिए सती की रसम तथा पर्दा करने की प्रथा करने से भी सिक्खों को रोका गया। गुरु साहिब ने जाति-पाति का भ्रम मिटाकर विशाल दरबार में कई विवाह भी करवाये। भाई शींहे की पुत्री का एक

---

1. 1623 वि. माघ मास के अंत अकबर ब्यास से गुज़रा था। इस समय गुरु जी को मिला तथा कुछ ज़मीन उन्हीं की बेटी भानी के नाम लगा गया था, जिसका नाम 'गुरु का चक्क' प्रसिद्ध हुआ। भाई केसर सिंघ छिबर लिखता है :
'पट्टी का तपा दे गया, साढ़े बारां गाउँ।' *(बंसावलीनामा)*

ग़रीब सिक्ख 'प्रेमे' के साथ विवाह किया। एक राजपूत बेटी का विवाह 'सच्चन सच्च' नामक लकड़हारे के साथ हुआ। स्वयं गुरु साहिब ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए गेहूँ उबालकर बेचने वाले एक जेठा नाम के नौजवान का चयन किया। इसी तरह आप ने साहसी पग (कदम) उठाकर सुधार किये और भ्रम में पड़ी हुई हिन्दु मंडली से 'सिक्ख लहर' को अलग किया। लोग स्नान करने के लिए तीर्थों की ओर जाते थे, आप ने 1564 ई॰ में एक बड़ी बउली तैयार करवाई ताकि सिक्खों को प्रातःकाल स्नान करने में आसानी हो सके। परन्तु साथ ही सिक्खों को यह शिक्षा भी दी :

मनि मैलै सभु किछु मैला, तनि धोतै मनु हछा न होइ ॥

(वडहंसु महला ३, पन्ना 558)

गुरु साहिब आप भी एक बार हरिद्वार की यात्रा करने के लिए गए, परन्तु आप का जाना केवल जन-उद्धार के लिए था। जैसा कि प्रत्यक्ष देखने योग्य सतिगुरु रामदास जी ने लिखा है :

तीरथ उदमु सतिगुरू कीआ, सभ लोक उधरण अरथा ॥

(तुखारी महला ४, पन्ना 1116)

सिक्ख धर्म तो 'नाम' अथवा 'शब्द' को ही सच्चा तीर्थ बताता रहा था :

तीरथि नावण जाउ, तीरथु नामु है ॥...
गुर वाकु निरमलु सदा चानणु, नित साचु तीरथु मजना ॥

(धनासरी महला १, पन्ना 687)

अंत में सिक्खों को यह ताकीद करते हुए कि मेरे देहांत के पश्चात् कीर्तन करना, रोना नहीं, (अंते सतिगुर बोलिआ, मैं पिछहि कीरतन करिअहु निरबाण जीउ) आप श्री रामदास जी को गुरिआई गद्दी देकर 1 सितम्बर, 1574 को गोइंदवाल ज्योति ज्योत समा गये।

गुरु रामदास जी (1574-1581 ई॰)

राज-योग तख़्त के मालिक गुरु रामदास जी का जन्म चूना मण्डी लाहौर में सोढी हरिदास जी के गृह माता दया कौर के उदर से 24 सितम्बर, 1534 ई॰ को हुआ। पहला नाम जेठा था। लाहौर से आ रही सिक्ख संगत के साथ जेठा भी गोइंदवाल पहुँचा तथा यहाँ रहकर सेवा करने लगा।

गुरु अमरदास जी की परख करने वाली दृष्टि ने जेठे की महानता की परीक्षा की तथा अपनी पुत्री बीबी भानी का विवाह 1553 ई॰ में इनके साथ कर दिया और ये गोइंदवाल ही घर बनाकर रहने लगे। आप के घर 1558 ई॰ में पृथी चन्द, 1561 ई॰ में महांदेव तथा 1563 ई॰ में श्री अर्जुन—तीन सपुत्रों ने जन्म लिया।

बउली की कार-सेवा करते समय लोक-लज्जा का ध्यान न रखते हुए जेठा जी ने पूर्ण तन मन के साथ सेवा की और अंत गुरु जी की ओर से अपने सपुत्रों—मोहन तथा मोहरी और दोनों दामादों—रामा तथा जेठा अर्थात चारों की परीक्षा ली गई और जेठा जी को रामदास बनाकर 'शब्द नीसाण' देकर 1 सितम्बर, 1574 ई॰ को गुरिआई दे दी। बाबा सुंदर ने लिखा है :

रामदास सोढी तिलकु दीआ, गुर सबदु सचु नीसाणु जीउ ॥[1]

(रामकली मः सदु, पन्ना 923)

गोइंदवाल के चौधरियों की गुरु जी के साथ कुछ अनबन थी तथा कुछ ईर्ष्यालु पंडित, मौलाने भी बादशाह के पास गुरु घर की शिकायतें करते रहते थे। इन बातों का वर्णन चौथे गुरु जी की वाणी में भी कई स्थानों पर हुआ मिलता है। गुरिआई के समय बाबा मोहन जी आदि भी प्रसन्न न हुए। ऐसी अवस्था में गुरु रामदास जी ने, अकबर जो स्थान गुरु जी के नाम लगा गया था, वहाँ (अमृतसर गज़टियर के अनुसार 1577 ई॰ में) 'गुरु का चक्क' बस्ती को बसाना आरंभ किया। सतिगुरु जी ने बिना किसी भेद-भाव से 52 जातियों के लोगों को बसाया ताकि प्रत्येक प्रकार की दस्तकारी तथा कला प्रफुल्लित हो और यहाँ सिक्ख समाज की सरगर्मियों का केन्द्रीय स्थान बन सके। वैसे भी सिक्खों की बहु-गिनती हाथों से परिश्रम करके, मज़दूरी करने वालों की ही थी। 'अमृतसर' सरोवर का कार्य भी आरंभ किया गया, जिसके नाम से बाद में शहर का नाम प्रसिद्ध हुआ।

बैठा सोढी पातिसाहु, रामदास सतिगुरू कहावै ॥
पूरन ताल खटाइआ, अंम्रितसर विचि जोति जगावै ॥४७॥१॥

(वारां भाई गुरदास जी)

---

1. तब गुरु अंगद जी की पीछे ।22। बाई वर्ष ।5। पांच महीने ।11। ग्यारां दिन गुरु अमरदास सैसार के विखे भगति कमाई अर सबद की थापना गुरु रामदास जी कउ देकर आप सचे खंड कउ सिधारे। *(पत्तरा ६, गोसटि श्री मिहरवान जी की, लेखक हरि जी)*

इस समय सिक्ख-धर्म के प्रचार का कार्य बढ़ गया था, इसकी संभाल के लिए आप ने प्रत्येक प्रांत के अनुसार मंजियों के स्थान पर मसनदें स्थापित कीं, जिनके मुखी प्रबन्धकों को आगे जाकर **'मसंद'** कहा जाने लगा। ये गुरु जी के लिये धन आदि की भेटा सिक्ख-संगत से प्राप्त करते तथा सिक्ख-धर्म का प्रचार करते थे। इस समय सतिगुरु जी के लिए सिक्ख-संगत में 'सच्चा पातिशाह' शब्द का साधारणतः प्रयोग होने लग पड़ा था। परन्तु गुरु रामदास जी इतने विनम्रता के पुंज थे कि अपने आप को सिक्खों की धूल ही बताते थे। जब बाबा श्री चंद जी ने पूछा कि हे पुरुष! आप ने दाढ़ी इतनी लंबी किस लिए की है ? तो आप का उत्तर था, "आप जैसे महापुरुषों के चरण झाड़ने के लिए।" यह कहकर उन्होंने बाबा जी के चरण झाड़ने आरंभ कर दिये।

पहले गुरुओं की तरह गुरु रामदास जी ने बाणी की महानता का सिक्का सिक्खों के हृदय में बिठा दिया ताकि वे उस पर पूर्ण विश्वास रखते हुए सिक्खी लहर को आगे बढ़ाते चलें। आप कहते हैं :

सतिगुर की बाणी सति सति करि जाणहु गुरसिखहु,
हरि करता आपि मुहहु कढाए ॥

(वार गउड़ी महला ४, पन्ना 308)

यहां ही अन्त नहीं, उन्होंने 'बाणी ही गुरु है' के सिद्धांत को दृढ़ करते हुए व्यक्तिवाद को पूर्णतः एक तरफ़ कर दिया, जिस पर समस्त सिक्ख-सेवक उसी में 'प्रतख (प्रत्यक्ष) गुरु' से प्रकाश लेकर जीवन अमृत-पान करें और व्यक्ति पूजा का स्थान न रहे। यह स्पष्ट आदेश एक बहुत बड़ी बात थी :

बाणी गुरू, गुरू है बाणी, विचि बाणी अंम्रितु सारे ॥
गुरु बाणी कहै सेवकु जनु मानै, परतखि गुरू निसतारे ॥

(नट म: ४, पन्ना 982)

इसी गुरुवाणी के भण्डार को भरपूर करने के लिए गुरु साहिब जी ने अपने छोटे सपुत्र श्री अर्जुन को अच्छी तरह अवलोकन किया तथा इस शब्द का ख़ज़ाना भी उन्हीं को सौंप दिया, जिस के बारे में स्वयं उन्हीं की गवाही मौजूद है :

पीऊ दादे का खोलि डिठा खजाना ॥
ता मेरै मनि भइआ निधाना ॥ *(गउड़ी महला ५, पन्ना 186)*

अंत उन्हीं को गुरगद्दी सौंप कर आप 1 सितम्बर, 1581 ई॰ को गोइंदवाल में ज्योति ज्योत समा गये।[1]

गुरु अर्जुन देव जी (1581-1606 ई॰)

गुरु अर्जुन साहिब का जन्म गुरु रामदास जी के गृह माता भानी जी के उदर से 15 अप्रैल, 1563 ई॰ को गोइंदवाल में हुआ। यद्यपि आप भाईयों में सबसे छोटे थे, परन्तु गुणवान थे। स्मरण, सेवा, साहित्य, संगीत का आपको आरम्भ से ही शौक था, इसलिए तो नाना गुरु अमरदास जी ने "दोहता बाणी का बोहिथा" कहा था। पृथी चन्द आयु में बड़ा होने के कारण अपने आप को गद्दी का वारिस समझता था परन्तु सतिगुरु जी ने योग्यता परख कर गुरिआई श्री अर्जुन जी को ही दी।[2] डॉ. गोकल चन्द लिखते हैं :

> 'Now appeared on the scene a man who was a born poet, a practical philosopher, a powerful organiser and a great statesman. *(Transformation of Sikhism, p. 65)*

इस समय सिक्खों की एक अच्छी बलवान् तथा नई किस्म की दुनिया बन गई थी जो हिन्दु मुसलमानों से नितांत अलग तरह की थी। इन्हीं के वार्षिक समारोह, रोज़ाना कथा-कीर्तन, साझा लंगर तथा अन्य धर्म कर्म सभी विलक्षण ही दिखाई दे रहे थे। इसीलिए आवश्यकता थी एक साझे केन्द्रीय धर्म-मंदिर की और साझे पवित्र धर्म-ग्रन्थ की। सिक्ख ठाकुर द्वारे, मस्जिदें अथवा तीर्थों पर तो नहीं जा सकते थे क्योंकि उन्हीं के लिए ब्राह्मणों तथा मुल्लों ने दरवाज़े बंद कर दिये थे। इसी तरह सिक्ख वेद-कतेब के अंध-विश्वासों से भी बाग़ी थे। उन्हीं को अपने जीवन-आदर्शों वाले धर्म-ग्रन्थ की आवश्यकता थी। यद्यपि सिक्ख-संगत के पास चार गुरुओं की वाणी मौजूद थी, परन्तु उसमें मिलावट की जाने लग पड़ी थी। इसका अनुमान गुरु रामदास जी की वाणी से भी लगता है :

---

1. तब गुरु रामदास संम्मत 1638 भादउ सुदि ।3। तित्र, शब्द की थापना गुरू अरजन कउ देकर सच्चे खण्ड कउ सिधारे। *(गोसटि श्री मिहरवान जी की)*
2. मरने दी पग्ग प्रिथीऐ बध्धी।
   गुरियाई दी पग्ग अरजन लध्धी।३५। *(बंसावलीनामा)*

सतिगुर की रीसै होरि कचु पिचु बोलदे,
से कूड़िआर कूड़े झड़ि पड़ीऐ ॥ *(गउड़ी की वार म: ४, पन्ना 304)*

भाई केसर सिंघ छिबर ने अपनी *बंसावलीनामा* में इस बात का वर्णन किया है कि पृथी चन्द ने अपनी अलग गद्दी चलाने के लिए वाणी में मिलावट करनी आरंभ कर दी थी। भाई साहिब लिखते हैं :

मिहरबान पुत प्रिथीए का कबीसरी करे,
पारसी हिंदवी सहसक्रिती नाले गुरमुखी पड़े,
तिन भी बाणी बहुत बणाई।
भोग गुरु नानक जी का ही पाई।८०।
डूम लगे सबद मीणिआं के गावण,
दुया दरबार बडा गुरिआई का लगे लावण,
मीणिआं भी इक पुसतक ग्रंथ बणाइआ।
चहुं पातसाहीआं के सबद बाणी लिख विच पाइआ।८१।

(बंसावलीनामा)

इसी तरह नकली वाणी रचित करने के साथ साथ पृथीये ने गांव हेहर में नकली हरि मन्दिर तथा सरोवर भी बनवाया ताकि सिक्ख-संगत उस के जाल में फंस सके। परन्तु भाई गुरदास तथा बाबा बुड्ढा जैसे सूझवान सिक्खों ने इस समस्त पाखण्ड का पर्दाफ़ाश किया और सिक्खों को उचित मार्ग प्रदर्शित किया। भाई गुरदास जी ने अपनी 36वीं वार में इन मीणियों की घटिया करतूतों का अच्छी तरह पर्दाफ़ाश किया, जो बिना ही गुरिआई के गुणों से गुरु बन बैठे थे। अन्त गुणहीन पृथीये को कौन माथा टेकता :

पूरण गुण पुरखतु विणु, कामणि कि करेसु ॥
विणु गुण गुरू सदाइदे, कउण करे अदेसु ॥११॥३६॥

(वारां भाई गुरदास जी)

इस तरह गुरसिक्खों ने मनमतिये पृथी चन्द की विरोधता को दबा दिया और गुरु जी इधर गुरमति के विकासशील कार्यों में लग गये। पिता गुरु ने अमृतसर सरोवर की जो सेवा आरंभ की थी, उसको पूर्ण करना आवश्यक था। 1589 ई० में सतिगुरु जी ने हरिमंदर की नींव रखी। 1590 ई० में तरनतारन नगर बसाया और वहां सरोवर तथा मन्दिर बनने लगे। 1594 ई० में करतारपुर (ज़िला जालंधर) आबाद किया। इसी समय में हरिगोबिन्द जी के जन्म की ख़ुशी में छेहरटा कुआँ बनवाया गया। 1599 ई० में लाहौर डब्बी बाज़ार में एक बाउली तैयार करवाई। इस तरह

हम देखते हैं कि सिक्ख-धर्म के केन्द्र—अमृतसर के आसपास 20-30 मील तक गुरु जी ने नये मन्दिर, नये सरोवर तथा कुएँ बाउलियां लगाकर जनसाधारण की आवश्यकताओं को पूर्ण किया तथा सिक्ख-शक्ति को दृढ़ किया। सिक्खों के नाम दान स्नान की इच्छा हिन्दु तीर्थों की अपेक्षा यहाँ पूर्ण होने लगी।

इस समय माझे इलाके में चौधरी लंगाह, बाबा बुड्ढा, भाई लध्धा, भाई बिधी चन्द, संहारी मल्ल, भाई बुध्धू, कृष्णा मुज़ंगिया, जेठा सेठी, केदारा सराफ़, भाई पैड़ा, गुजरात में भाई भिखारी, दुआबे में भाई मंझ, भाई तिलकू, भाई भाना, गोबिन्द घेई, छज्जू भल्ला (सुलतानपुर), मालवे में भाई बहलो, भाई बोहड़ू, भाई शीह चन्द, रूप चन्द (सरहिन्द में) सामीदास थानेसर में, भाई कलियाणा आदि कुल्लू वादी की ओर सिक्ख-धर्म की शान को उज्जवल बना रहे थे। पंजाब से बाहर भाई गुरदास (वाराणसी), भाई चूहड़ (लखनऊ), माना (प्रयाग), मोहन तथा निहाला (पटना), भाई तीरथा, भाई हरिदास (गवालियर), संमन (शहबाज़पुर), भाना तथा धीरा (उज्जैन), जटू (जौनपुर), भक्त भगवान दास (बुरहानपुर), मोहन (ढाका), मथरादास, गंगा सहिगल, भाई हरबंस, आलम चन्द हांडा, संसार तलवाड़, सुन्दर चड्ढा, आनंद मुरारी (आगरा), जीवंदा तथा जगसी (फतेहपुर), माधो सोढी कशमीर में, तिलोका, भाना मल्ल तथा रेखा राउ काबुल में—बात क्या, कोने कोने में सिक्ख-धर्म की सुगंधी फैल रही थी।[1] समकाली भट्ट राय बलवंड तथा सत्ते ने ठीक कहा है :

तखति बैठा अरजन गुरू, सतिगुर का खिवै चंदोआ ।।
उगवणहु तै आथवणहु, चहु चकी कीअनु लोआ ।।८।।

(रामकली की वार, पन्ना 968)

भाई गुरदास इसी की पुष्टि करते हैं :

चारे चक निवाइओनु, सिख संगति आवे अगणता ।।
लंगरु चलै गुर सबदि, पूरे पूरी बणी बणता ।।२०।।२४।।

(वारां भाई गुरदास जी)

दुबिस्तानि मज़ाहब का लेखक मोहसन फ़ानी जिसको गुरु हरिगोबिन्द तथा गुरु हरि राय के पास कीरतपुर रहने का शुभ अवसर भी मिला था, लिखता है :

---

1. अन्य विवरण के लिए देखें, *भाई गुरदास की ग्यारहवीं वार*।

"गुरु अर्जुन देव के समय सिक्खों की गिनती बहुत बढ़ गई थी। कोई ऐसा बड़ा शहर देश में नहीं था, जहाँ कुछ न कुछ सिक्ख न बसते हों।"

सिक्खों की आर्थिक उन्नति के लिए गुरु साहिब ने उनको व्यापार करने की ओर लगाया तथा वे तुरकस्तान तक मेवे तथा घोड़ों का व्यापार करते और साथ साथ सिक्ख-धर्म का भी प्रचार करते। इस दूर दूर तक फैले हुए सिक्ख-धर्म को गुरु साहिब मसन्दों द्वारा एक संयम तथा मर्यादा में रखते थे। इस बारे में मोहसन फ़ानी लिखता है, "क्योंकि सिक्ख, गुरु को सच्चा पातिशाह अथवा हकीकी बादशाह जानते थे, इसीलिए सतिगुरु के गुमाशतियों को 'मसंद' अथवा 'रामदास' (प्रभु-सेवक) भी कहते थे। वैशाख के माह में जब सूर्य बृछिचक राशी में होता है तो मसंद दर्शनाभिलाषी संगतों के साथ गुरु जी के दरबार में आकर उपस्थित होते थे।" सिक्खधर्म की इस प्रभुता को देखकर ही यह लिखारी लिखता है कि सिक्खों ने बड़े राज्य में एक तरह यह 'स्वतन्त्र सरकार' स्थापित कर रखी है। यद्यपि यह बात ठीक नहीं है तथापि 'सच्चा पातिशाह' कहा जाना, दूसरे बादशाह को झूठा समझना तथा मसंद प्रणाली द्वारा नियमानुसार दसवंध (गुरु भेटा) प्राप्त करना—ये कुछ ऐसी बातें थीं जो सिक्खों के अन्दर स्वाभिमान, स्वतन्त्रता के भाव को प्रज्वलित कर रही थीं और पीछे की ओर ले जाने वाले परंपरागत धर्मियों तथा सरकारी पिट्ठूयों को अच्छी नहीं थी भातीं।

जैसा कि पहले वर्णन किया गया है कि वाणी की शुद्धता को स्थिर रखने के लिए गुरु अर्जुन देव जी ने स्थान स्थान से वाणी एकत्र करके एक महान् ग्रंथ तैयार करने का प्रयत्न किया। यह कार्य आरंभ तो 1590 ई॰ में ही कर दिया था। भाई गुरदास की देख रेख में भाई हरिया, भाई संत दास, भाई सुखा तथा भाई मनसा राम चार लिखारी लिखने का कार्य करते थे। भाई गुरदास ने भी गुरु-दरबार में पोथियाँ लिखने के कार्य को बड़े महत्वपूर्ण ढंग से वर्णन किया है :

गुरमुखि हथि सकथ हनि,
साधसंगति गुर कार कमावै ॥...
गुरबाणी लिखि पोथीआ,
ताल म्रिदंग रबाब वजावै ॥१२॥६॥ *(वारां भाई गुरदास जी)*

पांधा बूला जाणीऐ, गुरबाणी गाइणु लेखारी ॥१६॥११॥

(वारां भाई गुरदास जी)

इसी प्रकार यह वाणी एकत्रित करने का परिश्रम ग्यारह वर्ष तक जारी रहा और अंत 1601 ई॰ में 'आदि ग्रंथ' तैयार हुआ। 24 नवम्बर, 1598 ई॰ (25 मार्गशीर्ष 1655 वि.)[1] को जब बादशाह अकबर ब्यास पार करके करतारपुर गुरु के डेरे पर आया तो उसको यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि सतिगुरु एक साझा पावन धर्म-ग्रंथ तैयार करवा रहे हैं। मुंशी सुजान राय भंडारी ने *ख़ुलासातुल तवारीख़* (1696 ई.) में इस मुलाकात का वर्णन किया है। इस समय गुरु जी के कहने पर अकबर ने पंजाब के किसानों का दस-बारह गुणा अधिक बढ़ाया कर (Tax) भी मुआफ़ कर दिया।

समस्त वाणी को भिन्न भिन्न 30 रागों—सिरीरागु, माझ, गउड़ी, आसा, गूजरी, देवगंधारी, बिहागड़ा, वडहंसु, सोरठि, धनासरी, जैतसरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गोंड, रामकली, नट नारायन, माली गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंतु, सारंग, मलार, कानड़ा, कलियाण, परभाती, जैजावंती अनुसार क्रमवार किया गया और इसमें गुरु नानक, गुरु अंगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव जी के अतिरिक्त फ़रीद, नामदेव, कबीर, रविदास, त्रिलोचन, बेणी, धंना, जै देव, भीखन, सैन, पीपा, सधना, रामानन्द, परमानन्द, सूरदास, सुन्दर, सत्ता, बलवंड, मरदाना आदि भक्तों, सन्तों और कलसहार, जालप, कीरत, सल्ल, भल्ल, नल, भिखा, बल, गयंद, हरबंस, मथरा आदि ग्यारह भट्टों की वाणी संकलित की गई।

यह था महान् कार्य जो गुरु अर्जुन साहिब ने कई वर्षों से निरंतर परिश्रम करके तैयार किया था और इसके बारे में लिखा कि यह [2]अमृत भोजन है जिसका प्रयोग करते हुए सदैव तृप्ति मिलेगी और यह वस्तु किसी भी समय विस्मरण नहीं की जा सकेगी, संसार के गुरु पीर जन्म लेते और मरते रहेंगे परन्तु यह वाणी सदैव अटल रहेगी :

---

1. *अकबरनामा*, पृष्ठ 514.
2. As 'Tulsi's Ramayana' in the UP, so the Granth Sahib in the Punjab saved the Hindus from spiritual starvation and prevented them from crossing over the religious bourne from which no return was possible. *(Preface, Transformation of Sikhism)*

जे को खावै जे को भुंचै, तिस का होइ उधारो ।।
एह वसतु तजी नह जाई, नित नित रखु उरि धारो ।।

(मुंदावणी म: ५, पन्ना 1429)

इस प्रकार गुरु अर्जुन जी जिन महान् आदर्शों का जीवन-भर प्रचार करते रहे, उनको उन्हीं ने एक ग्रंथ रूप में सजाया और इसके अनुसार ही अपना समस्त जीवन व्यतीत किया। ये सिद्धान्त उनके लिए केवल बौधिक सिद्धान्त-मात्र नहीं थे, अपितु उन्होंने अपने बलिदान द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि इन गुरुवाणी के आदर्शों के लिए केवल जीवित ही नहीं रहा जा सकता, अपितु मरा भी जा सकता है और सचमुच उन्होंने इसके लिए अपना बलिदान भी दिया। इसी तरह एक बार ज्ञान-योगी और कर्म-योगी गुरु अर्जुन, गुरुवाणी तथा बलिदान के पुंज रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

तखतु बखतु लै मलिआ, सबद सुरति वापारि सपता ।।
गुरबाणी भंडारि भरि, कीरतनु कथा रहै रंग रता ।।१९।।२४।।

(वारां भाई गुरदास जी)

सच्चे पातिशाह गुरु की ऐसी महान् कलाकार वाली छवि झूठे पातिशाह को किस तरह अच्छी लगती ? अकबर का स्वभाव तो भ्रातृभाव वाला था, परन्तु जब 1605 ई० में जहांगीर गद्दी पर बैठा, वह गुरु जी के कार्यों के प्रभुत्व को सहार न सका। विशेषत: मौलानों की कटुर-नीति ने उसको अपने जाल में फंसा लिया। अत: शहज़ादा ख़ुसरो की बग़ावत के समय जहांगीर को अपना यह क्रोध निकालने का अवसर मिल गया। दोष यह लगाया गया कि गुरु जी ने बाग़ी ख़ुसरो की सहायता की है। शेख़ नज़ाम थानेसरी ने भी उसकी कुछ सहायता की थी, उसको तो सज़ा के तौर पर सरकारी ख़र्च पर मक्के हज करने के लिए भेज दिया, परन्तु गुरु अर्जुन साहिब को शहीद करने का आदेश दिया गया। कटुरता से क्रुद्ध हुआ जहांगीर अपनी डायरी *तुज़कि जहांगीरी* में गुरु जी की शहीदी से ठीक बीस दिन बाद लिखता हुआ कहता है :

"ब्यास दरिया के तट के पास गोइंदवाल नगर में एक पीरों बज़ुर्गों के भेस में अर्जुन नाम का हिन्दु था। उसने बहुत सारे भोले हिन्दुओं को नहीं अपितु बुद्धिहीन मूर्ख मुसलमानों को भी अपने धर्म कर्म का श्रद्धालु बनाकर अपनी पीरी का ढोल बजाया हुआ था। लोग

उसको 'गुरु' कहते थे। इधर उधर से अनजान तथा दंभ के पुजारी लोग आकर पर अटूट आस्था प्रगट करते थे। तीन चार पीढ़ियों से उन की यह दुकान चल रही थी, काफ़ी समय से मेरे दिल में यह ख़्याल आ रहा था कि इस झूठ के व्यापार को बन्द कर दूँ अथवा उस (गुरु अर्जुन) को इस्लाम में ले आऊँ।"

इन दिनों में ही ख़ुसरो यहाँ से गुज़रा। उस अज्ञानी तथा बहुत ही छोटे आदमी ने यह इच्छा की कि उसको मिला जाये। इसलिए उसने उस गुरु के डेरे में पड़ाव किया और मिला। बहुत पूर्व विचार की हुई बातें की और ऊँगली से ख़ुसरो के माथे पर केसर का टीका लगाया, जिसको हिन्दु एक अच्छा शगुन मानते हैं। जब यह बात मेरे कानों में पड़ी, पहले ही मैं इसके झूठे आडंबर को जानता था। मैंने आदेश दिया कि उस (गुरु) को उपस्थित किया जाये। उसका घर घाट तथा बच्चे मुरतज़ा ख़ां को सौंप दिये और उसका माल असबाब ज़बत कर लिया। मैंने आदेश दिया कि उसको तसीहे देकर मार दिया जाये।"[1]

---

1. दर गोइंदवाल कि बर किनारि दरिआए बिआह वाकिआ असत हिन्दुए बूद अरजन नाम दर लिबासि पीरी व शेखी चुनांचि बिसीआरे अज़ सादा लौहानि हनूद बलकि नादान व सफिहानि इसलाम रा मुकइदि इतवार व औज़ाइ ख़ुद साखता कोसे पीरी व वलाइत रा बुलंद आवाज़ा गरदानीदा बूद। ऊ रा 'गुरु' मेगुफतंद व अज़ इतराफो जवानब गोलां व गोल-प्रसतां बदूं रजूअ आवुरदा इअतकादि तमाम बा ऊ इज़हार मीकरदंद। अज़ सि चहार पुशत ऊ ईं दुकान रा गरम मीदाशतंद, मुदतह बखातर मीगुज़शत कि ईं दुकानि बातिल रा बरतरफ़ बायद साखत, या ऊ रा दर जिरगए अहलि इसलाम दर बायद आवुरद ता आं कि दरीं अय्याम ख़ुसरो अज़ आं राह अबूर मीनमूद। ईं मरदकि मजहूल इरादा करद कि मुलाज़मति ऊ दर याबद दर मंज़िल कि जा व मुकामि ऊ बूद ख़ुसरो रा नजूल उफताद। आमदा ऊ रा दीद व बाअज़े मुकदमात फरा याफ़ता ब ऊ रसानीद।
व बर पेशानी ऊ अंगुशतए अज़ ज़ाफ़रान कि बा इसतलाहि हिन्दुआं कशका गोइंद कशीद व आं रा शगून मीदानद। चूं ईं मुकदमा बमसामहि जाहो जलाल मेरसीद व बातलाने ऊ रा बवज़्हा अकमल मीदानिशतम। अमर करदम कि ऊ रा हाज़र साख़तंद व मसाकन व मनाज़ल व फरज़ंदाने ऊ रा बमुरतज़ाख़ान अनायत नमूदम व असबाबो अमवालि ऊ रा बकैदि ज़बत दर आवुरदा फरमूदम—कि ऊ रा बा सिआसत व ब यासा रसानंद। *(तुज़कि जहांगीरी, पृष्ठ 35)*

पुराने मंगोलिआ लोग जिनकी करूरता प्रसिद्ध है, अपनी राज्य दण्ड-संहिता को 'यासा' कहते हैं। इस कानून में यह बात विशेष थी कि किसी धार्मिक उच्चता प्राप्त व्यक्ति का लहू न बहाया जाए। अगर उसको दण्ड देना ही हो तो पानी में उबाल कर, दरिया में बहा कर या इस तरह किसी और तरकीब से मार दिया जाए, यहां यही तरकीब अपनाई गई।

इस शाही आदेश के अनुसार गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी, लाहौर में जहांगीर की उपस्थिति में ही हुई। *तुज़कि जहांगीरी* के अनुसार 7 मई, 1606 से 26 मार्च 1707 तक जहांगीर लाहौर में रहा । इससे तो स्पष्ट है कि सतिगुरु जी की शहीदी 30 मई, 1606 ई॰ को बादशाह के आदेश अनुसार उसकी उपस्थिति में हुई और उसने यह नोट 19 जून, 1606 ई॰ को लिखा।

इस लिखित के होते हुए अन्य किसी शंका की आवश्यकता नहीं रह जाती कि गुरु जी की शहीदी का कारण केवल चन्दू के साक (रिश्ते) का मामला था। यह ठीक है कि पृथी चन्द की साज़िशें, काज़ियों, मौलवियों की शिकायतों ने यह दुःखदाई कार्य को स्पष्ट किया। जब मुरतज़ा ख़ां ने गुरु साहिब को यातनाएं दी तो यह भी संभव है कि उसके अधीन किसी कर्मचारी या मुंशी चन्दू ने भी इस पाप कर्म में भाग लिया हो, परन्तु वास्तव में उत्तरदायित्व जहांगीर के सिर पर पड़ता है।

जहांगीर की यह अपनी धार्मिक करूरता थी, जिसके लिए उसको यह 'झूठ की दुकान' अनुभव हुई तो, इसको समाप्त करने की उसने इच्छा धारण की। वास्तव में वह सतिगुरु जी के अधिक प्रताप को सहन न कर सका। इससे 5-7 वर्ष पूर्व अकबर बादशाह आता है तथा सतिगुरु जी के मानव-मात्र की भलाई के लिए किये परोपकारों की स्तुति करता है। *अकबर नामे* का विद्वान् लिखारी शेख़ अबूफ़ज़ल लिखता है कि पिता दादे से गुरु अर्जुन, सन्तों भक्तों के मार्गप्रदर्शक चले आ रहे थे तथा ये परमात्मा की स्तुति करने वाले थे, परन्तु जहांगीर की कट्टर धार्मिक-दृष्टि को यह दिखाई न दिया। उसने महान् कोमल कलाकार और सभी के साझे सर्वप्रिय गुरु के पवित्र कार्य को 'झूठा आडंबर' ही जाना, परन्तु महान् आत्मा के बलिदान ने जहांगीर के झूठे विश्वास को नितांत ग़लत कर दिखाया।

गुरु जी को दरिया की बरेती में ले जाकर, ऊपर गर्म रेत डाल-

कर उन्हें पीड़ित किया गया, उबलते हुए पानी में भी उबाला गया तथा अन्त अन्य कष्ट देने के लिए रावी दरिया के शीतल पानी में डुबोया गया परन्तु गुरु जी की आत्मा "तेरा कीआ मीठा लागै ॥ हरि नामु पदारथु नानकु मांगै" गाती हुई 30 मई, 1606 को परमात्म-सागर में लीन हो गई। समकाली भाई गुरदास जी ने इस अलौकिक शहीदी को इस प्रकार अंकित किया है :

रहिंदे गुरु दरीआउ विचि, मीन कुलीन हेतु निरबाणी ॥
दरसनु देखि पतंग जिउ, जोती अंदरि जोति समाणी ॥
सबदु सुरति लिव मिरग जिउ, भीड़ पई चिति अवरु न आणी ॥
चरण कवल मिलि भवर जिउ सुख संपट विचि रैणि विहाणी ॥
गुरु उपदेस न विसरै बाबीहे जिउ आख वखाणी ॥
गुरमुख सुख फलु पिरम रसु सहज समाधि साध संगि जाणी ॥
गुर अरजन विटहु कुरबाणी ॥२३॥२४॥

(वारां भाई गुरदास जी)

गुरुवाणी में बताया जीवन-सिद्धांत हिन्दु मुस्लिम सिद्धांतों से नितांत भिन्न प्रकार का था, जिसको बड़ी स्पष्टता के साथ गुरु अर्जुन साहिब ने कर्म-काण्ड-पूर्ण धर्मों से भिन्न करके वर्णन किया और यही भिन्नता कट्टरपंथी पंडितों, मुल्लों को बहुत पीड़ा देती थी।

वरत न रहउ न मह रमदाना ॥
तिसु सेवी जो रखै निदाना ॥१॥
एकु गुसाई अलहु मेरा ॥
हिंदू तुरक दुहां नेबेरा ॥१॥रहाउ॥
हज काबै जाउ न तीरथ पूजा ॥
एको सेवी अवरु न दूजा ॥२॥
पूजा करउ न निवाज गुजारउ ॥
एक निरंकार ले रिदै नमसकारउ ॥३॥
ना हम हिंदू न मुसलमान ॥
अलह राम के पिंडु परान ॥४॥ *(भैरउ म: ५, पन्ना 1136)*

जिस चढ़दी कला तथा सभी के भले के उत्तम सिद्धान्त की गुरु नानक साहिब जी ने नींव रखी थी, उस वाणी से पूर्णतः स्पष्ट किया गया था तथा गुरुओं ने भी सौ वर्ष लगाकर उसकी महत्ता भली-भांति प्रगट करके दिखाई थी। गुरु अर्जुन साहिब ने उन्हीं सिद्धांतों को ग्रंथ-

बद्ध करने के अतिरिक्त उन्होंने स्वयं को निछावर करके यह भी प्रकट कर दिया कि इनको किसी तरह भी त्यागा नहीं जा सकता। "सेवक की ओड़कि निबही प्रीति॥ जीवत साहिबु सेविओ अपना चलते राखिओ चीति॥" वाले शब्द में सतिगुरु ने अपनी अवस्था एक तरह स्वयं अंकित की है। उन्होंने आदर्श नहीं त्यागे, तन त्याग दिया:

मू लालन सिउ प्रीति बनी ॥
तोरी न तूटै छोरी न छूटै, ऐसी माधो खिंच तनी ॥

(बिलावलु मः ५, पन्ना 827)

•

कुर्बानी युग

(1606—1708 ई०)

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ ॥
सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै ॥
सिरु दीजै काणि न कीजै ॥

(सलोक वारां ते वधीक महला १, पन्ना 1412)

मरणु मुणसा सूरिआ हकु है जो होइ मरनि परवाणो ॥

(वडहंसु महला १, पन्ना 579)

भै काहू कउ देत नहि, नहि भै मानत आन ॥
कहु नानक सुनि रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥

(सलोक महला ९, पन्ना 1427)

चू कार अज़ हमह हीलते दर गुज़श्त ॥
हलाल अस्त बुरदन ब-शमशीर दस्त ॥

(ज़फ़रनामा पातशाही १०)

कुर्बानी युग

(1606-1708 ई॰)

श्री आदि गुरु ग्रंथ की बीड़ की संपादना तथा संकलन से एक तरह सिक्ख धर्म की धार्मिक नींव परिपक्व बन चुकी थी। 1501 ई॰ से 1601 ई॰ तक पूर्ण सौ वर्ष गुरमति के सिद्धान्तिक उत्थान में लगा, प्राचीन ब्राह्मण मत, जोग मत तथा तअस्सबी शरय-शरीयत पर सिक्ख-धर्म ने पूर्णतः विजय प्राप्त की[1] तथा अपना पंथ निराला स्पष्ट किया। इसी गुरमति-विजय को भाई गुरदास जी ने अपनी 'पहली वार' में वर्णित किया है। गुरमति की क्रांतिकारी लहर ने तिब्बत, कश्मीर, काबुल तथा बिहार, बंगाल पर अपना प्रभाव डाला। जहांगीर ने यह जानकर ही कि गुरु नानक जी की गद्दी, पीढ़ियों से हिन्दुओं पर ही नहीं, अपितु मुसलमानों पर भी गहरा प्रभाव डालकर एक नया आंदोलन उत्पन्न कर रही है जो धार्मिक तौर पर ही नहीं अपितु राजनैतिक दृष्टि से भी कभी 'ख़तरनाक' सिद्ध हो सकती है, गुरु अर्जुन देव जैसी संत-आत्मा को शहीद कर दिया था। उसका यह विचार निराधार था कि सिक्ख-धर्म गुरु अर्जुन देव जी के शरीर के साथ ही रावी दरिया में डुबो दिया गया है। वस्तुतः सिक्ख-धर्म का मूल आधार वाणी एवं कुर्बानी था, जिसके होते हुए इस क्रान्तिकारी आंदोलन में किसी तरह की बाधा नहीं डाली जा सकती थी। बात शहनशाहीयत की नीति के विरुद्ध हुई कि इस बलिदान ने सिक्ख जाति में नया रक्त ही संचार नहीं किया, अपितु नई शक्ति उत्पन्न की।

जो सिक्ख, हिन्दुस्तानी समाज की लज्जायुक्त स्थिति का वर्णन 'आसा की वार' द्वारा प्रत्येक दिन श्रवण किया करते हों, "अंतरि पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई॥" अथवा "नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक

1. सबदि जिती सिधि मंडली, कीतोसु अपणा पंथु निराला॥३१॥१॥

(वारां भाई गुरदास जी)

पठाणी अमलु कीआ॥" वे शान्ति से कैसे बैठ सकते थे ? वे शर्म-धर्म के दूर स्थित पड़ाव को समीप लाना चाहते थे। उनका कार्य योगियों सन्यासियों जैसे जप-तप मात्र करने पर ही समाप्त नहीं था हुआ, वे अपनी भलाई के साथ 'दूसरों की भलाई' के लिए भी प्रयत्नशील थे। पांच गुरु-जनों ने चारित्रिक दृष्टि से उनके इस कार्य को सम्पूर्ण तौर पर तैयार कर दिया था। ज़ुल्म, जब्र तथा अधर्म को नष्ट करने के लिए समस्त सामग्री एकत्र हो चुकी थी, केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी। गुरु अर्जुन देव जी की शहीदी एक ऐसी घटना थी जिसने सिक्खों के स्वाभिमान को जागरित किया। सय्यद मुहम्मद लतीफ़ लिखता है कि यह शहीदी एक ऐसी चमत्कारिक घटना थी जिसने सिक्ख धर्म को एक नये पथ की ओर अग्रसर किया। गद्दी के स्थान पर तख़्त बने, माला के स्थान पर 'मीरी पीरी' की दो तलवारें गुरिआई का चिन्ह मानी गईं। निशान (ख़ालसई झंडे) झूंलाये गये, सिक्ख संगतों (व्यक्तियों) ने फ़ौजों का रूप धारण किया, धर्म-शालाएं छावनियां बनीं तथा गुरु को प्रसन्न करने के लिए सर्वोत्तम भेंट, अच्छे शस्त्र एवं सुन्दर घोड़े माने जाने लगे। सिक्ख केवल गुरमुख साधु ही न रहे, अपितु वह सन्त सिपाहियों के रूप में परिवर्तित हो गये, यह सभी कुछ छठम् पातशाह गुरु हरिगोबिन्द जी की देख-रेख में हुआ।[1]

गुरु हरिगोबिन्द (1606-1644 ई०)

आपका जन्म गुरु अर्जुन देव जी के गृह माता गंगा जी के उदर से गांव वडाली, ज़िला अमृतसर में जून 1590 ई० को हुआ। 1595 ई० ठीक नहीं। प्राचीन *भट्ट ग्रन्थों* तथा प्राचीन ग्रन्थों में 1590 ई० ही लिखा है। पंचम पातशाह जैसे विद्वान् तथा दूरदृष्ट पिता ने आप को धर्म-शास्त्र तथा शस्त्र-विद्या में भली-भान्ति सम्पन्न बनाया। उस समय आप 15-16 वर्ष के थे, जब 25 मई, 1606 ई० को अमृतसर में आप को मीरी पीरी की दो तलवारें पहनाकर बाबा बुड्ढा जी ने गुरुआई की गद्दी दी।[2]

---

1. गुर गोविंदु गोविंदु गुरु, हरि गोविंदु सदा विगसंदा॥...
गुरमुखि मारगि चलणा, खंडे धार कार निबहंदा॥२१॥२४॥ *(वारां भाई गुरदास जी)*
2. दो तलवारीं बधीआं, इक मीरि दी इक पीरि दी।
इक अज़मत दी इक राज दी, इक राखी करे वज़ीर दी। *(दरबारी ढाडी अबदुल्ला)*

इस नये कार्य ने कई सिक्खों में भी आश्चर्य उत्पन्न किया। सर जादूनाथ जैसा प्रसिद्ध इतिहासकार भी इसी ग़लत-फ़हमी का शिकार हुआ लिखता है, गुरु नानक की फ़कीरी का शान्त-निर्झर, सैनिक छावनी के मारूस्थल में जाकर सूख गया। उसको यह पता नहीं था कि यदि ये सन्त सिपाही छावनी न बनाते तो सिक्ख जाति भी योगियों सन्यासियों की तरह निरर्थक साधु मण्डली बनकर रह जाती। न वह स्वयं जीते रह सकते और न ही लोगों को ज़ुल्म से बचा सकते थे। मि. कनिघंम ठीक लिखता है कि गुरु जी ने सिक्खों के हृदय में युद्ध-भावना उत्पन्न की, यह ऐसी बात थी जिससे शेष हिन्दु सम्प्रदायों से सिक्ख-धर्म काफ़ी हद तक निराला हो गया।

तुज़कि जहांगीरी में जहां जहांगीर ने यह लिखा है कि मैंने गुरु अर्जुन को मार डालने का आदेश दिया, वहां उसी आदेश में यह शब्द भी लिखित हैं कि गुरु का बाल-बच्चा, मुरतज़ा ख़ां के अधीन किया जाये और माल-असबाब ज़बत कर लिया जाये। इस लिखित से स्पष्ट है कि गुरु हरिगोबिन्द जी को भी सरकार ने गिरफ्तार करके किला ग्वालियर में नज़रबंद रखा। *दबिस्तानि मज़ाहब* का रचयिता मोहसन फ़ानी लिखता है कि उन्हें 12 वर्ष कैद में रखा गया और वहां आप को अलूना (बिना नमक वाला) भोजन खाने के लिए दिया जाता था। इस अकारण नज़रबंदी के विरुद्ध सिक्खों में विद्वेष की भावना उत्पन्न होनी स्वाभाविक थी, सिक्ख जत्थे बनाकर ग्वालियर किले के पास जाते और सिर झुकाकर लौट आते। अन्त में साईं मियाँ मीर, मलिका नूरजहां और वज़ीर ख़ां के कहने पर गुरु जी को रिहा करने का आदेश दिया गया, परन्तु आप ने अकेले रिहा होने से इन्कार कर दिया। अंत हकूमत की ओर से निर्णय हुआ कि जो आप का दामन पकड़कर निकल आए उसको भी साथ ही रिहा कर दिया जाये। इस प्रकार बन्दी छोड़ गुरु जी के बड़े चोले का पल्ला पकड़कर 52 और कैदी राजा रिहा हुए, जिनमें अंबेर और शिवालिक पहाड़ियों के कई राजा थे। इस कार्य का राजपूत राजाओं पर बहुत प्रभाव पड़ा और सिक्खों ने भी गुरु जी के अमृतसर लौट आने पर बहुत ख़ुशियाँ मनाईं। यह बात 1619 ई॰ की अनुमानत है।

इसके पश्चात् जहांगीर का दृष्टिकोण गुरु साहिब के प्रति ठीक ही रहा। सतिगुरु ने गुरु के चक्क में लोहगढ़ नामक एक किला बनवाया, हरिगोबिन्दपुरा आबाद किया और यहां मुसलमानों के लिए मस्जिद भी

तैयार करवाई। गुरु साहिब की फ़ौज में भी मुसलमान आम थे, पैंदे ख़ां, अताउल्ला ख़ां, जानी शाह, रौशन शाह, जमाल ख़ां और शाह दौले का शिष्य जहांगीर शाह आदि कई मुसलमान पुरुष आप के श्रद्धालु थे।

हुकूमत से खटपट होने से प्रचार का कार्य कुछ ढीला पड़ा हुआ था, गुरु हरिगोबिन्द जी ने अपने सपुत्र बाबा गुरदित्ता जी को पहाड़ी इलाके की ओर भेजा और उन्होंने 1630 ई०, वैशाख सुदि चौथ को बाबा श्री चन्द के करकमलों से कीरतपुर की नींव रखवाई, बालू हसना और कमलिया अलमस्त आदि साधु सन्त भी साथ थे। यही साधु बाद में उदासी सम्प्रदाय के पूजनीय माने जाने लगे। गुरु साहिब स्वयं मालवे की सिक्ख संगत की ओर गये, जहां चौधरी काला, राए जोध, भाई रूप चन्द और भाई साईं दास जैसे शिरोमणी सिक्ख, सिक्ख-धर्म को हर तरह से विकसित कर रहे थे। इसके बाद आप कश्मीर गए, यहां भाई कटू शाह, भाई झंडा, भाई बीरम शाह, भाई गढ़िया तथा भाई सेवा दास आदि सिक्ख-धर्म का प्रचार कर रहे थे। गुरु जी ने उत्तर प्रदेश की भी यात्रा की और नानक-मते को सिक्ख-धर्म का केन्द्र स्थापित किया। इधर गढ़वाल की ओर आपका मेल शिव जी के धर्म-गुरु समर्थ स्वामी रामदास के साथ हुआ, तो वह आपका धर्म-रक्षा के लिए पहला शस्त्रधारी पहरावा देखकर बहुत प्रसन्न हुआ।[1] सुन्दर शाह और बिधी चन्द को बिहार, बंगाल की ओर प्रचार के लिए भेजा। दूसरी तरफ़ काबल की ओर भाई कटारू और तिलोका तथा बलख में भाई साध जैसे पूर्ण गुरसिक्ख, सिक्ख-धर्म को विकसित कर रहे थे।

यह देश-व्यापक लहर हुकूमत को फिर रड़कने लगी। 1627 ई० में जहांगीर की मृत्यु हो गई और काज़ियों, मौलवियों ने फिर हाकिमों के कान भरने आरम्भ कर दिये। गुरु साहिब ऐसी परिस्थितियों से परिचित थे। इसलिए स्वयं पहाड़ की ओर कीरतपुर शहर आबाद करना आरम्भ कर दिया ताकि अगर आवश्यकता पड़े तो इस तरफ़ समस्त सरगर्मियों

---

1. हऊं सुणिआ था गुरु नानक की गादी पर बैठा है। नानक गुरु तिआगी साधु थे। तुम शस्त्र धारण करे हैनि, घोड़े फउज रखी है। सच्चा पातशाह कहावता है, कैसा साधु है ? गुरु हरगोबिन्द कहिआ, 'बातन फकीरी, ज़ाहिर अमीरी, शस्त्र ग़रीब की रखिआ, जरवाणे की भखिया। बाबा नानक संसार नहीं तिआगिआ, माइया तिआगी थी।' रामदास प्रसन्न होइआ, कहिआ, 'इहु हमारे मन भावती है।'

(साखी ३६वीं, पोथी 'पंजाह साखीआं,'-हस्तलिखित प्रति)

का गढ़ बनाया जा सके। 15 अप्रैल 1634 ई० को मुखलिस ख़ां ने हमला कर दिया, अमृतसर में युद्ध हुआ। 1634 ई० सर्दियों में 19 पौष को कमरबेग और लला बेग ने गुरु-सर मराझ जाकर युद्ध किया और 1635 ई० में पैंदे ख़ां करतारपुर पर हमला करने आया। इसके साथ असमान ख़ां झांगडी की अगुवाई में बसी के पठान थे। इन सभी छोटी-छोटी लड़ाईयों में गुरु जी की विजय ही होती रही।

समकाली लेखक मोहसन फानी गुरु जी की युद्ध संबंधी सफलताओं के बारे में लिखता है, "उन पर कई बार बड़ी बड़ी फ़ौजें चढ़ाई करने आईं परन्तु उन्हें परमात्मा की कृपा से हर समय सफलता प्राप्त हुई।" मोहसन लिखता है कि गुरु जी सदैव 300 सवार और 60 बंदूकची अपने पास रखते थे और 700 घोड़े उनके तबेले में रहते थे। यह सब कुछ मुल्कगीरी के लिए नहीं था, अपितु धर्म की शक्ति को और समृद्ध बनाने के लिए था। वह चाहते थे कि सिक्ख गुरु नानक के बताए हुए पवित्र आदर्शों के लिए प्रत्येक तरह की कुर्बानी करने के योग्य बन जायें। उनके पिता गुरु ने बताया था कि किस तरह शान्तिमय ढंग से अपने उच्च धर्म के लिए कुर्बानी दी जा सकती है। गुरु हरिगोबिन्द यह समझा रहे थे कि किस तरह शस्त्रबद्ध मुकाबले द्वारा भी धर्म की रक्षा के लिए लड़ा-मरा जा सकता है। इसके पश्चात् वे कीरतपुर रहे। यहां रोपड़ (रूप नगर) के नवाब नासर अली ख़ां ने ज़बरदस्ती हिम्मत चन्द हंडूरिए का कुछ इलाका अपने कब्ज़े में कर लिया था। बाबा गुरदित्ता जी सौ सवार लेकर उसकी सहायता के लिए गये और फ़ौज मैदान छोड़कर भाग गई। इस घटना के पश्चात् नवाब रोपड़ और पहाड़ी राजे गुरु जी के श्रद्धालु बन गये। गुरु साहिब ने कभी भी किसी पर आक्रमण नहीं किया। उन्होंने सदैव बचाव की लड़ाईयां लड़ीं हैं। वे पीरी के साथ मीरी को जोड़ने की करामात दिखा रहे थे ताकि उनके सिक्ख गुरुवाणी में लिखित जीवन-जांच के अनुसार राज-योग ग्रहण करने के लिए तत्पर रहें। गुजरात, शाह दौले के शिष्यों ने प्रश्न किए थे:

'औरत क्या और फ़कीरी क्या? हिन्दु क्या और पीरी क्या?
पुत्र क्या वैराग्य क्या? दौलत क्या और त्याग क्या?'

गुरु साहिब का उत्तर था:

'औरत ईमान, पुत्र निशान,
दौलत गुज़रान, फ़कीर न हिन्दु न मुसलमान।'

आप जी के तीन महल (सुपत्नियां)—श्री नानकी, दामोदरी और महांदेवी, तथा छह बच्चे थे—गुरदित्ता, अणी राय, अटल राय, सूरज मल्ल, तेग़ बहादुर और बीबी वीरो। प्रथम तीन पुत्र शरीर त्याग चुके थे, इस लिए बाबा गुरदित्ता जी के सपुत्र श्री हरि राय जी को गुरगद्दी सौंप कर स्वयं 3 मार्च, 1644 ई० को कीरतपुर में ज्योती ज्योत समा गये। आपकी चिखा पर राजा राम प्रताप सिंह और शिव सिंह (जाट) दो परवाने सिक्खों ने छलांगें लगाकर प्राण दे दिये और सिक्ख भी ऐसा करने के लिए तैयार थे परन्तु उनको गुरु हरि राय जी ने परमात्मा की रज़ा मानने की शिक्षा दी।

गुरु हरि राय (1644-1661 ई०)

गुरु हरि राय जी का जन्म बाबा गुरदित्ता जी के गृह में माता निहाल कौर जी के उदर से जनवरी 1629 को कीरतपुर ज़िला होशियारपुर में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा और शस्त्र-विद्या आप ने अपने बाबा गुरु हरिगोबिन्द की निगरानी में प्राप्त की। आपका स्वभाव बचपन से ही सुकोमल एवं गंभीर था। 8 मार्च, 1644 को आप गुरगद्दी पर बैठे। आप ने सिक्खों को जीवन पर्यन्त मीरी और पीरी की शक्ति को अपने पास रखने का तरीका बताया। कहा जाता है कि आपके पास शस्त्रबद्ध 2200 सवार रहते थे, परन्तु आप ने सदैव युद्ध करने में संयम किया। शिकार खेलने का बहुत शौक था परन्तु सदैव जीते जानवरों को पकड़कर चिड़िया घर में रखते थे। एक बार मुग़ल फ़ौज ने आकर घेरा डाला, परन्तु आप ने सिक्खों को कहा, "शान्ति एवं संतोष में रहो, हमारी रक्षा करने वाली तलवार ही नहीं अपितु करतार भी है।" यह समस्त बातें बताती हैं कि कैसे आप ने सिक्खों को परमात्मा पर विश्वास और संतोष संयम की शिक्षा में दृढ़ता करवाई, ताकि नई मिली सैनिक शक्ति को ऐसे ही न नष्ट करके बैठ जाएं।

सिक्ख-धर्म की राजधानी माझे के स्थान पर मालवे में बन गई थी और गुरु साहिब अधिक समय प्रचार हेतु मालवे में लगा रहे थे। यहां भाई बहलो, भाई भगतू, पंजाबा, भूंधड़ आदि मुखी मसंद पहले ही प्रचार कर रहे थे और मालवे के बड़े बड़े चौधरी—भाई रूपा, भाई जोध, भाई काला, करम चन्द, बागा, गुरदास, तारा, भूंधड़ का पुत्र बिहारी, जीउणा

और गौरा आदि सतिगुरु जी के आरम्भ से ही श्रद्धालु थे। भाई काले के भतीजे, फूल और संदली को सतिगुरु जी ने राज्य-भाग का वरदान दिया। वास्तव में बात यह है कि सरकारी क्रोध के कारण माझे की ओर सिक्ख-धर्म की तेज़ सरगर्मी असहनीय हो रही थी, इसलिए मालवे की ओर प्रचार का प्रवाह बढ़ा और संगठित शक्ति के लक्षण दिखने लगे। पंजाब से बाहर बिहार, बंगाल की ओर भगत भगवान, सुथरेशाह, भाई फेरू आदि शिरोमणी गुरसिक्ख गुरमति की सुगन्ध फैला रहे थे। हुकूमत इस मूक प्रचार-सरगर्मी को बड़े ध्यान से देख रही थी। जिस समय दारा शिकोह पंजाब की ओर भागकर आया तो ब्यास नदी पार करते समय सिक्खों ने उसकी सहायता की। ख़ासकर चौधरी लंगाह के पुत्र चौधरी सिकन्दर ने जो कि 105 गाँवों का मालिक था और गुरु जी का अच्छा श्रद्धालु था। दारा को फ़ौजी सहायता पहुँचाई। इस बात का जब औरंगज़ेब को पता चला तो उसने गुरु हरि राय को दिल्ली बुलाया, सतिगुरु स्वयं तो न गये, अपने सपुत्र श्री राम राय जी को भेज दिया, जिसने बहुत सूझ-बूझ के साथ, पड़ी ग़लत शंकाओं को दूर किया। मगर बाद में यह बादशाह के प्रभाव अधीन आ गया। औरंगज़ेब राम राय को अपना कठपुतली गद्दीदार बनाकर सिक्खी लहर को बन्द करने के कार्य में था, परन्तु ऐसा उससे हो न सका। सतिगुरु जी सिक्खों की इस डावाडोल स्थिति के समय कश्मीर गये और दुआबे तथा माझे की यात्रा की और सिक्खों को आ रहे संकट का मुकाबला करने के लिए तैयार किया। इस प्रकार सिक्खों को सहनशीलता और असहयोग की शिक्षा देकर स्वयं 6 अक्तूबर, 1661 ई० को कीरतपुर में ज्योति ज्योत समा गये।

श्री गुरु हरि कृष्ण (1661-1664 ई०)

आप का जन्म गुरु हरि राय जी के गृह में माता सुलखणी के उदर से 1652 ई० को कीरतपुर शहर में हुआ। 8 अक्तूबर, 1661 ई० में गुरगद्दी पर बैठे। इस समय सिक्ख-धर्म की असहयोग की भावना दिन-प्रति-दिन आगे बढ़ती जा रही थी। गुरु हरि राय जी का बड़ा लड़का राम राय इस योग्य नहीं रहा था कि वह इस सत्य के आंदोलन का साथ दे सके। इसलिए बालक हरि कृष्ण को ही यह बागडोर सुपुर्द की गई। राम राय ने बहुत प्रयास किया कि किसी न किसी तरह यह गद्दी मेरे

हाथ आ जाये और सरकार की ओर से भी कई जाल बिछाए गये, परन्तु सभी प्रयत्न असफल रहे। अन्त में दिल्ली सरकार की ओर से मिरज़ा राजा जै सिंह को भेजा गया और गुरु साहिब दिल्ली की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वयं सिक्ख-संगतों को उपदेश देते गये। पंजोखरे में एक अभिमानी पंडित ने कहा, "नाम तो आप ने कृष्ण महाराज वाला रखा है, क्या आप गीता का ज्ञान समझा सकोगे ?" गुरु जी ने अपने एक शिष्य छज्जु को गीता ज्ञान प्रकट करने के लिए संकेत किया। छज्जु ने कहा, "पंडित जी ! गीता का ज्ञान यही है कि आत्मा अमर है, इसलिए कभी भी काल से भय नहीं करना चाहिए, बल्कि समस्त संकटों का मुकाबला करते हुए उच्च आदर्शों पर खड़े रहना चाहिए।" यह सुनकर पंडित गुरु जी के चरणों पर गिर पड़ा। इस तरह सतिनाम वाणी का उपदेश देते हुए दिल्ली पहुँचे और मिरज़ा राजा जै सिंह के निवास पर ठहरे—जहां आज कल गुरुद्वारा बंगला साहिब है। आप ने राम राय की ओर से सिक्ख-धर्म संबंधी पड़ी ग़लत शंकाओं को दूर किया और संगत को धर्म पर दृढ़ रहने का उपदेश दिया। अंतः आप न-मुराद बिमारी के कारण 30 मार्च, 1664 ई० को (गुरिआई के लिए 'बाबा बकाला' की ओर संकेत कर के) यहां ही ज्योति ज्योत समा गये। इतिहास इस बात को सुस्पष्ट रूप में निर्णय नहीं कर पाया कि गुरु जी का दिल्ली आना और परलोक समा जाना शाही षड्यंत्र था अथवा कुछ और। राम राय ने क्रोध में बाल गुरु को 'माता का माल' कहा है परन्तु दसमेश गुरु ने कहा—जिस अष्ठम् गुरु ने असहयोग लहर जारी रखकर सिक्ख-धर्म को आगे बढ़ाया, वह संकट हरन गुरु था :

श्री हरिक्रिशन धिआईऐ, जिस डिठे सभि दुखि जाइ।

गुरु तेग़ बहादुर जी (1664-1675 ई०)

गुरु तेग़ बहादुर जी का जन्म 1 अप्रैल, 1621 ई० को गुरु हरिगोबिन्द साहिब के गृह में माता नानकी जी के उदर से अमृतसर में हुआ। आप का स्वभाव आरम्भ से ही विरक्त था। कुछ समय नानके घर बकाले एकांत में तप करते हुए व्यतीत किया। फिर 1656 ई० में सपरिवार तीर्थ यात्रा करते हुए हरिद्वार, प्रयाग होते हुए पटना में ठहरे और वहां कई वर्ष रहे। मुग़ल हुकूमत ग़ैर-मुसलमानों को ख़त्म करने पर तत्पर थी। सतिनामियाँ

की साधु संप्रदाय को कुचलने वाला, सरमद जैसे सन्त फ़कीरों का कातिल, पिता और भाई का ख़ूनी, विरोधी और कट्टरपना औरंगज़ेब ग़ैरों के लिए कैसे सुखदायक बन सकता था ?

जब गुरु हरि कृष्ण जी ने दिल्ली में गुरु तेग़ बहादुर जी की गुरिआई की सार्वजनिक घोषणा कर दी, तो राम राय, धीर मल्ल तथा सोढियों ने भी बहुत हाथ-पैर मारे। अन्त में समझदार सिक्खों ने गुजरात में मसंद मख्खण शाह लुबाने की देख-रेख में 'सच्चे गुरु' को खोज लिया। आप अमृतसर, तरनतारन, गोइंदवाल होते हुए मालवे में डरोली तथा फिर तलवंडी साबो (प्रथम वैशाख के दिन 1665 ई॰) गये। धमधाण होकर कीरतपुर आ गये। यहां मसंदों को कुछ गड़बड़ी मालूम हुई। गुरु जी ने घरेलू झगड़े में आना ठीक न समझकर 19 जून, 1665 ई॰ को 'चक्क नानकी' की नींव रखी जो बाद में आनंदपुर कहलाया और वहां नगर का निर्माण प्रारंभ किया। इस समय मसंदों की गड़बड़ी और हुकूमत की कठोरता ने सिक्खों को घबराहट में डाला हुआ था। गुरु जी ने समझाया कि सूझवान सिक्ख की निशानी यह होती है कि वह न किसी को डराए और न किसी से डरे। आप ने वैराग्यमय वाणी उचारकर बार बार सिक्खों का दृढ़ निश्चय कराया कि इस मिथ्या शरीर से ऊँचे आदर्श अमर और नित्य हैं। यही निश्चय दृढ़ करने के लिए आप ने मालवे तथा बांगर की यात्रा की, जिनका विस्तृत वर्णन 'दौरे की साखी' अथवा 'यात्रा वर्णन' में लिखित है।

वास्तव में बात यह है कि औरंगज़ेब सिक्ख-धर्म की जागृत लहर को देखना नितांत पसंद नहीं करता था। जब उसको गुरु तेग़ बहादुर की सरगर्मियों का पता चला तो उसने आपको प्रथम बार पहली नवम्बर, 1665 ई॰ को धमधाण से गिरफ़्तार करके राजा राम सिंह की मिसल में नज़रबंद कर दिया, परन्तु राजा राम सिंह के पूर्वज ग्वालियर की कैद के समय गुरु-घर के श्रद्धालु बन चुके थे। इसलिए राजे ने अपनी ज़िम्मेंदारी पर गुरु साहिब को यह छूट दे दी कि आप पूर्व की ओर तीर्थ यात्रा करने के लिए रवाना हो जायें। गुरु साहिब गढ़ मुकतेश्वर, मथुरा, प्रयाग और बनारस होते हुए पटना चले गये। आप के वैराग्यमय व्यक्तित्व का इतना प्रभाव था कि समस्त हिन्दु मुसलमान आप के श्रद्धालु बनते गये। ग़ुलाम हुसैन ने *सैरुल मुताख़रीन* में लिखा है कि, 'उसने बहुत सारे शिष्यों बालकों द्वारा अच्छा दबदबा बना लिया और कई सहस्त्र श्रद्धालु उसके साथ चलते।'

कुछ समय के पश्चात् कामरूप के राजा सुगदेव चक्रध्वज सिंह के विरुद्ध स्वयं राजा राम सिंह को आसाम के युद्ध में जाना पड़ा। असम के बारे में लोगों में आम शंका थी कि वहां के लोग जादू-टोनों से फ़ौज को घेरे में डाल लेते हैं और प्रत्येक को पराज्य का मुँह देखना पड़ता है। इस काले जादू की मार से बचाव करने के लिए राजे ने गुरु साहिब जी को भी पटने से अपने साथ ले लिया। आप ने ढाका पहुंच कर परमात्मा के नाम का संदेश दिया। ढाका में सिक्ख-धर्म चरम-सीमा पर था। गुरु जी ने कहा, "ढाका मेरे सिक्ख-धर्म का घर है।" आगे गुरु साहिब के फ़कीरों जैसे व्यक्तित्व का प्रभाव था कि आप ने दोनों राज्यों के बीच संधी करवा दी। दोनों फ़ौजों के सिपाहियों ने अपनी ढालों में मिट्टी भर कर गुरु जी हेतु एक ऊँचा चबूतरा तैयार किया जहां कि आजकल 'धोबड़ी साहिब' गुरुद्वारा है। इस यात्रा से पंजाब से लेकर असम तक जागृति तथा अमन-शान्ति की लहर दौड़ गई और असहाय लोगों ने अनुभव किया कि हमारी भी कोई रक्षा करने वाला है।

पीछे पंजाब में सख़्ती का दौर तेज़ हो गया, विशेषकर कश्मीर में सूबेदार इफ़तख़ार ख़ां ने ज़बरदस्ती मुसलमान बनाने की लहर आरम्भ कर दी। सतिगुरु जी को ऐसे समाचार मिलने की देरी थी कि स्वयं शीघ्र पंजाब वापस आ गए। 16 पीड़ित ब्राह्मणों का एक प्रतिनिध मंडल भी 25 मई, 1675 ई० को आनंदपुर में आप को मिला। सतिगुरु जी की कोमल आत्मा ज़ुल्मों की दासतां सुनकर द्रव्य हो उठी। आप ने कहा, "आप धर्म पर दृढ़ रहें, रक्षा बाबा नानक करेगा।"

हुकूमत भी इस बात से भली-भांति ज्ञात थी कि यही गुरु नानक की गद्दी का महापुरुष है जो लोगों को धर्म पर स्थिर रहने की शिक्षा देकर इस्लामी प्रचार में रुकावट डाल रहा है। निष्कर्ष रूप से औरंगज़ेब के आदेश और नीति अनुसार मिरज़ा नूर मुहम्मद ख़ां ने गुरु जी को भाई मतीदास, भाई सतीदास, और भाई दयाला जी समेत रोपड़ के समीप गिरफ़्तार करके सरहिन्द लेकर आए। जहां आप पौने चार मास बस्सी पठाणा के बंदीख़ाने में रहे। फिर हसन अबदाल में बैठे हुए बादशाह औरंगज़ेब का दूसरा आदेश आया, तब आप को पिंजरे में डालकर दिल्ली ले जाकर शहीद कर दिया गया। मतीदास को आरे से चीर दिया गया और भाई दयाले को देग में उबालकर शहीद कर दिया। सतीदास जी को रुईं में लपेटकर जलाया गया। फिर गुरु जी को कहा कि आप इस्लाम स्वीकार

कर लें, नहीं तो आप के साथ भी ऐसा ही किया जायेगा। गुरु साहिब का उत्तर था :

चित चरण कवल का आसरा, चित चरण कमल संगि जोड़ीए।
मन लोचै बुरिआईआं, गुरशबदी इह मन होड़ीए।
बांहि जिनां दी पकड़ीए, सिर दीजै बांह न छोड़ीए।
तेग बहादर बोलिआ, धर पईए धरम न छोड़ीए।

फिर आप को दण्ड के लिए धन अथवा करामात दिखाने के लिए कहा गया, परन्तु आप ने कहा, "धन अमीरों के पास है, करामात पीरों के पास, हम तो परमात्मा के निम्न फ़कीर हैं, जिनको केवल उसके नाम का ही आसरा है।" बिना किसी शस्त्र के जबर से टक्कर लेकर मर जाना ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण करामात है और अन्य कोई करामात दिखाना परमात्मा के द्वार पर स्वीकार नहीं।[1] गुरु जी को कई तरह के तसीहे दिए गए परन्तु आप अपने संकलप पर दृढ़ रहे।[2] अन्त "साधो इहु तनु मिथिआ जानउ" कहने वाला महापुरुष हिन्द की धार्मिक स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए 11 नवम्बर, 1675 ई० को दिल्ली के चांदनी चौक में अपने तन का ठीकरा दिल्लीधीश के सिर पर तोड़कर ज्योति ज्योत समा गया।[3] जिस प्रकार गुरु अर्जुन देव जी की शहादत ने समस्त पंजाब में आग लगा दी थी, उसी प्रकार दिल्ली में गुरु तेग़ बहादुर के बलिदान ने हिन्दुस्तान भर में क्रान्ति के शोले भड़का दिये, जिन्होंने उस पवित्र महान् आत्मा की कातिल मुग़ल हुकूमत को मिट्टी में मिला दिया। श्री दसमेश जी ने ठीक ही कहा है :

तेग बहादर के चलत, भयो जगत को सोक ॥
है है है सब जग भयो, जै जै जै सुर लोक ॥ *(बचित्र नाटक)*

---

1. नाटक चेटक कीए कुकाजा॥ प्रभ लोगन कह आवत लाजा॥ *(बचित्र नाटक)*

बचनु, कीता जो आपणो घरि रहै सो दीन कहावै
दूजे घर जाइ सो बेदीनु करावै।
अज़मत है कहरु, फकीर न दसै।
साईं खडा सिर ऊपरि हसै।८६। *(बंसावलीनामा, नौवां चरण)*

2. तिलक जंञू राखा प्रभ ताका॥ कीनो बडो कलू महि साका॥...
धरम हेति साका जिनि कीआ॥ सीसु दीआ पर सिररु न दीआ॥
(बचित्र नाटक)

3. अन्य विवरण के लिए देखें मेरी पुस्तक *तेग बहादुर सिमरीऐ*।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी (1675–1708 ई०)

गुरु गोबिन्द सिंघ जी का जन्म 18 दिसम्बर, 1661 ई० (पौष सुदि सत्रवीं 1718 वि. सं.) को पिता गुरु तेग़ बहादुर और माता गुजरी जी के उदर से पटना शहर (बिहार) में हुआ। दसमेश के खिडावे भाई चौपा सिंघ ने जन्म वर्ष 1718 वि. सं. ही दिया है। इसके पश्चात् जब आनंदपुर में पहुँचे तो यहीं ही आप को गुरमुखी, फ़ारसी, संस्कृत और शस्त्र विद्या की शिक्षा दी गई।[1] जब गुरु तेग़ बहादुर मज़लूमों के कष्टों को न सहारते हुए अधिक चिन्ता में बैठे थे तब बालक गोबिन्द राय ने अचानक पहुंचकर प्रश्न किया, "पिता जी, आप क्या सोच रहे हैं ?" गुरु साहिब ने बताया कि इन मज़लूमों का संकट दूर करने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। तब बाल गुरु ने कहा, "आप से बढ़कर और कौन महान् महापुरुष हो सकता है।" फिर जब नवम् सतिगुरु ने भारत की बुरी दशा की तस्वीर खीचतें हुए कहा है :

बलु छुटकिओ बंधन परे, कछू न होत उपाइ ॥
कहु नानक अब ओट हरि, गज जिउ होहु सहाइ ॥

(सलोकु मः ९, पन्ना 1429)

तभी इसका उत्तर श्री गोबिन्द राय ने इस प्रकार दिया :

बलु होआ बंधन छुटे, सभु किछु होत उपाइ ॥
नानक सभु किछु तुमरै हाथ मै, तुम ही होत सहाइ ॥

(सलोकु मः ९, पन्ना 1429)

प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में इस दोहरे के साथ 'महला १०' लिखा हुआ प्रायः मिलता है और इतिहासकारों ने भी इस संवाद की चर्चा की है।

सतिगुरु जी की शहीदी के पश्चात् 11 नवम्बर, 1675 ई० को स्वयं गुरगद्दी पर बैठे और बाबे गुरु वाली तलवार धारण की ताकि बंधन तोड़ने के लिए सभी उपाय किये जा सकें। नये आंदोलन का रणजीत नगारा

---

1. कीनी अनिक भांति तन रछ्छा॥ दीनी भांति भांति की सिछ्छा॥

(बचित्र नाटक)

हरिजस राइ सिख इक ब्रहिमण।
गुरमुखी, फारसी, शासत्री पढ़िआ जै मन।६।
तिस पासों साहिब गुरमुखी अखर सिखे।
सो प्रीति नाल दसे सिखणे दे लिखे। *(बंसावलीनामा)*

बजा दिया गया और अच्छे शस्त्रों तथा अच्छे घोड़ों की भेट भेजने के लिए सिक्खों को विशेष रूप से आदेश जारी किये। राजनैतिक परिस्थितियां अच्छी नहीं थीं। इसलिए स्वयं कुछ समय के लिए रियासत नाहण में पाउंटा नाम के स्थान पर जमना के तट पर रहने के लिए रुके।[1]

पाउंटा साहिब में गुरु जी के प्रतिदिन सुसज्जित कवि दरबार तथा फ़ौजों की शान के दृष्य देखकर पहाड़ी राजाओं के हृदयों में रड़कने लग पड़े। अकस्मात् ही राजा फ़तेहशाह गढ़वालिया ने आप पर चढ़ाई कर दी। यह बात अप्रैल 1689 ई० की है। जब कि यह भंगाणी के स्थान पर युद्ध हुआ और सतिगुरु जी को विजय प्राप्त हुई। यहां किसी समय आप को राम राय भी मिला। कुछ समय आप इन पहाड़ियों में गुज़रते रहे और फिर आनंदपुर वापस आ गए। आते ही आनंदगढ़, केसगढ़, फतहगढ़, लोहगढ़ तथा होलगढ़ किले बनाकर नगर की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। रवालसर के स्थान पर आप ने एक बार मुख्य राजपूतों का सम्मेलन बुलाया और निमंत्रण दिया, "आइये ! इकट्ठा होकर ज़ुल्म से टक्कर लें।" परन्तु ब्राह्मणों के बहकाए और मुग़ल नीति के धमकाये राजपूत अपनी गरदनें ऊपर न उठा सके। गुरु साहिब ने कहा, "अच्छा, मैं अब चिड़ियों से ही बाज़ लडाऊँगा, जिनको तुम नीच-कमीन और शूद्र समझते हो, वही तलवारें धारण करके सरदार बनेंगे।"

सिक्खों में फ़ौजी शिक्षा का चाव और उत्साह तो पहले ही उत्पन्न हो चुका था, परन्तु साधारण हिन्दु जनता में अभी तक कोई जागृति पैदा नहीं हुई थी। उनकी मानसिक दशा को परिवर्तित करने के लिए तथा सिक्खों में और युद्ध जोश तेज़ करने के लिए गुरु साहिब ने वीर-साहित्य लिखना आरंभ किया। हिन्दुस्तान के पुरातन वीर योद्धों तथा बीरांगनों के जीवन धर्म-युद्ध के चाव से लिखे गये जो कि *बचित्र नाटक* नाम के ग्रन्थ में उपलब्ध होते हैं। इसी तरह उन्होंने 18 पुराण पढ़ने वाले शिष्यों के लिए एक नया *शस्त्र नाम माला पुरान* लिखा ताकि शस्त्रों से भय करने वाली कौम अपनी रक्षा करने के लिए हाथ में शस्त्र रखने योग्य बन पाये। गुरु साहिब ने अपने पास बहुत सांरे कवि-जनों को एकत्र भी किया, जिनकी संख्या 52 प्रचलित मानी जाती है। परन्तु वहां पर इससे भी अधिक थे। इस संबंधी मेरी पुस्तक *श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी के दरबारी रत्न* देखने योग्य है। मुख्य कवि यह हैं—

---

1. देश चाल हम ते पुन भई॥ शहिर पांवटा की सुध लई॥ *(बचित्र नाटक)*

नंद लाल गोया, मनी सिंघ, देवी दास, लखण राय, भोज राज, तनसुख, चन्द्र सेन, कांशी राम, प्रहलाद राय, अमृत राय, मंगल, हंस राम, कुंवरेश चन्द, अणी राय, सुखदेव, बृन्द, गिरधर, आलम, ननूआ, चंदन, धन्ना सिंघ, नंद राम, कृपा राम, गोपाल, धर्म सिंघ, गुरदास सिंघ, गुरदास गुणी, ब्रह्म भट्ट, हीर, सुन्दर, सारदा, हुसैन, निहचल फ़कीर आदि।

यह कविजन आनंदपुर दरबार में अधिक समय साहित्य की रचना करते रहे। इस साहित्य संग्रह का नाम 'विद्या सर' ग्रन्थ रखा गया। इस हस्तलिखित प्रति का भार लगभग नौ मन था, परन्तु युद्धों के समय नष्ट हो जाने के कारण यह हमारे पास नहीं पहुँच सका। इसमें उपनिषदों तथा महाभारत का अनुवाद सम्मिलित था।[1]

गुरु साहिब ने ख़ालसा पंथ को नई रूप-रेखा देने के लिए प्रथम यह हुकमनामे (आदेश पत्र) जारी किए कि गुरु के सिक्ख केश दाढ़ी रखें, इनको काटे न। केसर सिंघ छिबर लिखता है:

> संमत सतारां सै पंचास पूरा होइआ।
> पंथ जुदा करन दा उपाउ साहिब मन प्रोइआ।२८७।
> पहले मुणिआद पंथ दी इह रखी।
> भधणु नहीं करना इहु ठहरी जे पक्की।
> रहित दे हुकमनावे लिख मसंदां को भिजवाए।
> जो गुरु का सिक्ख, सो गुरु की रहित कमाए।२९२। *(बंसावलीनामा)*

यह नई परंपरा के जो आदेश जारी किये गये, यह कई मसंदों ने सिक्खों तक न पहुँचाए। वास्तव में इस समय मसंद कुछ ख़ुदग़र्ज़ बन गये थे और पूजा-धन (भेंट) खा-खा कर आचरण से गिर चुके थे। एक बार नकलें करने वालों ने नकल करके गुरु साहिब के सामने मसंदों की करतूतों का पर्दाफ़ाश किया तो गुरु साहिब ने समस्त सिक्ख संगत को 'ख़ालसा' नामकरण दिया। 'ख़ालसा' बादशाह की निजी संपत्ति को कहा जाता है। पहले मसंद अपने अपने इलाके की संगत को अपनी संपत्ति

1. सतिगुरु ने सिक्खों की शैक्षिक उन्नति के लिए भाई राम सिंघ, करम सिंघ, गंडा सिंघ, वीर सिंघ, तथा शोभा सिंघ पांच सिक्खों को संस्कृत पढ़ने के लिए बनारस भेजा। क्योंकि यह भगवे पहरावे की जगह पर सफ़ेद वस्त्र पहनने वाले 'ख़ालसे' थे, इसलिए इसका पर्यायावाची संस्कृत पद 'निरमले' इनके नाम के साथ प्रसिद्ध हुआ। निरमले विद्वान्‌ों ने सिक्खों में कथा व्याख्या और लेखन के कार्य को विकसित किया।

समझकर मनमानी करने लग पड़े थे, जो कि गुरु जी की ओर से पहले अहलकार स्थापित किए गए थे। इसलिए गुरु जी ने सभी रियासतों की सिक्ख संगत की ज़िम्मेंदारी सीधी अपने हाथ में लेकर उन को 'ख़ालसा' का नाम दिया और आदेश किया कि समस्त सिक्ख संगत गुरु जी के बताए सिक्खी के नियमों (रहत) को धारण करें और मसंदों का नितांत पीछा छोड़ दें।

देसीं देसीं हुकमनामे लिख मेवड़े पठाए।
मसंद मसंदीए नूं नहीं मंनणा,
सिख गुरू का सिखी दी रहित कमाए।३५१। *(बंसावलीनामा)*

इस के अतिरिक्त बहुत सारे नीच मसंदों को आनंदपुर बुलवाकर कड़ी से कड़ी सज़ा दी गई।[1] दूसरी तरफ़ हाकिम सरहिन्द गुरु साहिब को लिखकर भेज रहा था कि वे सिक्खों को एकत्र न करें। जम्मू की तरफ़ अलिफ़ ख़ां को भेजा गया ताकि वह पहाड़ी राजाओं के पास से कर (मामला) प्राप्त कर के ले आए। पहाड़ी राजाओं ने इन्कार कर दिया और नदौण का युद्ध हुआ। गुरु जी ने भी इस समय साझे दुश्मन के विरुद्ध पहाड़ी राजाओं की मदद की। इसी तरह शहजादा मुअज़्ज़म लाहौर की ओर आया और उसने मिरज़ा बेग को पहाड़ी राजाओं की सोध के लिए भेजा। फिर दिलावर ख़ां हाकिम कांगड़ा ने अपने जरनैल हुसैन ख़ां को 1695 ई० में भेजा परन्तु वह भी मारा गया। इस तरह गुरु साहिब के आस पास के पहाड़ी इलाकों में प्रतिदिन युद्ध होते रहते थे और गुरु साहिब को स्वयं भी इन युद्धों में अधिक हिस्सा लेना पड़ता था। इस समय मालवे के चौधरी सतिगुरु जी के श्रद्धालु थे और वे सदैव आपकी सेवा के लिए तत्पर रहते थे। इन चौधरियों में भाई फूल और भाई रूपे का घराना विशेष तौर पर माना जाता था। सतिगुरु जी सुख-दुख के समय इनको हुकमनामे भेजकर बुलाते और सिक्ख लहर को लड़ने के लिए संगठित करते रहते।

मि. कनिघंम के शब्दों में गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने लोगों के युद्ध करने वाले दृष्यों को धार्मिक जोश से और प्रफुल्लित किया तथा समाप्त हो रही मुग़ल सल्तनत के खंडरों पर लोक-राज्य स्थापित करने के लिए विधि बनाई। 30 मार्च, 1699 ई० वैसाखी का दिवस था, दूर दूर से संगत

---

1. पकड़ आए सो टंगे मारे। कुछ कड़ाहिआं विच पाइ साड़े।३४६। *(बंसावलीनामा)*

आ चुकी थी। गुरु जी ने भरी सभा में तलवार खींचकर कहा कि मैं आज सिक्खी की परीक्षा करना चाहता हूँ, मुझे कुछ सिरों की आवश्यकता है। एक बार तो सन्नाटा छा गया, परन्तु फिर बारी बारी भाई दया राम (लाहौर, क्षत्री), धर्म चन्द (जटवाड़, ज़िला सहारनपुर, जाट) मोहकम चन्द (बूड़ियां, छींबा), हिम्मत चन्द (संगतपुरा, झीवर) तथा साहिब चंद (बिदर, नाई) पांच सिक्ख सामने आए। सतिगुरु जी ने उन सभी को अंग से लगाकर 'पिआरे' (प्यारे) कहकर सम्मानित किया। लोहे के बर्तन में सतलुज दरिया का पानी लिया और उसमें माता जीतो ने बताशे डाले और गुरु जी ने खण्डा फेरकर तथा वाणियों का पाठ कर के अमृत तैयार किया और पांचों को दिया। 'वाहिगुरू जी का ख़ालसा, वाहिगुरू जी की फ़तहि' बोली। फिर गुरु साहिब ने स्वयं पांचों प्यारों से अमृतपान किया और कहा :

ख़ालसा मेरो रूप है ख़ास ॥
ख़ालसे महि हौ करौ निवास ॥ *(पातशाही दसवीं)*

जिन मेहनत करने वाले लोगों को ब्राह्मण की ग्रहणि पुस्तक नीच शूद्र कहती है, गुरु जी ने उनको 'अपना रूप' कहकर आदर दिया और कहा, "मैं अब इन चिड़ियों से बाज़ को पराजित कर इन ग़रीबों को सरदारी प्रदान करुँगा।"

इन गरीब सिखन को दैं बादशाही,
यह याद रखहिं हमरी गुरिआई। *(प्राचीन पंथ प्रकाश)*

सेव करी इन ही की भावत, अउर की सेव सुहात न जी को ॥
दान दीयो इनही को भलो, अरु आन कउ दान न लागत नीको ॥
आगै फले इनही को दीउ, जग मै जसु और कीउ सभ फीको ॥
मो ग्रिह मै तन ते मन ते, सिर लौ धन है सभ ही इनही को ॥
(ज्ञान प्रबोध, पा: १०)

बताया जाता है कि कुछ ही दिनों में हज़ारों सिक्ख अमृतपान कर के सिंघ बने, एक बार आनंदपुर की पहाड़ियां खालसा के जैकारों से गूंज उठीं और पहाड़ी राजे यह प्रगति देखकर चिन्ता में डूबने लगे। हकूमत भी इन सरगर्मियों को देखकर जल उठी। आनंदपुर को घेरा डाला गया। कभी अदीना बेग फ़ौज लेकर आता, कभी सय्यद बेग और कभी रुस्तम ख़ां। अंतः सूबा लाहौर ज़बरदस्त ख़ां तथा सरहिन्द का वज़ीर ख़ां भारी सेना लेकर आया और पहाड़ी राजाओं की सेना ने भी हुकूमत का पूरा

पूरा साथ दिया। कई मास के घेरे के कारण सिक्खों के खाने पीने का सामान समाप्त हो गया। भाई केसर सिंघ लिखता है :

तूतां दे पत्तर खाइ, खाइ के सिख लड़े।
प्रतीत वाले सिख गुरु के, जुध विच हछे अड़े।५२७। *(बंसावलीनामा)*

परन्तु सिंघ सारा संकट झेलते डटे रहे, अन्त काज़ियों ब्राह्मणों ने झूठी कसमें खाकर यह बात कहलवाई कि एक बार गुरु किला ख़ाली कर दें, इससे शाही सेना की इज़्ज़त रह जाएगी। गुरु साहिब तो यह बात न माने, उन्होंने कहा कि यह छल है, कपट है। परन्तु माता जी तथा कुछ सिक्खों के कहने पर अन्त किला छोड़ने का निर्णय हुआ। 17 माघ, 1762 सं. (1705 ई॰) की रात्रि को गुरु जी ने आनंदपुर से कूच किया। दुश्मन ने अपने वायदों को एक तरफ़ करके, आक्रमण कर दिया। गुरु जी लड़ते लड़ते सरसा नदी पार कर चमकौर की गढ़ी में पहुँचे और रास्ते में उनकी माता तथा छोटे साहिबज़ादे ज़ोरावर सिंघ (जन्म तिथि 1696 ई॰) तथा फ़तेह सिंघ (जन्म तिथि 1699 ई॰) अलग हो गए। इनको सहेड़ी नामक गाँव के दो मसंद ब्राह्मण धूमा तथा दरबारी ने लालच में आकर मोरिन्डा में पकड़वा दिया।

चमकौर में गुरु साहिब के पास केवल चालीस के लगभग सिक्ख रह गए, जैसा कि उन्होंने 'ज़फ़रनामे' में लिखा है। सिक्ख लड़ते लड़ाते शहीद होते गए तथा दोनों बड़े साहिबज़ादे बाबा अजीत सिंघ (जन्म तिथि 1687 ई॰) तथा बाबा जुझार सिंघ (जन्म तिथि 1690 ई॰) भी 17 माघ 1762 सं. को रात्रि की चमकौर जंग में जूझ मरे। सिक्खों की विनती पर साहिब गुप्तरूप हुए गढ़ी से निकल गए, माछीवाड़े के स्थान अथवा किसी और स्थान से गुरु जी ने औरंगज़ेब की ओर एक ख़त (फ़तहनामा) लिखकर भेजा, जिसमें हुकूमत की शर्मनाक करतूतों की निन्दा की गई है। इस फ़ारसी चिट्ठी के केवल 23 के लगभग शेयर ही प्राप्त हो सके हैं। राय कोट राय कल्ले के पास जाने पर गुरु साहिब को समाचार मिला कि 3 पौष, 1762 सं. को छोटे साहिबज़ादों को भी वज़ीर ख़ां के आदेश से सरहिन्द में शहीद कर दिया गया है और माता जी ने उन्हीं के वियोग में प्राण त्याग दिये हैं। कहते हैं कि गुरु साहिब ने एक काई का पौधा धरती से उखाड़ते हुए कहा, "अब ज़ुल्म के राज्य की जड़ खोखली हो गई है, जिस हुकूमत को मासूम बच्चों से भी डर लगता है, वह ज़्यादा देर नहीं चल सकती।"

दीने कांगड़ के स्थान पर गुरु जी ने औरंगज़ेब के नाम दूसरा ख़त लिखा जो कि 'ज़फ़रनामा' करके प्रसिद्ध है। इसमें सरकारी कर्मचारियों की ओर से खाई गईं झूठी कसमों की निन्दा की गई है और कहा है कि क्या हुआ अगर मेरे चार बच्चे शहीद कर दिये गये हैं, अभी तो मेरा भुजंगी ख़ालसा शेष है।

अभी भी शाही सेना गुरु जी की तलाश में थी, खिदराने की ढाब (मुक्तसर) के स्थान पर 30 पौष, 1762 वि: को एक घमासान युद्ध हुआ और सिक्खों ने अपने गुरु हेतु निर्भय होकर बलिदान दिया। अन्त में पानी की कमी के कारण, प्यास के कारण पराजित होकर शाही सेना वापस चली गई। मुक्तसर के युद्ध में लड़ने वाले बहुत वो सिक्ख थे जो आनंदपुर की मुसीबत से घबराकर गुरु साहिब को बेदावा[1] लिख दे आये थे। इनको 'मुक्ते' (मुक्ति-प्राप्त) कहा जाता है।[2]

गुरु जी दमदमा साहिब (साबो की तलवंडी) चले गए और सिक्खों को फिर संगठित करना आरम्भ किया, कुछ दिनों में ही कई हज़ार मलवइयों ने अमृतपान किया। भाई डल्ले जैसे मुखी चौधरी गुरु जी की सेवा में आने लगे। कवि दरबारों और शस्त्र अखाड़ों में चहल पहल होने लगी। इसके साथ-साथ गुरुवाणी की प्रतिलिपियां करने का कार्य होने लगा। एक तरह जंगों युद्धों में हुई तबाही के घाटे को फिर से सृजनात्मक कार्यों द्वारा पूरा किया जाने लगा।

'ज़फ़रनामा' (ख़त) देकर भाई दया सिंघ जी को दक्षिण की ओर अहमद नगर भेजा गया। फिर उधर से संदेश मिलने पर गुरु साहिब ने बादशाह से मिलने के लिए दक्षिण की ओर जाने की तैयारी की। यह बात कार्तिक 1763 सं. (1706 ई०) की है।

---

1. एक पत्र जिसमें गुरु साहिब के साथ मिलकर युद्ध न लड़ने को लिखा था और घर आ गए थे।
2. चाली मुक्तों के नाम यह हैं—महां सिंघ, माल्हा सिंघ, दरबारा सिंघ, वीर सिंघ, मनसा सिंघ, परसा सिंघ, गौरा सिंघ, अजैब सिंघ, शेर सिंघ, नरैण सिंघ, संत सिंघ, परमा सिंघ, सुरजा सिंघ, बचित्र सिंघ, मसतान सिंघ, फूला सिंघ, चंपा सिंघ, कान्ह सिंघ, दीप सिंघ, मक्खण सिंघ, गंडा सिंघ, साधू सिंघ, जीवन सिंघ, मूलां सिंघ, भाग सिंघ, कपूर सिंघ, मिट्ठा सिंघ, गाड़ सिंघ, जस्सा सिंघ, चूहड़ सिंघ, मनी सिंघ, भाग सिंघ, मनसा सिंघ, तारू सिंघ, बिशन सिंघ, गुरबख़्श सिंघ, हरी सिंघ, बुलाका सिंघ, बिबेका सिंघ, तथा राम सिंघ।

(Sikh Martyrs, कृत भगत लछमण सिंघ, पृष्ठ 77-78)

गुरु जी दक्षिण को जाते समय बघोर पहुँचे ही थे कि वहां आप को औरंगज़ेब के मरने (फ़रवरी 1707) की सूचना मिली। इसलिए आप शाहजहानाबाद की ओर चले आए। इसी समय औरंगज़ेब के पुत्रों—शहज़ादा आज़म और मुहम्मद मुअज़्ज़म दोनों का जेजों के स्थान पर (जून 1707) तख़्त के लिए युद्ध हुआ। मुअज़्ज़म जीतकर बादशाह बना। गुरु साहिब ने आगरे में बादशाह बहादुर शाह जफ़र से मुलाकात की, जिसमें उन्होंने हाकिम सरहिन्द की ओर से की गई ज़्यादतियों का पर्दाफ़ाश किया। आप का मंतव था कि बातचीत द्वारा सारी बात समाप्त हो जाये और दुष्कर्मियों को यथायुक्त दण्ड मिले।

परन्तु बातचीत अभी पूरी नहीं हुई थी। बादशाह को नवंबर 1707 में राजपूताने की शोध की ओर जाना पड़ गया। दक्षिण की ओर से सूचना मिली कि बादशाह के भाई कामबख़्श ने बग़ावत कर दी है, इसलिए बहादुर शाह ने मई 1708 में दक्षिण की ओर चड़ाई की। गुरु जी भी अधूरी बात को पूरी करने के उद्देश्य से साथ हो पड़े और सितम्बर 1708 ई० में नंदेड़ के स्थान पर पहुँचे। यहां माधोदास बैरागी को सिंघ बनाकर 'बंदा सिंघ बहादुर' बनाया और साथ ही मुख्य सिंघ देकर पंजाब की ओर भेजा। बादशाह और गुरु साहिब के बीच काफ़ी देर से हो रही मुलाकातों से वज़ीर ख़ां हाकिम सरहिन्द को भय लग रहा था। इसलिए उसने पहले ही दो पठानों को गुरु जी के पीछे लगाया हुआ था कि वे किसी न किसी तरीके से गुरु जी को क़त्ल कर दें। एक दिन दोनों पठान पहुँचे और गुरु जी पर ख़ूनी आक्रमण कर दिया, जिससे आप को वक्ष में घाव आया। एक पठान को तो गुरु साहिब ने वहीं पर ही तलवार से मार दिया और दूसरा सिंघों ने मार दिया। उपचार होने पर घाव ठीक हो गया, परन्तु एक दिन सतिगुरु जी ज़ोर से धनुष का चिल्ला चढ़ा रहे थे, जिससे फिर वही घाव खुल गया, और बहुत रक्त निकला। ऐसी हालत में आप पंथ ख़ालसे को अकाल पुरख के पास छोड़कर 7 अक्तूबर, 1708 ई० को ज्योति ज्योत समा गए।

आगिआ भई अकाल की, तबी चलाइओ पंथ।
सब सिखन को हुकम है, गुरु मानीओ ग्रंथ।
गुरु ख़ालसा मानिओ, प्रगट गुरु की देहि।
जो प्रभू कउ मिलबो चहै, खोज सबद महि लेहि।

(रहितनामा भाई प्रहलाद सिंघ)

इस आदेश द्वारा आप ने एक तरह व्यक्ति गुरिआई को समाप्त कर दिया और रसमी तौर पर भी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरिआई सौंप दी। आत्मिक, दिमाग़ी, और शारीरिक संतुष्टी के लिए यह त्रै-सूत्री सिद्धान्त बहुत ही सार्थक था :

1. पूजा अकाल पुरख की।
2. परचा शब्द का।
3. दीदार ख़ालसे का। *(रहितनामा भाई चौपा सिंघ)*

इस तरह हम देखते हैं कि कैसे दसमेश जी ने लगभग 47 वर्ष की आयु में कितना कुछ कर दिखाया। सतिगुरु के होते हुए पंथ की साजना की, साहित्यकार होते हुए श्री दसम ग्रन्थ जैसे अद्धितीय रचना रची।[1] सफल सेनापति बनकर मामूली सामग्री द्वारा शहनशाहियत से युद्ध किया, परन्तु फिर भी अपने आप या अपने किए कार्यों पर कोई अभिमान नहीं किया।[2] अपितु "मो से गरीब क्रोर परे" कहते हुए कहा :

जो हम को परमेसर उचरि हैं ।। ते सभ नरक कुंड महि परि हैं ।।
मै हो परम पुरख को दासा ।। देखन आयो जगत तमाशा ।।

(बचित्र नाटक)

सिक्ख-धर्म के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों तरह के निर्माण के लिए दो सौ वर्ष लगे। प्रथम शताब्दी में सिद्धान्तों की परिपक्व स्थापना हुई और फिर दूसरी शताब्दी में यह बात हर तरह से स्पष्ट की गई कि इस पवित्र उच्च आदर्शों के लिए शान्तिमय और आशान्तिमय दोनों तरीकों से किस तरह सब कुछ कुर्बान किया जा सकता है, परन्तु यह उत्तम आदर्श किसी तरह भी छोड़े नहीं जा सकते :

---

1. छोटा ग्रंथ साहिब जी जनमे साहिब दसवें पातशाह के धाम।
   संमत सतारां सै पचवंजा, बहुत खिडावे लिखारे नाम।
   साहिब नूं सी पिआरा, आपणी हथ्थीं लिखिआ ते खिडाइआ।
   सिखां कीती अरदास, 'जी नाल चाहीए मिलाइआ'।२२३।
   बचन कीता ग्रंथ साहिब है उह एहु असाडी है खेड।
   नाल न मिलाइआ आहा पिआरा, कउन जानै भेद। *(बंसावलीनामा)*
   नोट—युद्धों के समय इधर उधर होने के कारण दुबारा इस 'दसम ग्रन्थ' का संकलन भाई मनी सिंघ जी ने किया था।
2. He was a law giver in the pulpit, champian in the field, king of his masnad and a faqir in the society of the Khalsa.
   (History of the Punjab, Latif, p. 270)

एह वसतु तजी नह जाई नित नित रखु उरि धारो ॥

(मुंदावणी मः ५, पन्ना 1429)

यह बात कहने वाले पंचम गुरु जी ने स्वयं बलिदान दिया। उन्हीं के वीर सपूत गुरु हरिगोबिन्द जी ने युद्ध-क्षेत्र में जूझकर कुर्बानी देने का ढंग सिखाया। फिर गुरु हरि राय तथा गुरु हरि कृष्ण जी ने समझाया कि किस तरह बल रखते हुए भी अधिक संयम चाहिए। गुरु तेग़ बहादुर के दिल्ली बलिदान देने से फिर शान्तिमय कुर्बानी को दुहराया गया, परन्तु जुल्म तथा जबर को होश न आई और वह गुरु गोबिन्द सिंघ के समस्त जीवन में बलिदानों की वर्षा लगी दिखती थी। उन्होंने अपने सभी सुखों को त्यागकर मुसीबतों को निमन्त्रण दिया। माता पिता धर्म के लिए कुर्बान किए। प्यारे सिक्ख कुर्बान करवाये, चारों साहिबज़ादे शहीद हुए, इतना होते हुए भी यह कहा—क्या हुआ, यदि इतना कुछ हो गया है, गुरु साहिब की जीती-जागती मूर्ति-भुजंगी ख़ालसा-गुरु पंथ तो शेष है:

चिहा शुद कि चूं बच्चगां कुशतह चार ॥
कि बाकी बमांदसत पेचीदह मार ॥ *(ज़फ़रनामा)*

गुरु साहिबान ने केवल धर्म का प्रचार ही नहीं किया बल्कि उन्होंने अपनी समस्त आयु लगाकर सिक्खों के समक्ष प्रत्क्षय रूप में कर दिखाया, बलिदान देकर धर्म को दृढ़ किया। यह धर्म क्या था, इसके तीन मुख्य नियम थे—सन्तों का आदर, दुष्टों का दमन और प्रभु की प्रशंसा:

संता मानउ दूता डानउ, इह कुटवारी मेरी ॥
दिवस रैनि तेरे पाउ पलोसउ, केस चवर करि फेरी ॥

(रामकली कबीर जीउ, पन्ना 969)

इस्लाम कट्टर पंथ था, उसमें अन्य धर्मों के लिए सुहृदयता नहीं थी, हिन्दुत्व की 'सहनशीलता' कमज़ोरी बन गई थी, वह दुष्टता से टक्कर नहीं ले सकती थी। गुरु-जनों ने भुजंगी पंथ को इन दोनों बातों की शिक्षा दी और पूर्णतः मानवतावादी गुणों से अलंकृत करके ख़ालसे को तैयार किया।

इस शिक्षा का निष्कर्ष था कि सिंघों ने भी सहस्र जुल्म सह कर आदि से चली आ रही इस जीती जागती जीवन-धारा को जारी रखा, जिसकी साक्षी सिक्ख इतिहास के सुनहरी पृष्ठों में लिखित है।

•

परीक्षा युग

(1708-1748 ई॰)

गगन दमामा बाजिओ, परिओ नीसानै घाउ ।।
खेतु जु मांडिओ सूरमा, अब जूझन को दाउ ।।
सूरा सो पहिचानीऐ, जु लरै दीन के हेतु ।।
पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहू न छाडै खेतु ।।

(बाणी कबीर जीउ, पन्ना 1105)

मुरदा होइ मुरीद न गली होवणा ।।
साबरु सिदकि सहीदु, भरम भउ खोवणा ।।१८।।३।।

(वारां भाई गुरदास जी)

धंन जीओ तिह को जग मै,
मुख ते हरि चित मै जुधु बिचारै ।।
देह अनित्त न नित्त रहै,
जसु नाव चड़ै भव सागर तारै ।।

(पातशाही १०)

परीक्षा युग

(1708-1748 ई०)

जो कौम मरना जानती है, वह जीने की अधिक लालसा नहीं करती। बल्कि वह अपने शाश्वत आदर्शों के लिए मरना पुण्य समझती है। सिक्खों ने भी गुरु जी के द्वारा बताए मार्गों पर चलते हुए यही मार्ग प्रसन्नतापूर्वक पसन्द किया। गुरु जी के दक्षिण की ओर रवाना होने के पश्चात् तथा शीघ्र वापस न आने के कारण सिक्खों में कुछ निराशा सी उत्पन्न हुई। इस निराशा के अंतर्गत गुरु तेग़ बहादुर जी की शहीदी, आनंदपुर की तबाही, दोनों साहिबज़ादों का चमकौर युद्ध में शहीद होना, दोनों छोटे साहिबज़ादों का सरहिंद के हाकिम वज़ीर ख़ां के जुल्म का शिकार होना, तथा इसी दर्दनाक शोक से वृद्ध माता गुजरी जी का वहां स्वर्गवास होना और अनेकों हजारों गुरु प्यारे पंथ सेवक योद्धे, वीरों, विद्वान्ों, कवि-जनों, सिक्खों के बलिदान की ऐसी घटनाएँ थीं जो सिक्खों के आंतरिक मनों में ज्वाला उत्पन्न कर रही थीं। वे कुछ करने के लिए तत्पर थे और उनके प्रत्येक अंग स्पंदित हो रहे थे। इस समस्त आंतरिक सरगर्मी को संगठित करके बाबा बंदा सिंघ बहादुर ने ज़ुल्म का उत्तर खण्डे के साथ देकर तप्त हृदयों को शान्ति दी। यह गुरु गोबिन्द सिंघ जी के दिए हुए आर्शीवाद की करामात थी कि उन्होंने वैरागी साधु को कर्मयोगी सन्त-सिपाही बनाकर ज़ालिम मुग़ल सलतनत के साथ युद्ध करवाया। ऐसा युद्धरत राजनीतिक मुखिया चुनना दसमेश जी का अद्वितीय चुनाव का रत्न था, जिसने सिंघ सत्ता की राजनीतिक नींव रखी। बंदा सिंघ बहादुर की देख-रेख में हम सिंघों को राजनीतिक संग्राम लड़ते तथा जीत प्राप्त करते देखते हैं, जिसकी प्रारंभिक तैयारी गुरु-जनों ने पहले ही कर रखी थी।

बंदा सिंघ

इसका पहला नाम लछमण देव था, पुण्छ के इलाके के गांव रजौड़ी में 1670 ई॰ के आसपास इसका जन्म हुआ। यौवन में वैरागी होने के कारण साधु बन गया। माधोदास वैरागी के नाम से पुकारा जाने लगा। गुरु गोबिन्द सिंघ दक्षिण की ओर यात्रा करते समय इसके डेरे पर पहुँचे तो इसने अपने यंत्रों मंत्रों तथा पीरों के बल से गुरु साहिब को परेशान करना चाहा और बाद में नंदेड़ के हिन्दुओं का जत्था लेकर इसने राजे से विनती भी की।[1] परन्तु कोई सफलता प्राप्त न हुई। अंत में लज्जित होकर गुरु जी के चरणों में गिर पड़ा और पूछा—आप कौन हैं ? गुरु साहिब ने ज़ोर से कहा—वे जिसे तू जानता है। माधोदास—मैं क्या जानता हूँ ? गुरु साहिब—तुम अपने मन में ही सोचो। माधो दास (सोच कर)—आप गुरु गोबिन्द सिंघ हो। गुरु साहिब—हां। माधोदास—फिर आप यहाँ किस लिए आए हो ? गुरु साहिब ने उत्तर दिया—मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुमको अपना सिंघ बनाऊँ। माधोदास ने कहा—मुझे स्वीकार है, मैं तो आपका बंदा (सेवक) ही हूँ।[2] परन्तु यह बताएँ कि आपके सेवकों ने यहाँ बकरे मारकर मेरे डेरे को अपवित्र क्यों किया है ? गुरु साहिब ने बंदे की आत्मा को झकझोरते हुए कहा—ओ बैरागी ! तू इस अपवित्रता को रोता है। बेगुनाहों का रक्त बह बह कर सारा देश ही अपवित्र हो गया है, उस अपवित्रता का कौन ज़िम्मेंदार है ? जाइए, जबर के साथ टक्कर लें और इस पाप को बंद करें। इस तरह सतिगुरु जी ने उसकी आत्मा को बलवान किया और अमृतपान करवाकर सिंघ बनाया। वैरागी की वीरात्मा जागरित हो उठी और उसने गुरु-संगत से यह जानकारी प्राप्त की कि अब मेरी जगह यह कुटिया नहीं, बल्कि वह भूमि है जहां बेगुनाह मासूमों के रक्त के साथ यह धरती रंगी हुई है। बंदा सिंघ बहादुर ने वे समस्त घटनाएँ श्रवण कीं जिसमें गुरु अर्जुन देव जी और गुरु तेग़ बहादुर जैसे धर्मात्माओं और मासूम साहिबज़ादों के कत्ल करने के संबंध में हृदय को पिघला देने वाले कारनामे थे। गुरु साहिब ने बंदा सिंघ को अपने तरकश में से पांच तीर, निशान तथा नगारा दिया और भाई बाज़ सिंघ,

---

1. *अमरनामा,* 30-40 छन्द।
2. अहमद शाह बटालिए ने *इबतदाए सिंघ व मज़हबे एशां* में इस तरह वार्त्तालाप दिया है, *सिक्ख इतिहास बारे,* पृष्ठ 52।

बिनोद सिंघ, कान्ह सिंघ, दया सिंघ तथा राम सिंघ पांच सिंघ भी साथ भेजे। सतिगुरु जी ने मर्यादा में सुदृढ़ रहने और मुसीबत के समय अकाल पुरख के पास अरदास (विनती) करने का विशेष आदेश दिया।

बाबा बंदा सिंघ बहादुर सिंघों सहित आगे से आगे बढ़कर सूबा दिल्ली की सीमा के नज़दीक 20 मील के लगभग परगणा खड़खोंडा के गांवों में रहने लगा। यहां संगठित होने के लिए माझे-मालवे के सिंघों को हुकमनामे (आदेश-पत्र) लिखे गये कि 'धर्म युद्ध का नगारा बजने वाला है, आइए ! गुरु कृपा से, शाषित सरहिन्द को नष्ट करें'[1] सिंघ बहुत समय से इसी प्रतीक्षा में थे। मालवे में से भाई रूपा के वंश में से धर्म सिंघ, नगाहिया सिंघ आदि तथा भाई भगतू की वंश में से भाई फ़तहि सिंघ, गुरबख़्श सिंघ आदि जत्थे लेकर पहले पहुँचे। फूलकियाँ के चौधरी राम सिंघ तथा त्रिलोक सिंघ ने शस्त्र एवं खाद्य सामग्री भेजने की सेवा की। सलौदी वाले भाई आली सिंघ तथा भाई माली सिंघ सरहिन्द की जेल तोड़कर बाबे बंदे के साथ आ मिले। दुआब इलाके के सिंघ कीरतपुर एकत्र होते गए। बंदा सिंघ ने प्रथम आक्रमण सोनीपत पर किया और जाते समय सरकारी ख़ज़ाना लूटा। यहाँ से सीधा सिंघों ने समाने पर आक्रमण किया, जहां गुरु तेग़ बहादुर जी के क़ातिल सय्यद जलालुदीन और छोटे साहिबज़ादों के क़ातिल शासल बेग तथा बासल बेग रहते थे। यह बात 26 नवम्बर, 1709 ई० की है। फिर घुड़ाम, ठसका, शाहाबाद, बज़ीर ख़ां का गांव कुंजपुरा, मुसतफ़ाबाद, कपूरी और सढौरे के दुष्टों का नाश किया। सढौरे के हाकिम उसमान ख़ां ने गुरु साहिब के साथ प्रेम रखने वाले पीर सय्यद बदरुदीन (बुद्धुशाह) का कत्ल कर दिया था, इस दुश्मन को भी बुरी तरह मारा गया। मालेरकोटले तथा रोपड़ के पठानों ने, माझे तथा दुआबे से आ रहे सिंघों का रास्ता रोका हुआ था, वे भी छत्त बनूड़ के नज़दीक बंदा सिंघ से आ मिले। ज़ालिम हाकिमों की करतूतों के विरुद्ध साधारण लोगों में भी घृणा पैदा हो गई थी। इसलिए गाँवों के गाँव सिंघ जत्थों में आकर मिलते गए। ख़ाफी ख़ां चालीस हज़ार की

1. सरहंदन की जड़ पुटण धाया। परबतीअन को मैं मारन आया।
मैं हों उसी पुरख को दासा। करयो ख़ालसा जिसै प्रकासा।
जिस गुरु जी सों बैर कमायो। बदलो लैन तिसी मैं आयो।
तिन तिन को मैं मारि गवाऊँ। तऊ सतिगुरु को बंदा सदाऊँ।
(प्राचीन पंथ प्रकाश—भंगू)

गिनती लिखता है। अंत में 12 मई, 1710 ई० को सरहिन्द पर आक्रमण किया गया। शहर से 10-12 मील बाहर चपड़-चिड़ी के मैदान में दो दिन भारी युद्ध हुआ। भाई फ़तह सिंघ की तलवार से साहिबज़ादों का कातिल वज़ीर ख़ां मारा गया और 14 मई को सिंघों ने शहर पर कब्ज़ा कर लिया। सरहिन्द 28 परगनों का और 36 लाख वार्षिक आय का सूबा था। भाई बाज़ सिंघ को सरहिन्द का सूबेदार तथा भाई आली सिंघ को नायब नियुक्त किया गया। इसके पश्चात् बाबा बंदा सिंघ ने भाई बुलाका सिंघ रागी का अनादर करने वाले राम राय के मसंदों को सज़ा दी तथा मालेरकोटले में सरदारनी अनूप कौर की दफ़नाई लाश को निकालकर उसका गुरमति अनुसार संस्कार किया। सिंघों ने शहर कोटला को न लूटा, क्योंकि शेर मुहंमद ख़ां ने साहिबज़ादों के कत्ल के समय सरहिन्द दरबार में 'हाय' का नारा लगाया था। यह है सिक्खों के कौमी चरित्र की एक शानदार घटना।

इस समय सिक्खों का तेज प्रताप देखकर बहुत सारे ग़ैर-सिक्ख सिंघ बनने लगे। दीनदार ख़ां, दीनदार सिंघ और एक पत्रकार मीर नसीरुदीन, मीर नसीर सिंघ बना। इस प्रकार सतलुज से यमुना तक सिक्खों का प्रभाव छा गया। सतलुज के पार भी सिंघ सम्पूर्ण-रूप में तैयार थे। बंदा बहादुर ने सढौरे के नज़दीक किला मुख़लसगढ़ का नाम 'लोहगढ़' रखकर इसको अपना प्रमुख स्थान बनाया। सिक्ख राज्य का जो प्रथम सिक्का चालू किया गया, उस पर निम्नलिखित फ़ारसी शब्द अंकित थे:

सिका ज़द बर हर दुआलम, तेगि नानक वाहब अस्त।
फ़तह गुबिंद सिंघ शाहे शाहां, फज़लि सच्चा साहब अस्त।

इसी तरह सरकारी मोहर पर यह शब्द थे:

देगो तेगो फ़तह व नुसरत बेदरंग।
याफत अज़ नानक गुरु गोबिंद सिंघ।

इन सिक्कों तथा मोहरों पर लिखित उपरोक्त पंक्तियों से मालूम होता है कि बंदा सिंघ बहादुर के हृदय में सतिगुरु जी के प्रति कितना प्यार तथा श्रद्धा थी। इसके पश्चात् यमुना पार सहारनपुर, बेहुत, अंबेटा, ननौता तथा जलालाबाद को पराजित किया। इस गंग-दुआब के आक्रमण ने सिंघों की जगह जगह पर धाक जमा दी। दुआबे-माझे के सिंघ भी अपने विजयी आगू के इन्तज़ार में थे, राहों के किले पर अधिकार किया गया और फिर

बटाला, कलानौर तथा पठानकोट भी सिंघों के हाथ में आ गये। सिंघों की चारों दिशाओं में विजय प्राप्ति को देखकर लाहौर के हाकिम बीचों बीच कांप रहे थे।

जब इन सिंघ विजेताओं का समाचार अजमेर में बहादुर शाह को मिला, तो वह भारी सेना लेकर पंजाब की ओर आया। मि. मैलकम के शब्दों में यह कहना उचित है कि अगर इस समय बहादुर शाह दक्षिण की ओर से न आता तो सिक्ख समस्त हिन्दुस्तान पर अधिकार कर लेते।[1] शाही सेना से लड़ते लड़ते सिंघ पहाड़ों की ओर चल पड़े। बंदा सिंघ नाहन की ओर चला गया। शाही आदेशानुसार सिंघों को चुन चुन कर मारा गया।[2] बहादुर शाह ने एक आदेश जारी किया कि समस्त हिन्दु दाढ़ी कटवा लें क्योंकि उनमें और सिक्खों के बीच कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता था। इस तरह मजबूर होकर बहुत सारे हिन्दुओं ने अपनी दाढ़ी कटवा ली। फ़रवरी 1712 ई० में बहादुर शाह लाहौर में ही बीमार होकर मर गया। राज्य संबंधी भाईयों में काफ़ी युद्ध होता रहा, अंत दिल्ली के सिंहासन पर जहांदार शाह बैठा। परन्तु यह भी फ़रवरी 1713 ई० में कत्ल कर दिया गया और इसके स्थान पर फ़रुख़सियर ने दिल्ली का सिंहासन संभाला।

दूसरी तरफ़ बंदा सिंघ पहाड़ों की ओर शान्ति से नहीं बैठा। उस ने समस्त सिंघों को हुकमनामों (आदेशों) द्वारा हथियार-बंद होकर तैयार रहने का आदेश दिया और निश्चय कराया कि ख़ालसे की शक्ति व्यापक हो रही है, गुरु रक्षा करेगा। एक हुकमनामा 26 दिसम्बर, 1709 को लिखा, जौनपुर की संगत के नाम इस प्रकार है:

मुद्रा   १ओं फते दरशनु

'सिरी सचे साहिब जी का हुकमु है सरबत खालसा जउनपुर का

---

1. Teja Singh Ganda Singh, *A Short History of the Sikhs,* p. 92.
2. 1763 ई. को लिखी एक लिखित में इस प्रकार लिखा है:-
   'बहादुर शाह बीजापुर की फते करि नरबदा आए ये तांही मैं खबरि आई, जो सिंघ नी लाहौर मै अमल करी, नानकि गुरु का सिक्का चलाइआ। अज़मते नानकि गुरु हम ज़ाहरो हम बातनसत। बादशिआहे दीनो दुनीआं आप सच्चा साहिब असत। व बहादुरशाह सिख कूं तंबीह वासतै पंजाब गए। सो हज़ार सिक्ख मारि मुदारे चुणाय दीए।' *(हिन्दुस्तानी, पृष्ठ 63, जनवरी 1938)*

गुरु रखेगा, गुरु गुरु जपणा जनमु सवरैगा, तुसीं सिरी अकाल पुरख जी का खालसा हो पंज हथीआर बंनिकै हुकमु देखदिआं दरसनि आवणा खालसे दी रहत रहणा भंग तमाकू हफीम पोसतु, दारू अमलु कोई ना ही खाणा, मास मछली पिआज नहीं खाणा, चोरी जारी नहीं करनी असां सतजुग वरताया है और विचि पिआरु करना मेरा हुकमु है। जो खालसे दी रहत रहेगा तिसदी गुरु बाहुड़ी करेगा। मिती पोहो १२, संमतु पहिला १, सतरां दस १०।[1]

सिंघों के पास न तो बहुत सैनिक सामग्री थी, न रसद पानी और न ही उनका कोई स्थाई स्थान था। फिर भी जिस समय दिल्ली के सिंहासन पर आपसी झगड़ा हो रहा था, उस समय बंदा सिंघ बहादुर की देख-रेख में सिंघ पहाड़ी राजाओं को पराजित करते रहे तथा उपहार लेकर शस्त्र एकत्र करते रहे। चंबे के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह बंदा सिंघ के साथ कर दिया। इस तरह पहाड़ी इलाकों में शक्ति बढ़ाकर सिंघों ने कांगड़े की ओर होकर परगणा बटाला तथा कलानौर पर कब्ज़ा किया और इसके पश्चात् लोहगढ़ पर अपना केसरी झण्डा आ झुलाया। जब फ़रुख़सियर ने सिंहासन प्राप्त किया, उसने अबदुल समद ख़ां को लाहौर का सूबेदार नियुक्त करके सख़्त चेतावनी दी कि सिक्खों से देश को मुक्त करें। बंदा सिंघ बहादुर फिर पहाड़ों की ओर चला गया। फिर दाव मारकर तीसरी बार बटाले और कलानौर आदि स्थान हिरासत में लिए। जब बहुत सारी शाही सेना ने आकर घेरा पा लिया तो बंदा सिंघ समस्त सिंघों सहित गुरदास नंगल की गढ़ीनुमा हवेली में बाग़ी होकर बैठ गया। आठ मास निरंतर यह घिरा रहा तथा सिंघों ने इस संकट काल में घोड़े मारकर अथवा घास पत्ते खाकर गुज़ारा किया, परन्तु युद्ध जारी रखा। अंतः 7 दिसम्बर, 1715 को गढ़ी पर कब्ज़ा करके बंदे को समस्त सिंघों के साथ गिरफ़्तार कर लिया गया, जिनकी समस्त गणना 740 थी। अबदुल समद ख़ां के पुत्र ज़करिया ख़ां की देख-रेख में यह समस्त कैदी लाहौर की गलियों में फिरा कर दिल्ली की ओर रवाना किये गये। आगे आगे मुग़ल सिपाही दो हज़ार सिंघों के सिरों को नेज़ों अथवा बांसों पर लटका कर ले जा रहे थे तथा पीछे यह कैदी सिंघ थे। ज़करिया ख़ां ने बादशाह को ख़ुश करने हेतु रास्ते में और अनेकों सिंघों को भी गिरफ़्तार किया, दिल्ली में ले जाकर फिर कैदियों को बाज़ारो बाज़ार घुमाया गया। *इबरतनामे* का

1. गंडा सिंघ कृत, *बंदा सिंह बहादुर*, पृष्ठ 153.

रचियता मुहम्मद कासिम स्वयं दर्शकों में था, वह लिखता है कि मैं भी तमाशा देखने के लिए बाज़ार में आया, बहुत भीड़ थी, कैदी सिंघ बहुत प्रसन्न-मुख मालूम होते थे, उनमें से बहुत सारे शब्दों का गायन कर रहे थे, जब कोई उनको यह कहता कि यह तुम्हारे काले कारनामों का नतीजा है, स्वयं भोगो। तब सिंघ कहते, 'आकाल पुरख की इच्छा ही ऐसी है।'

बादशाह के आदेशानुसार बाबा बंदा सिंघ, भाई बाज़ सिंघ, बाबा कान्ह सिंघ, भाई फतेह सिंघ आदि आगू सिक्ख सरदारों को अलग रूप में कैद रखा गया ताकि उनसे ख़ज़ाने का भेद मालूम किया जा सके। शेष 694 सिक्खों को कत्ल करने हेतु कोतवाल के अधीन कर दिया गया। सौ सौ सिंघ प्रतिदिन पंक्ति में बांधकर कत्ल किए जाने लगे। इन कत्ल हो रहे सिक्खों में एक नवयुवक भुझंगी भी था। इसकी माता ने विनती की कि यह मेरा पुत्र सिक्ख नहीं है, वह तो ग़लती से लाया गया है, उसकी प्राण-रक्षा की जाये। बादशाह ने प्राण-रक्षा का आदेश कर दिया, परन्तु भुझंगी ने इस प्राण-रक्षा से इन्कार कर दिया। ख़ाफी ख़ां लिखता है, 'उस भुझंगी ने कहा कि मेरी माँ झूठ बोल रही है, मैं दिलो-जान से अपने गुरु को तन-मन अर्पित करने वाले सिंघों में से ही हूँ। मुझे मेरे साथियों के पास शीघ्र पहुँचाया जाये (शहीद कर दिया जाये)।

> "पिसर ओ ब फरिआद आमद, मादरम दरोग मे गोयद मन ब दिलो जान अज़ मोअतकिदां व फिदवाइआं जां-निसारि मुरशद खुदम, मरा ज़ूद बरफीकिआने मन रसानीद।" *(मुंतखिब लुबाब)*

निष्कर्ष, उस शहीदी को पीने वाले को भी शहादत का जाम पिला दिया गया। इस सारे दृष्य को आँखों से देखने वाला मि. जौहन सरमन (अंग्रेज़ सफ़ीर) गवर्नर बंगाल को अपनी 10 मार्च, 1716 ई० को भेजी पत्रिका में लिखता है कि प्रत्येक दिन सौ सिक्खों को कत्ल किया जाता था। यह बात विशेष विचारणीय है कि वे किस धैर्य के साथ आदेश को मान रहे हैं। अंत तक यह नहीं देखा गया कि इनमें से किसी एक ने भी अपने नवीन धारण किये धर्म का त्याग किया हो।[1]

---

1. There are one hundred each day beheaded. It is not a little remarkable with what patience they undergo their fate, and to the last. It has not been found that one has apostatised from the new formed religion.
(*Wheeler, Early Records of British India,* p. 180)

इसी तरह *सैरुल मुताख़रीन* का रचयिता ग़ुलाम हुसैन बंदे के साथी सिंघों की शहीदी को वर्णित करते हुए लिखता है, 'बड़े आश्चर्य की बात है कि इस धर्म का यह सुनने में आया है कि प्रत्येक सिक्ख मारे जाने पर भी एक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करता था और जल्लाद को विनती करता था कि पहले मुझे कत्ल किया जाए।' सय्यद मुहम्मद लतीफ़ लिखता है कि वे मरने हेतु एक दूसरे से आगे बढ़ते और प्रसन्नता पूर्वक जल्लाद की तलवार के नीचे अपनी गर्दन रख देते थे। ये मुस्लिम तथा फ़िरंगी लेखकों के प्रमाण बताते हैं कि किस तरह सिंघों ने मृत्यु को ख़ुशी ख़ुशी स्वीकार किया, परन्तु धर्म को पीठ न दिखाई।

अंतः सरबराह ख़ां कोतवाल की देख रेख में ख़वाजा कुतबुदीन के मकबरे के पास 19 जून, 1716 को बंदा सिंघ बहादुर तथा उसके अन्य साथियों को भी बुरी तरह कत्ल कर दिया गया। बंदा सिंघ को कहा गया कि वह अपने चार वर्षीय पुत्र अजय सिंघ को भी स्वयं कत्ल करे। इन्कार करने पर जल्लाद ने बच्चे के दो टुकड़े करके बंदे के मुँह पर फैंक दिये। फिर उसका शरीर गर्म जंबूरों से नोचा गया। बंदा सिंघ ने जिस बहादुरी से जाबरों से टक्कर ली थी, उसी साहस के साथ उस भयानक मृत्यु को प्रसन्न-मुख स्वीकार किया।

इस समय गश्ती सेना स्थान स्थान पर सिंघों को चुन चुन कर मार रही थी। बहुत सारे सिंघ वनों तथा पहाड़ों में चले गये। भाई मनी सिंघ जी इस संकट काल में अमृतसर की सेवा संभाल रहे थे, उन्होंने उस समय की स्थिती माता सुन्दरी जी को एक पत्र में वर्णित की है। यह पत्र शायद अप्रैल 1716 में लिखा गया मालूम पड़ता है—

१ओंकार अकाल सहाइ

"पूज माता जी, जी के चरनां पर मनी सिंघ की डंडौत बंदना बहुरो समाचार वाचना कि इधर आउन पर साडा शरीर वायु का अधिक विकारी होइ गइआ है। सुअसत ना ही रहिआ। ताप की कथा दो बार सुनी पर मन्दिर की सेवा में कोई आलकु ना ही, देसु विच खालसे दा बलु छूटि गइआ है। सिंघ परबतां बबानां विचि जाइ बसे हैन। मलेछों की देस में दोही है। बसती में बालक जुवा इसतरी सलामतु ना ही, मुछु मुछु करि मारदे हैन। गुरु दहोही बी ओना दे संगु मिलि गए हैन। हंदालीए मिलि करि मुकबरी करदे हैन। सबी चकु छोड़ गए हैन। मुतसदी भाग गए हैन।

साडे पर अबी तो अकाल की रछ्छा है। कल्ल की खबर नाही। साहिबां दे हुकम अट्टल हैन। बिनोद सिंघ दे पुतरेले दा हुकम सतु होइ गइआ है। पोथीआं जो झंडा सिंघ हाथि भेजी थी उना विच साहिबां दे 303 चरित्र उपखयान दी पोथी जो है, सो सीहां सिंघ को महिल विचि देना जी। 'नाम माला' की पोथी की खबरु अबी मिली नहीं। करिसनावतार पूरबारध तो मिला। उतरारध नाही। जो मिला असीं भेज देवांगे। देस विचि गौगा है कि बंदा बंधन मुकति होइ भाग गइआ है, साहिब बाहुड़ी करनगे। तोला 5 साहिबज़ादे की घरनी के आभूखन लई गुरु किआ खंडूर से भेजा है। 17 रजतपन बी झंडा सिंघ से भर पाने। पंज रजतपन इसे तोसा दीआ। इस नूं बदरका बी है। इस से उठि जावेगे। मुसतदीओं ने हिसाब ना ही दीआ, जो देंदे तां बड़े शहिर से हुंडी कराइ भेजदे। असाडे शरीर दी रछिआ रही तां कुआर दे महीने आवांगे। मिती वैसाख 22 दसखत मनी सिंघ गुरु चकु बुंगा। जुआब पोरी में।[1]

जैसा कि इस पत्र में वर्णित है कि देश में यह आम अफ़वाह थी कि बंदा अपनी जादूगरी से कैद में से निकल गया है। परन्तु यह ठीक नहीं था, क्योंकि इस समय उसके साथी सिंघ तो शहीद किए जा चुके थे और वह (अप्रैल 1716) अभी कैद में ही था। फिर भी बड़े पुरुषों के संबंध में साधारण जनता में इस तरह के विचार आते ही रहते हैं। बाबा बंदा सिंघ के इस आठ वर्षीय आंदोलन का पंजाब पर जो गहरा प्रभाव पड़ा, वह यह था कि ज़िमींदारी रीति समाप्त होने लगी और किसान भूमि के मालिक बने। पंजाब की इस सफल शस्त्रबद्ध बग़ावत ने मुग़ल राज्य की नींव हिला दी और लोगों में कौमी आज़ादी तथा स्वाभिमान हेतु एक नवीन आशा प्रफुल्लित हुई तथा आगे आगे बढ़ती गई।

लाहौर तथा दिल्ली की शाही शक्ति ने बंदा सिंघ और उसके साथी सिंघों को शहीद करके यह समझ लिया कि यह बाग़ी लहर सदैव के लिए समाप्त कर दी गई है, परन्तु यह उनकी भूल थी। बंदा सिंघ के बाद सिक्खों ने आगामी पचास वर्षों में इस आंदोलन को जिस शक्ति के साथ चलाया, वह संसार के इतिहास में एक शानदार अद्वितीय हिस्सा है। सिक्खों ने यह संग्राम लड़ते समय बनवास, दुःख, भूख, ग़रीबी, कैद,

1. ज्ञानी हरनाम सिंघ बल्लभ दिल्ली द्वारा संपादित *Trumpp's Translation of Sri Guru Granth Sahib,* पृष्ठ XIX.

युद्ध, जंग तथा शहीदी आदि यह अपने सिर पर झेला, उन्होंने तलवारों, रंबियों, चर्खड़ियों के नीचे तथा पिसकर भी सिक्ख धर्म की रक्षा की। वे शस्त्रबद्ध हो कर इकट्ठे भी लड़े और अकेले अकेले भी लड़े। उन्होंने शस्त्रों के बग़ैर भी तरह तरह के भयानक शस्त्रों, खंजरों, आरियों, चर्खड़ियों तथा जल्लादों की तलवारों के साथ मुकाबला किया, परन्तु किसी भी मुकाबले में उन्होंने अपना सिंघतव नहीं गंवाया। यह रक्त-संग्रामों का समय था। मैलकम के शब्दों में, 'इस भयानक समय में सिक्खों ने जितनी चोटें खाई हैं, उतने ही ऊपर उठे हैं। पंजाब के मैदान में वीर सिंघों की कौम उस गेंद की तरह थी, जिसको हरेक तरफ़ से पैरों की ठोकरें लग रही थीं परन्तु वे सदैव आकाश की ओर उछलती जा रही थी।'

17 अप्रैल, 1719 को दिल्ली का बादशाह फ़रुख़सियर कत्ल कर दिया गया। इसके पश्चात् दो और बादशाह बनें, बदले और फिर 18 सितम्बर, 1719 को मुहम्मद शाह तख़्त पर बैठा जो अप्रैल 1748 तक बादशाह रहा। यह ऐश्वर्यवान् था, इसलिए मुग़ल हकूमत का दब-दबा कायम न रह सका। हाकिम स्वयं मनमानित कार्य करने लगे थे और केन्द्र सरकार की शक्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होती गई। लाहौर का हाकिम अबदुल समद ख़ां था जो कि सिक्खों पर अभी भी उसी तरह दबाव डाले आ रहा था। बहुत सारे स्वाभिमान वाले सिक्ख तो बीकानेर, राजपूताने की ओर चले गये और उधर ही साधारन भोजन खाकर गुज़ारा करने लगे।

गुरु गोबिन्द सिंघ जी ने गुरिआई गुरु-पंथ में लीन कर दी थी, परन्तु इस नई रीति को पनपने का पूरा मौका न मिला। कारण यह था कि दसमेश जी के पश्चात् राजनीतिक देख-रेख बंदा सिंघ बहादुर करता रहा, बंदा सिंघ की शहीदी के पश्चात् अगुवाई का कार्य किसी को भी नहीं दिया गया।[1] भाई मनी सिंघ जो अधिक समय तक गुरु गोबिन्द सिंघ जी पास रहे थे और बाद में दिल्ली में माता सुन्दरी जी की सेवा में रहे, आप ने सिक्ख शक्ति को एकत्र करने हेतु अमृतसर में पड़ाव किया। जैसा कि उनके लिखित पत्र से स्पष्ट है कि अमृतसर हरिमंदर की सेवा

---

1. भाई मनी सिंघ (1644-1734 ई०) अलीपुर ज़िला मुज़फ़्फ़रगढ़ के निवासी भाई दास के सुपुत्र थे। इनका बाबा बल्लू छठे सतिगुरु जी के 1634 ई० में हुए युद्ध में लड़ा था, जिसने पंचम गुरु, गुरु अर्जुन देव, के हत्यारे मुरतज़ा ख़ां को मारा था। *(शहीद बिलास, संपादित ज्ञानी गरजा सिंघ)*

संभालने हेतु पहले भी आ चुके थे। यह बात 1720 ई॰ की है कि बाबा कान्ह सिंघ जी ने अमृतसर दीवाली पर समूह ख़ालसे को एकत्र करने का समय निश्चित किया। कई वर्षों से सरकारी दबाव के कारण अधिवेशन बन्द चला आ रहा था और मुखी श्रद्धालु सिक्ख अधिकतर माता सुन्दरी जी के पास दिल्ली में ही आते जाते रहते थे। माता जी की आज्ञानुसार ख़ामोश केन्द्र में फिर से चहल-पहल होने लगी। सिंघ दीवाली के समय पूर्ण ज़ोर-शोर से पहुँचे। यहाँ आकर बंदई तथा भुझंगी ख़ालसे के बीच कुछ झगड़ा-सा उत्पन्न हो गया, परन्तु भाई मनी सिंघ जी आदि सूझवान सिंघों ने समझौता करा दिया। फिर वैशाखी को समूह ख़ालसा एकत्रित न हो सका। दरबार साहिब की आय को लेकर फिर से तत्त ख़ालसे और बंदइयों के बीच काफ़ी विवाद हुआ। तत्त ख़ालसे की ओर से बाबा कान्ह सिंघ जी के पुत्र मीरी सिंघ और बंदइयों की ओर से भाई लाहौरा सिंघ के पुत्र संगत सिंघ की आपस में कुश्ती करवाई। भाई मीरी सिंघ ने संगत सिंघ को हरा दिया। तत्त ख़ालसे की जीत हुई मानी गई। फिर भी झगड़ा न हल होता देखकर दोनों दलों की ओर से 'हरि की पउड़ी' पर जाकर सरोवर में दो परचियां डाली गईं। निर्णय यह हुआ कि जिसकी पर्ची पानी में डूब जाये, वह दल दूसरे दल में शामिल होकर काम करेगा। बंदईयों ने अपनी पर्ची पर '.फतह दर्शन' लिखा था तथा ख़ालसे ने 'वाहिगुरु जी की फते'। तत्त ख़ालसे की पर्ची तैर कर उपर आ गई तथा समझदार बंदई सिंघ, भेद-भाव को त्यागकर तत्त ख़ालसे में आकर मिल गए। वास्तव में बंदा सिंघ के समय ऐसा मत्त-भेद कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ था। बंदा सिंघ को गुरु मानने वालों श्रदालुओं ने ऐसा भेद बाद में उत्पन्न किया जो कि मुसीबतों की बाढ़ में शीघ्र ही समाप्त हो गया। बंदा सिंघ ने जो 'फ़तह दर्शन' चलाया था वह केवल युद्ध का नारा था।

सिंघों की फिर से शक्ति तीव्र होती देखकर अबदुल समद ख़ां ग़ुस्से में आ गया। सय्यद मुहम्मद लतीफ़ लिखता है कि उसने आदेश दिया, 'जहां सिंघ मिले, वहीं मार दो। जो कोई सिंघ को पकड़कर ले आयेगा, उसको इनाम दिया जायेगा।' सिक्खों और ग़ैर-सिक्खों में भेद करने हेतु यह भी आदेश जारी किया कि समस्त हिन्दु मुसलमान अपनी दाढ़ी-बाल मुँडन करवाकर रखें। बहुत सारे सिंघ मालवे के लक्खी जंगल की ओर तथा बहुत सारे आनंदपुर की पहाड़ियों की ओर चले गये। जो शेष घरों में रहते थे, उनको गद्दार सूहिये चौधरी बता बता कर पकड़वाते और मरवा

देते। अमृतसर के आसपास सिंघों को तबाह करने हेतु ग़द्दार चौधरी—छीनियां का चौधरी कर्मा, तलवंडी का चौधरी रामा रंधावा, चौधरी धर्म दास टोपी, जंडियाले का सरनदास हंदालिया, हरिभगत निरंजनिया, नुशहरे ढाले का चौधरी साहिब राय तथा इसी तरह मजीठे का चौधरी—इन सभी ने व्यापक घेरा डाला हुआ था। केवल चुभालिया चौधरी सिक्खों का हमदर्द था। शेष सभी हुकूमत को ख़ुश करने हेतु भाईयों का रक्त बहाकर जागीरें तथा रुपये कमा रहे थे। ग़रीब सिक्खों की फ़सलें बरबाद कर देना, उनके पशु चोरी करवा देना, तथा उनके परिवार को तरह तरह से तंग करना, इन चापलूसों का आम पेशा था।

यह बात 1726 ई० की है, जब कि अबदुल समद खां को मुल्तान बदल दिया गया और उसका पुत्र ज़करिया ख़ां (ख़ान बहादुर) लाहौर का गवर्नर बना। इसी वर्ष ही भाई तारा सिंघ डलवा वाला शाही सेना से लड़ता शहीद हुआ। यह 25-30 वर्षीय नौजवान तारा सिंघ, वनों में छुपे सिंघों को खाद्य सामग्री पहुँचाया करता था और बाहर खेतों में ही इसने अपना छोटा-सा घर बनाया हुआ था। कई बार सिंघ इसके पास आते जाते रहते थे। भाई तारा सिंघ ने गांव के चौधरियों को कहा कि अपनी घोड़ियाँ बांधकर रखा करें क्योंकि वे खेत को चर जाती हैं। अभिमानी चौधरी ने उत्तर दिया कि तुम्हारे बालों के रस्से बनाकर बांधूंगा। स्वाभिमानी सिंघों ने चौधरी की घोड़ियाँ पकड़कर मालवे में पहुँचा दीं। पट्टी का फ़ौजदार मिरज़ा बेग 80 प्यादे तथा 25 सवार लेकर आया। फिर लाहौर से मोमन ख़ां की देख-रेख में और 22 सौ सवारों समेत डलवां गांव पर आक्रमण किया गया। इधर सिंघ भी एकत्रित हो चुके थे। घोर युद्ध हुआ। तकी बेग सैनिकों को सांत्वना देता आगे आगे फिर रहा था, भाई तारा सिंघ ने उसके मुँह पर ऐसा ज़बरदस्त वार किया कि वह पीछे की ओर दौड़ गया। मोमन ख़ां सिपाह सलार ने पूछा, "ख़ान साहिब ! क्या आप पान चबा रहे हैं ?" तकी बेग ने कहा, "आप भी खाईये, आगे तारा सिंघ पान बांट रहा है।" अंत: सैकड़ों की गिनती की शाही सेना के आगे 22 सिंघ कितनी देर युद्ध कर सकते थे, दुश्मन से युद्ध करते करते शहीदी प्राप्त कर गये।[1]

इस कार्य ने माझे में खलबली मचा दी तथा ज़करिया ख़ां के मन

---

1. *फुलवाड़ी* (मई 1934), सरदार करम सिंघ हिसटोरीयन।

में भी क्रोधाग्नि भड़क उठी कि समाप्त किये सिंघ अभी भी युद्ध करने से नहीं रुकते। उसने सिंघों को ख़त्म करने हेतु इनामों की घोषणा की कि जो सिक्ख का पता देगा उसको दस रुपये, जो उसको पकड़ा देगा उसको बीस रुपये तथा जो उसका सिर काटकर ले आएगा, उसको पचास रुपये इनाम दिया जायेगा।[1] सिंघों के केस काटकर लाने वालों को वस्त्र तथा कंबल इनाम मिलता था। कई लालची लोगों ने अपनी स्त्रियों के केस काटकर इनाम प्राप्त किये। कुछ ने रावी नदी के किनारे रह रहे बेचारे पचाधियों (एक जाति) के केस काटकर रुपये प्राप्त किये। गश्ती फ़ौज़ लंबे लंबे सुन्दर केसों वाले बनवासी सिंघों का शिकार करती थी। उनके लिए सिर ढकने का कोई टिकाना भी नहीं था। लुक-छुप कर कभी यहां, कभी वहां, भूखे प्यासे दिन गुज़ारते फिरते थे:

सिंघन पै गढ़ नहिं हुते, जित की ओट लड़ाहिं।
उठ नठ रोही मध छिपहिं, कै खूहन खड्डुन माहिं।

(प्राचीन पंथ प्रकाश)

डॉ. नारंग की लिखित अनुसार सिंघ बनना मृत्यु के साथ विवाह करने के समान था। अगर कोई एक स्त्री दूसरी स्त्री को यह पूछती कि तुम्हारे बच्चे कितने हैं तो वह बताती कि बच्चे तो चार थे परन्तु एक तो अमृतपान करके सिंघ बन गया है। उसके ऐसे उत्तर का अभिप्राय यह होता था कि वह एक तरह सिंघ बनकर मृत्यु के सुपुर्द हो चुका है।

उस समय दरबारा सिंघ, बुढा सिंघ देसी, कपूर सिंघ, जस्सा सिंघ, थराज सिंघ, करम सिंघ भोमा तथा गरजा सिंघ, आदि अग्रगामी सूझवान, सिक्खों को संगठित करते तथा धैर्य देते थे। भाई मनी सिंघ अमृतसर में थे, जहां पर दर्शन स्नान करने हेतु सिंघों पर सख़्त पाबंदी लगी हुई थी। हुकूमत भी दिन प्रतिदिन की गड़बड़ से तंग आई हुई थी, उन्होंने देखा कि सख़्ती के साथ सिक्खों को समाप्त नहीं किया जा सकता। इस

---

1. दस्सण वाले दस रुपै, औ मारन वाले पचास।
यह लालच तुरकन दयो, तब बनि सिंघन भयो नास।

(श्री गुरु पंथ प्रकाश—भंगू, पृष्ठ 71)

दस्से जो दस दमड़े पावै। पाइ बीस दिखरा पकरावै।
पाइ पचास लिआवै जु सीस। मिलै जागीर काम वड थीस।

(प्राचीन पंथ प्रकाश—ज्ञानी ज्ञान सिंघ)

लिए ज़करिया ख़ां ने दिल्ली सरकार के आदेशानुसार सिंघों के पास नवाबी तथा जागीर भेजी। भाई सुबेग सिंघ जंबर वाले सरकार के दरबार में अच्छा प्रभाव रखने वाले पुरुष थे तथा ठेकेदारी का कार्य करते थे। यह 1733 ई० में नवाबी का ख़िताब तथा जागीर का अधिकार-पत्र लेकर आया, दीवान दरबारा सिंघ जी ने यह 'शाही सौग़ातें' लेने से इन्कार कर दिया। सिंघों का कथन था :

हम को सतिगुरु बचन पातशाही
हम को जापत ढिग सोऊ आही।...
पातशाही छोड किम लहैं नबाबी
पराधीन जिंह माहिं खराबी। *(प्राचीन पंथ प्रकाश)*

नवाबी की ख़िल्अत (ख़िताब)

भाई सुबेग सिंघ जी ने बहुत विनती की कि ख़ालसे को यह जागीर वापस नहीं करनी चाहिए, लंगर हेतु ही स्वीकार कर लेनी चाहिए। निर्णय हुआ कि यह नवाबी किसी सेवक को दे दी जाए। भाई कपूर सिंघ (1697-1753) उस समय पंखे की सेवा में अनुरक्त थे। आप ने नवाबी का ख़िताब प्रथम पांच सिक्खों के चरण-स्पर्श के पश्चात् स्वीकार किया।[1] झबाल, दीपालपुर तथा कंगणपुर की एक लाख की जागीर गुरु के लंगर के नाम लगा दी। हुकूमत का ख़्याल था कि इस तरह सिक्ख नियंत्रण में आ जायेंगे, परन्तु 'राज करेगा ख़ालसा' का रोज़ का नारा लगाने वाले सिंघ किस तरह दबाकर रखे जा सकते थे। सिंघों ने इस शान्ति से कुछ लाभ उठाकर अपनी जत्थेबन्दी को और बलयुक्त बनाना शुरू कर दिया।

भाई मनी सिंघ

1734 ई० की बात है कि भाई मनी सिंघ जी ने पांच हज़ार रुपये सरकार को देना करके अमृतसर दीवाली का उत्सव मनाने का प्रोग्राम बनाया। दूसरी ओर हुकूमत ने गुप्त तैयारी यह शुरू की कि गश्ती फ़ौज भेजकर खोज करने की अपेक्षा, यहां एकत्रित हुए सिंघों को मार दिया जाये। सिंघों को भी इस बात का पता चल गया, इसलिए दीपमाला पर

---

1. पंज भुझंगिअन चरन छुहाइ।
धरों सीस मुहि पवित्र कराइ ॥४५॥ *(पंथ प्रकाश—भंगू)*

कोई भी न पहुँचा। 90 वर्षीय वृद्ध भाई मनी सिंघ को उसके साथियों—दीवान सिंघ आदि के साथ गिरफ़्तार करके लाहौर लाया गया तथा 24 जून, 1734 ई० को इस दसमेश के हजूरी सिक्ख का अंग अंग काट कर शहीद कर दिया।[1] भाई साहिब जी की शहीदी कोई साधारण बात नहीं थी, वे सिक्खों के परम-प्यारे आगू तथा शिरोमणी विद्वान् थे, जिन्होंने दसमेश जी की इधर उधर बिखरी वाणी को एकत्रित करके दसम ग्रन्थ की बीड़ तैयार करवाई तथा और भी बहुत सारी वाणी की पोथियाँ लिखीं एवं लिखवाईं। भाई साहिब के भतीजे भाई अघड़ सिंघ ने अमृतसर के हाकिम अबदुल रज़ाक तथा काज़ी को कत्ल करके बदला लिया। दरबार साहिब पर सरकारी कब्ज़ा हो गया और हरिमंदर तथा सरोवर के आस पास चौकियाँ बिठा दी गईं। ज़करिया ख़ां ने इलाके के चौधरियों—हरिभगत निरंजनिया, साहिब राय, मस्सा मंडियालिया, सरमुख कंग, मिलखा, बहिराम ख़ां चट्ठा, भीम ख़ां कसूरिया, फ़तेह ख़ां घेबा तथा धर्म दास, सभी को सख़्त चितावनी की गई कि जहां कहीं भी किसी सिक्ख को रहने दिया गया तो तुम्हारे प्राण ले लिये जायेंगे।

जुलाई 1734 ई० में बुड्ढा दल तथा तरुणा दल दो बड़े जत्थे बने। बुड्ढा दल के जत्थेदार नवाब कपूर सिंघ, बाघ सिंघ हल्लोवालिया तथा हरी सिंघ भंगी आदि थे। तरुणा दल के पांच जत्थे बनाये गए। इनके आगू दीप सिंघ, करम सिंघ, कान्ह सिंघ, मीरी सिंघ, दसौंधा सिंघ तथा भाई बीर सिंघ आदि थे। इसी वर्ष (1734) दीवान दरबारा सिंघ भी शरीर त्याग गये जो कि भाई नानू सिंघ दिल्ली वाले के सपुत्र थे।

सिंघों की जत्थेबंदी, शस्त्र विद्या का अभियास, कुश्तियां अखाड़े देख कर हुकूमत बरदाश्त न कर सकी, 1735 ई० में जागीर ज़बत कर ली गई। इसी वर्ष नौजवान हकीकत राय धर्मी को बसंत पंचमी के दिन इस्लाम को स्वीकार न करने हेतु लाहौर में कत्ल कर दिया गया। हुकूमत के तुअस्सबी कार्य में कोई अन्तर नहीं आया था। बुड्ढा दल मालवे की ओर

---

1. भाई मनी सिंघ तुरकां दा की सी गवाइआ।
भजनवान सिख परदेसी सी, डेरा चोले बाग़ विच लाइआ।
उथे फ़ौज तुरकां दी पई, पकड़ लै आए।
तिन्हा जबाब सवाल पक्के कीते, तिनां दे अंग अंग टुकाए।८५।
(बंसावलीनामा)

आ गया। बरनाले बाबा आला सिंघ ने नवाब कपूर सिंघ के हाथों अमृतपान किया तथा सिंघों ने उसके लिए बहुत इलाका जीत कर दिया।

1737 में अबदुल समद ख़ां की मृत्यु होने के कारण मुल्तान के सूबे की हाकमी भी ज़करिया ख़ां को सौंप दी गई, इसलिए उसको उस तरफ़ भी अधिक ध्यान देना पड़ता था। इस समय अफ़सर भी स्वेच्छानुसार कार्य करने में लगे हुये थे। यही हाल मुहम्मद शाह रंगीले की दिल्ली सरकार का था। सिक्ख तथा मराठे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए मैदान में छलांगें लगाते आगे बढ़ रहे थे। पंजाब में तो राज्य-व्यवस्था बिलकुल है ही नहीं थी।

जनवरी 1739 ई० में काबल, कंधार को पराजित करके नादर शाह (1688-1747 ई०) ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। ज़करिया ख़ां इसके अधीन हो गया। करनाल के पास मुग़लों की सेना ने कुछ लड़ाई की। 9 मार्च को नादर शाह दिल्ली जा पहुँचा। 11 मार्च को भारी क़त्लेआम तथा लूट-मार हुई। 30 हज़ार आदमी क़त्ल हुए। सर जादूनाथ सरकार के कथन अनुसार 5 मई, 1739 ई० को 15 करोड़ नकद तथा 50 करोड़ का सामान तख़्ते ताऊत आदि दिल्ली से लूटकर तथा 50 हज़ार हिन्दु लड़के-लड़कियाँ साथ लेकर यह अपने देश को चला गया। कहते हैं कि यह 20 हज़ार के लगभग हाथी, घोड़े तथा ऊँट, खच्चर आदि लूट के साथ ले जा रहा था। इस गड़बड़ी के समय जनवरी से मई 1739 तक 4-5 मास सिक्खों ने पूरा पूरा लाभ उठाया। रिआड़की के इलाके में उन्होंने गांव डलेवाल में एक गढ़ी बनाई। लूट के माल के साथ लदा हुआ नादर शाह शाही सड़क की अपेक्षा गर्मी के कारण पहाड़ के साथ साथ कंढी के इलाके सयालकोट की ओर निकला। सिंघ उस समय पहाड़ी इलाके में थे, उन्होंने नवाब कपूर सिंघ, सरदार बघेल सिंघ, सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया की देख-रेख में अपने आप को पक्का संगठित किया हुआ था, परन्तु हुकूमत के मारे देशान्तर हुए बेचारे सिंघ आर्थिक मुश्किलों का शिकार हो रहे थे। रसद पानी के लिए भी पूरी सामग्री कहीं से प्राप्त नहीं होती थी। जब उन्होंने लुटेरे नादर की धाड़ (इकट्ठी सेना) जाती देखी तो उन्होंने कई ओर से छापे मार मार कर उसके माल को ख़ूब लूटा तथा कैदी लड़के-लड़कियों को भी छुड़वाया। सिंघ गुरीला छापे मारते थे और पहाड़ों में जा छुपते थे। नादर शाह को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मुझे यहां लूटने वाला कौन हो सकता है ? लाहौर पहुँच कर

नादर ने, जो ज़करिया ख़ां से पहला प्रश्न पूछा, वह यह था कि यह लोग कौन हैं, जिन्होंने मेरी बहादुर सेना से भी माल लूटने के लिए कोई संकोच नही किया ? ये कहां रहते हैं ताकि मैं इनका नामो-निशान मिटा जाऊँ। ज़करिया ख़ान ने कहा—यह हिन्दु मुसलमानों से भी निराले लोग हैं, घने जंगल तथा पहाड़ इनके देश हैं और घोड़ों की काठियां इनके घर हैं। हम इनको मार मार कर थक चुके हैं परन्तु ये बढ़ते ही जाते हैं। हुकूमत ने ज़बरदस्तियां कर इनको कई वर्षों से देश से निकाल दिया है, परन्तु ये फिर भी बाज़ नहीं आते।

नादर यह सुनकर आश्चर्यजनक हुआ और स्वयं कहने लगा—वह समय दूर नहीं जब यह सिक्ख निकलेंगे और अपने इस जोश से देश के मालिक बनेंगे। ज्ञानी ज्ञान सिंघ जी ने *पंथ प्रकाश* में इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार अंकित किया है :

> इह वीचार फिर खान बखानी, 'कितै ना उनकी मुलक निशानी'।
> गाम किसी मैं सो न बसै हैं, रात कितै दिन किते बितै हैं।
> घर दर टब्बर राखत ना वै, पले पलाए उन में आवैं।
> चारों वरणों मैं से कोई, आवत होत खालसा सोई।
> जब कोई मज़ब इनो का गहि है, वाहिगुरु की फ़ते गजै हैं।
> खुशि है हलुआ बटत बधाई, गावत गीत सभा बल लाई।
> पिछला भेस देत उतरै है, काछ क्रिपान केस रखवै हैं।
> इक अकाल की करत बंदगी, शसत्र विदिया बहु पसिंदगी।
> नाम सिंघ बन मज़ब खालसा, छोड देत सभ जगत जालसा।
> सिर पर चक्र करदां तोड़े, औरैं शसत्र रखत न थोड़े।
> पेटी टोप संजो चिराने, मण मण लोहा रखत महाने।
> फिर वी दौड़ें देत न डाहैं, बन मैं म्रिगन सम धस जाहैं।
> धावैं मारत कोस पचासक, लेल लड़ाई के बड़े आशक।
> सोवत फिरते तुरते खै हैं, पीठ लगाइ न धर पर पै हैं।
> खट रस का वह साद न जानै, कपड़ा और न तन पर ठानै।
> कमर जांघीआ इक सिर पटका, भूरे गिलती बाणा जटका।
> घास फूस फल मूल आहार, खैं हैं कच्चे ही म्रिग मार।
> घोड़न को भी मास खुलै हैं, सौ सौ कोस भगे ही जै हैं।
> पिआरी औरैं वसतु न काई, इक शसत्र इक चहत लड़ाई।
> गरमी सरदी एक समानै, जब कछु तिआर करत हित खानै।
> देत अवाज़ा भूखा कोई, 'आओ देग तिआर गुर होई'।

ओस समें बैरी किउं न आवै, परम मीत सम तांहि छकावैं।
बचै तो पीछे खुद खा लै हैं, नहीं तो लंगर 'मसत' बतैहैं।
मारत इन को हम थक गए, इह नित बाढ़त जात हैं नयें।
मुरशद इन का वली भइओ है, इन को आबे-हयात दयो है।
अैसी गयो कलाम बतै है, जिस से सुधा बना इह लै हैं।
सो पिलाइ लोगन के ताईं, सियारन ते सिंघ लेत बनाई।
गज़ब असर तिस का हम देखा, बुज़दिल होवत शेर बिसेखा।
काण न काहूं की यह राखत, शहिनशाह खुद ही को लाखत।
और सभन जीवन चोरासी, मानत आप ताईं अबिनाशी।
तत खालसा गुर का ज़ाहर, कहत चुरासी तै है बाहर।
हिन्दु अन्धे तुरकू काणे, सिंघ गुरु के सब तै सिआणे।
मुसलमान हिन्दून ते निआरी, रीत इनों में है भल सारी।...
दौलत दुनीआ इह ना चै हैं, मज़ब धरम पर जानां दै हैं।
जो कुछ वस्तु किसी को थया है, पंथ तईं ख़ुश होत छकाहै।
काम अरंभत जब कोऊ एहैं, 'धंन वाहिगुरु' इह कहि लैहैं।
बात बात मैं इहो अलैहैं, 'जो गुरु करहै सोई थैहै'।
दुख सुख वार नफ़ो नुकसानै भाणा गुर का ख़ुश हो मानै।
सवा लाख कहि एक जने को, पांच लाख कहि पांच तने को।
मानत सुख; दुख आइ बने को, पीलू दाख, बदाम चने को।
जंडफली को कहत जलेबी, बेरन को खुरमे बड सेबी।
लड्डू टींड बिदाना बाटा, नाम पियाज का रुपा ठाटा।
पानी को परसा परपाका, 'लंगर मसत' बतावैं फाका।
गंजे को कलगा सिंघ भाखैं, काणे को लखनेत्रा आखैं।
सूरा सिंघ कहि अंधे ताई, लुंजे को लखबांहा भाई।
लूल्हे बुद्ध अवतार कहावै, चड़िआ चुबारे बधरा गावैं।
लंगड़े को कहि सिंघ सुचाला, नकटा सुरग दुआरी वाला।
कहै सुनहिरा कूंडे ताईं, भंग ताईं सुखा सरदाई।
खुरपा बाज़, कुही कहि दाती, कस्सी पतालपुरी बखिआती।
सफाजंग टकूए को टेरैं फते कुमैत छटी को हेरैं।
समुंद सिंघ दूध को कै हैं, छीवां तेल पंजवां घी लै हैं।
कहै सिरखंडी शक्कर ताईं, लूण सरबरस छकत सदा ई।
छलणी सिंघ सुजाखा भाखैं, अफलातून रजाई लाखैं।
जोड़ मेलणी सूई शिकरी, रुपए को कहैं दमड़ा ठिकरी।
सबज़ पला साग को कै है, मास महां-प्रसाद बतै हैं।

राम-जंगे बंदूकन भाखैं, श्री साहिब तलवारन आखैं।
पुरख सिंघ, सिंघणी कहि नारै, भुझंगी बालक ताईं उचारैं।
और नेक गुन सभ इन मैं है, औगुन इक हम को दुख दै हैं।
पाखाने को काबा भाखैं, पड़ा मुगल मैले को आखैं।
दुनीआदार न इह फकीर, बेमुहताज सब साबर धीर।
पर तिया समझत मात समानै, चौरी यारी निंद ना ठानै...

दोहरा

सुन हवाल सिंघान का, नादर शाह विसमाइ।
अंगुरी दांतन में लई, ग़ैरत हैरत खाइ।
नादर कादर सोच पुन, कहयो नवाबहि अैस।
'जेकर हैं यहि अैस ही, भाखत हो तुम जैस।
तौ इह मारे न मरैं, जीत सकै इन कौन।
नाहक सहत कलेश तुम, दूख देत इन जौन।
मारत हो तुम आप ही, अपने पैर कुठार।
कुछ दिन को सिंघ होइ हैं, भूपति मुलक मझार।'

ज़करिया ख़ां तो सिंघों पर पहले ही बहुत सख़्ती करता था, परन्तु नादर की प्रेरणा पर उसने फिर सिक्खों का सफ़ाया करना शुरू कर दिया। सिंघ प्रत्येक स्थान से ढूंढकर लाहौर नखास चौक में लाए जाते और तरह तरह के तसीहे देकर क़त्ल किये जाते। इस समय अमृतसर मस्से रंघड़ के कब्ज़े में था तथा वह अकाल तख़्त पर बैठकर हुक्का पीता और कंजरियों का नाच कराता था। सिक्ख समय के मारे पहाड़ों तथा रेगिस्तानों में दिनकटी करते फिरते थे। जयपुर मताब सिंघ मीरांकोटिये को इस घोर बेअदबी का पता लगा तो वह भाई सुखा सिंघ माड़ी कंबोकी को साथ लेकर मुसलमानों का भेष धारन करके अमृतसर में आये। हाथ में ठीकरियों की भरी थैलियाँ ले लीं। चोबदारों ने समझा कि किसी गांव के चौधरी मामला या नज़राना लेकर आए हैं। सिंघों ने जाते ही थैलियाँ आगे रखीं तथा मस्से का सिर झटक दिया। क्षणों में घोड़ों पर सवार होकर पता नहीं किस ओर चले गये। ऐसी बात हुई कि किसी का पीछा करने का भी साहस न पड़ा। यह बात अगस्त 1740 ई० की है। सरकार की ओर से हरिभगत जंडियाले के ज़िम्में लाया गया कि वह क़ातिल को पकड़वाए। फ़ौज मीरां कोट गांव पर चढ़ाई करने के लिए आई तथा वहाँ मताब सिंघ के पुत्र राय सिंघ को, जो अभी छोटी आयु का ही था, ज़ख़्मी करके वापस लौटी।

इसी राय सिंघ का पुत्र भाई रतन सिंघ भंगू था, जिसने *प्राचीन पंथ प्रकाश* नाम की पुस्तक लिखी।

इसी तरह दुआबे में करतारपुर के गुरुद्वारा थंम साहिब को कुतबुदीन ने जला दिया तथा वहां पर गऊओं को काटा गया। भाई बाघ सिंघ हल्लोवालिया ने इस दुष्ट को जीवत ही ब्यास के तट पर जलाकर अपने हृदय की अग्नि को शांत किया। इस तरह सिंघ गुरुधामों की रक्षा हेतु हज़ारों ख़तरों में से गुज़रते हुए भी किसी न किसी तरह अपना फ़र्ज़ निभा जाते थे।

नादर के हमले के कारण हुकूमत कमज़ोर-सी पड़ गई थी। 1740 में ही एक बार सिक्खों और जाटों ने मिलकर सरहिन्द पर अधिकार किया। दिल्ली से अज़ीमुल्ला ख़ां फ़ौजी तैयारी कर के आया, तो बाग़ियों को शहर से निकाला गया।

अन्त में बहुत छानबीन के पश्चात् भाई मताब सिंघ मीरांकोटिए को गिरफ़्तार किया गया और लाहौर में चरखड़ी पर चढ़ाकर शहीद किया गया। इसी तरह गांवों में शान्ति की ज़िन्दगी व्यतीत करने वाले सहसर के वासी भाई दयाल सिंघ, भाई हीरा सिंघ रंगड़ नंगल, भाई रूप सिंघ खुड्डियां वाले, भाई तेग सिंघ मताबकोट, भाई मदन सिंघ, भाई तकड़ा सिंघ, भाई बहादुर सिंघ, भाई पहाड़ा सिंघ और भाई बुलाका सिंघ आदि को भी नखास चौक में लाकर क़त्ल कर दिया गया।

भाई तारू सिंघ

भाई तारू सिंघ पूल्हे (लाहौर) वाला, 25 वर्षों का नौजवान भी ऐसे सिंघों में से ही थे, जो अपने बनवासी भाईयों को अपनी कृत-कमाई में से गुप्त रूप में खाद्य पदार्थ भेजते थे :

ऐसे ऐसे सिंघ जग माहीं, सिंघ छकाइ पीऐं निज खाहीं।
आप सहैं वै नंग अर भूख, देख सकिहं नहिं सिंघन दूख।
बाण वट्ट कई करैं मजूरी, भेजै सिंघों पास ज़रूरी।

(प्राचीन पंथ प्रकाश)

आख़िर हरिभगत निरंजनिए की शिकायत पर आप को पकड़कर लाहौर लाया गया तथा खुरपी के साथ सिर की खोपरी उतारकर शहीद कर दिया गया। ख़ाफ़ी ख़ां लिखता है कि भाई तारू सिंघ की चमड़ी

उतारकर उसको खाई में फैंक दिया ताकि गीदड़ व कुत्ते खा जायें, परन्तु सिंघ उस हालत (दशा) में भी वाणी पढ़ता रहा। वाहिगुरु की रज़ा ऐसी हुई कि उधर ज़करिया ख़ां का पेशाब बंद हो गया। उसको यह अहसास हुआ कि मैंने 'बेगुनाह सिंघों को अत्याधिक कष्ट दिये हैं, यह सारा उसी का ही नतीजा है।' भाई सुबेग सिंघ कोतवाल को ख़ालसे की भेंट के लिए पांच हज़ार रुपए देकर काहनूंवान के छंब की ओर भेजा गया। सिंघों ने कहा—भाई तारू सिंघ की चरन दासी (जूता) तुरक के सिर को लगाया जाये, तब पैशाब आ सकता है। इस तरह सिंघों का दुश्मन ज़करियां ख़ां 1 जुलाई, 1745 को दुःख भोगता मर गया। इसी दिन भाई तारू सिंघ की आत्मा अपना ज़ख़्मी शरीर त्याग कर अलोप हो गई।

हुकूमत समझती थी कि सिक्ख अब समाप्त कर दिये गये हैं, परन्तु फिर भी सिंघ अपनी तेग़ के जौहर दिखा जाते थे। यद्यपि अमृतसर का 'दर्शन स्नान' बंद था तद्यपि कई बहादुर सिक्ख, सिपाहियों की आँखों में धूल झोंककर स्नान कर ही जाते। भाई सुखा सिंघ माड़ी कंबोके एक बार स्नान करने आया। उस समय सिक्ख आम तौर पर जान-बूझ कर सिर से पगड़ी उतार कर स्नान करते ताकि पता चल जाये कि यह सिंघ है। उस समय से ही आज तक पगड़ी उतार कर स्नान करने की रीति है। भाई सुखा सिंघ ने दिन के समय ऐसा ही कार्य किया :

सुखा सिंघ तब यौं कहयो, 'रात नहाऊँ तब चोर।
नावैगें मैं दिन बिखे, श्री सतिगुरु के जोर।' *(प्राचीन पंथ प्रकाश)*

भाई बोता सिंघ

कई सिक्ख गुरु-दरबार आकर शहीदी प्राप्त कर जाते परन्तु मृत्यु उनके लिए एक क्रीड़ा-सी बन गई थी तथा दुःख एवं भूख तो मामूली बातें थीं। भाई बोता सिंघ तथा भाई गरजा सिंघ जब अमृतसर से स्नान कर बाहर की ओर वनों में छुपते हुए जा रहे थे, नज़दीक रास्ते पर चल रहे कुछ पथिकों ने बात की—देखो ! दो सिंघ यहां घूम रहे हैं। दूसरे ने कहा—ये सिंघ नहीं हो सकते, यदि सिंघ होते तो छिपते क्यों ? इस बात ने भाई बोता सिंघ की वीरता को ललकारा। दोनो सिंघों ने नूरदी सरां के नज़दीक सड़क पर ठहर कर महसूल प्राप्त करना आरम्भ कर दिया तथा उधर सूबा लाहौर को इस भाव का पत्र लिखा :

चिट्ठी सुणहो खानू कोता, आना गड्डा पैसा खोता।
इह जगात लेत सिंघ बोता, हथ महिं राखत सोटा मोटा।
तेरा आकबत करहै खोटा।
मेरा कहीं सुनेहा जाइ, भाबी खानो नूं समझाइ।
तेरा यार सिंघ जु बोता, तैनू रहा उडीक खलोता।
आइ सराइं नूर दी पास, तू जोता लगवा लै ख़ास।

(पंथ प्रकाश —ज्ञानी ज्ञान सिंघ)

जलालुदीन की देख-रेख में सौ सवार लड़ाई करने के लिए आए। दोनों सिंघों ने पीठें जोड़ लीं और केवल मोटी लाठियों से युद्ध में लड़ाई करते करते शहीद हो गए। उन्होंने दुनिया को बता दिया कि सिंघ अभी तक समाप्त नहीं हुए, वे जीवित हैं। आज महसूल प्राप्त कर रहें हैं, कल वे स्वयं राज करेंगे तथा तख़्त के वारिस होंगे। सिंघों के जीते-जागते स्वाभिमान की, पता नहीं ऐसी कितनी वीर घटनाएँ हुईं होंगी, बहुत-सी घटनाएं समय की ओट में छुपी पड़ी हैं।

ख़ान बहादुर ज़करिया ख़ां की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय मीर मोमन ख़ां कसूरिया लाहौर की हुकूमत का कार्य करता रहा। वज़ीर कमरुदीन की सिफ़ारिश पर बादशाह मुहंमद शाह ने ज़करिया ख़ां के बड़े पुत्र यहीया ख़ां को 3 जनवरी, 1746 को लाहौर का नाइब सूबेदार नियुक्त कर दिया। पहले 4-5 मास यहीया ख़ां तथा शाह नवाज़ ख़ां दोनों भाईयों के बीच झगड़ा होता रहा। इससे लाभ उठाते हुए 14 अक्तूबर, 1745 दीवाली को सिंघों ने अमृतसर में इकत्रित होकर संगठन को और मज़बूत किया। 25 जत्थे बनाये गये, जिन के संगठनकर्ता स. शाम सिंघ नारोका, गुरबख़्श सिंघ, करोड़ा सिंघ पैजंगढ़, करम सिंघ पैजगढ़, गुरदयाल सिंघ डल्लेवाल, नौध सिंघ शुकरचक्क, चन्दा सिंघ, काला सिंघ, खयाला सिंघ, धर्म सिंघ, बाघ सिंघ हल्लोवालिया, जस्सा सिंघ आहलूवालिया, हरी सिंघ भंगी, छज्जा सिंघ पंजवड़, बाबा दीप सिंघ, भूमा सिंघ, नवाब कपूर सिंघ फैज़ुलापुर, जै सिंघ काहना, सद्दा सिंघ, हीरा सिंघ नकई, अघड़ सिंघ, सुखा सिंघ माड़ी कंबो की, बदन सिंघ, बीर सिंघ मज़बी, करम सिंघ नारली—नियुक्त हुए। सौ सौ का जत्था संगठित किया गया तथा प्रत्येक सिंघ के लिए तलवार तथा बंदूक पास रखनी अनिवार्य कर दी गई। नये भरती होने वालों के लिए भी युद्ध विद्या तथा घुड़सवारी में

माहिर होना अनिवार्य था :

यही लाइकी खालसे माहिं, लड़न मरन महिं होइ अगांह।

(प्राचीन पंथ प्रकाश)

भाई सुबेग सिंघ

ज़करिया ख़ां ने मृत्यु से पूर्व भाई सुबेग सिंघ जंबर को लाहौर का कोतवाल नियुक्त किया हुआ था ताकि इसके द्वारा ही सिक्खों को किसी तरह शांत किया जा सके। भाई साहिब ने अपने शासन काल में बहुत सुधार किये। यातनाओं सहित कष्ट—चरखड़ी पर चढ़ाना, बंद बंद काटने, पत्थर मार मार कर प्राण निकालने, धरती में दबाकर तीर मारने अथवा कुत्तों से चिरवाना, गर्म तेल में फेंकना, मुदगरों (मुंगलियों) से मार मार कर मारना आदि समाप्त कर दिये गये। केवल तोप, तलवार तथा फांसी की सज़ा रहने दी गई। क्योंकि वे जानते थे कि—ये दण्ड सिंघों के लिए अधिक हैं। काज़ियों ने यहीया ख़ां के कान भरे तथा दोनों पिता और पुत्र सुबेग सिंघ तथा शहबाज़ सिंघ को गिरफ़्तार कर लिया गया। शहर के लोगों ने बहुत निवेदन किया, परन्तु उनकी कोई बात न मानी गई। कुछ नज़दीकी व्यक्तियों ने सुबेग सिंघ को कहा कि आप अपने पुत्र को जीवित रख कर वंश का निशान तो बचा लें, भाई साहिब का उत्तर था :

सिखन काज सु गुरु हमारे, सीस दीओ, निज सण परवारे।
हम कारन गुर कुलहि गवाई, हम कुल राखैं कौण वडाई ?

दोनों पिता और पुत्र को चरखड़ी पर चढ़ाकर शहीद कर दिया गया। यह बात फ़रवरी 1746 की है। जंगलों में जब सिंघों को इस बात की सूचना मिली तब उन्होंने कई विपक्षी चौधरियों के घर लूटे तथा एक जत्था सायकाल को अर्थात जब कुछ अंधेरा हुआ तब लाहौर में मोची दरवाज़े की ओर मार-धाड़ करता हुया नज़दीक घने जंगल की तरफ़ निकल गया। यहीया ख़ां को इस बात पर बड़ा क्रोध आया कि हम तो इनके पिता पितामह से नाश करते आ रहे हैं, यह भूखे, वस्त्रों से रहित मेरे शहर में आकर लूट मचा गए हैं ? ज्ञानी ज्ञान सिंघ जी ने सिंघों की इस दर्द भरी ग़रीबी की अवस्था का चित्र इस प्रकार खींचा है :

फिड्डा जैसा टटूआ औ जुलड़ू का काठी पाइ,
रस्सड़ू लगाम ते रस्सड़ू रकाब जू।
पाटिया सा कछछड़ू ते नीलड़ू सा चादरू है,
डूचो जैसा पग्गड़ू बणाया सिरताज जू।
टुटिआ जैसा तेगड़ू ते लीरड़ू मिआन जां के,
गठ सठ गातरा बणाइआ सब साज जू।
नाम तो अकालड़ू सो फिरैं बुरे हालड़ू सो,
लूट कूट खावणो को डाढे उसताज जू। *(पंथ प्रकाश)*

सिंघ समस्त दुःख सहन करते हुए अपनी धार्मिक और राजसी आज़ादी के लिए संग्राम करते आ रहे थे। कोई जंगलों में छिपा हुआ था और कोई पहाड़ों में, परन्तु उनके लिए कहीं भी आराम न था :

घर ते कढे सु बण लूकैं, बन तज नीर लुकाइं।
जल महि लुकै तों नहिं बचै, कहो सिंघ कत जाहिं।
(प्राचीन पंथ प्रकाश — भंगू)

अपने पिता की तरह हुकूमत संभालते ही यहीया ख़ां ने भी सिंघों के शिकार हेतु गश्ती सैनिक समूह भेज दिये, लखपत राय इसका दीवान था तथा लखपत का भाई जसपत राय ऐमनाबाद का फ़ौजदार था। यह बात फ़रवरी 1746 की है कि जसपत राय सिंघों के दल को झल्लां (घने जंगलों) से निकालकर पहाड़ की ओर धकेलता जा रहा था। सिंघों ने इच्छा की कि ऐमनाबाद गुरुद्वारा रोड़ी साहिब के दर्शन करते जायें। फ़ौजदार ने चौधरियों को बुलाकर मुलखईये को पीछे लगा दिया। शेरा चट्ठा इस भीड़ की देख-रेख कर रहा था। सिंघों का जत्था बदो की गुसाईयां की झिड़ी में लंगर-पानी खाने के लिए ठहरा। इतने में ही जसपत समेत मुलखईये के उकसाने पर आ पड़ा। मांगी हुई सेना भाग निकली। भाई निबाहू सिंघ रंघरेटा पूँछ पकड़कर जसपत राय के हाथी पर जा चढ़ा और जसपत का सिर काटकर ले आया, दुश्मनों में भगदड़ मच गई। सिंघों ने ऐमनाबाद के शाही भण्डारे में से खाद्य ख़ुराक तथा काफ़ी शस्त्र आदि लूट लिये।

भाई की मृत्यु सुनकर दीवान लखपत राय आग-बबूला हो गया। उसने यहीया ख़ां के पाँव में पगड़ी रखकर कहा—जब तक मैं सिक्खों का नामों-निशान न मिटा दूं तब तक मैं पगड़ी नहीं बाँधूँगा। इस पंथ

का आरंभ एक खत्री ने किया था और अब एक खत्री ही इसका बीज नाश करेगा। यहीया ख़ां ने कहा—सेना का ख़र्च मेरा और कोशिश तुम्हारी। फिर सिंघों के क़त्लेआम का ऐलान हो गया। *इबरतनामे* के लेखक के शब्दों में, 'यह कहा गया कि जो गुरु गोबिन्द सिंघ जी का नाम लेगा, उसका पेट फाड़ दिया जायेगा। इलाके में से सिक्खों की धर्मशालाएं गिरा दी गईं और धर्म ग्रन्थ जला दिए गए। देश में यह ऐलान कर दिया गया कि कोई वाणी का पाठ न करे तथा न ही गुरु का नाम ले। 'गुड़' को भी रोड़ी या भेली कहा जाये। क्योंकि गुड़ शब्द 'गुरु' से मिलता जुलता है। ग़ुस्से से भरे हुए दीवान लख्खू ने लाहौर शहर के समस्त सिक्खों को पकड़ लिया। उनको हरीजनों के हवाले कर यह कहा कि यह केसों वाली समस्त खोपरियां उतार दो।

शहर में हाहाकार मच गई। दीवान कौड़ा मल्ल, दीवान लछछी राम, दीवान दिला राम, दीवान सूरत सिंघ, पंडित सुरता राम, चौधरी जवाहर मल्ल, स. गुजर सिंघ, स. हरी सिंघ तथा भाई देस राज समस्त शहर के पतवंते लखपत राय के पास आए तथा अपने साथ लखपत के गुरु जगत भक्त को भी लाये। परन्तु उसने किसी एक की भी न मानी। 10 मार्च, 1746 को शहर के सिक्खों को कत्ल कर दिया गया।[1]

छोटा घल्लूघारा

इस प्रकार शहर के सिक्खों को समाप्त करके लख्खू ने जंगल झल्ल में रहने वाले सिक्खों को भी समाप्त करने की तैयारी की। इस समय हुकूमत के बे-वतन पंद्रह हज़ार सिक्ख रावी दरिया के सघन वन में तथा काहनूवान की झील के नज़दीक इकत्रित हुए थे। लखपत ने वनों को आग लगवा दी। सिक्ख युद्ध करते हुए बसोली की ओर निकलने लगे, परन्तु उधर पहाड़ी लोगों ने गोलियां चलानी आरंभ कर दीं। यह जंगल-युद्ध अप्रैल से जून 1746 तक जारी रहा। सिंघों का जंगली जानवरों की तरह शिकार किया जाता रहा। खाद्य-ख़ुराक ख़त्म होने के कारण भूखे सिक्ख उस समय युद्ध करने से असमर्थ हो रहे थे:

1. डॉ. हरी राम गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 27.

अध्धी मौत मुसाफरी, अध्धी मौत सु भुख।
ऊहां आइ दोऊ मिली, यहि भयो खालसे दुख।

(प्राचीन पंथ प्रकाश — भंगू)

सिंघ पीछे की ओर गए और तेज़ी से युद्ध करते हुए भूखे शेरों की तरह दुश्मन पर टूट पड़े। लखपत की सेना को चीरकर सिंघ रावी के तट पर पहुँचे। आगे दरिया में बाढ़ आई हुई थी। स. गुरदयाल सिंघ डल्लेवाल ने समेत भाई के दरिया की गहराई का पता लगाने हेतु छलांगें लगा दीं, वे घोड़ों सहत बह गये। सिंघों ने सोचा कि अब किस ओर निकला जाये, फिर सोच-विचार कर पहाड़ों की ओर बड़े ज़ोर से आक्रमण किया, एक मोरचा जीत भी लिया परन्तु कई दिनों के भूखे प्यासे सिंघ क्या करते। पैदल सिंघों ने पहाड़ की ओर चढ़ाई की तथा घुड़सवार लख्खू की फ़ौजों से टक्कर लेते रहे। लखपत राय भी तोपों तथा जंबूरों से भूनता आगे बढ़ा। सिंघ फिर वन में जा पहुँचे। अंत में जत्थेदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया तथा भाई सुखा सिंघ माड़ी कंबोकी ने सिंघों को ज़बरदस्त आक्रमण के लिए उत्साहित किया। भारी संग्राम हुआ। एक गोली लगने से भाई सुखा सिंघ की टांग टूट गई परन्तु आप ने पगड़ी फाड़ कर टांग को घोड़े की काठी के आगे कील के साथ बांध दिया तथा स्वयं ऐसे ही युद्ध करते रहे। जब रात्रि को दुश्मन श्रम से शिथिल होकर आराम कर रहे थे, सिंघों ने समय देखकर आक्रमण कर दिया तथा उनके घोड़े और शस्त्र लूटकर ले आये।

अब सिंघ वनों में से होते हुए लाहौर की ओर रवाना हुए। कुशा के तुल्ले बनाकर कई रावी दरिया पार हुए। आगे दो मील लम्बी ऊँची रेतली धरती आ गई। ऊपर से ज्येष्ठ, आषाढ़ की धूप, नंगे पांव, पेट से भूखे सिंघ सभी कुछ झेलते हुए मालवे की ओर निकल पड़े। लगभग हज़ार सिंघ पहाड़ की ओर चले गये तथा अढ़ाई-तीन हज़ार बचकर मालवे पहुँचे तथा शेष 7-8 हज़ार सिंघ इस युद्ध में शहीद हो गए। इससे पहले कभी भी सिंघों का इतना इकट्ठा नुकसान नहीं हुआ था। तीन हज़ार कैदी बनाकर लाहौर लाये गये तथा उनको चौक नख़ास में क़त्ल करके धरती में गड्ढा खोद कर दबा दिया गया। इसी स्थान का नाम 'शहीद गंज' पड़ा। यह साका 1 मई, 1746 को हुआ, जिसको सिक्ख इतिहास में छोटा घल्लूघारा कहा जाता है। क्योंकि 5 फ़रवरी, 1762 में अहमद

शाह दुरानी के साथ इससे भी अधिक सिंघों को युद्ध करके शहीद होना पड़ा था। ज़ख़्मी सिंघ कई मास मालवे की ओर रहे तथा यहां पर इनकी सेवा-संभाल होती रही।

21 नवम्बर, 1746 से 21 मार्च, 1747 तक पूर्ण चार मास ज़करिया ख़ां के दोनों पुत्र यहीया ख़ां तथा शाह निवाज़ ख़ां के बीच गृह युद्ध चलता रहा। वह यहीया ख़ां से अपना हिस्सा मांगता था। अन्त में इस ने शाह निवाज़ ख़ां को छह लाख रुपये देकर पीछा छुड़वा लिया। कुछ समय के पश्चात् शाह निवाज़ ने फिर लाहौर पर आक्रमण किया तथा यहीया ख़ां को कैदी बनाकर 21 मार्च, 1747 को लाहौर का स्वयं शासक बन बैठा। लखपत राय को हटाकर इसने कौड़ा मल्ल को अपना दीवान बनाया। दीवान कौड़ा मल्ल एक तरह का सहजधारी सिक्ख ही था, उसके समय सिक्ख भी शान्ति से रहते रहे। 30 मार्च, 1747 को उन्होंने अमृतसर रामसर के नज़दीक 'रामरौणी' नाम की एक छोटी-सी गढ़ी तैयार करवाई जिसमें 500 के लगभग व्यक्ति रह सकते थे। लगभग बारह वर्ष के पश्चात् सिक्खों को इस तरह शान्तिमय से वैशाखी दिवस मनाने का अवसर मिला, उन्होंने इस समय हरिमंदर तथा सरोवर की मुरंमत भी करवाई।

इसी वर्ष माता सुन्दरी जी का दिल्ली में स्वर्गवास हुआ, जिन्होंने, गुरु परिवार में सर्वाधिक भयानक दृष्य देखे तथा सुने थे।

9 जून, 1747 को नादर शाह का क़त्ल हुआ तथा उसके स्थान पर अहमद शाह अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान का मालिक बना, इस समय शाह निवाज़ ने यहीया ख़ां को कैद कर रखा था। वज़ीर कमरुदीन जो कि यहीया ख़ां का ससुर था, इसने बहुत कहा कि उसको रिहा कर दो, परन्तु यह न माना। इसलिए शाह निवाज़ की हाकमी (हुकूमत) भी दिल्ली सरकार ने स्वीकार न की। अब शाह निवाज़ को दिल्ली से तो कोई आशा न रही, उसने अब्दाली को सहायता के लिए काबुल संदेश भेजा। अब्दाली पहले नादर शाह के साथ आया था, हिन्द की दौलत तथा कमज़ोर हालत देख गया था, इसके मन में नादर शाह की तरह हिन्द को लूटने का लालच बहुत तीव्र हो रहा था।

जिस समय अहमद शाह अब्दाली जनवरी 1748 में लाहौर आया तो शाह निवाज़ बदल गया तथा दुरानी फ़ौजों के साथ टक्कर लेने के लिए तैयार

हो गया। युद्ध तो क्या करना था, वह डर का मारा दिल्ली की ओर भाग गया। अब्दाली उसका पीछा करता हुआ सरहिन्द तक आया। यहां मानूपुर की जूह में दिल्ली सरकार की ओर से वज़ीर कमरुदीन के पुत्र मीर मुइनुल मुलक की देख-रेख में भेजी गई फ़ौज के साथ अब्दाली का अच्छा युद्ध हुआ। वज़ीर कमरुदीन मारा गया परन्तु दुरानी को पराजित होना पड़ा। अब्दाली हार कर मार्च 1748 के अन्तिम सप्ताह लाहौर होता हुआ अफ़ग़ानिस्तान की ओर वापस चला गया। सिंघों ने झना दरिया तक उसे लूटा ताकि यह विदेशी आक्रमणकार दुबारा हमारे देश को तबाह न करे।[1] अब मीर मुइनुल मुलक प्रसिद्ध नाम मीर मनूं, लाहौर का शासक बना।

अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों से सिंघों का संघर्ष एक नये दौर में प्रवेश होता है। इस समय तक वे आंतरिक ज़ालिम सरकार के विरुद्ध लड़ते रहे थे, परन्तु अब उनको आंतरिक दुश्मनों तथा बाहरी आक्रमणकारी, दोनों के साथ बराबर युद्ध करना पड़ा।

1708 से लेकर 1748 के आरंभ तक हमने देखा है कि किस तरह चालीस वर्ष सिंघों ने शान्तिमय और अशान्तिमय व्यक्तिगत तथा संगठित लड़ाईयां लड़कर अपने उच्चे आदर्शों को स्थिर रखा। पहले उन्होंने सौ वर्ष अकेले ही शहीदीयां प्राप्त कीं, फिर छोटा घल्लूघारा के रूप में समुची कौम ने मिलकर अपना बलिदान दिया, परन्तु उन्होंने कभी भी मन नहीं हारा। दिल्ली तथा लाहौर सरकार तथा सारा मुल्क एक तरफ़ था तथा सिंघों की आत्मिक विकास कला एक तरफ़। अंत में कौन जीता। यह दुनिया जानती है। इस समय ही सिंघों की अरदास का यह भाग्य बना, जिसमें धर्म-युद्ध के संग्रामियों को अकालपुरख से सदैव रक्षा मांगी जाती थी :

प्रिथमै संबूह खालसे जी की अरदास है,
संबूह खालसे को वाहिगुरु, वाहिगुरु, वाहिगुरु नाम चित आवे,
चित आवन का सदका सरब सुख होवे।
जहां जहां खालसा जी साहिब तहां तहां रछिआ रिआइत
देग़ तेग़ फ़तह, बिरद की पैज, पंथ की जीत,
श्री साहिब जी सहाइ, खालसे जी के बोल बाले,
बोलणा जी श्री वाहिगुरु !

---

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 46.

सिखां दा मन नीवां, मत उच्ची, मत का राखा,
आप अकाल पुरख वाहिगुरु,
सिखां नूं सिखी दान, केस दान, रहित दान, बिबेक दान, विसाह दान, भरोसा दान, दानां सिर दान नाम दान, श्री अमृतसर जी के दरसन इस्नान,
चौकीआं झंडे बुंगे जुगो जुग अटल
धर्म का जैकार बोलो जी वाहिगुरु।

•

चढ़दी कला युग

(1748-1765 ई॰)

देह सिवा बर मोहि इहै,
सुभ करमन ते कबहूं न टरों ।।
न डरों अरि सो जब जाइ लरों,
निसचै कर अपनी जीत करों ।।
अरु सिख हों आपने ही मन कौ,
इह लालच हउ गुन तउ उचरों ।।
जब आव की अउध निदान बनै,
अति ही रन मै तब जूझ मरों ।।

(गुरु गोबिन्द सिंघ जी)

तब इम भनयो ग्रीब निवाज़–
शसत्रन के अधीन हहि राज ।

(गुर बिलास, पातशाही १०)

कोऊ किसी को राज न दै है,
जो लैहै निज बल सों लै है ।
मुग़लां ज़हिर पिआले पीते,
भूरिआं वाले राजे कीते ।

(बुल्हे शाह)

चढ़दी कला युग

(1748-1765 ई०)

जो स्वतंत्रता पसंद कौम किसी के अधीन होने के स्थान पर मृत्यु को प्राथमिकता देती है, वे कभी भी ग़ुलाम नहीं बनाई जा सकती, अपितु वह तो अपनी चढ़दी कला के सहारे एक दिन राज्य स्थापित कर के ही रहती है। संसार इस बात को तो अच्छी तरह जानता ही है कि क्रान्ति कभी पीछे की ओर नहीं गई। पंजाब में जिस क्रान्ति की नींव गुरुजनों ने रखी थी उसकी जड़ें गहरी तथा अटूट थी, वह दिन प्रतिदिन आगे ही बढ़ती गई और अंत में उसने आठ सौ वर्ष से निरंतर पड़ीं कड़ी ज़ंजीरों को तोड़कर देश को सुख शान्ति प्रदान की। जैसा कि डॉ. इकबाल ने कहा है कि 18वीं सदी में सिंघ बहादुरों ने इस्लाम वालों से कुरान भी छीन ली तथा तलवार भी। कुरान इसलिए कि ज़बरदस्ती धर्मप्रचार की बाढ़ को बाँध लगा दिया तथा तलवार इसलिए कि दिल्ली तथा काबुल की दोनों शक्तियों को नीचे उतार कर वे स्वयं पंजाब के वारिस बन गये।

सिंघों की प्रतिष्ठा तो इस बात में देखने वाली है कि उन्होंने कैसे भयानक संकटकाल में से गुज़र कर क्रान्ति को शिखर तक पहुँचाया। ज़ालिम हुकूमत ने सिंघों को घर से बेघर करके एक तरह का बनवास दे दिया तथा वर्षों से ख़ुशी ख़ुशी दुःख तथा भूख सहारते हुए वनों में दिन गुज़ारते रहे। परन्तु बनवास के समय वे शान्ति से नहीं बैठे, उन्होंने गुरु द्वारा बताई जीवन-युक्ति अनुसार स्वयं को फ़ौजी जत्थेबन्दी का रूप बनाया। इस समय सिंघों के भिन्न भिन्न लगभग 65 जत्थे बने हुए थे तथा इन जत्थों के मुखी—

हरी सिंघ भंगी, झण्डा सिंघ, गंडा सिंघ पंजवड़, नत्था सिंघ, गुलाब सिंघ, चढ़त सिंघ, दीवान सिंघ, गुजर सिंघ, गरजा सिंघ, निबाहू सिंघ, लहणा सिंघ, फूला सिंघ, सावल सिंघ, गुरबख़्श सिंघ, दुंबा सिंघ, तारा सिंघ, बाघ

सिंघ, हकीकत सिंघ, महिताब सिंघ, जै सिंघ काठ्हा, झण्डा सिंघ, तारा सिंघ, मोहर सिंघ, शोभा सिंघ भीखा, नवाब कपूर सिंघ, बघेल सिंघ झबाल, गुलाब सिंघ डल्लेवालिया, हरी सिंघ, जस्सा सिंघ आहलूवालिया, नौध सिंघ शुक्रचकिया, गुलाब सिंघ, मताब सिंघ, करोड़ा सिंघ; हरी सिंघ, लज्जा सिंघ, नंद सिंघ संघाणिया, कपूर सिंघ, अमर सिंघ किंगरा, साहिब सिंघ, जीवन सिंघ, दीप सिंघ शहीद, नत्था सिंघ, मोहर सिंघ रणीएवाला, महां सिंघ, बाघ सिंघ, झण्डा सिंघ सुलतानौना, मिरज़ा सिंघ काहलों; शाम सिंघ मान, माहला सिंघ, बहल सिंघ, अमीर सिंघ, हीरा सिंघ, गंगा सिंघ, लाल सिंघ, अमर सिंघ, मताब सिंघ, रूप सिंघ, अनूप सिंघ नकई, दसौंधा सिंघ, तारा सिंघ गैबा, धर्म सिंघ तथा सुखा सिंघ माड़ी कंबोकी आदि उच्चकोटि के सिंघ थे।

अहमदशाह अब्दाली के प्रथम आक्रमण के समय जब देश में गड़बड़ी पैदा हुई, तभी समस्त सिंघ इस समय 4-5 मार्च, 1748 को होला मनाने आनंदपुर इकत्रित हुए। वहां पर सरबत ख़ालसे ने गुरमत्ता किया कि कितने ही वर्षों से सरकार ने अमृतसर के दर्शन-स्नान बन्द किए हुए थे, इस बार वैशाखी का सम्मेलन वहीं ही किया जाये। सिंघ ज़ोर-शोर से अमृतसर पहुँचे। हुकूमत की ओर से दर्शन-स्नान की रोक के लिए नियत हाकिम सलाबत ख़ां को उसके साथियों समेत मृत्यु दण्ड दिया गया और सिंघों ने अपने केन्द्रीय धर्म-स्थान को विदेशियों से स्वतन्त्र करवाया जो कि 9-10 वर्षों से हुकूमत के अधीन था।

दूर दूर से सिंघ शानो-शौक्त से पहुँचे तथा 29 मार्च, 1748 को वैशाखी का त्यौहार भी बहुत ज़ोर-शोर के साथ मनाया। इस वैशाखी समय सिंघों ने दो महान् कार्य किए—रामराउणी तथा मिसलों की स्थापना।

सिक्ख मिसलें

पहले तो गुरु की नगरी में रामसर बिबेकसर के नज़दीक एक लघु दुर्ग तैयार करवाया जिसका नाम 'रामराउणी' रखा, इसमें लगभग पांच सौ घुड़सवार रह सकते थे। उद्देशय केवल इतना था कि कठिन समय में इसके सहारे से पवित्र गुरु-स्थानों की रक्षा की जा सके। दूसरा महान् कार्य जिसने सिंघों के संगठन को पक्का बनाया, वे उपरोक्त 65 जत्थों को मिलाकर 11 मिसलों की नींव रखा जाना था।

'सरबत्त ख़ालसा' अकाल तख़्त के सामने इकत्रित हुआ। नवाब कपूर सिंघ जी ने जत्थेदारों को संगठित होने की प्रेरणा की। अन्त में बहुत दीर्घ विचार-विमर्ष के पश्चात् समूचे जत्थे 11 भागों में संगठित हो गए। सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया ने प्रत्येक नये समूह की अलग-अलग मिसल तैयार की तथा इस प्रकार 11 मिसलों की नींव रखी गई और 12वीं मिसल, मालवे की, मिसल फूलकियां कहलवाई।

1.	मिसल आहलूवालिया	स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया
2.	मिसल फैज़ुलापुरिया	नवाब कपूर सिंघ
3.	मिसल शुक्रचक्किया	नौध सिंघ
4.	मिसल भंगियां	हरी सिंघ भंगी
5.	मिसल निशानां वाली	दसौंधा सिंघ
6.	मिसल कन्हईया	जै सिंघ कान्हा
7.	मिसल नकईयां	हीरा सिंघ नकई
8.	मिसल डलेवालियां	गुलाब सिंघ डलेवालिया
9.	मिसल शहीदां	बाबा दीप सिंघ
10.	मिसल क्रोड़ियां	क्रोड़ा सिंघ
11.	मिसल संघाणियां	नंद सिंघ संघाणिया

(बाद में इसी मिसल का नाम रामगढ़िया पड़ा)

इस संगठित फ़ौजी जत्थेबंदी का नाम 'दल ख़ालसा' रखा गया तथा इसके प्रधान सेनापति स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया स्थापित किये गये जो कि जंगों-युद्धों के समय सदैव 'दल ख़ालसा' की देख-रेख करते रहे। स. जस्सा सिंघ (जन्म 1718 ई०, गांव आहलू) अच्छे पढ़े-लिखे सूझवान आगू थे। पहले माता सुन्दरी जी के पास दिल्ली कुछ समय रहे। संगीत तथा शस्त्र कला में निपुन्न हुये, फिर नवाब कपूर सिंघ जी इनकी योग्यता की परख करके इनको आगे लाये। इन्होंने उनको प्रथम सिंघों की खाद्य ख़ुराक का लेखा-जोखा सौंपा। छोटी आयु में दिल्ली में रहने के कारण उर्दू रंग में रंगी पंजाबी बोलते थे, जिस कारण हँसी में सिंघों ने इनका नाम हमकी तुमकी ही रख दिया। इस हँसी से वह कुछ घबराये भी, परन्तु नवाब कपूर सिंघ ने कहा—पुत्र ! मैंने इस पंथ की सेवा करके ही नवाबी प्राप्त की थी, अगर तुम भी सेवा करते रहे तो शायद तुम्हें भी मोदी से बादशाह बना दिया जाये। वह समय भी आया, जब पंथ

ने इनको 'सुलतानुल कौम' की उपाधि प्रदान की। इस प्रकार सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया की देख-रेख में इस बड़ी फ़ौजी जत्थेबंदी की स्थापना की गई।

इस जत्थेबंदी का सदस्य वही सिक्ख बन सकता था जो अमृतधारी हो तथा शस्त्र-विद्या तथा घुड़सवारी में प्रवीन हो। समूह सिक्ख कौम को सरबत ख़ालसा नाम से स्मरण किया जाता था। यह सरबत ख़ालसा समय समय वर्ष में दो बार वैशाखी तथा दीवाली को अमृतसर में इकत्रित होता था तथा पंथ के भविष्य के लिए जो नियम बनाता उसको 'गुरमता' कहा जाता था। प्रत्येक सिंघ इस गुरमते के अनुसार कार्य सम्पूर्ण करता था। इस समय कनिंघम के शब्दों में 'धर्म में अटूट विश्वास के बिना सिक्ख जत्थेबंदी का और कोई लक्ष्य नहीं था, वे एक ही अकाल पुरख के भरोसे धर्म तथा भलाई की रक्षा के लिए लड़ मर रहे थे।' उनको अपने गुरु के शब्दों पर विश्वास था कि एक दिन-भलाई की अवश्य जीत होगी तथा दुश्मन मर-मिट जाएंगे—

पुंन प्रतापन बाढ जैत धुनि, पापन के बहु पुंज खपैंगे ॥
साध समूंह प्रसंन फिरै, जग-शतरू सभै अवलोक चपैंगे ॥

(पातशाही १०)

इसी बात के कारण वे वनों में रहते, कष्ट सहारते, दिन-प्रतिदिन इसी का गायन करते, उनको पूर्ण निश्चय था—

'राज करेगा ख़ालसा आकी रहै न कोइ।
खुआर होइ सभ मिलहिंगे, बचै शरन जु होइ।'

मीर मनूं के ज़ुल्म

इधर सिंघ इस प्रकार अपने आप को नये सिरे से संगठित कर रहे थे, उधर सरहिन्द के नज़दीक मानूपुर के मैदान में वज़ीर कमरुदीन के पुत्र मीर मुइनुल ने अब्दाली की सेना को पराजित किया, जिस पर प्रसन्न होकर मुहम्मद शाह रंगीला बादशाह दिल्ली ने अप्रैल 1748 के मीर मनूं को पंजाब का गवर्नर नियुक्त किया। इसने लाहौर आकर अब्दाली की ओर नियुक्त किये हाकिम लखपत राय को कैदी बना लिया तथा उसके स्थान पर दीवान कौड़ा मल्ल को अपना नाइब हाकिम नियुक्त किया तथा जालंधर दुआब का फ़ौजदार अदीनाबेग को नियुक्त किया। लखपत राय

को 30 लाख जुर्माना किया गया जो कि वह दे न सका तथा फिर काफ़ी समय सिंघों की कैद में दु:ख भोगता बुरे हाल होकर मरा, गद्दार का अन्त बुरा ही होना था।

मई 1748 में सिंघों पर फिर सख़्ती का दौर आरम्भ हो गया। अदीना बेग फ़ौजदार जालंधर ने सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिये को मुलाकात के लिए बुलाया, ताकि कुछ शर्तें रखकर सिक्खों के साथ समझौता किया जाये परन्तु आन्तिक तौर पर सरकार की नियत ठीक नहीं थी, इसीलिए आहलूवालिये सरदार ने इन्कार कर दिया[1] तथा जस्सा सिंघ ईचोगिलिए (रामगढ़िए) ने अपने भाईयों सहित अदीना बेग की नौकरी करनी स्वीकार कर ली। संधि के मददगार अदीना बेग ने दूसरी तरफ़ रामराउणी को घेरा डालने की तैयारी कर ली तथा लाहौर से भी नासर अली ख़ां, मिरज़ा अज़ीज़ ख़ां बख़्शी तथा दीवान कौड़ा मल्ल की देख-रेख में भारी शाही सेना अमृतसर मंगवा ली। इस समय रामराउणी में पांच सौ के लगभग सिंघ थे जो काफ़ी समय तक इस शाही सेना के साथ लड़ते रहे। जस्सा सिंघ ईचोगिलिए ने जो कि अदीना बेग की फ़ौज में था, रामराउणी में घिरे सिंघों को पत्र लिखा कि यदि पंथ मुझे क्षमा कर दे तो मैं अपनी फ़ौजी सेना सहित आप के साथ आकर मिल जाता हूँ। सिंघों ने तीर के साथ उत्तर भेजा, जिस कारण वह रामराउणी में लड़ रहे सिंघों के साथ जा मिला। अक्तूबर 1748 से फ़रवरी 1749 तक यह लड़ाई जारी रही तथा रामराउणी के दो सौ सिंघ शहीद हो गये। यह लड़ाई जीतने में नहीं आ रही थी, उधर शाह नवाज़ ख़ां लाहौर पर अधिकार करने की साज़िश कर रहा था तथा साथ ही अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण की भी सूचना मिल गई थी, इस हालत में दीवान कौड़ा मल्ल

---

1. मुलाकात तां हमारी तुमारी लड़ाई में ही होवेगी ते जोनसे ऊहां हथिआर छूटेंगे सोई दिली-बातां जाहर होवैगीआं। अरु जब अवल तुसां बंदोबसत करिआ सा जिस की मदद सै, सो अब उनकी मदद सै हम करेंगे। तां मिलके करना किआ ज़रूर है। अरु जिसको गोबिन्द बख़शे उह होर सीं कैसे लेवे। अरु जिस के तालिआं मैं ख़ाविंद लिख देवे सो और सीं काग़ज़ां उपर किआ लिखावे। ते जिस उपर दोनां जहानां का बादशाह खुश होवे उसको और किआ चाहिए ? ते बिन जवानों के नुकसान से ते आराम सै आगे किस ने मुलखगीरी करी है ? इस तकलीफ़ का मुज़ाइका नहीं, अरु जब अपने कबज़े ख़ूब वजा मुलख करीएगा। अरु हम ने शमशेर उठाई है तां तुम सुल्हा चाहते हो अरु आगे उठावेंगे तो मुलखगीरी होवेगी।

के ज़ोर देने पर शाही फ़ौजों ने रामराउणी से घेरा उठा लिया। दिसम्बर 1749 में अब्दाली का आक्रमण हुआ, परन्तु मीर मनूं ने सयालकोट, गुजरात, औरंगाबाद तथा पसरूर—चार ज़िले देने करके उसके साथ संधि स्वीकार कर ली तथा वह सोदरे से ही वापस चला गया।

दीवान कौड़ा मल्ल की सूझबूझ सदका कुछ मास शान्ति बनी रही, इसीलिए सिंघ उसको मिट्ठा मल्ल कहकर पुकारा करते थे। शाह नवाज़ की ओर से की गई बग़ावत दबाने के लिए दीवान कौड़ा मल्ल को मुल्तान भेजा गया। दस हज़ार सिंघ उसकी सहायता के लिए गये। शाह नवाज़ ख़ां मारा गया तथा दीवान कौड़ा मल्ल वहां का हाकिम नियुक्त हुआ। सिंघों को परगणा पट्टी के 12 गांव तथा चूणियां की जागीर दुबारा मिली। नवाब कपूर सिंघ जी ने इस जागीर से खुला लंगर लगाया। परन्तु आंतरिक तौर पर मीर मनूं सिक्खों को ख़त्म करने के लिए गुप्त तैयारी भी करवा रहा था, विशेषतः नौ सौ लघु तोपें बनवाई गईं। सिंघों पर फिर सख़्ती का समय आ गया। कई गांवों के निवासी ग़रीब बेगुनाह सिक्खों को पकड़कर शहीद कर दिया गया। जो कोई सिक्ख का सिर लेकर जाता, उसको दस रुपए मिलते, जो घोड़ा खोल कर ले आता, उसको घोड़ा दे दिया जाता, अगर सिक्खों का शिकार करते करते किसी का घोड़ा खो जाता तो उसको सरकारी तबेले में से घोड़ा दे दिया जाता था।[1]

सिंघ वनों तथा पहाड़ों की ओर निकल गये। घोड़े ही उनके सच्चे साथी थे जो उनको तरह तरह के सरकारी कष्टों से बचाकर दूर ले जाते। 1751 ई० में मीर अमानुल्ला ख़ां फ़ौजदार ऐमनाबाद ने सिक्खों को वनों में से ढूंढ ढूंढ कर मारने में बहुत सरगर्मी दिखाई। दिसम्बर 1751 ई० में अब्दाली का तीसरा आक्रमण हुआ, मीर मनूं ने महाराज कौड़ा मल्ल द्वारा सिंघों से सहायता मांगी तथा सिंघों ने सहायता दी, ताकि विदेशी जरवाणे की मार से देश को बचाया जा सके। अब्दाली ने सुखजीवन सल्ल राजदूत भेजकर 24 लाख मांगा। मनूं ने 9 लाख दे दिया और कहा कि उपज अच्छी न होने के कारण और नहीं दिया जा सकता। यह सुनकर अब्दाली ने लाहौर को घेरा डाल दिया जो कि दिसम्बर 1751 से मार्च 1752 तक जारी रहा। इन्हीं चार महीनों में गिलजागर्दी से 50-50 मील लाहौर के आस-पास का इलाका तबाह हो गया।[2] महाराज कौड़ा मल्ल

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 66.

2. दर खुला है हशर अज़ाब दा।
बुरा हाल होइआ पंजाब दा। *(बुल्हे शाह)*

(6 मार्च) भी इस लड़ाई में मारा गया। अंत मीर मनूं अब्दाली की शरण में आया।

मुफ़्ती अलीउदीन ने *इबरतनामे* में दोनों की बड़ी दिलचस्प वार्तालाप बयान की है। दुरानी ने कहा—अब तू मेरे रहम पर है, बता तेरे साथ क्या व्यवहार किया जाये ? मनूं ने विनम्रता से उत्तर दिया—यदि व्यापारी है तो बेच दो, यदि कसाई है तो मार दो और यदि बादशाह है तो क्षमा कर दो।[1] यह उत्तर सुनकर अब्दाली बहुत प्रभावित हुआ तथा उसको 'फरज़ंदे ख़ान बहादुर रुस्तमे हिन्द' का रुतबा देकर अपनी ओर से लाहौर का सूबेदार बनाया। इस बार कश्मीर भी दुरानी ने अपने अधीन कर लिया तथा वहां का हाकिम सुखजीवन को बना दिया। दुरानी की मुहिंम के समय अदीना बेग भी लाहौर की ओर गया हुआ था। इसलिए सिंघों ने दुआबे से लेकर करनाल तक ख़ूब लूट मार की। मार्च 1752 की वैसाखी, सिंघ आनंदपुर में मना रहे थे तो अदीना बेग तथा सदीक बेग ने अचानक ख़ालसा दल पर जा आक्रमण किया। मीर मोमन ख़ां की देख-रेख में एक सेना लख्खी जंगल की ओर भेजी गई, परन्तु इसको अधिक सफलता प्राप्त न हुई। मसकीन की लिखित के अनुसार, 'उस समय नौ सौ सिक्ख अमृतसर रामराउणी में थे, वे भी लड़ते मरते शहीदियां प्राप्त कर गये तथा सरकार की ओर से रामराउणी की छोटी गढ़ी गिरा दी गई।' इस समय मीर मनूं बाहरी दुश्मन अब्दाली तथा अंदरूनी दुश्मन शाह नवाज़ ख़ां के साथ तो युद्ध कर चुका था, अब उसने सिंघों का नामो-निशान मिटाने की पूर्ण कोशिश की। यह वह समय था जब गांवों में से सिंघ स्त्रियों तथा सिंघों के बच्चों को पकड़कर लाहौर की जेलों में कैदी बनाया गया। सवा सवा मन प्रतिदिन आटा पीसने के लिए दिया गया तथा उनके छोटे छोटे नन्हे बच्चों के अंग अंग काट कर उनकी गोद में डाले गये, परन्तु सिंघ-स्त्रियां रत्ती भर भी अपने धैर्य से न गिरीं। इतने कष्टों के तूफ़ानों को सहारते हुए भी सिंघ गा रहे थे—

मीर मनूं असाड़ी दात्री, असीं मनूं दे सोए।
जिउँ जिउँ मनूं वद्ढदा, घणे घणे असीं होए।

(इबरतनामा, अलीउदीन)

इस समय देश की बुरी हालत थी, दिन-प्रतिदिन के फ़ौजी आक्रमणों

---

1. डॉ नारंग, *Transformation of Sikhism*, पृष्ठ 216.

ने देश को बरबाद कर दिया था तथा किसान खेती न होने के कारण 'कर' देने में असमर्थ थे। बहुत सारे जाट 'अकाल, अकाल' कहकर सिंघ बन गए और जंगलों में निवास करते हुए अपने सिंघ भाईयों के साथ जा मिले।[1] सिंघ-स्त्रियों को कैदी बना लेना सिंघों के मन को अच्छा नहीं लगता था। सिंघ कसूर की ओर इकत्रित हुए तथा मीर मनूं फ़ौज लेकर वहां पहुँचा। हज़ारों की संख्या में सिंघ पकड़ लिये गए तथा उनको शहीद कर दिया गया। *तहकीकाति चिशती* अनुसार, जब मनूं वापस लौटा तो रास्ते में अचानक उसकी घोड़ी डर गई और मनूं का पैर रकाब में फँस गया, इस प्रकार घोड़ी ने घसीट घसीटकर उस हत्यारे को मार डाला। कई इतिहासकारों ने किसी तरफ़ से विष दिये जाने पर उसकी मृत्यु लिखी है। अन्तिम बात, 3 नवम्बर, 1753 ई० को वह अपने कर्मों का फल भोगता हुआ बुरी हालत में मरा।

भूरियां वाले

जब मनूं की मृत्यु की सूचना सिंघों को मिली, वे लाहौर पर टूट पड़े और बहुत अधिक सिंघ-स्त्रियों तथा उनके बच्चों को छुड़वा कर ले गये। इस समय पंजाब तथा दिल्ली, दोनों स्थानों की हकूमत दुर्बल थी। मनूं की मल्लिका मुगलानी बेगम सारा राज-कार्य स्वयं संभालना चाहती थी, दूसरी तरफ़ अदीना बेग फ़ौजदार जालंधर-दुआब को यह बात अच्छी नहीं लगती थी, क्योंकि नवम्बर 1753 ई० से अक्तूबर 1756 ई० तक लाहौर के नौ हाकिम बदले जा चुके थे। इस राज-गर्दी के समय सिंघों ने अच्छी उन्नति की।[2]

7 अक्तूबर, 1753 ई० में पंथ के जरनैल नवाब कपूर सिंघ जी की मृत्यु हुई, जिन्होंने 1733 ई० से लेकर लगभग 20 वर्ष पंथक अगुवाई की। इनके पश्चात् सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया (1718-1783) की देख-रेख में सिंघों ने स्वतन्त्रता संग्राम को जारी रखा। सरदार जस्सा सिंघ ठोके ने गिराई गई रामराउणी के स्थान पर नया दुर्ग 'रामगढ़' बनाया। जिस पर उसका नाम रामगढ़िया प्रसिद्ध हुआ। सरदार चढ़त सिंघ तथा जै सिंघ की देख-रेख में पांच सौ सिंघों ने मुसलमानी भेस धारण कर

---

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs*, पृष्ठ 84.
2. *वही*, पृष्ठ 94.

लाहौर का परी महल और रंग महल लूटा। 1754 के अंत में 12 हज़ार सिंघों ने सरहिन्द के ऊपर आक्रमण किया तथा दुश्मनों को ख़ूब मारा। अप्रैल 1755 में अदीना बेग ने सिंघों की सहायता के साथ कुतुब ख़ां रुहेले को मारकर सरहिन्द को कब्ज़े में लिया, अदीना बेग ने सिंघों को फ़तिहाबाद का परगणा दिया।

राखी (रक्षा)

इस समय सिंघों ने माझे, दुआबे तथा मैन दुआब की ओर काफ़ी इलाके अपने कब्ज़े में कर लिये थे। तथा इलाकों की रक्षा की जिम्मेदारी दल ख़ालसा ने संभाल ली थी। भिन्न भिन्न मिसलों के सरदार खेती उपज का पांचवां हिस्सा लेते तथा हर तरह ग़रीब किसानों की जान तथा माल की रक्षा करते। इस ढंग को 'राखी' अथवा 'जिम्मेदारी' कहा जाता था। अगर दल ख़ालसा की फ़ौज भी कहीं गुज़रती तो भी उसी इलाके के सरदार की जिम्मेदारी होती थी कि वह हर तरह के नुकसान से गांव का बचाव करे।

लोग इस रीति से बहुत संतुष्ट थे तथा सिक्खों की रक्षा के नीचे आना बड़ा सुखदायक तथा सौभाग्य वाला समझा जाता था। बंदाबहादुर के पश्चात् यह दूसरा अवसर था जब हुकूमत के तंग किये, वर्षों से वनों में कंबल ओढ़ कर निर्वाह करने वाले सिंघों ने आकर अपने देश के राज्य प्रशासन को संभाला। इसी दृष्य को देखकर तो बुल्ले शाह ने कहा था :

मुग़लां ज़हर पिआले पीते। भूरिआं वाले राजे कीते।

हरी सिंघ भंगी तथा चढ़त सिंघ ने रावी दरिया के पार का इलाका कब्ज़े में किया। हरी सिंघ नकई ने इलाका चूनियाँ, जय सिंघ तथा जस्सा सिंघ रामगढ़िये ने रियाड़की, आहलूवालिया तथा सिंघापुरिया मिसल ने दुआबे पर कब्ज़ा किया। मिसल शहीदां तथा मिसल क्रोड़ियां ने सतलुज के पार इलाके को राखी के नीचे लिया। इस अवसर पर चट्ठों, गख्खड़ों, राजपूतों तथा पठानों आदि ने भी अपने अपने बल के अनुसार इलाके संभाले। परन्तु अधिकतर स्थानों पर सिंघों ने ही कब्ज़ा किया हुआ था।[1]

ऐसी हालत में मुगलानी बेगम और शाह आलमगीर दिल्ली और नजीबुदौला ने अहमदशाह अब्दाली को निमंत्रण दिया और वह ज़ोर-शोर

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs*, पृष्ठ 98-99.

से 20 दिसम्बर, 1756 को लाहौर पहुँचा। सिंघ लख्खी जंगल तथा पहाड़ों की ओर चले गये तथा अदीना बेग भी शिवालिक की पहाड़ियों की ओर चला गया। 18 जनवरी, 1757 ई॰ को अब्दाली बिना किसी रोक टोक दिल्ली पहुँच गया। एक मास लूट जारी रही, मथुरा को भी ख़ूब लूटा। उसने शाह आलमगीर की लड़की का अपने शहज़ादे तैमूर के साथ विवाह किया। मुहंमद शाह की पुत्री हज़रत बेगम, शाही परिवार की 16 और सुन्दर नवयुवतियां तथा चार सौ दासियां दुरानी ने अपने साथ लीं। फ़ौज में हैज़ा फैल जाने के कारण अप्रैल 1757 ई. को वह दिल्ली से वापस लौट आया। दिल्ली की लूट से उसने हाथी, खच्चर, ऊँट आदि 28 हज़ार जानवर लदे हुये थे तथा 80 हज़ार घोड़े थे।[1]

दुरानी ने दिल्ली का हाकिम नजीबुदौला को बनाया। सरहिन्द का हाकिम अबदुल समद मुहंमदज़ई तथा लाहौर का हाकिम अपने पुत्र तैमूरशाह को नियुक्त किया तथा जहान ख़ां इसका फ़ौजदार नियुक्त हुआ, जिसके अधीन 10 हज़ार मूल रूप में अफ़ग़ानी सेना थी। फ़रवरी से अप्रैल 1757 तक दो तीन मास अब्दाली का दिल्ली की लूट में व्यस्त होने के कारण सिक्खों को भी अवसर मिल गया कि वे अपने दुश्मनों को दुआबे तथा माझे में योग्य दण्ड दें। अदीना बेग तो इस समय हांसी हिसार की ओर भागा हुआ था।

बाबा आला सिंघ की देख-रेख में मलवई सिंघों ने अब्दाली के पुत्र तैमूर को भी कई बार लूटा जो दिल्ली से लाहौर की ओर लूट का माल भेज रहा था।[2] इसी तरह शेष दल ख़ालसा ने झना दरिया तक छापे मार मार कर देश का माल, लुटेरे गिलजियों से छीनकर विदेश जाने से बचा लिया।

हरिमंदर की रक्षा

अब्दाली का यह चतुर्थ आक्रमण दुर्बल मुग़ल शासन के लिए एक तरह की भारी मारू चोट थी, जिसके पश्चात् फिर वह अपनी पहली स्थिति में न आ सका। इन निरन्तर दुरानी आक्रमणों ने सिक्खों की बढ़ती ताकत को भी 10 वर्ष पीछे की ओर धकेल दिया। तैमूर शाह तथा जिसके

1. डॉ. गुप्ता, *A short History of the Sikhs*, पृष्ठ 153.

2. *वही*, पृष्ठ 104.

पिता की सेना को सिक्खों ने लूट का माल छीनकर बहुत परेशान किया था, बहुत ग़ुस्से में आया, उसने अमृतसर को आकर लूटा तथा हरिमंदर गिराकर तालाब को मिट्टी से भर दिया। गश्ती दस्तों के साथ गिलजे फिर सिंघों का शिकार करने लगे। जब बाबा दीप सिंघ जी को, जो कि दमदमा साहिब गुरुवाणी लिखने तथा गुरमति विद्या पढ़ाने की सेवा करते थे, पता चला कि जरवाणों ने दरबार साहिब अमृतसर की बे-अदबी की है, तो आप पांच सौ का जत्था लेकर अमृतसर की ओर चल पड़े। रास्ते में बाबा गुरबख़्श सिंघ 'जत्थेदार आनंदपुर' तथा और भी बहुत सारे सिंघ शामिल होते गये, अमृतसर तक पहुँचते पहुँचते सिंघों की संख्या 5 हज़ार हो गई। आगे जहान ख़ां भी भारी सेना इकत्रित कर तैयारी किये खड़ा था। 11 नवम्बर, 1757 को गोहलवढ़ के नज़दीक दोनों दलों की टक्कर हुई, एक बार तो सिंघों के शहीदी के जोश ने दुश्मन के छक्के छुड़ा दिये। सिंघ यह भी जानते थे कि भारी शाही सेना के सामने उनकी संख्या बहुत कम है, परन्तु वह तो संख्या को छोड़कर केवल गुरु तथा गुरु-स्थानों के प्यार में दीवाने होकर आगे बढ़ बढ़ कर शहीदियां प्राप्त कर रहे थे। बाबा नौध सिंघ जी चब्बे के नज़दीक शहीद हो गए, बाबा दीप सिंघ ने बहुत अधिक घाव लगने पर भी गुरु-दरबार में आकर शहीदी प्राप्त की। आप के दूसरे साथियों में सरदार अघड़ सिंघ, संत सिंघ, सज्जन सिंघ, हीरा सिंघ, निहाल सिंघ, बहादुर सिंघ इत्यादि ने भी युद्ध मैदान में लड़ते हुए गुरु के बाग़ के नज़दीक प्राण त्याग दिए। बाबा बसंत सिंघ जी चौक पराग दास में तथा बाबा राम सिंघ जी कटड़ा रामगढ़ियाँ वाले स्थान पर शहीद हुए। इस प्रकार इस मिसल का नाम भी 'शहीदों की मिसल' पड़ गया तथा आगे के लिए इस मिसल के जत्थेदार कर्म सिंघ बने।

बाबा दीप सिंघ जी जैसे उच्च विद्वान् तथा महान् पुरुष के शहीद हो जाने पर सिंघों को बहुत जोश आया। सिंघ अदीना बेग से तालमेल करके मैदानी इलाके में आये। अदीना की सेना के सिपाही भी अफ़ग़ानियों जैसे ही थे। इसीलिए अभिन्नता करने के लिए उनके सिरों में हरी गेहूँ की डालियां बांधी गई थीं। दिसम्बर 1757 में दोनों दलों ने ज़ोर-शोर से आक्रमण किया तथा सरफराज़ ख़ां फ़ौजदार जालंधर को निकाल दिया। अब्दाली सरकार की ओर से नियुक्त हुए ज़ालिम हाकिम नासर ख़ां ने सोढी वडभाग सिंघ जी को बुरी तरह मार पीट कर गुरुद्वारा थंम साहिब

'करतारपुर' में जला दिया था। सिंघों ने नासर ख़ां को जला डाला और गुरुद्वारा थंम साहिब नया बनाया। अदीना बेग ने सवा लाख रुपए ख़ालसे को भेंट किया तथा कहा, 'यद्यपि मेरे सिर पर बाल नही हैं परन्तु फिर भी मैं सिक्ख हूँ।'[1] सिंघों ने फिर अदीना को जालंधर-दुआब का शासक बनाया। यह सब समय की नीति के सौदे थे।

जनवरी 1958 में खवाजा अबीद ख़ां 20 हज़ार सेना लेकर जालंधर-दुआब पर चढ़ाई करके आया। परन्तु सिंघों तथा अदीना ने उनको मार भगा दिया और उनका बहुत सारा फ़ौजी सामान लूट लिया। इस समय पुरानी फ़ौजों में सिंघों का टाकरा करने का साहस नहीं रहा था, सिंघ दुआबे में अपना बल जमाकर माझे में अपनी सरगर्मियों को तेज़ कर रहे थे। समकाली मसकीन लिखता है—जिस ओर हमारे अफ़ग़ान दस्ते जाते, सिक्ख उनको पराजित कर देते। लाहौर ख़तरों के घेरे में था, कई बार सिंघ शहर में भी दाव लगाकर लूटमार कर जाते। सामान्यत: लाहौर के बड़े बड़े दरवाज़े रात्रि होने से एक घंटा पूर्व बंद कर दिये जाते थे। ऐसी हालत में दुरानी कितना समय लाहौर पर कब्ज़ा रख सकते थे।

दिल्ली की ओर से मराठों का बल बढ़ रहा था, उन्होंने दुरानी के मुख़तियार नजीबुदौला को मार भगा दिया था। इधर अदीना बेग ने सोचा कि मराठों की सहायता से दुरानियों की ताकत को ख़त्म करके पंजाब पर अपना राज्य स्थापित करूँ। अदीना ने मराठों को एक लाख रुपए नकद और डेरे वाले दिन का पचास हज़ार रोज़ाना देना करके पंजाब बुलाया। पहले मल्हार राव आया जो कि अबदुल समद ख़ां हाकिम सरहिन्द से पांच लाख रुपए लेकर वापस चला गया। फिर रघुनाथ राव की देख-रेख में मराठे मार्च 1758 में पंजाब आए। मराठों, सिंघों और अदीना बेग की फ़ौज, तीनों का यह संयुक्त दल सरहिन्द को जीत कर, लाहौर पर चढ़ आया। तैमूर शाह तथा जहान ख़ां पहले ही ख़बर सुनकर भाग गये और रावी के पार चले गये। सिंघों ने झना तक दुरानी फ़ौजों

---

1. बिक्रम सम बड बीर, निडर सम आहि सकंदर।
धरमी भोज अर करन वांग, जाणिओ जग अंदर।
देग तेग के मरद गरद शत्रन के करता।
अहो खालसा पंथ, सरब सम्रथ के धरता।
...जिउं तुम गुर के सिंघ, केसधारी सभ नीके।
तिउं मोहि भोडा सिक्ख, मानते रहीओ ठीके॥ *(पंथ प्रकाश—ज्ञानी ज्ञान सिंघ)*

का पीछा करके उनकी बुरी दशा बनाई। बहुत से अफ़ग़ान फ़ौजियों को पकड़कर लाया गया और उनसे श्री दरबार साहिब के तालाब की मिट्टी निकलवाई गई। अप्रैल 1758 में सिक्ख और मराठे लाहौर में दाख़िल हुए। मराठों ने 75 लाख वार्षिक लेना करके अदीना बेग को लाहौर का नवाब बनाया और मई 1758 में रघुनाथ राव फ़ौज के साथ वापस चला गया। वापसी में मराठा सरदारों ने दरबार साहिब अमृतसर की भी दर्शन-यात्रा की।

अदीना बेग ने लाहौर छोड़कर बटाले के पास अदीना नगर अपना नया हैड-कवार्टर बनाया। चालाक अदीना बेग शीघ्र ही आँखें फेर गया और उन चौधरियों, गक्खड़ों, भट्टियों, डोगरों, लुटेरों, आक्रमणकारों तथा और मुस्लिम मुलखईए को प्रेरित कर सिंघों को ख़त्म करना चाहा। यद्यपि अदीना सिंघों का काफ़ी समय का भेदी था, इसलिए उसने हज़ारों बढ़ईगारों को लगाकर आस पास के सभी जंगल कटवाने आरंभ कर दिये, ताकि सिंघों को शरण लेने का कोई स्थान ही न रहे। अमृतसर रामगढ़ पर भी मीर अज़ीज़ ने काफ़ी समय घेरा डाले रखा। एक गश्ती फ़ौज दीवान हीरा मल्ल और महंत आकल दास जंडियालिये की देख-रेख में भेजी। सदीक बेग ख़ां हाकिम सरहिन्द ने भी सिक्खों पर अधिक सख़्ती की। इस प्रकार अदीना बेग चार मास नवाबी करता हुआ अपने पुराने मित्र सिंघों पर जुल्म करता 15 सितम्बर, 1758 को मर गया। इसलिए सिंघों ने अक्तूबर 1758 में अमृतसर में ज़ोर-शोर से दीवाली मनाई। कुछ समय मराठों ने मिरज़ा अहमद ख़ां को गद्दी पर बिठाकर लाहौर का प्रशासन चलाया, परन्तु वह अच्छी तरह शासन न चला सका। डॉ. हरी राम गुप्ता लिखता है कि उस समय यदि कोई शक्ति हिन्द में पंजाब पर राज्य करने का नैतिक अधिकार रखती थी तो वे सिक्ख ही थे, जिन्होंने बार बार पंजाब की जुल्मों-जबरों से रक्षा की थी।[1] अफ़ग़ानों के फिर आक्रमण की घोषणा सुनकर मराठे बेचारे तो भगौड़े होकर दिल्ली का मैदान छोड़ गये परन्तु सिंघों ने अपना कौमी फ़र्ज़ समझकर अफ़ग़ानों के कमांडर जहान ख़ां को जख़्मी करके पीछे भगा दिया। सय्यद लतीफ़ की लिखित अनुसार ये सिंघों की अफ़ग़ानों पर निर्णयबद्ध जीत थी।[2]

---

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 134.
2. *A History of the Punjab,* p. 230.

इसी तरह दिल्ली के वज़ीर इमादुल मुल्क की ओर से भेजे गये अबीदुला कश्मीरी और सय्यद जमील को सिंघों ने बुरी तरह पछाड़ा। अदीना के दीवान बिशम्भर दास ने 15 हज़ार फ़ौज इकत्रित करके उड़मुड़ टांडे के पास सिक्खों के साथ लड़ाई की। परन्तु उसको भी पराजय का मुँह देखना पड़ा। ऐसे दिल्ली, काबुल और आंतरिक दुश्मन के साथ फिर एक बार इन पर आक्रमण करके सिक्खों ने 'राखी (रक्षा) सिस्टम' को जगह जगह पर फैलाया और अपना दबदबा जमाया। सतलुज पार सरदार आला सिंघ भी अच्छी उन्नति कर रहा था, उसने सरदार कर्म सिंघ हिसटोरियन की लिखित अनुसार 1759 तक 726 गांव अपने अधीन कर लिये थे। इसी तरह नाभा, जींद, बडरुखा, रामपुर, दयालपुरा, कोट दुन्ना तथा फ़रीदकोट के चौधरी भी अपनी ताकत बढ़ा रहे थे। एक बार राजपूत मुसलमान चौधरी फतह ख़ां तलवंडी, दलेल ख़ां हलवारा, कुतुबदीन मैलसियां, नौरंग ख़ां तलवाल, जैमल ख़ां मलेरकोटला आदि सय्यद असद अली ख़ां फ़ौजदार जालंधर दुआब से मिलकर बरनाले के उपर हमलावर हुए, परन्तु दल ख़ालसा की सहायता से सरदार आला सिंघ की जीत हुई।

अहमद शाह अब्दाली मराठों और सिंघों की बढ़ रही शक्ति को अच्छी तरह पहचान रहा था। उसका दिल्ली का ऐजंट नजीबुदौला मराठों की बढ़ती शक्ति देखकर घबरा रहा था कि मैं उनसे शीघ्र ही बदला लूँ, जिन्होंने मेरे पुत्र को लाहौर से निकाला है। अभी अभी सिंघों की तरफ़ से भगाए ज़ख़्मी जहान ख़ां की हार भी उनके सामने थी। शाह आलम सानी अपने वज़ीर गाज़ीउदीन से दु:खी था। उसने दिल्ली से दुरानी को निमंत्रण-पत्र भेजा कि आकर मेरी सहायता करें, इसी तरह माधो सिंघ जैपुर और विजय सिंघ मारवाड़ ने भी दुरानी को सहायता का भरोसा दिलाकर आने के लिए कहा।[1]

पानीपत–मराठों की पराजय

जब किसी कौम ने मरना हो तो उसकी आधी मृत्यु तो पहले ही ग़द्दार लोग कर देते हैं। ऐसी हालत में अब्दाली 60 हज़ार सेना के साथ 1759 में अटक पार करके पांचवीं बार हिंद पर आक्रमण किया, उसका

---

1. *A History of the Sikhs,* p. 162.

यह आक्रमण नितांत मराठों की ताकत को समाप्त करने हेतु था। संबा जी लाहौर से भाग गया और दुरानी भी करीम दाद ख़ां को हाकम लाहौर नियुक्त करके कांगड़े वाले राजे घुमण्ड चन्द को जालंधर दुआब सौंप कर, स्वयं मारो-मार करता तथा सतलुज पार करके तरावड़ी के मैदान में दत्ता जी सिंधिया के साथ जा भिड़ा और उनको पराजित किया। सहारनपुर के पास रुहेला सरदार नजीबुदौला अपनी सेना लेकर दुरानी से आ मिला और बराड़ी घाट पर मराठों के साथ भारी युद्ध हुआ और दत्ता जी की मृत्यु हुई। अब्दाली लगभग वर्ष भर दिल्ली के आस-पास घूमता रहा, ताकि यदि मराठे दुबारा शक्ति में आएं तो वह उनको पराजित कर सके। अन्त में 14 जनवरी, 1761 को पानीपत के मैदान में दुरानी और मराठों का भयानक युद्ध हुआ। दुरानी के साथ हिन्द के सभी मुस्लिम नवाब थे तथा दूसरी ओर दो लाख मराठे थे, इस समय सरदार आला सिंघ ने सात्विक देश-भक्ति का प्रमाण देते हुए चोरी खाद्य-ख़ुराक भेजकर मराठों की सहायता की[1], यद्यपि अधिक गिनती में होते हुए भी मराठे अन्त में बुरी तरह पराजित हो गये। जिस समय अब्दाली दिल्ली की तरफ़ मराठों के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय अक्तूबर 1760 ई० को सिंघों ने अमृतसर की दीवाली पर इकत्रित होकर 'गुरमता' पास किया कि लाहौर पर आक्रमण किया जाये। नवम्बर 1760 ई० में सिंघों ने लाहौर पर आक्रमण किया, फलस्वरूप मुहंमद ख़ां ने डरते हुए 30 हज़ार रुपए नज़राना देकर पीछा छुड़ाया। इन्होंने पंजाब में फिर अब्दाली की हुकूमत के पांव लगने न दिये, करीम दाद ख़ां हाकिम लाहौर इनको दबाने में असमर्थ था। अधिक गड़बड़ देखकर अब्दाली ने सर बुलंद ख़ां को भेजा परन्तु वह भी सिंघों से डरता जालंधर ही बैठा रहा। सिंघ इधर उधर माड़-धाड़ करते अब्दाली को तंग कर रहे थे। इस समय इन्होंने बहुत आवश्यक स्थानों पर दुर्ग भी बनवा लिए थे।

मराठों को पराजित करके अब्दाली मार्च 1761 ई० में वापस लौटा। आला सिंघ की तरफ़ से मराठों को खाद्य-ख़ुराक पहुँचाने की ख़बर दुरानी के पास पहुँच गई थी, इसलिए उसने लौटते समय बरनाला लूटा। आला सिंघ मूनक की ओर निकल गया था। उसके दूत बीरम ढिलों ने चार लाख नज़राना देकर दुरानी को ख़ुश किया और दुरानी आला सिंघ को अपनी

---

1. डॉ. गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 138 (प्रथम भाग)।

तरफ़ से 'हाकिम सरहिन्द' नियुक्त कर गया। इस बात पर दल ख़ालसा ने आला सिंघ को जुर्माना किया कि तुमने जरवाणे की ओर से दी हुई हाकिमी क्यों स्वीकार की है ? जब दुरानी सेना ब्यास दरिया पार करने लगी तो जस्सा सिंघ आहलूवालिया की अगुवाई में सिक्ख अफ़ग़ानों पर टूट पड़े और उन्होंने 2200 लड़कियों को छुड़वाया और उनको अपने अपने घर पहुँचा दिया। इस घटना के कारण 'जस्सा सिंघ बंदी छोड़' से प्रसिद्ध हुआ। जब अब्दाली लाहौर पहुँचा, वहां भाई हाठू सिंघ तथा भाई बाघड़ सिंघ दोनों पकड़कर दुरानी के आगे पेश किये गये। अब्दाली ने पुछा, "तुम कौन हो ? और यहां पर क्या करने आये थे ?" सिंघों ने डर-रहित होकर उत्तर दिया कि हम सिंघ—शेर हैं और तुम्हें मारने के लिए ढूंढ़ते फिर रहे हैं। अब्दाली ने इन दोनों सिंघों को हाथियों से कुचलवा कर मरवा दिया। ख़्वाजा अबीद ख़ां को हाकिम लाहौर और सर बुलंद ख़ां को मुल्तान की हुकूमत सौंप कर मई 1761 में अब्दाली अपने देश लौट गया।

लाहौर पर अधिकार

अब्दाली ने अभी अटक पार किया ही था कि सिंघों ने झना का सारा इलाका ख़ूब लूटा। जून-जुलाई 1761 में सिंघ फिर पंजाब पर हावी हो गए। यह हाल सुनकर अब्दाली ने अगस्त 1761 में नूरदीन ख़ां बामज़ई को फ़ौज देकर भेजा। प्रथम तो सरदार चढ़त सिंघ जी ने झना के पास ही इसके साथ ख़ूब लड़ाई की, अन्त में सिंघों ने उसको पीट कर जम्मू धकेल दिया। ख़वाजा अबीद ख़ां ने गुजरांवाले चढ़त सिंघ पर आक्रमण किया, परन्तु अफ़ग़ान सेना गिनती में अधिक थी, इन्होंने एक बूढ़े सिक्ख बाबा शाम सिंघ जी को भी गिरफ़्तार कर रखा था, सिंघों ने उसे रिहा करने के लिए बातचीत आरंभ की। रात्रि होने में अभी देर थी कि सिंघ अफ़ग़ानों पर टूट पड़े और वे भाग गये, इस समय सरदार चढ़त सिंघ के साथ बहुत सारा फ़ौजी सामान हाथ लगा और उसने अपने गढ़ को और शक्तिशाली बनाया। 27 अक्तूबर, 1761 की दीवाली को सरबत (समूह) ख़ालसा अमृतसर इकत्रित हुआ, इस समय लाहौर के इलावा लगभग सारा पंजाब सिक्खों के अधिकार में था, गुरमता पास करके सिक्खों ने नवम्बर, 1761 में लाहौर भी अपने अधिकार में कर लिया और सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया को 'सुलतानुल कौम' का ख़िताब देकर राज्य सिंघासन पर सुशोभित किया और उसने अपने नाम का सिक्का जारी

किया, यह बात, 'ख़ज़ाना-ए-आमरा', (1762 ई०) में लिखी गई है।[1] इस पर फ़ारसी शब्द ये अंकित थे :

'सिक्का ज़द दर जहां बफज़लि अकाल,
मुलकि अहिमद ग्रिफत, जस्सा कलाल।'

कई इतिहासकारों का कथन है कि इस लिखित वाला सिक्का कुछ तुअस्सबी मुसलमानों ने दुरानी को उकसाने के लिए नकली बनाकर काबुल भेजा था। जैसा कि 'चहार बाग पंजाब' में गणेश दास वडेहरे ने स्पष्ट लिखा है। सिंघों की तरफ़ से प्रचलित मुद्रा की वास्तव लिखित ये थी :

'देगो तेग़ो फ़तह ओ नुसरत बेदरंग
याफत अज़ नानक गुरु गोबिन्द सिंघ।

सिंघों ने राज्य-प्रबन्ध को अपने अधीन लेकर दुरानी के दोस्त-ग़द्दारों को मारना आरम्भ किया, सिक्खों का सबसे बड़ा दुश्मन आकल दास जंडियालिया था। ख़ालसे ने जंडियाले पर जा घेरा डाला। *इबरतनामे* का लिखारी लिखता है कि आकल दास ने चिट्ठी लिखकर दुरानी के पास संदेशा भेजा कि मेरे प्राण होठों पर हैं, तुम आयो ताकि मैं जी सकूँ, मरने के पश्चात् तुम्हारी शक्ति का मुझे क्या लाभ ?[2] दुरानी ने पहले ही से यह प्रोग्राम बनाया हुआ था कि मराठों को तो मार दिया है, अब इस बार दुश्मन सिंघों को मार देना चाहिए। इस आशे को सामने रखकर अब्दाली छठा आक्रमण करके फ़रवरी 1762 को लाहौर पहुँचा।

बड़ा घल्लूघारा

सिंघ इससे पूर्व ही सरहिन्द की ओर निकल गये थे ताकि अपने परिवारों की संभाल करके मालवे पहुँचा जा सके। ख़ालसे का वहीर (लशकर) अभी कुप्प रहीड़े के मैदान में जा ही रहा था जब कि 3 फ़रवरी को लाहौर से चलकर दुरानी शीघ्र 5 फ़रवरी, 1762 को कुप्प पहुँच गया। आगे ज़ैन ख़ां हाकिम सरहिन्द और भीखन ख़ां नवाब मलेर कोटले की फ़ौजें ख़ालसई वहीर को घेरे में लेकर युद्ध कर रही थीं और पीछे से दुरानी पचास हज़ार सेना और 20-25 हज़ार मुस्लिम मुलखईये

---

1. डॉ. नारंग, पृष्ठ 232.
2. डॉ. हरी राम गुप्ता, *A History of the Sikhs,* पृष्ठ 164.

लेकर चढ़ आया। सिंघों की संख्या भी, स्त्रियों और बच्चों सहित 50 हज़ार से ज़्यादा थी, बहुत भारी ख़ूनी युद्ध हुआ, कोई सिक्ख न बचा जो ज़ख़्मी न हुआ हो। सरदार संगू सिंघ तथा सरदार शेखू सिंघ हंभलवाल वहीर को बचाकर बरनाले की ओर ले जा रहे थे और शाह वली ख़ां दस हज़ार फ़ौज लेकर उसकी तरफ़ निकला और सिंघ स्त्रियों और बच्चों का बहुत नुकसान किया। सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिये को बाईस घाव लगे और सरदार चढ़त सिंघ को सोलह घाव लगे। सिंघ पीछे होते होते कुतबे बामनी से आगे हठूर की ढाब पर पहुँचे और जहां दोनों थकी हुई सेनाओं ने पानी पिया। अब्दाली बरनाला पहुँचा तो जैन ख़ां तथा भीखन ख़ां ने शिकायत की कि आला सिंघ भी दल ख़ालसा का गुप्त मददगार है। इसको कैद किया जाये और 50 लाख जुर्माना किया जाये। आला सिंघ भवानीगढ़ चला गया, दुरानी ने बरनाला लूटा, फूका और कहा—आला सिंघ के सिर के बाल काट कर मेरे सामने पेश किया जाये। आला सिंघ ने कहा—सवा लाख से अधिक नज़राना भेंट कर दूंगा, परन्तु मेरे सिर के बाल न काटे जायें। ऐसा ही हुआ, आला सिंघ ने पांच लाख नज़राना और सवा लाख बालों को देकर रिहाई प्राप्त की। 15 फ़रवरी, 1762 को अब्दाली सरहिन्द से लाहौर की ओर वापस हुआ और उसके साथ 50 बैल-गाड़ियाँ सिंघों के सिरों से भरी हुई थीं, रास्ते में उसने अमृतसर के हरिमंदर को बारूद के कुप्पे रखकर गिरा दिया। इस समय एक ईंट उसके नाक पर भी लगी, जिससे उसकी सारी आयु नासूर चलता रहा। उसने सरोवर मिट्टी से भरवा दिया। 3 मार्च, 1762 को दुरानी लाहौर पहुँचा और वहां शहर के दरवाज़ों पर सिंघों के सिरों के मीनार बनाकर खड़े किये ताकि दुनिया देखे कि सिंघ मार मुका दिये गए हैं। इस समय घल्लूघारे में 12 हज़ार से अधिक सिक्ख शहीद हुए, *तारीख़ि अहमदशाही* और *इबरतनामे* में शहीद हुए सिंघों की गिनती तीस हज़ार और सय्यद लतीफ़ और कन्हैया लाल ने चौबीस हज़ार लिखी है।[1]

1. डॉ. नारंग, पृष्ठ 232.

'लोक कहैं सिंघ एक लख्ख सारा, पचास बचयो और सभ गयो मारा।
पिता हमारे तीस बताए, रहे सु मर और बच कर आए।
पिता चाचो दुइ हम थे साथ, उन ते सुनी हम आखी बात।'

(प्राचीन पंथ प्रकाश—भंगू)

इस गिनती में अधिक संख्या काफ़ले के बाल बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों आदि की थी जो चारों तरफ़ से घिर जाने के कारण कत्लेआम का शिकार हुए। बड़ा कारण यह भी था कि सिंघों को अब्दाली की इतना शीघ्र आने की आशा नहीं थी। दूसरा अब्दाली के पास फ़ौज ही थी, परिवारों की रक्षा का कार्य नहीं था। सिंघों ने चारों ओर दुश्मन को मारा और साथ-साथ काफ़ले को भी बचाकर निकाला। ऐसे कष्ट के समय दिल मज़बूत करके ऐसी कठिन जिम्मेदारी निभाना आम व्यक्ति का काम नहीं हो सकता था।

इतना जानी नुक्सान होने के पश्चात् सिंघ यह कह रहे थे कि ख़ालसा इस घल्लूघारे (सर्वनाश) की आग में तपकर शुद्ध सोना बन गया है। मालवे के सिक्खों ने अपने ज़ख़्मी भाईयों की मलहम पट्टी की और उनका इलाज किया। सिंघ घबराए नहीं, दुरानी अभी लाहौर में ही था, मई 1762 में सिक्खों ने सरहिन्द पर धावा बोला और दुश्मनों को दण्ड दिया। पचास हज़ार रुपए भेंट करके ज़ैन ख़ां ने सिंघों से पीछा छुड़ाया। सरहिन्द से दिल्ली तक सिंघों के दल मारधाड़ कर रहे थे और किसी के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वे इनसे आकर टक्कर ले। सिंघ चाहते थे कि अब्दाली से बदला अवश्य लिया जाये। 17 अक्तूबर, 1762 की दीवाली को 60 हज़ार सिंघ अमृतसर इकत्रित होकर आये। दुरानी ने संधि करने हेतु दूत भेजा परन्तु व्यर्थ, सिंघों ने करारे हाथ दिखाकर भगा दिया तथा वह लाहौर वापस चला गया।

सिंघ लख्खी जंगल की ओर आ गये और नवम्बर 1762 में उसी लख्खी जंगल की ओर भी फ़ौज भेजी लेकिन वे सिंघों का कुछ न बिगाड़ सके। आख़िर परेशान होकर दस-ग्यारा मास ठोकरें खाकर और 40 लाख वार्षिक लेना करके लौटते समय आलमगीर सानी के पुत्र अलीगौहर को तख़्त पर बिठाकर नजीबुदौला को उसका वज़ीर नियुक्त करके और ख़वाजा अबीद ख़ां को हाकिम लाहौर और काबली मल्ल को उसका दीवान बनाकर अहमदशाह दुरानी 12 दिसम्बर, 1762 को अपने देश अफ़ग़ानिस्तान को लौट गया। सिंघों ने उसको झना तक लूटा, दो लाख मराठों को मार मार कर आगे भगाने वाला अब्दाली हैरान था कि मैं अभी इस कौम को सख़्त चोट मारकर वापस लौटा हूँ, परन्तु ये फिर भी लड़ाई करने हेतु

तत्पर रहते हैं। दल ख़ालसे ने पहले की तरह फिर कुछ समय में ही सारा पंजाब अपने अधिकार में ले लिया।

ब्राह्मणी की रक्षा

अप्रैल 1763 की वैशाखी अमृतसर में बहुत धूम-धाम से मनाई गई। इस समय कसूर से दुःखी ब्राह्मण फ़रियाद लेकर आये कि जाबिर उसमान ख़ां ने एक ब्राह्मणी को ज़बरदस्ती मुसलमान बना लिया है, ख़ालसा रक्षा करे। कसूर 10-12 दुर्ग बने होने के कारण तथा धनी नवाबों के पास बहुत जंगी सामान होने के कारण एक तरह अजय शहर गिना जाता था। कई समझदार व्यक्तियों ने सलाह दी कि कसूर पर आक्रमण न किया जाए, परन्तु सरदार हरी सिंघ भंगी और सरदार चढ़त सिंघ ने निर्णय लिया कि इस ग़रीब ब्राह्मणी की रक्षा करना ख़ालसे का धर्म है।[1]

तुम चलो कोऊ ना चलो अब मैं तो जाऊ ज़रूर है।
हम तो शहीदी लेहुंगो, जे टुटे नाहि कसूर है।

(पंथ प्रकाश)

तरना दल के, जिसमें भंगी, रामगढ़िया, शुक्रचक्किया, नकई तथा कन्हैया मिसल शामिल थे, 24 हज़ार सिंघों ने कसूर पर आक्रमण किया, उसमान तथा उसके 500 साथियों और ग़ुलाम मुहयुदीन को मारकर ब्राह्मणी, ब्राह्मण को दिलाई। इस आक्रमण से ख़ालसे के हाथ लूट का बहुत माल लगा। बुड्ढा दल जिसमें मिसल आहलूवालिया, सिंघपुरिया, डलेवालिया, करोड़सिंघिया, निशानांवाली और शहीदां वाली शामिल थी, जालंधर दुआब की ओर निकला। नवम्बर, 1763 में दुरानी के सेनापति जहान ख़ां ने फिर आक्रमण किया परन्तु उसको सिंघों ने पीछे भगा दिया, वह सयालकोट के दुर्ग पर आकर जम बैठा परन्तु सिंघों ने उसको यहां से भी खदेड़ दिया। उसका परिवार सिंघों के कब्ज़े में आ गया, परन्तु इन्होंने उसको पूर्ण सुरक्षा के साथ जम्मू भिजवा दिया, ये सिंघों के स्वच्छ सदाचार के लिए साधारण बात थी।[2]

---

1. डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 192.
2. *वही*, पृष्ठ 194.

घल्लूघारे का बदला लेने के लिए सिंघों ने दिसम्बर 1763 में मलेरकोटले के नवाब भीखण ख़ां को जा मारा और 14 जनवरी, 1764 को सरहिन्द जीत कर ज़ैन ख़ां को मार डाला। जहां जहां भी सिंघ जाते, अपने निशान रखकर इलाकों पर अधिकार करते जाते। परन्तु 'गुरु-मारी सरहिन्द को कोई सिंघ लेने के लिए तैयार न हुआ। शहर के निवासियों ने भाई बुड्ढा सिंघ को ख़ुशी ख़ुशी अपना हाकिम नियुक्त किया, परन्तु उसने भी 25 हज़ार रुपए सरहिन्द बाबा आला सिंघ को देकर पीछा छुड़ाया, उधर तरना दल ने दक्षिण-पश्चिम और उत्तर पश्चिम डेराजात, खुशाब, और धन्नी पोठोहार तक सारे इलाके अधिकार में लेकर फ़रवरी 1764 में लाहौर पर धावा बोला। यहां सरदार हरी सिंघ भंगी ने काबली मल्ल के हार मान लेने के कारण उसके साथ अपना ऐजंट टेक चन्द नियुक्त किया।[1]

फ़रवरी 1764 में बुड्ढा दल ने चालीस हज़ार सिंघ लेकर बूड़िया घाट से जमना पार कर गंग दुआब पर जा आक्रमण किया और सहारनपुर, देउबंद, नजीबाबाद, मुज़फ्फर नगर, मुरादाबाद, गढ़ मुकतेसर पर कब्ज़ा किया। जलालाबाद लहारी के नवाब बहुत चरित्रहीन और हिन्दुओं की बहू-बेटियों की इज़्ज़त लूटते थे, सिंघों ने उनको भी सबक सिखाया और हिन्दु लड़कियों को छुड़ाकर लाये। आगे से कट्टड़वादी हिन्दु समाज भी उनको अपने में शामिल करने के लिए तैयार नहीं था। सिंघों के दल ने उन लड़कियों से भोजन बनवाकर आप खाया और समस्त हिन्दुओं को भी खिलाया। फिर ग़रीब नवाज़ ख़ालसे ने उनको 'अपनी बेटियां' कहकर और हज़ारों रुपए देकर अपने अपने घर भेजा। ब्राह्मणों ने सिंघों को आशीर्वाद दिये। नवम्बर 1764 ई॰ में 15 हज़ार सिंघ 11 लाख ख़र्च लेना करके जवाहर सिंघ भरतपुरिये की सहायता के लिए जमना पार गये, काफ़ी समय रुहेलों के साथ युद्ध होता रहा। अन्त दुरानी के आक्रमण

---

1. वाहन शिंगारे रहैं बाजते नगारे रहैं,
वैरी भूमि डारे रहैं मूंड युत ताज के।
संगतैं आबाद रहैं आवते प्रसाद रहैं,
बाढे अहिलाद रहैं धरम सु काज के।
गद्दीआं अटल रहैं चौकीआं अचल रहैं।
बुंगे झला झल रहैं सहित समाज के।
लागते दीवान रहैं गावते सुजान रहैं,
झूलते निशान रहैं पंथ महाराज के। *(पंथ प्रकाश, अध्याय 97)*

की ख़बर सुनकर सिंघ पंजाब की ओर वापस आ गये।

दुरानी सातवीं बार आक्रमण करके दिसम्बर 1764 में लाहौर पहुँचा। इस हमले के समय काज़ी नूर मुहंमद उसके साथ था, जिसने *जंगनामा* 1765 में लिखा। दुरानी के साथ कोई चालीस हज़ार फ़ौज थी, अठारह हज़ार उसकी अपनी और बारह हज़ार बलोची सेना, जो कि मीर नासिर ख़ां कलातिये की देख-रेख में थी। नासिर ख़ां मक्के की हज को चला था परन्तु दुरानी ने 'जेहाद' का अधिक पुण्य बताकर उस को अपने साथ कर लिया। सिंघ लख्खी जंगल की तरफ़ निकल गये। दुरानी ने आते ही अमृतसर का हरिमंदर गिराया और यहां गुरु-घर की रक्षा करते बाबा गुरबख़्श सिंघ की जत्थेदारी में तीस सिंघ युद्ध करते हुए शहीद हो गये।

नासिर ख़ां की देख-रेख में गश्ती दस्ते सिंघों को मारने के लिए भेजे गये, परन्तु उनको कोई सफलता प्राप्त न हुई। बल्कि बहुत स्थानों पर सिंघों के दलों ने टक्कर लेकर उनको परेशान किया। स्थान-स्थान पर सिंघों का प्रभाव देखकर सरहिन्द की हुकूमत भी सरदार आला सिंघ को सौंप दी गई। 'विदेशी हत्यारों के हाथों से यह सम्मान क्यों प्राप्त किया' इस बात पर ख़ालसे ने बाद में आला सिंघ को तनख़ाह (जुर्माना) भी लगाई। अब्दाली घूम घुमा कर रोपड़ से वापस लौटा तो यहां सिंघ दुरानी फ़ौज पर टूट पड़े। काज़ी नूर मुहम्मद *जंगनामे* में लिखता है कि 'अहमद शाह ने अपने फ़ौजदारों को कहा कि अपना ठिकाना छोड़कर आगे न बढ़ें, यद्यपि दुश्मन चाहे आपकी ओर आए।' काज़ी फिर लिखता है कि 'हम लगभग छह मील ही गये कि काले कुत्ते (नीले वस्त्रों वाले) सिंघों ने हमारे उपर फिर आक्रमण किया, वे शेरों की तरह आये और चालाक लूमड़ी की तरह चले गये। ये बुरे आदमी रोज़ मैदान में आकर लड़ते और भाग जाते थे। यह भागना भी इनका युद्ध को बढ़ाने के लिए बड़ा शक्तिशाली तरीका है।' ऐसे धावे मारकर सिंघों ने काबली कुत्ते दुरानी को बहुत तंग किया। अन्त निराश होकर अब्दाली मार्च 1765 को अपने देश वापस चला गया। 10 अप्रैल, 1765 की वैशाखी को सिंघ अमृतसर इकत्रित हुए और लाहौर को कब्ज़े में करने का गुरमता पास किया। इस समय हाकिम काबली मल्ल लाहौर से बाहर था। 16 अप्रैल, 1765 को सरदार लहणा सिंघ, गुज्जर सिंघ भंगी तथा सोभा सिंघ कन्हैया

ने लाहौर पर अधिकार किया और 16 मई को गोबिन्द शाही सिक्का चलाया।[1] इस ऊपर वही शब्द थे जो इससे 55 वर्ष पूर्व बंदा सिंघ बहादुर ने सरहिन्द विजय समय अपनी सरकारी मुद्रा पर अंकित करवाये थे:

'देगो तेग़ो फ़तह व नुसरत बेदरंग
याफ़त अज़ नानक गुरु गोबिन्द सिंघ।'

●

1. डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 245.

सरदारी युग

(1765-1799 ई०)

ऐसी लाल तुझ बिनु कउनु करै ॥
गरीब निवाजु गुसईआ मेरा माथै छत्रुधरै ॥
नीचह ऊच करै मेरा गोबिंदु, काहू ते न डरै ॥

(रागु मारू बाणी रविदास जीउ की, पन्ना 1106)

इन गरीब सिखयन को दयैं पातशाही ।
यह याद रखैं हमरी गुरियाई ।

(प्राचीन पंथ प्रकाश—रतन सिंघ भंगू)

नाम गरीब निवाज़ हमारा ।
है जग महि प्रसिद्ध अपारा ।
सो सफला जग मैं तब थै है ।
लघू जातन को बडपन दै है ।
जिन की जात वरुण कुल माही ।
सरदारी नहिं भई कदांही ।
इन ही को सरदार बनावउँ ।
तबै गोबिन्द सिंघ नाम कहावउँ ।

(पंथ प्रकाश—ज्ञानी ज्ञान सिंघ)

राज करेगा खालसा, आकी रहहि न कोइ ।
खुआर होइ सभ मिलहिंगे, बचहि शरन जो होइ ।

(रहितनामा)

सरदारी युग

(1765-1799 ई०)

पंजाबी का प्रसिद्ध कवि सय्यद वारिस शाह अपनी रचना *किस्सा हीर रांझा* के अन्त में 1765-66 ई० में सिक्खों की चढ़दी कला देखकर लिखता है :

अठारां सै बाईसीआ संमतां दा राजे बिक्रमजीत दे साल होई।
तदों देस दे जट्ट सरदार आहे, घरो घरी जां नवीं सरकार होई।
पिआ मुलक दे विच सी बड़ा रौला, हर किसे दे हथ्थ तलवार होई।
अशराफ खराब, कमीण ताजी, ज़िमींदार नूं वडी बहार होई।
चोर चौधरी, यार ने पाक दामन, 'भूत मंडली' इक दू चार होई।

अब एक तरफ़ हिन्दुस्तान का पुरातन धर्म ग्रन्थ था, जो मेहनत करने वाले निर्धन लोगों को नीच और शुद्र कहकर तिरस्कारता था, उनका कोई सामाजिक अस्तित्व स्वीकार नहीं करता था, दूसरी ओर मुसलमानी हुकूमत का हमदर्द, ख़ानदान का सय्यद वारिस शाह इन भूरियां वाले राजाओं को 'कमीन' और 'भूत मंडली' कहकर याद करता है। ऐसे समाजिक और राजसी वातावरण वाले देश में गुरु गोबिन्द सिंघ का यह कहना है कि मैं गाय से शेर बनाऊँगा, चिड़ियों से बाज़ तुड़वाऊँगा और इन नीच और ग़रीबों को शाही सिंहासन पर बिठाऊँगा,[1] यह कथन दोनों कौमों अर्थात हिन्दुओं और मुसलमानों के हाकिमों की इच्छा के प्रतिकूल शब्द-शब्द सत्य हो रहा था।

यह सिक्खों की इनकलाबी श्रेणी, जिसको वारिस शाह 'भूत मंडली'

---

1. गुज्जर गुआर हीर कमजात। कंबो सूद्रन को पुछे न बात।
झीवर नाई रोड़े घुमियार। सैणी सुनयारे चूहड़े चमयार।
इन ग्रीब सिखयन को दयैं पातशाही। यहि याद रखहिं हमरी गुरिआई।
(प्राचीन पंथ प्रकाश—भंगू)

कहता है, बल्कि देश को बहुत समय से चिपके भूतों (विदेशियों) से पीछा छुड़वा रही थी। एक नया भूत अहमदशाह अब्दाली जो रोज़ दिल्ली के सिंहासन के सपने लेता था, उसको देश से निकालकर लोगों को स्वतन्त्रता के राह पर ले जा रही थी।

इस समय यमुना से लेकर अटक तक सिंघों का अधिकार था। दुश्मन से निपटने के पश्चात् अब दुश्मन के हितैषियों को सोधना (सुधारना) अनिवार्य था, क्योंकि आला सिंघ ने अहमदशाह की लिखित स्वीकार करके कौमी अपमान वाली बात की थी, इसलिए दल ख़ालसा ने प्रथम सरदार हरी सिंघ भंगी की अगुवाई में पटियाले पर आक्रमण किया। लंग गाँव के नज़दीक झड़प हुई, जिसमें सरदार हरी सिंघ मारा गया और इससे तुरंत बाद समझौता कर लिया गया। बाबा आला सिंघ भी इस बात को महसूस कर रहा था, ऐसी हालत में 7 अगस्त, 1765 को उसका देहांत हो गया।

ख़ालसे की दृष्टि में दिल्ली की तरफ़ के उन दुष्टों को सोधना भी अनिवार्य था जो अब्दाली जैसे जरवाने की सहायता लेकर फिर अग्रगामी शक्तियों को नीचा दिखाने की इच्छा में थे। इसलिए अक्तूबर 1765 में बुड्ढा दल और तरना दल दोनों नजीबुदौला रुहेले को सोधने के लिए जमुना पार गये। दिसम्बर 1765 में शामली के नज़दीक रुहेला फ़ौजों के साथ सिंघों की टक्कर हुई, इस समय राजा अमर सिंघ पटियाला ने रुहेलों की सहायता की। जवाहर मल्ल को मराठों का भय था, इसलिए सिंघ उसकी सहायता के लिए गये, उसने 7 लाख नज़राना ख़ालसे को भेंट किया, यहां जाटों और सिंघों दोनों ने मिलकर फ़रवरी 1766 ई० में रिवाड़ी और जोधपुर के इलाकों पर विजय प्राप्त की। मार्च 1766 ई० में धौलपुर के पास सिंघों और मराठों की करारी टक्कर हुई, सिंघ पहले तो भाग गये, परन्तु मराठे उनके इस दाव को समझ न सके, बाद में वापिस घूम कर सिंघों ने फिर उनको बुरी तरह पराजित किया। इस तरह रुहेलों के साथ भी कई मुकाबले होते रहे। ज़िला मुरादाबाद के शहर कांशीपुर में रुहेलों ने धक्के से हज़ारों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था, सिंघों ने उनकी रक्षा की और 9-10 सिक्ख परिवार उनकी रक्षा के लिए वहीं रह गए। जिनके नाम पर अब भी उस नगर में दो मुहल्ले—'मुहल्ला सिंघां' और 'मुहल्ला ख़ालसा' मौजूद हैं।

नवम्बर 1766 में आठवीं बार अब्दाली ने फिर आक्रमण किया। कहते हैं, बंगाल वाले मीर कासिम ने सहायता हेतु उसको बुलावा भेजा

था। जेहलम के पास किला रुहतास के आस-पास उसका सिंघों के साथ ज़बरदस्त युद्ध हुआ, काफ़ी सिंघ शहीद हुए। दिसम्बर 1766 में दुरानी लाहौर पहुँचा। सिंघ लाहौर छोड़कर इधर उधर निकल गये। शहर के लोगों ने दुरानी को निवेदन किया—सरदार लहणा सिंघ बहुत ईमानदार हाकिम है और बिना किसी भेद-भाव के हिन्दुओं तथा मुसलमानों को प्यार करता है, यह जानकर दुरानी ने रहमतुला बेग के हाथ कुछ काबली मेवे भेजकर सरदार लहणा सिंघ को लिखा कि मेरी ओर से आप लाहौर की सूबेदारी आकर संभालो। सय्यद मुहम्मद लतीफ़ लिखता है कि सरदार लहणा सिंघ ने सूबेदारी और मेवे वापिस करते हुए कुछ अनाज के दाने भेजकर दुरानी को लिखा कि मेवे ऐश्वर्यवान् और अमीर बादशाहों की ख़ुराक है, मैं तो साधारण किसान हूँ, किसानों के लिए यही अनाज अच्छा है।[1]

7-8 आक्रमणों के अनुभव से अब्दाली अब समझता था कि सिंघों की शक्ति को किसी तरह भी रोका नहीं जा सकता, इसीलिए वह संधि के लिए विनती कर रहा था, परन्तु स्वाभिमानी सिंघों ने दुश्मन के साथ किसी तरह भी संधि करने से इन्कार कर दिया। उसने जहान ख़ां को 15 हज़ार फ़ौज देकर सिंघों को मारने हेतु अमृतसर की ओर भेजा, परन्तु आधी फ़ौज मरवाकर जहान ख़ां लाहौर वापस लौटा। अब्दाली नज़राने लेता सरहिन्द की ओर आया तथा अमर सिंघ पटियाला वाले को 'राजाए राजग़ान' का ख़िताब दिया, यह इसलिए कि इसको ख़ालसा दल से अलग करके अपने साथ अच्छी तहर से मिला लिया जाये। नजीबुदौला भी इधर अब्दाली को मिलने के लिए आया। सिंघों ने जमुना पार, उधर उसके इलाके को जाकर लूटा। जहां रुहेलों के साथ सिंघों का युद्ध हो रहा था, पीछे से जहान ख़ां फ़ौज लेकर आ गया, सिंघ बीच में घिर गये। मसकीन की लिखित अनुसार—नौ हज़ार सिंघ इस युद्ध में मारे गये तथा जहान ख़ां ने सिंघों के सिरों की आठ बैलगाड़ियां लाद कर अब्दाली की ओर भेजीं, परन्तु ख़ालसा दल ने वे रास्ते में छीन लीं तथा उनका संस्कार किया।

अन्त में थका-हारा बूढ़ा अब्दाली दादन ख़ां को लाहौर का सूबेदार नियुक्त करके स्वयं काबुल को वापिस लौट गया तथा सिंघों ने पहले

---

1. डॉ. नारंग, पृष्ठ 238; डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 262.

की तरह फिर जगह जगह पर समस्त पंजाब को अधिकार में ले लिया। दिसम्बर 1768 ई० तथा दिसम्बर 1769 में नौवीं तथा दसवीं बार दुरानी ने दो अंतिम आक्रमण किये, परन्तु सिंघों ने उनको जेहलम अथवा झना भी पार न करने दिया। दोनों बार बुरी तरह से पीछे धकेला। अब अब्दाली को पूरी तरह से समझ आ गई थी कि सिंघ ही अपनी भूमि के मालिक हैं, इस भूमि को पहले की तरह अब 'शिकार-गाह' बनाकर प्रयोग नहीं किया जा सकता।

गंग-दुआब पर आक्रमण

दिसम्बर 1767 में नजीबुदौला की ख़बर लेने हेतु सिक्खों ने गंग-दुआब[1] पर एक बार फिर भारी आक्रमण किया। सिंघों ने नजीबुदौला को बुरी तरह पराजित किया। अंत में इसके पुत्र ज़ाबता ख़ां ने जलालाबाद के नज़दीक सिंघों को ख़िराज देकर संधि कर ली। गुज्जर राय मल्ल (लंढोरा), फ्रांसीसी वालटर लेन हार्ड (समरू), जो मेरठ के इलाके में छोटी-सी रियासत 'सरधना' का मालिक था, इन्होंने भी सिंघों को नज़राने भेंट किये तथा जवाहर मल्ल भरतपुरिया तो पहले से ही सिंघों का आभारी था। इस प्रकार मार्च, अप्रैल 1768 में दिल्ली के आसपास सिंघों का अच्छा प्रभाव पड़ा। शाह आलम सानी ने इलाहाबाद से लिखा कि यदि यह खालसा मेरी सहायता करे तो मैं बड़ा धन्यावादी हुँगा, परन्तु ऐसा न हो सका। सिंघ पंजाब की अच्छी तरह संभाल करने में व्यस्त थे। बाद में जनवरी 1772 ई० में मराठों ने बादशाह के साथ संधि करके उसको दिल्ली ले आये। इस समय सिंघ यमुना से लेकर सिंध भख्खर तक तथा दक्षिण की ओर मुलतान से लेकर उत्तर की शिवालिक पहाड़ियों तक फैले हुए थे।

इस तरह सिंघों की तलवार ने हिन्द की सीमा को इस प्रकार चट्टान जैसा पक्का बना दिया था कि कोई दुश्मन पराजित हुए बिना इधर आ जा नहीं सकता था। जनरल बारकर ने सरदार झण्डा सिंघ भंगी के नाम 19 अगस्त, 1771 को लिखे पत्र में जो कहा था, वह एक ऐतिहासिक सच्चाई थी :

---

1. ख़ालसा दल ने गंग-दुआब पर अनेकों आक्रमण किये। इनमें से 17 का वर्णन विलियम साहिब ने *कलकत्ता रीवियू*, जिल्द 90 में किया है। सरदार करम सिंघ जी ने *फुलवाड़ी* (1934) के फ़रवरी, मार्च, अप्रैल, मई, जून के अंकों में यह समस्त वर्णन सविस्तार दिया है। देखें *करम सिंघ हिसटोरीयन दी ऐतिहासिक खोज* (पंजाबी)(1964)।

"It is clear that as long as the Khalisah army is on the watch, no one can march upon Hindustan unopposed."[1]

सिंघों के तीन दुश्मन थे—मुग़ल सरकार, दुरानी और नजीबुदौला। मुग़ल लगभग समाप्त हो चुके थे। दुरानी और नजीबुदौला बूढ़े होने के कारण मरने के किनारे थे। 1770 में नजीबुदौला तथा कई वर्षों तक नाक के नासूर के कारण दुःख भोगते हुए अब्दाली की 16 अक्तूबर, 1772 में मृत्यु हो गई। 1771 में सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया की देख-रेख में सिंघों ने फिर एक बार कसूर पर आक्रमण किया, इस तरह पहाड़ी रियासतों—चंबा, कांगड़ा, मंडी, जम्मू आदि से भी सिंघों ने नज़राने लिए और अपना दबदबा बनाया। इस समय सतिलुज पार फूलकियाँ और डल्लेवालिया, शहीदां, करोड़ियां और निशानांवाली मिसल का अधिकार था। जालंधर दुआब पर आहलूवालिया, सिंघपुरियां, करोड़सिंघियां और मिसल डल्लेवालियां का अधिकार था। बारी दुआब पर कन्हैया और नकईयों का अधिकार था। रचना दुआब, चज्ज दुआब और सिंध सागर दुआब का इलाका अधिकतर भंगियों और शुक्रचक्कियों के अधिकार में था, कुछ थोड़ा-सा नकईयों के पास भी था। प्रत्येक सरदार स्वतन्त्र था। जिसने जहां पर अधिकार कर लिया वहां ही उसका कब्ज़ा मान लिया गया।[2] परन्तु जब सिंघों के साझे दुश्मन दुरानी आदि मर चुके थे, फिर पंथक लाभों के स्थान पर जाति लाभ मुख्य हो जाने के कारण मिसलों के सरदारों के प्रांतिक विभाजन को लेकर आपस में युद्ध होने लगे।

1772 में मुग़ल सरकार दिल्ली से मुग़ल अली ख़ां को हाकिम सरहिन्द बनाकर भेजा गया, परन्तु मई 1772 में ही सिंघों ने उनको पराजित करके भगा दिया और दिल्ली सरकार भी चुप रही। फिर 1773 से सिंघों ने लगातार गंग-दुआब पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये और अधिकार करके, 'राखी या कंबली' (मालिया) प्राप्त करने लगे। 1773 में सरदार चढ़त सिंघ की मृत्यु हुई।

अप्रैल 1775 में सिंघों ने फिर जमुना पार धावा बोला और नजीबुदौला का पुत्र ज़ाबता ख़ां ने दिल्ली में आकर शरण ली, आगे यह 1777 ई०

---

1. Ganda Singh, *Ahmad Shah Durrani*, p. 325.
2. हम पातशाही सतगुर दई, हनै हनै लाइ।
   जहिं जहिं बहै ज़मीन मल्ल, तहिं तहिं तख़त बनाइं। *(प्राचीन पंथ प्रकाश)*

में सिंघ बनकर 'धर्म सिंघ' कहलाया और इसका पुत्र ग़ुलाम कादर रुहेला भी पाहुल लेकर (अमृतपान करके) 'करम सिंघ' बना। ज़ाबता ख़ां के बारे में प्रसिद्ध था :

'ऐसा एक गुरु का चेला। आधा सिक्ख आधा रुहेला।'

यह अंत समय तक सिक्ख-धर्म और सिक्खों का विश्वास-पात्र रहा और 21 जनवरी, 1785 में इसकी मृत्यु हुई।

1775 में वैशाखी को सिंघ अमृतसर में एकत्र हुए और 7 लाख रुपए का चन्दा एकत्र करके सुरसिंघ वाले भाई देस राज की देख-रेख में दरबार साहिब का दुबारा निर्माण करवाया। 1778 में बावा प्रीतम दास और बावा संतोख दास ने सरोवर की हंसली तैयार करवाई। 1776 में मिसल आहलूवालिया ने मिसल रामगढ़िया को देश से बाहर निकाल दिया और वह हांसी हिसार की ओर निकल गये। उधर भी सिंघों ने अपने धार्मिक कर्तव्य की पूरी पालना की। 1780 में जस्सा सिंघ रामगढ़िये ने हाकिम हिसार को सोधकर दो ग़रीब ब्राह्मण लड़कियों को छुड़ाया और ख़ालसे की जै जै कार हुई।

इस समय दिल्ली के सिंहासन पर शाह आलम था, परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं था। आस-पास मराठों, रुहेलों, जाटों और राजपूतों ने जगह जगह पर अधिकार किये हुए थे। अंग्रेज़ अपनी हुशियारी से बादशाह से बंगाल, बिहार और उड़ीसा का दीवानी इन्तज़ाम अपने हाथ ले चुके थे, जिससे ईस्ट इंडिया कम्पनी को ख़र्च निकालकर एक करोड़ से ज़्यादा वार्षिक आमदन थी। जनवरी 1775 ई० में अंग्रेज़ों का यह दोस्त, अवध का नवाब शुज़ा दौला भी मर गया। इससे शीघ्र अवध में फ़िरंगी शक्ति और ज़ोर पकड़ गई। इस समय सर्वाधिक राजनीतिक सूझ और अग्रगामी सोच से चलने वाले फ़िरंगी थे। कूटनीति में इनका मुकाबला करने वाला हिन्दुओं में कोई नहीं था।

1772 में माधोराव पेशवा मर चुका था। इसलिए मराठा-एकता भी स्थिर न रही। सिंघ, पंजाब का सम्पूर्ण अधिकार अपने हाथ में लेकर अब गंग-दुआब की ओर अधिक मल्लें मारने में व्यस्त थे। ये एक बार ही नहीं बल्कि दर्जनों बार इन्होंने जमुना पार करके बादशाह दिल्ली से ख़िराज प्राप्त किया, और कई स्थानों पर अपना 'राखी सिसटम' भी लागू किया।

तैमूर के आक्रमण

दुरानी के पुत्र तैमूरशाह ने अपने पिता का समय याद करके पांच बार हिन्द पर आक्रमण करने का असफल प्रयास किया। प्रथम बार जनवरी 1775 ई० में आक्रमण किया, तो सिक्खों ने झनां से ही पीछे भेज दिया। दूसरी बार 1780 ई० के आरम्भ में आया तथा 8 फ़रवरी, 1780 को मुल्तान के नज़दीक सिंघों के साथ भारी युद्ध हुआ, जिसमें तैमूर सिक्खों से मुल्तान जीतने में सफल हो गया। तीसरी बार नवम्बर 1780 ई० में बहावलपुर से नज़राने लेकर वापिस गया तथा सिक्खों की ओर मुह तक न किया। इस समय सिक्ख मुल्तान के नज़दीक अपनी राखी की वसूली प्राप्त कर रहे थे तो तैमूर की सेना का साहस न हुआ कि इनके साथ टक्कर लें। चतुर्थ बार दिसम्बर 1785 में कश्मीर के बाग़ी हाकिम आज़ाद ख़ां को ठीक करने हेतु तैमूर की 30 हज़ार सेना आक्रमण करने हेतु आई, परन्तु उसने हार न मानी, अंत में आज़ाद ख़ां मारा गया तथा मई 1786 ई० में तैमूर की सेना वापस लौटी। पांचवीं बार दिसम्बर 1788 ई० में तैमूर ने एक लाख बीस हज़ार सेना लेकर हिन्द पर आक्रमण किया। बात यह थी कि निर्लज्ज राजपूत बार बार संदेश और दूत भेज रहे थे कि हमे महाद जी सिंधिया की मार से बचायें। राजा बिजै सिंघ जोधपुर वाले ने तैमूर को 20 लाख देना स्वीकार किया और तीन हज़ार ऊँट पानी पहुँचाने के लिए भेजने स्वीकार किये थे, परन्तु तैमूर का साहस न हुआ कि वह सिंघों की लोहे की दीवार को तोड़कर दिल्ली पहुँच सके। इसलिए यह बहावलपुर की ओर से ख़िराज प्राप्त करता हुआ अपने देश वापस लौट गया। अहमदशाह के बाद तैमूर ने यदि थोड़ा बहुत ज़ोर लगाया तो उसका अधिकार ज़्यादातर मुसलमानों के इलाकों में जैसे कि पेशावर, बहावलपुर, सिंध, मुल्तान और कश्मीर तक ही रहा। इससे आगे कभी वह पंजाब की तरफ़ पग न बढ़ा सका। कारण केवल एक ही स्पष्ट था कि सिक्खों की बढ़ती हुई शक्ति के आगे उसकी कोई पेश चलती नज़र नहीं आती थी। एक अंग्रेज़ी सैलानी मिस्टर फार्स्टर जो 1783 ई० में पंजाब से गुज़रा, वह सिक्ख मिसलों की फ़ौजी संख्या दो लाख देता हुआ लिखता है—मुझे यह कहने में ज़रा संकोच नहीं कि सिक्ख शीघ्र ही देशी राज्यों में सर्वाधिक शक्तिशाली बन जायेंगे और पड़ोसी राज्यों के लिए भयशाली होंगे।

"I have little hesitation in saying that the Sicques (Sikhs) would be soon advanced to the first rank amongst

the native princes of Hindustan and would become a terror to the surrounding states."

(ए जरनी फ़राम बंगाल टू इंग्लैंड, पृष्ठ 295)

ब्राऊन का अनुमान 73 हज़ार घुड़सवार और 25 हज़ार पैदल सिक्ख सेना है। जेमज़ रीनैल एक लाख सेना, जार्ज थामस 65 हजार, कर्नल फ्रैंकलन 64 हज़ार, ग़ुलाम सरवर 68 हज़ार और इमामुदीन 70 हज़ार सिक्ख फ़ौज की गिनती देता है।[1]

इस समय समस्त हिन्दुस्तान में ऐसी शक्तिशाली और बड़ी सेना अन्य कोई भी नहीं थी, परन्तु हर मिसल स्वतन्त्र होने के कारण यह समस्त शक्ति केंद्रित न हो सकी, यदि 1765 में ही इसको कोई 'रणजीत सिंघ' मिल जाता तो ब्रिटिश शासन का हिन्दुस्तान के इतिहास में नामो-निशान न होता। पंथ का बूढ़ा जरनैल सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया, जिसको सिक्ख 'बादशाह सिंघ' कहते थे, 1783 में स्वर्गवास हो गया। सरदार बघेल सिंघ करोड़सिंघिया, करम सिंघ निर्मला, सरदार भाग सिंघ थानेसर, सरदार गुरदित सिंघ लाडवा, दीवान सिंघ, ख़ुशहाल सिंघ, साहिब सिंघ खौंडा, तारा सिंघ कक्कड़, स. दुलचा सिंघ, गजपत सिंघ, राय सिंघ भंगी, शेर सिंघ आदि सरदारों की देख-रेख में सिंघों का दल जमुना पार कर मारो मार कर रहा था। दूसरी तरफ़ मराठे भी दिल्ली पर अधिकार करने की कोशिश में थे।

दिल्ली सरकार की तरफ़ से शाही इलाके की रक्षा के लिए 1781 ई० में मिरज़ा शफी को दस हज़ार सेना देकर भेजा गया ताकि वह सिक्खों के आक्रमण करने वाले दलों को रोक सके। ज़ाबता ख़ां भी इसके साथ था, जो सिक्खों के साथ मित्रता रखता था। लेकिन शफी को सफलता नहीं मिली। आख़िर दिल्ली सरकार ने हार कर जमुना पार के इलाके का सिक्खों का अधिकार मंज़ूर कर लिया और राखी (मामला) की वसूली को जायज़ मान लिया। यह सिक्खों की बहुत बड़ी प्राप्ति थी।

ज़ाबता ख़ां और गजपत सिंघ ने यह समझौता अगस्त 1781 ई० को कराया। मार्च 1782 में नाज़फ़ ख़ां ने फिर मिरज़ा शफी को सिक्खों के विरुद्ध मुहिंम पर भेजा। अप्रैल 1782 में नाज़फ़ ख़ां की मृत्यु हुई। फिर मराठे और सिक्खों ने सलाह की कि दिल्ली की बादशाही ख़त्म करके अपना राज्य स्थिर किया जाये, परन्तु ऐसा न हो सका।

---

1. डॉ. नारंग, *ट्रांसफारमेशन ऑफ़ सिक्खिज़म,* पृष्ठ 278.

सरदार बघेल सिंघ जत्थेदार मिसल करोड़िया, जिनका करनाल के इलाके पर अधिकार था, उन्होंने सोचा, स्वयं ही क्यों न दिल्ली पर आक्रमण किया जाये। यह गुरमता करके चालीस हज़ार सिंघों ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। थोड़ी लड़ाई के पश्चात् सिंघ अजमेरी द्वार में से होकर शहर में दाख़िल हुए। बादशाह ने ख़ालसे को तीन लाख नकद भेंट किया तथा आगे के लिए शहर की चुंगी ख़ालसे को देनी स्वीकार की गई। सरदार बघेल सिंघ कुछ समय दिल्ली रहे तथा उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ तथा कोशिश से गुरुजनों के यादगारी स्थानों को खोजकर वहां पर गुरुद्वारे बनवाये। यह बात मार्च 1783 की है।

अंग्रेज़ इस अवस्था को अच्छी तरह देख रहे थे। दिल्ली में अंग्रेज़ों का प्रतिनिधि मेजर जेमज़ ब्राऊन था। उसने सिंघों के साथ गठजोड़ करने के लिए कई उपाय सुझाये। सरदार बघेल सिंघ, सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिया, सरदार लहना सिंघ लाहौर आदि के साथ उसका पत्र-व्यवहार भी होता था। एक स्थान पर मेजर ब्राऊन कहता है—सिंघों के संदेश पत्र-वाहक भी अनोखी मर्दों वाली दलेरी के मालिक थे, यह सब नई प्राप्त हुई आज़ादी का निष्कर्ष था। ब्राऊन ने, जैसा कि मराठी पत्रों से मालूम होता है, 1784 में यह भी सिक्खों को कहा कि तीन हिस्से तुम्हारे और पांच हिस्से अंग्रेज़ों के, आओ दिल्ली पर अधिकार करें।[1] मराठे नहीं चाहते थे कि सिक्खों तथा अंग्रेज़ों के बीच कोई ऐसी बात हो। जुलाई 1786 में फार्स्टर भी समझौते की बात करता रहा, परन्तु कोई योजना न बन सकी।

1783 में काल पड़ जाने के कारण 15 हज़ार सिक्ख घुड़सवार तथा 20 हज़ार पैदल, अपने परिवारों सहित पंजाब से गंग-दुआब की ओर निकल पड़े। बूड़िया घाट सिक्खों की छावनी बना हुआ था। 1784 में सिक्खों ने 'राखी' (रक्षा) की वसूली तथा दिल्ली के इलाके में कुछ लूट-मार की। गंग-दुआब के इलाके में सिंघ मालिये के रुपए पीछे सिर्फ़ दो आने प्राप्त करते थे।

1784 में महाद जी सिंधिया ने शाह आलम सानी को अपनी रक्षा अधीन ले लिया, अब मराठों के लिए आवश्यक हो गया था कि वे बादशाह के देश को सिंघों की मार से भी बचाया जाये। जनवरी 1785 में ख़ालसा

1. डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 142 (दूसरा भाग)।

दल ने चंदोसी तथा संभल दोनों स्थानों को पराजित किया। फ़िरंगियों को चिन्ता पड़ गई कि सिक्ख कहीं आकर अवध को न लूट लें। इसलिए सर जाँन कमिंग अंग्रेज़ कमांडर ने मराठों और सिंघों की आपस में लड़ाई करवाने की बहुत कोशिश की, जिसमें उसको काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। पानीपत के नज़दीक सिंघों तथा मराठों की ज़बरदस्त टक्कर हुई तथा मराठों का काफ़ी नुक्सान हुआ। महाद जी सिंधिया पहले ही सिंघों से भय खाता था, अन्त अंबा जी की कोशिशों से 31 मार्च, 1785 को सिंघों तथा मराठों के बीच संधि हुई कि दोनों के वैरी तथा दुश्मन साझे होंगे। सिंघों को दस लाख की जागीर दी जायेगी तथा नये विजयी इलाकों का तीसरा हिस्सा सिक्खों की सम्पति होगा। यह संधि फ़िरंगियों की कूटनीति के कारण पूर्ण न हो सकी, उनका लाभ तो इस बात में ही था कि यह दोनों प्रबल शक्तियां आपस में लड़ाई करके दुर्बल बन जायें, फलतः हम देश को अपने कब्ज़े में कर लें। फिर भी सिक्ख घुड़सवार जगह जगह पर अपना दबदबा जमाते फिरते थे, अवध से लेकर सिंध तक उनकी सम्पति थी। कई बार वे कच्छ के मैदानों तक तथा दूसरी तरफ़ अटक की दीवारों तक छापे मार आते। अकेला अकेला सिंघ सवार दुश्मनों के लिए आफ़त बना हुआ था। फार्स्टर ने एक बड़ी दिलचस्प सच्ची घटना लिखी है कि 28 फ़रवरी, 1783 की बात है, दो सिंघ घुड़सवार श्रीनगर गढ़वाल के इलाके देहरादून के पास चले गये, तो वहां एक तरह की उथल-पुथल मच गई, राजा और प्रजा सब ने मिलकर उनका स्वागत किया। वह बताता है :

> "We proceeded to kheynas roor—ten cosses. At this place, I saw two Sicque (Sikhs) horsemen, who had been sent from their country to receive the Sirinaghur tribute which is collected from the revenues of certain custom-houses. From the manner in which these men were treated, or rather treated themselves. I frequently wished for the power of migrating into the body of a Sicque for a few weeks–so well did these cavaliers fare. No sooner had they alighted, than beds were prepared for their repose and their horses were supplied with green barley pulled out of the field. The Kafilah travellers were contented to lodge on the ground and

expressed their thanks for permission to purchase what they required; such is the difference between those who were in, and those who were out of power."[1]

इस समय रुहेल खंड बिलकुल असुरक्षित था। सिंघों ने फ़रवरी 1787 में ग़ुलाम कादर से भी नज़राने लिए। फिर अंबा जी, सहित ग़ुलाम कादर रुहेले के, पंजाब की ओर आक्रमण किया, परन्तु उसको भी परेशान होकर वापिस लौटना पड़ा। अगस्त, सितम्बर 1787 में रुहेले तथा सिंघ मिलकर दिल्ली की ओर बढ़े और अंत में ग़ुलाम कादर रुहेला सफल हुआ। 10 अगस्त, 1788 को इसने बहुत बुरे तरीके से शाह आलम सानी की आँखों में पेश-कबज़ फेरकर अन्धा कर दिया तथा उसको सिहांसन से उतार दिया। परन्तु शीघ्र ही मराठे ग़ुलाम कादर को पकड़कर मथुरा ले आए और 4 मार्च, 1789 को उसका वध कर दिया।

जनवरी 1791 में सिक्खों ने फिर गंग-दुआब पर आक्रमण किया। 3 जनवरी, 1791 को कुछ मनचले भुझंगी सिंघ अनूप शहर चले गये तथा वहां की फ़िरंगी फ़ौज के कमांडर लैफ़्टीनैंट कर्नल राबर्ट स्टूअर्ट को कैद कर लिया। यह स. भंगा सिंघ की देख-रेख में थानेसर में 9-10 मास कैद रहा तथा गवर्नर जनरल के निवेदन करने पर तथा साठ हज़ार रुपए लेकर 24 अक्तूबर, 1791 को रिहा किया गया। स. भंगा सिंघ एक लाख रुपया मांगता था। अंत बेगम समरू द्वारा साठ हज़ार पर बात समाप्त हुई। सिक्ख शक्ति ऐसे शुगल-मेले और लूट-मार तक ही घूंमती रही। कोई दूर-अंदेशी वाली नीति बनाकर सारी सेना शक्ति को जत्थे-बन्द न कर सका। 12 फ़रवरी, 1794 को महाद जी सिंधिया भी चलाना कर गया, जो मराठों में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति था।

सरदारी के अवगुण

यह बात स्पष्ट है कि सिक्खों के हाथ में तलवार थी, परन्तु सारी शक्ति को केन्द्रित करके प्रबल राजनैतिक सत्ता कायम करने का कोई विचार नहीं था। अपनी अपनी सब की हुकूमत थी। कोई किसी का आदेश मानने के लिए तैयार नहीं था—सभी घुड़सवार और सभी सरदार। फार्स्टर एक स्थान पर यह भी लिखता है—मैंने एक सिपाही से पूछा, 'तुम्हारा

1. Forster, i, 227-9.

मालिक सरदार कौन है ?' तो उसने उत्तर दिया था, 'केवल गुरु के बिना हम किसी को बड़ा मालिक नहीं मानते।' यह स्वतन्त्रता की सीमा थी जिससे स्वेच्छा बढ़ती तथा व्यक्तिगत लाभों से दूर सोचने की गुंजाइश नहीं रह जाती। *तवारीख़ि-ए-हुसैन शाही* का रचयिता समकाली लेखक इमामुदीन भी यही बताता है कि, 'सिंध से जमुना तक सिक्ख कौम के हज़ारों सरदार थे, जिसके पास दो तीन से भी अधिक राके (घोड़े) थे, वह ही अपने आप को सरदार समझता था।' शक्ति के साथ अभिमान और पैसे का लालच पैदा होना स्वभाविक बात है और इस ख़ुदग़र्ज़ी की हालत में साझे कौमी लाभ का कोई महत्व नहीं रह जाता।

गुरुओं ने जो सिक्ख आदर्श कायम किया था, उसमें यह आवश्यक बात थी कि सिक्ख शान्ति के समय में 'भाई' बनकर सभी का भला करें और लड़ाई के अवसर पर 'सरदार' बनकर आगे युद्ध करें। इन सुवर्ण आदर्शों की पालना हेतु 60-70 वर्ष सिंघ युद्ध करते रहे। साझे दुश्मन के विरुद्ध कौम की ख़ातिर लगातार संग्राम करते रहे। परन्तु जब यह संकट समाप्त हो गये तो पंचायती आचरण वाले सिक्ख सरदार जागीरदारी निज़ाम के ढांचे में ढल गये और उनमें भी वह सरदारशाही के सभी अवगुण प्रवेश कर गये, जो मनुष्य को विश्वार्थी बनाने की बजाए स्वार्थी बनाकर सकुंचित कर देते थे।

दूसरी बड़ी बात यह भी नोट करने वाली है कि पीढ़ी बदल रही थी। पहली पीढ़ी के बहुत से सिंघ शहीदियां अथवा देहांत प्राप्त कर चुके थे और नई पीढ़ी सरदारी के ठाठ में लालन-पालन होने के कारण पवित्र आदर्शों के लिए उतनी पकड़ नहीं रखती थी। वह सर्वलोह की बजाए सोने के कंठे और कड़े पहनते और शराब आदि नशों का भी शिकार हो रहे थे। इसी कारण पुरातन-सिंघ-आचरण काफ़ी कम हो रहा था।

इस समय सिंघ, मराठे और अंग्रेज़ तीन ही शक्तियां थीं। सिक्खों के सामने कोई बड़ा उद्देश्य नहीं था, सिवाये सरदारी ठाठ में ही रहने के। मराठे भी इतने नीतिवान् और जत्थेबंद नहीं थे। अंग्रेज़ अवश्य इस अवसर की प्रतीक्षा में थे कि कैसे दोनों को दुर्बल करके दिल्ली पर अधिकार किया जाये।

मध्य पंजाब में मिसल कन्हैया का बहुत ज़ोर था। इसने रामगढ़िया और कांगडे वाले कटोचियों के सभी इलाके अधिकार में लिये हुए थे। इन दोनों ने मिलकर दुबारा अपने इलाके छीन लिये और जै सिंघ कन्हैया

का पुत्र गुरबख़्श सिंघ युद्ध में मारा गया। सतलुज उरार इलाके के सिंघ सदैव जमुना पार ही आक्रमण करते रहते थे और मुग़लों, मराठों, रुहेलों और फ़िरंगियों को बुरी तरह परेशान करते रहते थे। कई बार मराठे भी सिक्ख इलाके पर चढ़ आये, परन्तु उनको मुंह की खाकर पीछे होना पड़ा।

ज़मान शाह के आक्रमण

18 मई, 1793 को तैमूर की मृत्यु हुई और उसका पुत्र ज़मान शाह सिंहासन पर बैठा, इसने सिंहासन पर बैठते ही अपने बाबे अहमद शाह अब्दाली की सफलताओं को ध्यान में रखकर दिल्ली को जीतने की मन में इच्छा की। 1793 में उसने आक्रमण किया, परन्तु सिंघों ने अटक पर ही पराजित करके उसको पीछे धकेल दिया। कितना समय वह चिन्ताग्रस्त होकर आगे न बढ़ सका। दूसरी बार 1795 के अंत में शाह ज़मान फिर आया लेकिन पीछे हिरात में बग़ावत हो जाने के कारण वापस चला गया। तीसरी बार 1796 में वह, शाह आलमगीर सानी के संदेशा भेजने पर कि वह 50 हज़ार प्रतिदिन कूच वाले दिन का और 25 हज़ार रुपया प्रतिदिन पड़ाव वाले दिन सेना का ख़र्च शाह ज़मान को भेंट करेगा, हिन्द पर चढ़ाई की। शाह ज़मान ने शुक्रचक्रिये सरदार नौजवान रणजीत सिंघ को संदेशा भेजा कि रास्ते में मेरी सेना की सहायता करे, दिल्ली की लूट का भाग दूँगा। देशभक्त रणजीत सिंघ ने उत्तर दिया, कि तुम्हारे भेजे तोहफ़े मैदाने जंग में ही लिए जाऐंगे।[1]

अंत में पचास हज़ार सेना के साथ मारो-मार करता हुआ ज़मान शाह दिसम्बर 1796 में लाहौर पहुँच गया। सिंघ, नीति अनुसार सभी स्थानों से पीछे होते गये। अमृतसर के पास शाह ज़मान की सेना की 11 जनवरी, 1797 को सिंघों के साथ टक्कर हुई, जिसमें अफ़ग़ान फ़ौज पराजित हुई। शाह ज़मान ने अपने फ़ौजदार अहमद ख़ां शहानची को गश्ती दस्ते देकर सयालकोट की ओर भेजा, इस ज़ालिम ने काफ़ी सिक्ख स्त्रियों, बच्चों को गिरफ़्तार किया, जिनको बाबा राम सिंघ बेदी कोटलीवालों ने जंडू गुराइया की जूह में घमासान का युद्ध करके दुश्मन के पंजों से छुड़वाया। शाह ज़मान दिल्ली पर अधिकार करना चाहता था परन्तु सिंघों की शक्ति के आगे उसकी एक न चली। उसने समझौते के लिए भी निवेदन किया,

1. डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 87 (भाग तृतीय)।

परन्तु सिंघ न माने। अन्त स्वयं अहमद ख़ां शहानची को रुहतास का किला दिलाकर तथा जेहलम से अटक तक के इलाके का हाकिम स्थापित करके वह बेचारा काबुल को लौट गया। परन्तु 30 अप्रैल, 1797 को सिंघों ने धावा बोलकर अहमद ख़ां शहानची को मार दिया और किले पर पहले की तरह अधिकार कर लिया। इस हार ने शाह ज़मान को फिर क्रोधित किया। दूसरी बात यह कि इस समय दिल्ली सरकार नाम-मात्र ही थी, हिन्द के समस्त मुसलमान नवाब चाहते थे कि शाह ज़मान शीघ्र आये। मई 1797 में टीपू सुल्तान ने शाह ज़मान को निमन्त्रण-पत्र भेजा और वायदा किया कि मैं तीन करोड़ नज़राना, पांच लाख घोड़े और बीस हज़ार सवार सहायता के लिए दूँगा। वज़ीर अली अवध वाले ने भी विनय-पत्र भेजा। राजा जम्मू, कांगड़ा और पंजाब के अन्य मुसलमान चौधरियों ने भी शाह को आने के लिए संदेशे भेजे, महंत बिशम्बर दास जंडियालिए ने भी लिखकर भेजा, इसी तरह राजा नेपाल ने भी सहायता का भरोसा दिलाया। यह बातें बताती हैं कि देश की कितनी शर्मनाक स्थिति थी, दुर्बल तथा रूढ़ीवादी लोग विदेशी जरवाणे को विनतियां करके संदेशे भेजकर बुला रहे थे। अकेले सिक्ख और मराठे ही थे जो विदेशी आक्रमण के विरोधी थे।[1]

अक्तूबर 1798 में शाह ज़मान चतुर्थ बार हमला करके आया था। उसके पास 60 हज़ार फ़ौज और 35 तोपें थीं। इस बार उसने यह नीति धारण की कि सिक्खों को कुछ न कहा जाये, परन्तु सिंघ अपने देश में विदेशी जरवाणों के पैर पड़े कैसे सहन कर सकते हैं। उन्होंने बार बार छापे मार-मारकर शाह ज़मान को परेशान किया। एक बार रणजीत सिंघ अपना फ़ौजी दस्ता लेकर लाहौर संमन बुरज तक आ पहुँचा और ऊँची आवाज़ दी, "अहमद शाह के पौत्र ! आ ! और सरदार चढ़त सिंघ के पौत्र से दो चार करारे हाथ देख :

"ऐ नबी राय अहमद शाह ! बानबी राय सरदार जूल इकतदार वल शौकत चढ़त सिंघ आमदह, दो सेह दसत मरदाना बाइद साख़त।"

(उमदातुल तवारीख़)

शाह ज़मान हैरान था कि मेरी इतनी बड़ी फ़ौज के होते हुए यह मुझे ललकारते फिरते हैं, आख़िर उसकी सिंघों के सामने कोई पेश न

---

1. डॉ. गुप्ता, पृष्ठ 87 (भाग तृतीय)।

गई तथा दिल्ली पहुँचने का सपना, सपना ही रह गया। यह सिंघ शक्ति की दीवार थी, जिसने फिर अफ़ग़ानों की लूट से दिल्ली का बचाव किया। अन्त में निराश होकर 4 जनवरी, 1799 को शाह ज़मान लाहौर से ही ख़ाली हाथ वापस काबुल लौट गया। सिंघों ने फिर जगह जगह पर अपने अपने अधिकार जमा लिये तथा 5-6 मास के पश्चात् 7 जुलाई, 1799 को रणजीत सिंघ ने लाहौर पर अधिकार करके शक्तिशाली सिक्ख सलतनत की नींव रखी, जिसकी अगुवाई में ख़ालसे ने फिर काबुल तक अपने झण्डे झुलाये। इस तरह आठ सौ वर्षों से दर्रा ख़ैबर के रास्ते हिन्द पर आक्रमण करने वाले जरवाणों का प्रवेश सिक्ख कौम ने लंबे संघर्ष के पश्चात् सदा के लिये बंद कर दिया। यह बहादुर सिंघों का शानदार कारनामा हिन्द के इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ चमकता रहेगा कि उन्होंने अपने हज़ारों प्राणों का बलीदान करके देश की इज़्ज़त का बचाव किया तथा पंजाब को अफ़ग़ानिस्तान का भाग बनने से रोका।

सिंघों का आचरण

इस प्रकार गुरु नानक देव जी की कृपा से आत्मा की चढ़दी-कला के फलस्वरूप पंजाब के खेती करने वाले किसानों मज़दूरों ने दीर्घ तथा चारों ओर से हुई विरोधता के बावजूद, तलवार पकड़कर देश में एक शानदार स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया तथा वर्षों से लूटे जा रहे पंजाब को फिर ख़ुशहाल बनाया। 'खाया पीया लाहे का, बाकी अहमदशाहे का' जैसी लज्जाजनक कहावतों को व्यवहारिक रूप में बंद करके दिखलाया। जो बेगुनाह कौम, हुकूमत से पीड़ित, लगातार पीढ़ियों से जंगलों में दिन-कटी करती रही हो तथा वर्षा, आँधी, तेज़ धूप, गर्मी-सर्दी, भूख, दुःख, कत्ले-आम आदि बरदाश्त करना, जिनका प्रतिदिन का जीवन बन गया हो तथा घुड़सवारों की काठियां ही जिनका घर हो, उस ग़ैरतमंद कौम का कभी पराजय स्वीकार न करना तथा काबुल और दिल्ली की दो शक्तियों के बीच अपना राज्य स्थापित करके सांस लेना सचमुच ही संसार के इतिहास में एक अद्वितीय घटना है। इस अवस्था में देश की स्वतन्त्रता के पवित्र उद्देश्य के लिए लड़ते संग्रामीएं, यदि दुश्मनों, अमीरों अथवा हुकूमत को लूट कर इधर उधर नेकी के लिए साधन बनाते थे तो उन्हीं के कार्यों को किसी तरह निषेद करने के स्थान पर प्रशंसा करने योग्य ही बनता

है। इनकी बात-चीत, रहन-सहन, मेल-मिलाप, धर्म-नियम, पूजा-पाठ सभी कुछ लोगों की भलाई के लिए स्वतन्त्रता और स्वैमान के भावों को प्रगट करते हैं। प्रथम हम सिंघों की भाषा का ही विस्तृत वर्णन करते हैं।

ख़ालसे की भाषा (ख़ालसई बोले)

निरंतर पचास-साठ वर्ष बनवास का जीवन व्यतीत करते ज़ालिमों तथा अत्याचारीयों के तरह तरह के कष्ट सहारते हुए, फिर विदेशी आक्रमणकारीयों के साथ सफल टाकरे करते हुए, सिंघ बहादुरों ने अपनी चढ़दी कला वाले जोश को नहीं खोया। इसका एक प्रमाण उस समय को ख़ालसई 'गड़गज्ज बोले' विशेष हैं, जो जहां सिक्खों की ऊँची मानसिक अवस्था का प्रमाण पेश करते हैं, वहां उनकी राजनैतिक सूझबूझ के भी परिचायक हैं। पाठकों की दिलचस्पी तथा जानकारी के लिए इस विशेष सिंघ-भाषा (Special Language of the Sikhs) की कुछ उदाहरणें यहां प्रस्तुत की जाती हैं :

अकलदान—डंडा। आकाश परी—बक्करी। आकाशी दीवा—सूर्य अथवा चन्द्रमा। अथ्थक—दुर्बलटट्टू। अथ्थक सवारी—जूता। अफ़लातूनी—रजाई। अराकण—घोड़ी, टैर। अड़िंग बड़िंग होना—लेटना, सोना। आकड़ भन्न—बुख़ार। आकी होना—जेल में पड़ना। ऐरापत—सांड। अमृती—छाछ अथवा कढ़ी।

इन्द्र—बादल। इन्द्र सिंघ—जल। इलायची—फलाही।

शहीदी फ़ौज—गुप्त सेना। सदा गुलाब—कीकर। सबज़ पुला—साग। सबज़ मन्दिर—पेड़ की छांव। समुद्र—दूध। सरदोना—सर्दी, कांबा। सरब रस—नमक। सलोतर—मोटा डंडा। सवाया—कम। सवा लाख—एक। सौगी—हरे चने। शाहजहां—पोस्त का बूटा। सावी—मूँगी। शिकारी—नाक चढ़ी। शिकारी—व्यभिचारी। सिर खिंडी—शक्कर। सिरखिंडे—लोक कहावतें। सिर गुम—रोडा। सिरजोड़—गुड़। शीश महल—टूटा छप्पर। सुखदेई—तुलाई। सुख निधान—भांग। सुचाला—लंगड़ा। सुजाखी—छननी। सुंदरी—बुहारी। सूबेदार—झाड़ू करने वाला। सेउ—बेर।

हज़ार मेखी—गोदड़ी। हजूरिया—तोलिया। हरन होना—दौड़ना। हरनी—मक्खी, जूं। हुकम सत—मरना। हूंझा—तंबा। होलां—इलायचियां।

हंकारिया—फटा हुआ कपड़ा।

कस्तूरा—सुअर। कच्चा पिल्ला—मर्यादा में ढीला। कच्चा बोला—सुस्त बात। कराड़ी—मूली। कलगा—गंजा। कड़ाका—भूखा। काज़ा—भूखा। काज़ी—मुर्गा। काठगढ़—चिता। कानूंगो—खूंडा। काबली कुत्ता—अहमद शाह अब्दाली। कारदाच—फ़ौहड़ा (कूड़ा एकत्र करने वाली लकड़ी)। कुही—दात्री। कुतबदीन—कुत्ता। केसर—हल्दी। कोतल—पलंग। कोतलकश—बिस्तर। कोतवाल—चाकू।

खस्सी फ़ौज—स्त्रियाँ। खिसकू—लंगोट। खुरमा—बेर। खंड—राख।

गधी चुंघणा—हुक्का पीना। गढ़ तोडना—पेशाब करना। गिद्दड़—रंगे, भगवे कपड़े पहनने वाला साधु। गुणग्राही—छज्ज। गुद्दड़—मलाई। गुपता—गुंगा। गुपाल चन्दन—मरहम। गुपालफल—अण्डे। गुबिन्दी—गाजर। गंगा जल—शराब। घोड़ा—राका।

चितौड़ तोड़ना—पेशाब करना। चरन दासी—जूती। चलाकण—सूई। चढ़ाई करना—धावा बोलना (आक्रमण करना), चलना, मरना। चाँदनी पुलाउ—भुजी ज्वार। चिमनी बेगम—अफ़ीम। चीता—पेशाब। चुगल—पोस्त के डोडे। चुटकला प्रसाद—नमक, मिर्च। चुप—खंड। चुबारे चढ़ा—बोला। चुरासी—साधारण लोग। चूरमा—तूड़ी। चौथा—नमक। चंडी—अग्नि अथवा तेग (तलवार)।

छतरधारा—अफ़ीम। छावणी—सिंघों का डेरा। छिल्लड़—रुपया। छेवां—तेल।

जहाज़—बैलगाड़ी। जगत-जूठ—हुक्का। जगन नाथी—तौड़ी। जल तोरी—मछली। जलेबी—जंड की फली। जड़पुट्ट—मोचना। जुआला बमणी—बंदूक। जोड़ मेलणी—सूई। जंगल जाना—शौचालय जाना। जान भाई—सवारी का घोड़ा।

टहलूआ—परना। टुक्कर—जागीर।

ठाकर—अण्डकोश। ठाकर दुआरा—शराबख़ाना। ठीकरी—रुपया।

डला—सुअर के मास की टुकड़ी।

तहितोड़—परौंठा। तनख्वाह—सज़ा। तैयार-बर-तैयार—शस्त्रों सहित। तिमर-लंगीआ—लंगड़ा। तुरक-बकरी—वेश्वा। तुरंग सिंघ—घोड़ा।

थानेदार—गधा। दछ्छ—बकरा। दबड़ू धुसड़ू—मर्यादा में ढीला। दाख—पीलू। दिदार सिंघ—शीशा। दुसांगा—पाजामा। दुशाला—कंबल, दुनाली—संलघ। दुबुरजी—सलवार। देग मस्त—खाने पीने को कुछ न होने

के भाव में।

धनंतर—नीम। धरमराज की धी—नींद। धरमराज का पुत्र—बुख़ार। धूड़कोट—लहंगा।

नहेरना सिंघ—नाई। नड़ीमार—हुक्का पीने वाला। नाख—गोल्ह (एक तरह का फल)। निहकलंक—घड़ा। निहाली—रजाई।

पतालपुरी—कही। परसराम—कुहाड़ा। परसा—जल। परी—भेड। पालका—काठी। पूरी—एक बेल का पत्ता। पौण तुरंग—थक्का हुआ टट्टू। पौण प्रकाश—हाथ का पंखा। पंज इश्नाना—हाथ मुँह धोने का भाव। पंजख्खा—काना। पंज पीरिया—आम-साधारण को सिर झुकाने वाला। पंजवां—घी। पंमा—ब्राह्मण। प्रकाशा सिंघ—दिन।

फंधक अवतार—झीवर। फिरना—खरास। फिरनी—चक्की। फ़ौज—एक से अधिक सिंघ।

बसावा—तवा। बसंतर—अग्नि। बसंत कौर—मकई। बहिशती—बोला। बटेरा—बताऊँ। बदाणा—डेला। बदाम—भुज्जे हुए छोले। बबरू—भठूरा। बाज़—खुरपा। ब्राह्मण—पीपल। ब्राह्मणी—खीर। बिहंगम—रमता। बिखिआ—तमाकू। बुंगा-सिंघ—डेरा। बुध अवतार—लूला। बूंदी—बकलीआं (घुंघनियां)। बेमुहताजी—कड़छी। ब्रहम-रस—ईख (रोंअ)।

भगौती—तलवार। भरथरी—साँड। भाणा—हुकम। भूँई सूर—शलगम। भुझंगी—बालक। भूतनी—अन्धेरी।

मसतगढ़—मस्जिद के स्थान पर बना गुरुद्वारा। मस्त लंगर—फाका, निराहार। मस्ताना—फटा पुराना। मस्तो—दहीं, लस्सी। महांप्रसाद—मीट। मसाणी—गुदा। महखासुर—भैंसा। मखमली फ़र्श—हरे घास वाली धरती। मदान मारना—सौच जाना। मलका—बिल्ली। मड़ोली—शरीर। मारा बकारा—लूट मार। मारू राग—विरलाप करना। मिठिआई—शकरकन्दी। मुहंमदी इश्नान—नगन स्नान। मुहंमदी सवारी—ऊँट। मुहँमदी पौला—उस्तरा। मुक्ता—शहीद। मुख माजणा—दातुन। मुतहरा—डंडा। मुँहताणी—कैंची। मैदान जाना—सौच जाना। मोरचा लगाना—कोई कार्य आरम्भ करना, लड़ना। मोरधुज—दीवाना साधु।

रज्जी—कड़छी। रणसिंगा—मलद्वार से निकली वायु, पद। राका—घोड़ा। रामचौंका—छूत छात से रहित खुल्ली रसोई। राम जंगा—बंदूक अथवा छोटी तोप। राम डोल—चमड़े का डोल, बोका। राम रस—नमक। राम लड्डू—तरबूज़, टींडा। रुपा—प्याज़। रूप कौर—काढ़नी।

रेशमी नाला—सण की रस्सी। रंघड़—तूत।

लख्खनेतरा—काना। लख्ख बांहा—एक बांह वाला। लड्डू—टिंडो। लवेरा—जिसकी दाढ़ी न हो, खोदा। लड़ाकी—लाल मिर्च। लांगरा सिंघ—रसोईया। लाचा—कंबल। लाची दाना—बाजरा। लंडी बुच्ची—कमीने लोग।

वहीर—सिंघों का काफ़िला, प्रस्थान। वहीरिआ—जत्थेदार।

रहन-सहन तथा बहादुरी

सिंघों के सीधे-सादे रहन-सहन के कारण साधारण लोग उनको 'भूरिआं वाले' अथवा 'कच्छे वाले बाबे' कहकर याद किया करते हैं। घुटनों तक कछहरा, तनियों वाली कमीज़, सिर पर दस्तारा और ऊपर भूरा अथवा चादर की गिलती, यह साधारण पहरावा था, बनवास के कारण नीला पहरावा ठीक रहता था, जिसका संकेत काज़ी नूर मुहंमद के *जंगनामे* से भी मिलता है। कंबल अथवा भूरा उनका ख़ास वस्त्र था। दिन के समय यह कंबल घोड़े पर रख देते थे तथा रात्रि के समय इसके साथ अपना गुज़ारा करते थे। इनके घोड़े बड़े सूझवान, मालिक की आवाज़ को पहचान करने वाले तथा दुःख सुख के साथी होते थे तथा घोड़े की मृत्यु पर भी सिंघ बहुत सोग करते थे। अधिकतर लक्खी जंगल के पले घोड़े, जिनको 'जंगल ताज़ी' कहा जाता था, सिंघों के प्रयोग में आते थे। जार्ज थामस सिंघों का चित्र इस प्रकार चित्रित करता है—'घोड़े पर सवार सिंघों के लम्बे काले केश, मज़बूत तथा चुस्त, आधा नग्न शरीर, शस्त्रों की चमक-दमक, घोड़ों के कद-काठ तथा तेज़ चाल यह सब कुछ मिलकर ऐसा डरावना तथा रोब-दाब का रूप बन जाता है कि वे हिन्द के बहुत सारे सवारों से बलवान् ही सिद्ध होते हैं।'

तलवार, बंदूक तथा तीर ही सिंघों के मन-भावन शस्त्र होते थे, 1762 में ख़्वाजा अबीद खां से उन्होंने 12 तोपें छीनी थीं। जार्ज थामस के विचार में यह भी था कि उन्होंने शायद ही इनका कभी प्रयोग किया हो।[1] तीर तथा बंदूक में बहुत निपुण थे। *इमादुअ साअदत* का लेखक लिखता है, 'सिंघ बड़े बलवान्, शेरों जैसे जवान तथा मज़बूत कद-काठ वाले थे। यदि उनकी टांग भी किसी विलायती घोड़े को छू जाये तो वह घोड़ा वहीं पर मर जाता है। उनकी बंदूक सौ सौ कदमों तक जाकर दुश्मन की ख़बर

1. डॉ. नारंग, पृष्ठ 279.

लेती है। प्रत्येक सिंघ दो दो सौ कोस तक घोड़े पर सफ़र कर लेता था। यदि इस तरह न होता तो यह विलायती फ़ौज पर किस तरह जीत प्राप्त कर सकते थे। अंत दुरानी की सेना ने भी सिक्खों की तलवार की धाक मानी है।' मौलाना वलीउल्ला साहिब सदीकी लिखते हैं—सिक्ख मिसलों का प्रत्येक मनुष्य आज़ाद था, प्रत्येक सरदार मालिक भी था तथा सेवक भी, हाकिम भी तथा मातहित भी। अकेले में ख़ुदा का भक्त, फ़कीर तथा पंथ से मिलकर दुश्मन का लहू पीने वाला, मृत्यु का फ़रिश्ता। कर्नल पोलीअर दिल्ली से 22 मई, 1776 ई॰ को एक पत्र में लिखता है—सिंघ आम तौर पर बलवान देह वाले होते हैं, शुरू से ही सख़्त ज़िन्दगी बिताने के कारण वे इतना सफ़र करते और इतना कठिन काम करते हैं कि वह बहुत आश्चर्यजनक है। धावा करते समय वे तंबू तथा और बहुत-सा सामान अपने साथ नहीं ले जाते, केवल सरदार के लिए एक तंबू होता है, शेष कंबलों से गुज़ारा करते हैं। आक्रमण करते समय वे इन्हीं कंबलों को घोड़ों की काठियों पर डाल देते हैं।..... इनके केवल पचास व्यक्ति बादशाही फ़ौज की पूरी पलटन को घेरा डालने में समर्थ हैं।[1]

1763 में अहमद शाह दुरानी के सातवें आक्रमण के समय उसके साथ आकर सिंघों के कारनामों को आँखों देखे समाचार लिखने वाले

---

1. यहाँ पर असली पत्र अंकित करते हैं :

Letter by Colonel Polier. Written to Colonel Ironside at Belgram on the 22nd May, 1776 from Delhi.

'As for the Seiks (Sikhs), that formidable aristocractical republic. I may safely say, it is only so to a week defenceless state, such as this is. It is properly the snake with many heads. Each Zemindar, who from the Attock to Hansey Issar (Hissar) and to the gates of Delhi, lets his beard grow, cries 'Wah Gorow', eats pork, wears an iron bracelet, drinks bang abominates, the smoking of tobacco, and can command from ten followers on horse back to upwards, sets up immediately for a Seik Sirdar....

'To say the truth they are indefatigable, mounted on the best horses that India can afford, each carries a mateslock of a large bore, which they handle dexterously enough and with which they annoy considerably, avoiding at the same time going in large bodies, or approaching too near.

'But what is more to be admired, those Seik Sirdars whose territories border on the King's, were but lately 'Zemindars' of the Jauts, and of their caste or tribe, under which denomination☛

काज़ी नूर मुहंमद ख़ां अपने *जंगनामे* में सिंघों की बहादुरी की प्रशंसा से नहीं रुकता, वह लिखता है—'सिंघों को सग (कुत्ते) न कह, वे शेर हैं, वे मर्दों के मर्द शेरों की तरह बहादुर हैं। भला कोई रण भूमि का बहादुर जो लड़ाई में शेर की तरह गरजे, कभी सग (कुत्ता) हो सकता है। यदि तुझे लड़ाई का कार्य सीखने की इच्छा है तो युद्ध के मैदान में इन्हीं के सामने हो, वह तुझे युद्ध के ऐसे ऐसे तरीके सिखायेंगे कि सभी वाह-वाह करेंगे। हे तलवारिये ! यदि तुझे हुनर सीखने की इच्छा है तो इनके पास से सीखो कि किस तरह मर्दों की तरह दुश्मन के सामने जूझना चाहिए और किस तरह लड़ाई में स्वयं को साफ़ बचाकर ले जाना चाहिए। इनका लकब सिंघ (शेर) है, यह न्याय की बात नहीं कि उनको सग (कुत्ते) कहा जाये। हिन्द की बोली में 'सिंघ' शेर को कहते हैं तथा लड़ाई के समय तो ये वास्तव में ही शेर हैं तथा मौज मेले के समय तो हातम को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

'जब ये हाथ में तलवार पकड़ते हैं तो सिंध (अटक) तक मारो-

☛ had they remained, no one would have thought of them but now they have put on the iron bracelet. Fifty of them are enough to keep at bay a whole battalion of the King's forces.

'The Sicques (Sikhs) are in general strong and well made, accustomed from their infancy to the most laborious life, and hardest fare, they make marches, and undergo fatigues that really appear astonishing. In their excursions they carry no tents or baggage, except perhaps a small tent for the Principal officer, the rest shelter themselves under blankets, which serve them also in the cold weather to wrap themselves in and which on a march cover their saddles. They have commonly two some of them three horses each of the middle size strong, active and mild-tempered...

'Their dress is extremely scanty : a pair of long blue drawers, and a kind of checked plaid a part of which is fastened round the waist and the other thrown over shoulder, with a mean turban from their clothing and equipage. The chiefs are distinguished by wearing some heavy gold bracelets on their wrists and sometimes a chain of the same metal bound round their turbans and by being mounted on better horses, otherwise no distinction appears among them.'

[*Asiatic Annual Register, pp. 34-35 (1800)*
History of the Sikhs (Gupta), *pp. 20-22, (Part II)*]

मार करते चले जाते हैं। कोई आदमी इनके सामने नहीं खड़ा हो सकता, यद्यपि कोई कितना ही बलवान योद्धा जरवाणा क्यों न हो। जब ये हाथ में नेज़ा पकड़ते हैं तो दुश्मन की सेना में भगदड़ मचा देते हैं, जब ये नेज़े की अनी ऊपर उठाते हैं तो आगे चाहे कोह काफ़ (काफ़ पर्वत) हो, उसको भी तोड़-फोड़ देते हैं, जब ये कमान की चिला चढ़ाते हैं तो उसमें दुश्मन की जान लेने वाला तीर रखते हैं तथा चिले को खींचकर कान तक ले जाते हैं तो दुश्मन का शरीर थर-थर कांपने लग जाता है। जब इनका तबर-चिलते (संजो) ऊपर पड़ता है तो दुश्मन के लिए वही चिलता कफ़न बन जाता है।

'इनके शरीर देखो, तो प्रत्येक ऐसे मालूम पड़ता है, जिस तरह कोई पहाड़ी का टीला हो। डील-डौल में एक एक जवान पचास मर्दों से भी बढ़कर है। कहते हैं कि बहराम गोर, गोरां (जंगली गधों) का शिकार करता था और शेरों की चंगियाड़ां निकाल देता था परन्तु यदि बहराम गोर इनके सामने आ जाये तो वह भी इनके आगे सिर झुका दे।

'लड़ाई के समय जब ये बंदूक पकड़ते हैं तो शेरों जैसे गरजते तथा जोश में झूमते हुये युद्ध भूमि में आते हैं, आते ही दुश्मन के सीने चीर देते हैं और धूल में मिला देते हैं, इस तरह समझो कि जैसे बंदूकें कहीं इन्होंने ही बनाई होगी, लुकमान ने नहीं बनाई थी। यद्यपि बंदूकें तो प्रत्येक के पास बहुत हैं, परन्तु इनसे बढ़कर इसका कोई कारीगर नहीं। यह दायें-बायें, आगे-पीछे लगातार गोलियां बरसाते जाते हैं। यदि मेरी बात पर विश्वास नहीं तो लड़ाई करने वालों के पास से पूछकर देखें। वे तुझे मुझसे भी बढ़कर बतायेंगे तथा इन जंगी तरीकों को 'बढ़िया और बढ़िया' कहेंगे। मेरी बात के गवाह वे तीस हज़ार योद्धे हैं, जो लड़ाई में इनके साथ युद्ध कर चुके हैं।

'यदि यह भागने लगें तो इसको इनका भागना भांज न समझना। यह भी इनका लड़ाई का एक तरीका है। देख, इनकी इस फाही से बचना। यह तरीका इसलिए किया जाता है कि दुश्मन क्रोध में आकर इनके पीछे पड़ता है तथा अपनी सेना से अलग होकर सहायता से दूर चला जाता है तथा फिर ये पीछे की ओर घूमते हैं तथा फिर तो पानी में आग लगा देते हैं। तुमने नहीं देखा कि लड़ाई के समय अपने ख़ान के आगे यह किस तरह चालाकी से भाग उठे तथा फिर पीछे मुड़कर उसको चारों ओर से घेर लिया। फिर वह योद्धा घोड़े से उतरकर पैदल हो गया तथा तीर

गोलियों के साथ लड़ाई करता करता अपनी बहादुरी के साथ उनके बीच से निकल गया।

ओ योद्धे! तू स्वयं ही न्याय कर। इनकी लड़ाई कैसी तथा फ़ौज कैसी है।

'लड़ाई से बढ़कर इनकी एक और बात भी सुन, जिसमें ये अन्य युद्ध करने वाले लोगों से भी आगे बढ़े हुए हैं। यदि कोई नामर्द, जो लड़ाई में शस्त्र डाल दे, ये कभी भी उसको नहीं मारते तथा न ही भागे जाते को घेरते हैं। यह न किसी औरत का गहना-रुपया लूटते हैं, यद्यपि वह अमीरज़ादी हो या मामूली गोल्ली बांदी। इनमें व्यभिचार भी नहीं है, न ही ये चोरी करते हैं। औरत यद्यपि युवा हो या वृद्ध, ये उसको 'बूढ़ी' ही कहते हैं। हिन्दकी में 'बूढ़ी' शब्द का अर्थ है—ज़्यादा आयू वाली औरत। यह न ही स्वयं चोरी करतें हैं तथा न ही डाका मारने वाले को अपना मित्र बनाते हैं।[1]

'यदि तुझे इनके धर्म के बारे में मालूम नहीं है, तो मैं तुझे बताता हूँ कि यह ऊँची प्रतिभा वाले गुरु के शिष्य हैं, जो चक्क (अमृतसर) में रहता था। इनके रीति-रिवाज (गुरु) नानक जी से चले, उन्होंने इनको विशेष मार्ग बताया। आगे चलकर गोबिंद सिंघ गुरु हुए, जिससे इनको 'सिंघ' की पदवी प्राप्त हुई, यह हिन्दु नहीं, ये 'बदज़ात' अपना अलग ही मज़हब रखते हैं।

'सरहिंद से लेकर लाहौर और मुल्तान बल्कि डेरियाँ तक समस्त इलाका इनके अधीन है। सारा देश इन्होंने आपस में बांटा हुआ है तथा स्वयं ही खाते हैं, और किसी की कोई बात नहीं मानते।' (*जंगनामा,* 1765 ई०)

---

1. सगां रा मगो सग कि हसतंद शेर, बमैदाने मरदां चूँ शेरां दलेर।
कि न कुशंद नामरद रा हेचगाह, गुरेज़न्दा राहम ना गीरंद राह।
ज़रो ज़ेवरे ज़न बाताराज नीज़ न गीरंद गर मिहर हसत व कनीज़।
ज़िनाहम न बाशद मिआने सगां, न दुज़दी बवद कारे आं बदरगां।
कि ज़न गर जवां हसत वर हसत पीर, बगोयंद 'बुढ़िया' बरो गोशह गीर।
बवद लफ़ज़ 'बुढ़ीया' बहिंदी ज़बां, बमाअनी कि ऐ पीरि ज़ाल ज़नां।
न दुज़दीसत हरगिज मिआने सगां, न पैदासत सारक दरां बदरगां।
ज़ानी ओ सारक नदारंद दोस्त, वगर फेअलि शां, जुमलगी न नकोसत।
(*जंगनामा*)

कछहरे (जांघिया) वाले बाबे

खुलासतुत तवारीख़ के रचयिता ने लिखा है, 'अपने तथा पराये इन सिक्खों की दृष्टि में एक जैसे हैं। दोस्त तथा दुश्मन इनके लिए बराबर हैं। ये दोस्तों के साथ समसर पेश आते हैं तथा दुश्मनों के साथ भी बिना युद्ध के ज़िन्दगी व्यतीत करते हैं।'

खेशो बेगाना दर नज़रे एशां यकसां
दोस्तो दुश्मन दर नज़रे एशां बराबर
बादोसतां यक रंग व बादुश्मनां बेजंग ज़ीशत मेकुनंद।

जहां तक बदला लेने का प्रश्न है, सिक्खों ने कभी वह पागलों जैसा तरीका नहीं प्रयोग किया, जिस किस्म की सख़्ती का प्रयोग 60 वर्ष मुस्लिम हाकिम उनके साथ करते रहे, उन्होंने इसका बदला लेना भी आवश्यक नहीं समझा। दिल्ली के बादशाह बहादुर शाह ने 10 दिसम्बर, 1710 को एक शाही फ़रमान जारी किया था कि 'जहां कहीं भी गुरु नानक जी के सिक्ख मिलें, उनको वहीं पर कत्ल कर दिया जाये।'

नानक प्रसतां रा हर जा कि बा याबंद, बकतल रसानद।

(अख़बारि-दरबारि मुअल्ला)

ऐसा ही आदेश फ़रुख़सीअर ने 1716 ई० में बंदा बहादुर के वध के पश्चात् दोहराया कि इस फ़िरके के लोग जहां कहीं भी मिलें, बिना किसी जांच के मार दिये जायें:

बाद कतलि ऊ हुकम शुद कि हर-जा ईं फिरका रा याबंद,
बेतअमल बि कुशुंद। *(मिफ़ताह उ तवारीख़, पृष्ठ 398)*

इसके पश्चात् ऐसे शाही फ़रमान लाहौर दरबार से आम निकलते रहे तथा चालीस वर्ष सरकार के आदेशानुसार सिक्खों का वध होता रहा। इसकी प्रतिक्रिया होनी आवश्यक थी, परन्तु सिक्खों ने ज़ालिमों को तो उचित दण्ड दिया, परन्तु आम मुसलमानों को कभी कुछ न कहा।

जब अब्दाली ने क्रोध में आकर सिक्खों का हरिमंदर गिरा दिया, सरोवर मिट्टी से भरवा दिया तो कौमी जोश में 60 हज़ार के लगभग सिंघ 1762 की दीवाली को इकत्रित हुए। अब्दाली के साथ युद्ध भी हुआ परन्तु वह सिंघों का जोश देखकर अपने देश को वापिस हो गया। सिंघों ने पीछा करके हज़ारों पठान सिपाहियों को पकड़ लिया तथा उन सभी से सरोवर में से सारी मिट्टी निकलवाई। फार्स्टर इस घटना से 21-22

वर्ष बाद लिखता है, 'चाहे सिंघ्र बदला लेने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे, परन्तु उन्होंने बदले की भी एक सीमा निश्चित कर दी।'

यद्यपि पठानों की तरफ़ से भयानक क़त्लेआम और बर्बादी की गई, बेशक सिंघों के मन में रंजश थी फिर भी दुश्मन सिपाहियों को जान से नहीं मारा।

मि. बर्नज़ लिखता है, 'सिक्खों की कौम बहुत ही फराख़-दिल है। मज़हबी भिन्न-भेद के बावजूद वे रहम-दिली से ही काम लेते हैं। यही उनका विशेष गुण उनको अपने मुस्लिम पड़ोसियों से विलक्षणता प्रदान कर महान् बनाता है।"

सर लैपल ग्रिफ़न ने भी इसी बात की साक्षी भरी है, 'वे संग्राम तथा लूट के समय मनुष्य ही रहते हैं, भूत नहीं बनते। सिक्ख इतिहास में स्त्रियों की इज़्ज़त लूटने की तथा व्यक्तियों को निर्दयों जैसे ढंग से अत्याचार देने की कोई घटना नहीं मिलती।'

यही बात इनको मध्य हिन्द तथा पिंडारियों तथा बंगाल के डाकूओं से ऊँचे स्तर पर ले जाती है। *(राजाज़ ऑफ़ पंजाब, पृष्ठ 17)*

इसी तरह सिक्ख-सदाचार-उच्चता की साक्षी भरता *तवारीख़े पंजाब* में बूटे शाह लिखता है :

'यदि कहीं सिक्ख किसी काफ़ले पर धावा बोलते तो वे मनुष्य के सिर से पगड़ी बिलकुल ही नहीं उतारते थे तथा न ही स्त्रियों के आभूषणों अथवा वस्त्रों को हाथ लगाते थे।'[1]

सिक्खों के कौमी चरित्र की उदाहरण रियासत मलेरकोटले की होंद भी दे रही है। इस रियासत के चारों ओर सिक्ख मिसलों के सरदारों ने अधिकार कर लिए थे, परन्तु इस पर हाथ नहीं डाला केवल यह कृतज्ञता प्रगट करने के लिए कि एक बार यहां के बड़े नवाब शेर मुहंमद ख़ां ने सरहिन्द की कचहरी में साहिबज़ादों को क़त्ल करने के विरुद्ध 'हाय' का नारा लगाया था।

आँखों देखने वाले काज़ी नूर मुहंमद तथा कर्नल पोलियर जैसे एशियाई तथा यूरोपीयन दुश्मन-लेखकों के लिखती प्रमाण होते हुए सिंघों की वीरता

---

1. वगर दर हीने कज़ाकी कसे काफ़ला रा ताराज नमूदंद
दसतार अज सरे मरद हरगिज़ फरा न मे आवुरदंद
वा बरपारचा व ज़ेवरे ज़नां मुतलिक दसतअंदाज़ न मेशनंद।
(तवारीख़े पंजाब, 1848 ई.)

तथा चरित्र संबंधी कुछ और कहने की ज़रूरत नहीं रह जाती। अब संक्षेप में यह देखना उचित होगा कि उन्होंने किस तरह कौमी मर्यादा में रहकर पंजाब के राज्य प्रबन्ध को चलाया। साधारणतः फ़िरंगी कूट नीति ने स्वतन्त्र सिक्ख राज्य को 'सिंघाशाही' कहकर बदनाम किया तथा 'अंग्रेज़ी राज्य की बरकतें' बता-बताकर लोगों को भड़काने का प्रयत्न किया है। उनका राजनैतिक लाभ इसी में था परन्तु तत्कालीन प्रमाण उनके इस ढकोसले को झुठला देते हैं।

वे लोग जिन्होंने अपनी जान मुसीबत में डालकर देश की इज़्ज़त बचाई हो तथा साधारण जनता भी दुःख के समय आसरा देखकर जिनके पास फ़रियाद करती हो, तथा कछहरे पहनने वाले बाबे के पास इस तरह विलाप करे :

मोड़ीं बाबा ! कच्छ्छ वालिया,
छई ! रंन गई बसरे नूँ गई !

वे हज़ारों लड़कियों को जरवाणों के हाथों से छुड़वाने वाले उपकारक बंदी-छोड़ सिंघ, सुख के समय अपने लोगों का किस तरह बुरा कर सकते थे ! वे सदैव लोगों की भलाई करने हेतु लड़ते रहे तथा उन्होंने लोगों की सचमुच भलाई की, इसीलिए लोग भी उनका स्वागत करते थे। यदि वे सरकारी कष्टों के कारण दुःख भूख के मारे कभी-कभी चोरी छुपे जंगलों से गाँवों में आ जाते, तो हर पंजाबन बेझिझक उनका स्वागत करती तथा दूसरों को भी कहती थी :

आए नी निहंग, बूहे खोल् दे निसंग।

यह लोकोक्ति तो इस बात का प्रमाण है कि लोगों में सिंघों के लिए अत्यंत प्यार तथा आदर-सम्मान था और वे ऊँचे जीवन के मालिक थे।

सिंघनियों का जीवन

सिंघों का घरेलू जीवन कैसा था, इसका अनुमान हम उस समय की नित्य बदलती परिस्थितियों से लगा सकते हैं। रोज़ कोई न कोई मुहिंम चढ़ी रहती थी तथा नौजवान सिपाही का पक्का घर, घोड़े की काठी ही था, सिंघनियां स्वयं ही घर का काम-काज संभालती थीं। एक समय वह भी आया जब सिंघनियों को सीता सत्यवत्ति जैसे जंगलों-वनों में ही रूखा-सूखा खाकर कई वर्ष बिताने पड़े। अब्दाली के आक्रमणों के पश्चात् यह

हालत बदल गई, परन्तु फिर भी युद्ध निरंतर होते ही रहे। सिंघ सिपाहियों को दूर दूर मुहिंमों पर जाकर घोर संग्राम करने पड़ते थे तथा बाल-बच्चों के पोषण का काम पंजाबी सिंघनियां ही करती थीं। बहादुर सिंघनियां विछोड़े के यह लंबे दिन किस तरह व्यतीत करती थीं, इनकी तस्वीर उस समय के लोक-गीतों से प्रत्क्षय होती है, जिनमें पति को 'सिंघ जी' कहकर याद किया गया है :

किथे नूं घोड़ा पीड़िया सिंघ जी !
किथे दी आ गई वे मुहिंम
मनां दीआं मन वे रहीआं !
उचे नूं घोड़ा पीड़िया नी नाज़ो गोरीए !
नीवें दी आ गई नी मुहिंम, मनां दीआं मन वे रहीआं।
अंदरों तां कढ्ढ दे मेरे कपड़े नी नाज़ो गोरीए
किल्लिओं तां लाह दे नी हथिआर, मनां दीआं मन वे रहीआं।
अंदरों ना देणे तेरे कपड़े सिंघा ! वैरीआ ज़ालमा !
किल्लिओं ना लाहुणे जी हथियार, मनां दीआं मन वे रहीआं।
अंदरों तां देवें साडे कपड़े नी नाज़ो गोरीए
साडा तां कंम नी ज़रूर, मन दीआं मन वे रहीआं।

देश की रक्षा करने वाला सिंघ सिपाही अन्त अपने आवश्यक कार्य करने के लिए चला ही जाता है, पत्नी रो रोकर समय काटने की विथिया सुनाती कहती है :

आप तुर चलिआ माही सानूं छड्ड चलिया
कित बिध कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।
निक्का निक्का कत्तणा मिट्ठा मिट्ठा बोलणा
हस्स हस्स कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।
निक्का नहीं कत्तणा सिंघ जी ! मिट्ठा नहीं बोलणा
रो रो कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।
सस्स नूं मां कहीं सहुरे नूं पिउ कहीं नाज़ो गोरीए।
हस्स हस्स कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।
सस्स नहीं मां बणनी सौहरा नहीं पिउ, सिंघा वैरीआ !
रो रो कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।
नणद नूं भैण कहीं देवर नूं वीर, नाज़ो गोरीए !
रो रो कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।

नणद नहीं भैण बणनी देवर नहीं वीर, सिंघां वैरीआ !
रो रो कट्टणी बालड़ी वरेस वे हो।

यदि कभी ये सिंघ सिपाही रात्रि को घर आते तो दूसरे दिन फिर कहीं जाने के लिए प्राण हथेली पर रखकर चलना पड़ता था। लड़ाई का समय था, शान्ति कहां:

आया सी रातीं चढ़ सुत्ता सवाती वे
कदी ना दस्सीआं सिंघ जी दिल दीआं बातीं वे।
आया सी हनेरे तुर चलिआ सवेरे वे
दस के तां जाणा सिंघ जी की औगुण विच मेरे वे।
औगुण तां तेरे गोरीए ! एहो विच तेरे नी
साडे तां मगरों अँखीं सुरमा क्यों पाया नी वे हे।
सत्त सलाईआं तेरीआं भैणां ने पाईआं वे
सत्त सलाईआं तेरीआं भाबो नी पाईआं वे
एके सलाई सिंघ जी ! दोंह नैणीं पाई वे
तैथों तां डरदी ओह भी असां डोल्ह गवाई वे हे।...

अगर कहीं सिंघ जी जैसा किसी का रांझा कभी-कभार आ जाता तो उसकी प्रसन्नता की सीमा ही न रहती:

कीहने जी सुणिआ वे कीहने आण सुणाया
कीहदा तां रांझा सिंघ जी ! पत्तण पुर आया वे हे।
भाबो दा रांझा सिंघ जी पत्तण पर आया वे हे
चाँदी दी बेड़ी सोने वंझ गडाआ वे हे
पट्ट दीआं लासां सिंघ जी, तैनूं पार लंघाया वे हे।
बेड़ियां तों तुरिआ सिंघ जी बाग़े विच आइया वे।
मंगिआ सी नेंबू सईआं अंब चुपाआ वे।
बाग़ां तों तुरिआ सिंघ जी, खूहे नूं आया वे।
मंगिआ सी पानी असां दुध पिलाया वे हे।
खूहे तों तुरिआ सिंघ जी, महलां नूं आइया वे
मंगिआ सी मूहड़ा सईआं पलंघ डहाया वे हे।

ऐसी प्रसन्नता कभी-कभी ही नसीब होती थी। बहुत-से नौजवान सिपाही सरदार तो युद्धों में ही शहीदियाँ पा जाते थे या दूर दूर मुहिंम पर गये वर्षों घर नहीं आते थे। परन्तु सत्यनिष्ठ स्त्रियां संतोष से दिन काटती थीं।

सिक्ख राज्य-प्रबन्ध

सिक्ख मिसलों का संघर्ष जहां धार्मिक स्वतन्त्रता को स्थिर रखने के लिए था, वहां राजसी अधिकार प्राप्त करना भी उनका उद्देश्य था। मीर मंनू की मृत्यु के तुरन्त बाद (1753 ई०) सिक्ख सरदार पंजाब के भिन्न भिन्न स्थानों पर अधिकार जमाकर राज्य प्रबन्ध करने लगे। अब्दाली के आक्रमणों ने इसमें बाधा आवश्य डाली, परन्तु ये अधिकार चलते रहे। 1765 ई० में काज़ी नूर मुहंमद लिखता है, 'सिंघों ने सरहिन्द, लाहौर से लेकर मुल्तान तथा डेरे (डेरा गाज़ी ख़ां, डेरा इसमाईल ख़ां) तक अपने अधिकार में किये हुए थे तथा वे बिना किसी रोक-टोक के इसका मालिया प्राप्त करते हैं।' इससे स्पष्ट है कि सिक्ख सरदारों ने आक्रमणों के बावजूद मुल्क को रक्षा और राज्य प्रबंध का कठिन कार्य अपने कंधों पर उठाया हुआ था। जब संकटकाल व्यतीत कर उन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान देश की ख़ुशहाली की ओर किया तथा लोगों की सम्पूर्ण सहायता की। यदि यह राज्य ढनाढ्य तथा लोक-राज्य ढंग से मिलता-जुलता था, क्योंकि यह दीर्घ अशान्ति तथा संघर्ष के पश्चात् लोगों को प्राप्त हुआ था, इसलिए उस समय यह एक तरह की नियामत ही था।

विलियम फ्रैंकलिन उस समय के पंजाब को देखकर कहता है: 'सिक्खों ने अच्छा तथा नियमित शासन चलाया हुआ है, उनके इलाकों में खेती बहुत अच्छी होती है।' जार्ज थामस के शब्दों में—'यदि यह हकूमत एक आदमी की इच्छा द्वारा चलती है परन्तु पड़ोसी राज्यों से सिक्ख राज्य में बहुत कम सख़्ती अथवा दबादबा है।' इसी तरह जैसे मैल्कम ने इस राज्य की प्रशंसा करते हुए कहा है, 'किसी देश में भी प्रजा के साथ ऐसा लिहाज़ भरा व्यवहार नहीं किया जाता।'

In no country perhaps is the Rayat or cultivator treated with more indulgence.

जागीरदाराना निज़ाम के बावजूद बड़ी बात यह थी कि ये सरदार स्वयं ग़रीब किसानों में से ही उठकर बने थे, इसीलिए उनको अपने लोगों के दुःख-सुख का पूरा ज्ञान था तथा वे कोई ऐसी बात नहीं करते थे, जिससे लोग पीड़ित हों। दूसरे, इस राज्य के समय पंजाब में बड़े ज़मींदारों के हाथों से निकलकर वाहकों तथा मज़दूरों के अधीन आईं। इस तरह प्रजा की ख़ुशहाली बढ़ी, जबकि शेष प्रांतों में ज़मींदारी निज़ाम

की बीमारी लोगों का रक्त चूस रही थी। पहाड़ी इलाकों में भी ऐसा भूमि सुधार हुआ।

मालिया, अनाज के रूप में चतुर्थ अथवा पाँचवां हिस्सा लिए जाना नियत था, परन्तु मैल्कम कहता है, 'कोई सरदार अपना पूरा हिस्सा नहीं प्राप्त करता था, किसानों के साथ ऐसी रिआयत और कहीं भी देखने को नहीं आई।' यहां तक न्याय का सम्बन्ध है न्याय बहुत सीधा सादा तथा सदाचार वाला था, गाँवों की पंचायतें ही झगड़े निपटा देती थीं और कोई बड़े मामले का फ़ैसला सरदार कर देता था। चोर को माल वापिस करके भूल मानने की शर्त होती थी। यदि वह इस बुरी आदत को नहीं छोड़ता तो उसका दायां हाथ काट दिया जाता था।

क़त्ल के लिए मृत्यु का दण्ड बहुत कम था। साधारणत: क़ातिल की बहन अथवा बेटी का वधित के परिवार में विवाह करके पक्का रिश्ता जोड़ने की कोशिश की जाती थी अथवा जिनका व्यक्ति मरा हो, उनको क़ातिल से 125 बीघे ज़मीन दिला दी जाती थी।

साधारण लोगों की ज़रूरतों के लिए सिक्ख सरदारों ने स्थान-स्थान पर लंगर लगाये होते थे। *मुल्तान गज़टीयर* में लिखा है कि जब (1782 ई०—1840 बि.) चालिये का अकाल पड़ा तो इलाके के मालिक सरदार बुध सिंघ ने अपनी समस्त जायदाद बेच कर लोगों को खिला दी थी।

मुस्लिम राज्य के लंबे समय में हिन्दुओं की हालत बहुत दर्दनाक थी और हर मुसलमान इनको अपना ग़ुलाम ही समझता था। डेरा ग़ाज़ी ख़ां के *डिसट्रिकट गज़टीयर* में लिखा है कि हिन्दुओं को मुसलमान न घोड़े पर सवार होने देते थे तथा न ही पगड़ी बांधने देते थे। हिन्दु बेचारे गधों की सवारी करते थे और टोपी ही पहन सकते थे, परन्तु सिक्ख राज्य के समय हिन्दुओं को सभी तरह की पूरी छूट दी गई। सिक्ख जुल्म होते हुए कभी भी बर्दाशत नहीं कर सकते थे, इसीलिए उन्होंनें हर कौम के दु:खों को दूर करना अपना कौमी धर्म समझा।

इस तरह का सीधा-साधा और सदाचारक राज्य प्रबन्ध सिक्ख मिसलों ने 30-35 वर्ष किया। ये बारह मिसलें साझे धर्म तथा साझे ख़तरे के लिए एकत्रित थीं तथा दूसरी ओर ये बिलकुल पूर्ण स्वतन्त्र तथा भिन्न भिन्न थीं। प्रत्येक सिक्ख अरदास करता—समस्त ख़ालसे को वाहिगुरु स्मरण आने का तथा समस्त ख़ालसे की रक्षा-रिआयत मांगता था। साझे ख़तरे के समय सिक्ख सरदार एकत्रित होकर अमृतसर अकाल तख़्त

पर कौंसल करते थे, पवित्र आचरण वाले अकाली जो कि इस स्थान के मुख्य प्रबन्धक तथा पंथ में सम्मान-योग्य समझे जाते थे, यह मामला कौंसल के आगे रखते थे; जो निर्णय होता, उसको 'गुरमता' कहा जाता था। यह गुरमता-प्रणाली मैलकम की लिखित अनुसार 1805 ई. तक जारी रही। सरदारी अथवा जत्थेदारी भी कोई ख़ानदानी जायदाद नहीं थी; सिंघ, मुखी का चुनाव स्वयं करते थे। मुफ़ती अलीउद्दीन अपने *इबरतनामे* में लिखता है कि कई बार साधारण सेना में से ही जत्थेदार का चुनाव कर लिया जाता था।[1] कनिंघम इसी बात की साक्षी भरता हुआ लिखता है कि कई सरदार साधारण किसान मज़दूर परिवारों में से थे, परन्तु उन्होंने अपनी बहादुरी तथा गुणों के कारण सरदारी प्राप्त की।

इस प्रकार लोगों में से उठे मुखियों ने लोक-भलाई हेतु कुछ सीमा तक लोक-राज्य स्थिर करके दिखाया, जिसकी उदाहरण उस समय के हिन्दोस्तान के इतिहास में और कहीं नहीं मिलती। यह गुरु नानक—गुरु गोबिन्द सिंघ के प्रदान किये हुये ऊँचे आदर्शों और पवित्र वीरता का परिणाम था कि उन्होंने पंजाब में सम्पूर्ण स्वराज्य स्थापित करके एक तरह वर्षों से ज़ालिमों की मार खाते हिन्द को सदा के लिए सुरक्षित कर दिया, जिसको करामात से कम नहीं कहा जा सकता। डॉ. हरी राम गुप्ता लिखते हैं :

"सिंघों ने पंजाब के लिए 'वीर भूमि' अथवा 'सूरमों का देश' कहे जाने का सम्मान प्राप्त किया। उनका गर्व उचित है कि उन्होंने हज़ारों वर्षों से बहती विदेशी ज़ालिमों के आक्रमणों की बाढ़ को रोका। इसीलिए उत्तरी हिन्द के निवासी साधारण तौर पर और पंजाब निवासी विशेष तौर पर सिक्खों के अत्यन्त ऋणी हैं।[2]

---

1. डॉ. गुप्ता-पृष्ठ 282.
2. We now close the narrative of the Sikhs, who won for the Punjab the envied title of 'the Soldier's land' and who alone can boast of having erected a bulwark of defence against foreign aggression, the tide of which had run its prosperous course for the preceding 800 years and to whom all other peoples of Northern India in general and of the Punjab in particular owe a deep debt of gratitude. *[History of the Sikhs, p. 272 (Part I)]*

राज-पाट युग (१)

(1799-1849 ई॰)

तखति राजा सो बहै, जि तखतै लाइक होई ।।

(मारू वार महला ३, पन्ना 1088)

हुणि हुकमु होआ मिहरवाण दा ।।
पै कोइ न किसै रञाणदा ।।
सभ सुखाली वुठीआ,
इहु होआ हलेमी राजु जीउ ।।

(सिरीरागु महला ५, पन्ना 74)

महां बली रणजीत सिंघ होइआ पैदा,
नाल ज़ोर दे मुलक हिलाइ गिआ।
मुलतान, कशमीर, पिशौर, चंबा,
जम्मू, कांगड़ा कोट निवाइ गिआ।
होर देस लदाख ते चीन तोड़ीं,
सिक्का आपणे नाम चलाइ गिआ।
शाह मुहंमदा जान पंचास बरसां,
अच्छ्छा रज्ज के राज कमाइ गिआ।

(शाह मुहंमद)

राज-पाट युग (१)

(1799-1849 ई०)

शेर-ए-पंजाब घराना

सिक्ख मिसलों के बढ़ते कौशल का समय एक प्रफुल्लित पौधे की तरह था, जिस पर महाराजा रणजीत सिंघ शेर-ए-पंजाब सुन्दर फूल की तरह विकसित हुआ और जिसकी महक ने हिन्दुस्तान में ही नहीं अपितु एशिया और यूरोप में सिक्ख पंथ की सुगंध फैलाई। कनिंघम के शब्दों में, 'रणजीत सिंघ को पंजाब पतन की ओर जाता हुआ प्राप्त हुआ, जो मिसलदार सरदारों की परस्पर फूट का शिकार हो गया था और अफ़ग़ानों तथा मराठों का दबकाया फ़िरंगियों के अधीन हो जाने वाला था, परन्तु रणजीत सिंघ की कारीगरी ने बिखरी हुई शक्तियों को एक केन्द्र पर इकत्रित करके एक शानदार बादशाही में संगठित कर दिया। यह ठीक है कि स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया, स. बघेल सिंघ, स. चढ़त सिंघ तथा स. हरी सिंघ भंगी जैसे प्रसिद्ध पंथक आगू सिक्ख कौम में नहीं रहे थे तथा आगे ऐसे मिसलदार आये, जो 'सिंघ' होने की निस्बत सरदार अधिक थे। बजुर्गों के संघर्षों से उन्हों को अच्छी आय वाले इलाके विरसे में बने बनाये मिल गये थे, परन्तु उनमें आचर्णक उच्चता, वीरता तथा बुद्धिमत्ता इतनी नहीं थी कि उनकी पूरी तरह से संभाल कर सकते। काबुल की दुर्बल शहनशाहीयत भी सिंघों की यह दशा देखकर लाहौर पर अधिकार का दावा लगाने के अवसर में थी। जमुना पार मराठे तथा फ़िरंगी भी ऐसे अवसर की तलाश में थे कि कब ऐसा समय मिले। पंजाब के कई पुराने ख़ानदानी मुस्लिम चौधरी पठान, सय्यद तथा चट्ठे आदि इस बात के लिए तैयार बैठे थे कि अगर कोई सिक्ख शक्ति को चोट लगाये, उसका साथ दिया जाये। कसूर,

पाकपटन, झंग, नूरपुर, मिट्ठा टिवाणा, खुशाब तथा साहीवाल आदि के नवाब ख़ालसई इलाकों में अपने अपने स्थान पर डटे हुए थे। इसके अतिरिक्त कश्मीर, अटक, पिशावर, मनकेरा तथा मुल्तान के स्वतन्त्र नवाब भी अच्छी शक्ति के मालिक थे। यह नवाबी घेरा किसी अवसर पर भी दिल्ली अथवा काबुल के साथ मिलकर बिखरी सिक्ख शक्ति के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता था। जार्ज थामस सिक्ख मिसलों के आँखों देखे दृश्य को बयान करता हुआ लिखता है कि बीते कुछ वर्षों से सिक्ख सरदारों में आपसी-झगड़ा तथा घरेलु विरोध बढ़ा है, जिसने उनमें बदले की भावना तथा भारी फूट पैदा कर दी है। इस प्रकार सिंघों की शक्ति जो काबुल तथा दिल्ली को हिला रही थी, स्वयं फूट का शिकार होकर तबाही की ओर जा रही है।

स. चढ़त सिंघ के पौत्र, स. महां सिंघ के पुत्र शुक्रचक्किया मिसल के नौजवान सरदार रणजीत सिंघ (जन्म 2 नवम्बर, 1780) ने इस सारी दुर्दशा को अनुभव करके बिखरे हुए सिक्खों तथा ग़ैर-सिक्खों-रजवाड़ों को संगठित करके एक शानदार पंजाबी राज्य कायम करने का निर्णय किया। कन्हैया तथा नकई मिसल की शक्ति रिश्तेदारी हो जाने के कारण रणजीत सिंघ के साथ बंधी जा चुकी थी, इस मिश्रित शक्ति ने भंगी मिसल के सरदारों—मोहर सिंघ, साहिब सिंघ तथा चेत सिंघ से 7 जुलाई, 1799 को लाहौर छीनकर अपने अधीन कर लिया। पंजाब पर राज्य करने के लिए इसकी केन्द्रीय राजधानी को अपने अधीन करना प्रथम तथा आवश्यक बात थी। साथ ही लाहौर के विशिष्ट हकीम हाकम राय, स. गुरबख़्श सिंघ तथा मीआं आशिक मुहंमद आदि ने भंगियों की त्रै-अमली से छुटकारा पाने के लिए रणजीत सिंघ की ओर निवेदन-पत्र भी भेजा था। रणजीत सिंघ ने लाहौर पर अधिकार करके नानकशाही सिक्का चालू किया, जिसमें यह शब्द अंकित थे :

देगो तेगो फतह नुसरत बेदरंग।
याफत अज़ नानक गुरु गोबिन्द सिंघ।

भंगी तथा रामगढ़िया सरदारों ने निज़ामुद्दीन कसूरिये के साथ मिल-कर रणजीत सिंघ की बढ़ रही शक्ति को दबाना चाहा। भसीन के स्थान पर ज़बरदस्त युद्ध हुआ, परन्तु दुश्मन को हार का मुँह देखना पड़ा। रणजीत सिंघ ने बुद्धिमत्ता से काम लेते हुए स. जस्सा सिंघ आहलूवालिये

के पौत्र स. फतह सिंघ के साथ अपनी पगड़ी बदलाकर मित्रता बनाई, जिसके ख़ानदान से आगे कपूरथला रियासत चली। 1805 ई॰ में मराठा सरदार जसवंत राव होलकर फ़िरंगियों का दबाया हुआ, सहायता की आशा लेकर इधर आया। इस समय महाराजा मुल्तान की तरफ़ दौरे पर था। वापसी पर उसने होलकर का खोया हुआ इलाका दिलाकर दोनों ओर से समझौता करा दिया। इसके साथ महाराजे की बुद्धिमत्ता तथा राजनैतिक प्रभाव का सिक्का माना गया।

अंग्रेज़ों के लिए रणजीत सिंघ की बढ़ती शक्ति असहनीय थी तथा वह इसको सतलुज तक सीमित रखने पर सहमत थे। महाराजे का सपना था कि सूबा सरहिन्द के इलाके की रियासतों तथा जागीरों को भी संगठित करके जमुना तक महान् पंजाबी राज्य स्थापित किया जाये।

इस प्रकार ही 1806 ई॰ में राजा साहिब सिंघ पटियाला तथा राजा जसवंत सिंघ नाभा के बीच चल रहे झगड़े का निपटारा किया। 1808 ई॰ में सतलुज पार के राजे, रईसों ने समाने में इकत्र होकर फ़िरंगियों की रक्षा अधीन आ जाने का फ़ैसला किया, जिसका महाराजे को बहुत दुःख हुआ। 25 अप्रैल, 1809 को अंग्रेज़ों के प्रतिनिधि मि. मैटकाफ तथा महाराजा के बीच कसूर के नज़दीक इकरारनामा हुआ, जिसके अनुसार सतलुज महाराजे की राजसी सीमा मानी गई तथा सतलुज पार का इलाका अंग्रेज़ी प्रभाव के अधीन आ गया। अब महाराजे ने पहाड़ी इलाकों की ओर ध्यान दिया तथा कांगड़ा जीतकर कुल्लू, मंडी, सुकेत तथा नूरपुर आदि रियासतों को अपने अधीन कर लिया। 1810 ई॰ में साहीवाल तथा खुशाब सिक्ख राज्य में मिलाये गये। कुदरत का खेल कि अहमद शाह अब्दाली का पौत्र हिन्द पर चार असफल आक्रमण करने वाला शाह ज़मान, महाराजे के पास शरणार्थी बनकर आया। शेर-ए-पंजाब 1813 ई॰ में इसके भाई शाह शुज़ाअ को कश्मीर की मुहिंम जीतकर कैद से छुडवाकर ले आया, जिस पर उसकी मल्लिका वफ़ा बेगम ने 26 करोड़ की कीमत का प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा महाराजे को भेंट किया।

1814 ई॰ में कश्मीर पर फिर आक्रमण किया गया, परन्तु महाराजा नज़राना लेकर वापिस आ गया। 1817 ई॰ में हज़ारे का पहाड़ी इलाका जीत लिया। 1818 ई॰ में मुल्तान जीता, जिसकी जीत का सेहरा अकाली फूला सिंघ तथा उसकी अकाली फ़ौज के सिर पर था। तोप का पहीया टूटने पर भी बारी बारी सिंघ उसके नीचे अपना कंधा देते रहे तथा गोलों

के साथ ही मर मिटते रहे, परन्तु किसी ने अपनी ज़ान की कोई चिन्ता न की। सय्यद ग़ुलाम जीलानी मुल्तान के युद्ध की आँखों देखी घटना ब्यान करता हुआ लिखता है—'मैं सिंघों का कौमी प्रेम तथा कुर्बानी का चाव देखकर सबसे पहले अपना कंधा नीचे देकर न्योछावर हो जाना चाहता था। मैं पीछे इसलिए रह गया ताकि सिंघों की अद्वितीय शूरवीरता की कहानी संसार को बता सकूं। इसी वर्ष पेशावर पर भी आक्रमण किया गया, परन्तु यार मुहम्मद ख़ां को ही वहां का हाकिम नियुक्त करके तथा भारी रकम लेकर ख़ालसा फ़ौज वापिस आई। 1819 ई० में कश्मीर, 1821 ई० में मानकेरा को जीतकर सिक्ख सलतनत में मिलाया गया।

मार्च 1822 में नेपोलियन की फ़ौज से पराजित हुए जरनैल वैनतूरा (इतालवी) तथा जनरल अैलारड (फ्रांसीसी) नौकरी की तलाश में काबुल के रास्ते महाराजे के पास लाहौर पहुँचे। महाराजा ने सिक्ख सरदार की वफ़ादारी निभानी, तमाकूनोशी, दाढ़ी केश कटवाने तथा गाय के मास से परहेज़ रखने की शर्त मनवाकर इनको मुलाज़म रखा। वैनतूरा शेर-ए-पंजाब के देहांत के पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के पास जाकर नौकर हुआ था तथा अैलारड तो पीछे फ्रांस के बादशाह फिल्लिप की ओर से सफीर ही नियुक्त हो गया था। इसका पंजाब से इतना घनिष्ठ प्यार हो गया था, यह कहा करता था कि मेरी क़बर लाहौर में ही बने। इसके अतिरिक्त और भी इतालवी, फ्रांसीसी, जर्मनी, अंग्रेज़, रूसी, अमेरीकन, सपेनी, पुर्तगाली लगभग 72 विदेशी आदमी महाराजे की नौकरी में आये, जिनका सविस्तार विवरण सिक्ख राज्य के हिस्टोरियन बाबा प्रेम सिंघ जी ने अपनी पुस्तक *ख़ालसा राज दे बदेशी करिंदे* में दिया है।

मार्च 1824 में नौशहरे के युद्ध में अकाली फूला सिंघ शहीद हो गये और पेशावर पर सिक्ख फ़ौजों का पूर्ण अधिकार हुआ। यार मुहंमद ख़ां और दोस्त मुहंमद ख़ां ने क्षमा मांग ली और महाराजे ने यार मुहंमद ख़ां को ही फिर वहां का हाकिम नियुक्त कर दिया। यह प्रथम अवसर था जब सैंकड़ों वर्षों से हिन्द को लूटने वाले पठानों पर पंजाबियों ने अपना अधिकार कायम किया। इसके पश्चात् 800 वर्षों से हिन्द पर दर्रा ख़ैबर की तरफ़ होने वाले आक्रमणों को सदा के लिए बंद कर दिया गया। नौशहरे के युद्ध ने अफ़ग़ानों के दिलों पर सिक्ख वीरता की बहुत धाक जमाई। एक हसमुख विद्वान् मुल्लां रशीद ने काबल दरबार

में बैठे हुये अपने पांव स्वयं चूमकर कहा कि मैं तो इन चरणों के सदके बचकर यहाँ पहुँचा हूँ, नहीं तो मैंने अकाली सिंघों के अधीन हो जाना था। उन्होंने फिर कहा कि 'मैं सिंघों के साथ लड़ाई करना पसंद करूँगा, यदि सरहिन्द के किसी ऊँचे पहाड़ी टिले पर बैठकर लंबे नेज़ों के साथ दूर पंजाब में घूमते सिंघों को मारना हो।' इसी तरह एक बार हाकिम काबुल ने कहा कि यदि पेशावर का 'बाला हिसार' दुर्ग काबुल में होता तो बहुत अच्छी बात थी। तो मुल्लां रशीद ने हँसकर उत्तर दिया, 'यह हो सकता है दुर्ग के चारों तरफ़ पठान बांध दो ओर फिर उन पर एक अकाली निहंग छोड़ दिया जाये, जब पठान ज़ोर से भागेंगे तो दुर्ग स्वयं खिंचता हुआ काबुल आ जाएगा।' यह बातें बताती हैं कि काबुली पठान सिंघों से कितने भयभीत हुए थे और इनका कितना लोहा मानते थे।

महाराजे के विजयी होने का इतना प्रभाव पड़ा कि 1826 ई० में निज़ाम हैदराबाद ने एक कीमती चन्दोआ तथा कई और तोहफ़े भेजे। चन्दोये को सुन्दर देखकर शेर-ए-पंजाब ने उसी समय इसको हरिमंदर दरबार साहिब अमृतसर भिजवा दिया। 1827 ई० में कश्मीर में भयानक अकाल पड़ा, जिसमें महाराजे ने दिल खोलकर लोगों की सहायता की। 1828 में महाराजे की ओर से फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन की अगुवाई में एक वफ़द शिमले लार्ड एमहर्सट से मुलाकात के लिए गया, इसी तरह अंग्रेज़ी सरकार की ओर से एक सफ़ीर अमृतसर आया। शिमले में बातचीत के दौरान एक बार फ़कीर साहिब से पूछा गया कि महाराजा साहिब की किस तरफ़ की आँख ख़राब है। चतुर वज़ीर ने उत्तर दिया कि उनके प्रभावशाली जलाली चिहरे के सामने मैं कभी नज़र उठाकर नहीं देख सका, इसलिए यह बताना कठिन है।

महाराजे की दिन प्रतिदिन बढ़ती शक्ति को देखकर फ़िरंगी सहन नहीं कर सकते थे। कम्पनी की तरफ़ से सय्यद अहमद बरेलवी को काफ़ी रुपये देकर पठानी इलाके की ओर छेड़खानी करने के लिए भेजा गया। जहाद के नाम पर इसने पठानों को बहुत भड़काया, परन्तु ख़ालसई फ़ौज के सामने इसकी कोई पेश न चली। 1830-31 ई० में इसने फिर शरारतें की, परन्तु अंत में सिंघों ने मुज़फ्फराबाद के दुर्ग में घेरकर इसको मार दिया। 1831 ई० में इंग्लैंड सरकार का पोलिटीकल एजंट अलैगज़ैंडर बर्नज़ सिंध के रास्ते अपने बादशाह की ओर से शेर-ए-पंजाब के लिए तोहफ़े लेकर हाज़िर हुआ। आशा तो फ़िरंगी सरकार की यह थी कि

सिंध के इलाकों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त की जाये और व्यापार और राज्य के लिए मैदान बनाया जाये। 26 अक्तूबर, 1831 को रोपड़ के मुकाम पर महाराजे की गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक से मुलाकात हुई, जिसका आशा दोनों सरकारों के बीच परस्पर प्यार और दोस्ती पक्की करना था और अंग्रेज़ का निशाना अपनी चतुर नीति के संबंध स्थापित करना था। रणजीत सिंघ भी इस बात को अच्छी तरह जानता था। क्योंकि जब 1832 ई० में ईसाई मिशनरी जोज़फ़ वुल्फ लाहौर आया तो रणजीत सिंघ ने कहा—'तुम हमें क्यों धर्म ईमान के लिए प्रेरित कर रहे हो, हिन्द के अंग्रेज़ों को क्यों नहीं सिखाता, जिनका कोई धर्म ही नहीं।' फिर मिशनरी ने पूछा—'मनुष्य परमात्मा को किस तरह प्राप्त कर सकता है ?' रणजीत सिंघ ने हँसकर कहा—'फ़िरंगियों से संधि करके, जैसे कि मैंने अभी किया है।'

पेशावर की तरफ़ फिर गड़बड़ हुई। सय्यद मुहंमद लतीफ़ की लिखित अनुसार बारकज़ईयों के ज़ुल्मों से तंग आकर शीया मुसलमानों तथा हिन्दुओं ने हरी सिंघ नलवे द्वारा शेर-ए-पंजाब के पास फ़रयाद भेजी। नलवे ने मई 1834 में पेशावर पर सीधे अपना अधिकार कर लिया तथा कंवर नौनिहाल वहां का हाकिम नियुक्त हुआ। यह देखकर दोस्त मुहंमद ख़ां बहुत दु:खी हुआ, फ़ौज लेकर आया परन्तु ख़ालसाई फ़ौजों के सामने से दूर भाग गया। नलवे सरदार ने अपनी सीमा मज़बूत करने के लिए मिचनी तथा शंकरगढ़ दो नये किले बनवाये। इस समय मीयां ज़ोरावर सिंघ की देख-रेख में महाराजे की फ़ौजों ने लद्दाख जीत लिया। 1836 ई० में स. हरी सिंघ नलवे ने जमरौद के प्रसिद्ध किले पर अधिकार करके केसरी झण्डा जा लहराया। ये बातें उन पठानों के लिए असहनीय थीं, जिनके बाप दादे कल हिन्दुस्तानियों को लूट लूट नहीं थकते थे। दोस्त मुहंमद 30 हज़ार का पठानी लश्कर लेकर अप्रैल 1837 ई० में जमरोद पर चढ़कर आया, उस समय किले में केवल सात सौ सिंघ थे। काफ़ी समय तक ख़ालसई फ़ौजों ने डटकर लड़ाई की। एक शूरवीर बीबी (स्त्री) ने पठानी वेश धारण करके नलवे सरदार को पेशावर जाकर ख़बर पहुँचाई, दस हज़ार सेना लेकर नलवा तुरन्त पहुँचा, घोर युद्ध हुआ, पठान भाग निकले तथा सरदार हरी सिंघ की छाती भी, पहाड़ की ओट में छिपे पठान की गोली से काफ़ी ज़ख़्मी हुई तथा उसने 30 अप्रैल, 1837 को गुरु-चरणों में जा निवास किया।

महाराजा यह ख़बर सुनकर स्वयं सेना लेकर पहुँचा तथा दोस्त मुहंमद ख़ां काबुल की ओर भाग गया। नलवे (1791-1837 ई०) जैसे सूझवान तथा साहसी जरनैल की मृत्यु के कारण सिक्ख राज्य को काफ़ी घाटा पड़ा। कश्मीर तथा पेशावर जैसे हज़ारों मुँहज़ोर इलाकों को काबू करना आप का ही कार्य था। मिस्टर बर्नज़ कहता है कि मैं अटक दरिया पार करते समय घबराया। सरदार नलवे ने कहा—'मिस्टर बर्नज़ ! सिंघ बनने का क्या लाभ, अगर अटक पार न किया। वह मुझे भी घोड़े पर साथ बिठाकर ले आया। आज तक पठानी इलाके में नलवे के नाम की धाक है।'

1838 में काबुल पर आक्रमण करने के बारे में संयुक्त तैयारी के लिए लार्ड आकलैंड तथा महाराजा के बीच फ़िरोज़पुर में मुलाकात हुई। ख़ालसा तथा फ़िरंगी सेना ने काबुल जीतकर शाह शुज़ाअ को गद्दी पर बिठाया। अंग्रेज़ों का उदेशय रूसी आक्रमण के भय से पेशबंदी करना था।

महाराजा 22 मई, 1839 को कंवर खड़क सिंघ को राजगद्दी देकर कुछ समय बीमार रहने के पश्चात् 27 जून, 1839 को चलाना कर गया। इसके साथ एक तरह से पंजाब की शान का सूर्य डूब गया।[1]

महाराजे के देहांत के समय उसकी सलतनत का घेरा 1 लाख 45 हज़ार वर्ग मील के लगभग था, जिससे 30275000 रुपए वार्षिक आय होती थी। इसकी एक सीमा सतलुज का किनारा था तथा दूसरी पश्चिम की ओर दर्रा ख़ैबर के साथ लगती थी, यदि उत्तर की ओर लद्दाख, असकरदू और तिब्बत तक ख़ालसई राज्य फैला हुआ था तो दक्षिण की तरफ़ शिकारपुर, सिंध के साथ सीमाएं जा मिलती थीं। राज्य-प्रबन्ध की दृष्टि से यह सारा देश लाहौर, मुल्तान, कश्मीर और पेशावर

---

1. महाराज को स्रीर दाह होत देख धीर
रोवते अमीर ते फकीर छोड ताब को।
भाखैं 'आज खाकै भई बीरताई बीरन की,
मीरन की मीरता अमीरन प्रभाव को।
हिन्दुन की हिन्द जरी, सिंघन की जिंद जरी,
गिआन हरी कवीअन को जर गो अफताब को।
भूपन आबादी जरी लाहौर की गादी जरी,
जर गयो सुहाग भाग सगरी पंजाब को। *(पंथ प्रकाश, अध्याय 112)*

चार प्रांतों में बँटा हुआ था। महाराजे के अन्त समय कुल फ़ौज की गिनती 1 लाख 23 हज़ार 800 जवान थी। 384 बड़ी तोपें, 480 छोटी तोपें तथा 60 हज़ार घोड़े थे। ख़ज़ाने में 8 करोड़ नकद रुपए और 80 करोड़ रुपए के हीरे जवाहरात आदि थे। इतने राज्य, ख़ज़ाने और सेना की विशालता को देखकर आश्चर्य होता है कि कैसे शेर-ए-पंजाब ने कम वर्षों में इतनी बड़ी करामात करके दिखाई। उसकी इस बुद्धिमत्ता, दूर-अन्देशी, मेहनत, योग्यता और शूरवीरता की हर देश-विदेश के लिखारी ने अत्यधिक प्रशंसा की है। जिन्होंने उसको अपनी आँखों से देखा, वे उसकी प्रशंसा करते हुए नहीं थकते।

अलैगज़ैंड़र बर्नज़ कहता है—'मैं किसी हिन्दुस्तानी से इतना प्रभावित नहीं हुआ, जितना महाराजा रणजीत सिंघ से। वह अपनी शक्ति को ऐसी योग्यता से प्रयोग करता है कि जो देश के किसी ओर राजे में बिलकुल नहीं देखी गई।' मूर कराफट लिखता है कि मैंने एशिया भर में शेर-ए-पंजाब जैसा निपुण्य हुक्मरान नहीं देखा। कैप्टन मरे कहता है कि हम उसकी प्रशंसा करते हुए रुक नहीं सकते, जिसने इतनी ज़्यादा मुश्किलों से गुज़रकर, एक मामुली सरदारी से उठकर स्वयं को इतनी बड़ी आज़ाद हुकूमत का बादशाह बनाया। सर लैपल ग्रिफ़न लिखता है कि महाराजा रणजीत सिंघ सचमुच संसार के उन ग़ैर-मामूली व्यक्तियों में से है, जिन्होंने संसार का तख़्ता पलट दिया। अगर अंग्रेज न होते तो वह दिल्ली तक अथवा इससे भी आगे अपनी सीमा बढ़ाता। जौन.सी. मारशमैन कहता है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की शक्ति ने अगर उसको सभी ओर से दबाया न होता तो वह निस्संदेह हिन्दुस्तान में एक नामी राज्य स्थापित करता। एक और अंग्रेज़ तो यहां तक कहता है कि अगर वह चाहता तो एशिया भी जीत सकता था।

उसके राज्य-प्रबन्ध के बारे में डब्लयू.जी. औसबर्न लिखता है कि 'यह ठीक है कि वह तलवार के बल पर शासन चलाता है परन्तु न्याय के साथ यह कहना पड़ता है कि खुली लड़ाई के बिना उसने कभी किसी को जान से नहीं मारा, यद्यपि उसके प्राण लेने के लिए कई मारू आक्रमण भी हुए। कई सुशील राजाओं के देशों से उसका राज्य बिना किसी जबर ज़ुल्म से है।' जर्नल जॉन गौरडन के शब्दों में 'उसके प्रबन्ध के नीचे जैसा शान्ति का राज्य हुआ, वैसा पंजाब में कभी नहीं हुआ।' मिस्टर एच.ई. फ़ेन जो अंग्रेज़ कमांडर-इन-चीफ़ का निजी सचिव

था तथा कंवर नौनिहाल सिंघ की शादी के समय लाहौर आया था, वह लिखता है कि रणजीत सिंघ को उसकी प्रजा बड़ा उदारचित बादशाह मानती है तथा पहले हो चुके बादशाहों में से उसको अधिक प्यारा तथा अच्छा हुक्मरान जानती है।' जिन राजाओं तथा रईसों के इलाके उसने अपने राज्य में मिलाये, सभी को जागीरें दीं, कैद में या दर दर पर नहीं भटकाया। इस बात पर ख़ुश होकर मेजर लारंस लिखता है:

'दिल्ली तथा काबुल के बाज़ारों में आप कई शाही घरानों के लोगों को दर दर मांगते फिरते देखोगे, परन्तु पंजाब में ऐसा कोई घराना नहीं दिखाई देता जिसका इलाका महाराजे ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया हो तथा उसके गुज़ारे के लिए अच्छी जागीर या पेनशन न दी हो।'

(जीवन महाराजा रणजीत सिंघ—बाबा प्रेम सिंघ)

शेर-ए-पंजाब का इतना हरमन प्यारा होने का कारण यह था कि वह बिना किसी जाति भिन्न भेद के हर हिन्दु मुसलमान को भी उतना ही प्यार करता था, जितना कि सिक्खों को। फ़कीर अज़ीजुद्दीन विदेश मंत्री था, मियां ग़ौंस ख़ां तथा सुलतान मुहंमद ख़ां दोनों पिता-पुत्र महाराजे के तोपख़ाने के इन्चार्ज रहे। इलाही बख़्श, दीवान मोहकम चंद, मिसर दीवान चन्द माने हुए फ़ौजी जरनैल थे। दीवान सावण मल्ल सूबा मुल्तान का तथा दीवान मती राम कश्मीर का हाकिम रहा। राजा दीना नाथ, दीवान गंगा राम, भवानी दास तथा मिसर बेली राम आदि सूझवान सरकारी ख़ज़ाने की संभाल के ज़िम्मेंदार थे। डोगरे तो अपनी चतुराई के साथ हर पद पर सम्मान तथा पद प्राप्त करते ही थे। ध्यान सिंघ वज़ीर-ए-आज़म था। इस तरह हम देखते हैं कि महाराजे के राज्य में सभी के बराबर अधिकार थे तथा उसका राज्य ठीक अर्थों में निरसांप्रदायिक तथा संयुक्त पंजाबी राज्य था। गांवों में पंचायतें राज्य चलाती थीं तथा महाराजे का सरकारी कर्मचारियों को आदेश था कि वे गांव के चौधरियों, पंचों की सलाह के मुताबिक ही लगान नियत करें:

बमशवरा चौधरीयां व पंचां,
शायसता कस बंदोबसत मुआमला बायद साखत।[1]

इस राज्य का नाम 'सरकार ख़ालसा' तथा शाही दरबार का नाम 'दरबार ख़ालसा' पुकारा जाता था तथा नानकशाही सिक्का चलता था।

1. बाबा प्रेम सिंघ, *जीवन महाराजा रणजीत सिंघ*, पृष्ठ 292.

एक-पुरखी राज्य की तरह महाराजे ने स्वयं को कभी बड़ा प्रकट नहीं किया, उसकी अपनी मोहर में भी 'रणजीत सिंघ अकाल सहाय' लिखा हुआ था। अधिक से अधिक सिक्ख उसको 'सिंघ साहिब' कहकर पुकारते थे, जबकि बाकी बादशाहों के नाम के साथ हम बड़े-बड़े विशेषण लगे देखते हैं। परन्तु प्रजा उसको फिर भी स्थान स्थान पर प्यार-सत्कार के साथ 'सरकार' नाम के साथ ही याद करती थी।

महाराजा खड़क सिंघ, कंवर नौनिहाल सिंघ

शेर-ए-पंजाब की महारानियां महिताब कौर, रानी राज कौर, रतन कौर, दया कौर तथा जिंद कौर, पांच रानियां थीं, जिनसे खड़क सिंघ, शेर सिंघ, तारा सिंघ, मुलताना सिंघ, कश्मीरा सिंघ, पिशौरा सिंघ तथा दलीप सिंघ, सात पुत्र हुए। बड़ा पुत्र कंवर खड़क सिंघ राजगद्दी का अधिकारी बना, यह बड़े सरल व सादे स्वभाव वाला व्यक्ति था, लेकिन बहुत चतुर नीतिमान् नहीं था। इस समय लाहौर दरबार में जम्मू के डोगरे भाईयों—ध्यान सिंघ, गुलाब सिंघ तथा सुचेत सिंघ का बहुत ज़ोर था। ध्यान सिंघ तो वज़ीर-ए-आज़म था तथा बहुत चतुर तथा कपटी था, महाराजे के देहांत के बाद तुरन्त इसने अपने ख़ूनी षड्यंत्रों का काण्ड आरम्भ किया। जिस चालीस वर्षों के दीर्घ संघर्ष से बनाई ख़ालसा सल्तनत केवल 4-5 वर्षों में ही मिट्टी में मिला दी। ध्यान सिंघ के मन की एक ही इच्छा थी कि महाराजे के समस्त शहज़ादों को किसी न किसी तरह एक तरफ़ करके अपने पुत्र हीरा सिंघ को लाहौर के तख़्त पर बिठाया जाये। इस कार्य के लिए उसने कई शहज़ादों के ख़ून से हाथ रंगे तथा कईयों के बारे में यह शंका फैलाई कि वह वास्तव में महाराजे के असली पुत्र नहीं हैं। ध्यान सिंघ का दोस्त साथी कर्नल गौरडन लिखता है—'इन (डोगरों) का सपना यह था कि उनके परिवार का जानशीन या कम से कम उनकी बढ़ रही संतान में सर्वाधिक होनहार हीरा सिंघ आख़िर महाराजा रणजीत सिंघ की गद्दी का मालिक बने।' यह डोगरा-गर्दी का निशाना था।

डोगरागर्दी

पहले डोगरों ने महाराजा खड़क सिंघ तथा कंवर नौनिहाल सिंघ पिता

तथा पुत्र में फूट पैदा की। कंवर नौनिहाल सिंघ पेशावर का गवर्नर था। यह भ्रम फैलाया गया कि महाराजा खड़क सिंघ तथा उसका सलाहकार सरदार चेत सिंघ बाजवा षड्यंत्र करके ख़ालसा-राज्य फ़िरंगियों के अधीन करना चाहता है। कंवर ने इस बात को सच समझा, महाराजे के सलाहकार चेत सिंघ को ध्यान सिंघ ने उसकी आँखों के सामने मरवा दिया तथा महाराजे को नज़रबंद कर दिया। अब नौनिहाल सिंघ ने राज गद्दी संभाली। कुछ समय के पश्चात् उसने महसूस किया कि अगर अकेले ध्यान सिंघ के बिना राज-प्रबन्ध कौंसिल बनाई जाये तो अच्छा है। फलस्वरूप राजा ध्यान सिंघ, फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन, स. लहणा सिंघ मजीठिया, अजीत सिंघ संधावालिया, ज़मादार ख़ुशहाल सिंघ तथा भाई राम सिंघ की कौंसिल बनी।

महाराजा नौनिहाल सिंघ (23 फ़रवरी, 1822 से 5 नवम्बर, 1840 ई०) अपने बाबे की तरह बड़ा बहादुर तथा सूझवान नौजवान था, कई मुहिंमों को जीतने का इसको अनुभव था। काफ़ी समय से कांगड़ा, सुकेत, मंडी आदि पहाड़ी इलाकों की ओर से मालिया (मामला) प्राप्त नहीं हो रहा था। महाराजे ने सितम्बर 1840 में सेना भेजकर इस इलाके को सीधा ख़ालसा राज्य में मिला लिया।

ध्याना डोगरा, अपने षड्यंत्रों में अनुरक्त था, नज़रबंद महाराजा खड़क सिंघ को रोज़ाना ख़ुराक में कसकरी तथा रसकपूर आदि ऐसी वस्तुएं देता रहा था, जिससे उसका स्वास्थ्य और ख़राब हो, अन्त में वह बेचारा शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से संघर्ष करता 5 नवम्बर, 1840 को मर गया। पिता का संस्कार करके महाराजा नौनिहाल सिंघ सायःकाल किले की ओर आ रहा था कि पूर्व बने षड्यंत्र के अनुसार उत्तरी दिशा के अकबरी दरवाज़े की फसील गिरा कर नौजवान महाराजे को ज़ख़्मी कर दिया गया। थोड़ा-सा ज़ख़्म हुआ परन्तु ध्यान सिंघ ने महाराजे को अन्दर गुप्त कोठड़ी में लिजाकर सिर को फिसा-फिसाकर मार दिया। इस समय महारानी चांद कौर तथा महाराजा नौनिहाल सिंघ की रानी श्री नानकी भागकर आई तथा स. लहणा सिंघ ने भी दरवाज़ा खटखटाया परन्तु किसी को अन्दर न जाने दिया गया। जब काफ़ी देर के बाद दरवाज़े को खोला गया तो उस कमरे का फ़र्श लहू से भरा हुआ था तथा महाराजे की मुर्दा लाश पड़ी थी। इस प्रकार डोगरों ने सुयोग्य तथा सुन्दर 20-21 वर्षीय होनहार नौजवान का अन्त किया। कुछ इतिहासकारों का विचार है कि अचानक रौशनाई दरवाज़े की डाट गिरने से कुँवर

की मृत्यु हुई।

कनिंघम लिखता है कि महाराजा नौनिहाल सिंघ बड़ा योग्य तथा प्रभावशाली बादशाह था। यदि वह जीवित रहता तो ख़ालसा सलतनत को इलाका सिंध तथा अफ़ग़ानिस्तान के इलावा हिन्दुकुश की पहाड़ियों से भी आगे पहुँचाने की ऊँची इच्छाएं रखता था। वह मन से चाहता था कि यह बात सिद्ध कर दी जाये कि महमूद गज़नवी तथा तैमूर के हिन्द पर आक्रमणों का बदला इस देश के जागृत लोग अच्छी तरह ले सकते हैं। परन्तु डोगरा-गर्दी ने ऐसा न होने दिया। ध्यान सिंघ ने महारानी चाँद कौर को कहा कि तू मेरे पुत्र हीरा सिंघ को गोद लेकर राज-गद्दी की वारिस बन जा। भाई गुरमुख सिंघ तथा मिसर बेली राम ने इस बात की बहुत विरोधता की।

महाराजा शेर सिंघ

फिर ध्यान सिंघ ने कुँवर शेर सिंघ का पक्ष लिया तथा संधावालियों ने चाँद कौर को तख़्त दिलाना चाहा। 14 जनवरी से 18 जनवरी, 1841 तक चार-पांच दिन लाहौर में युद्ध होता रहा, जिसमें लगभग चार हज़ार व्यक्ति मारे गये। अंत डोगरों ने यह समझौता करवाया कि महारानी चाँद कौर को जम्मू के पास नौ लाख की जागीर दे दी जाए तथा उसका वारिस राजा गुलाब सिंघ होगा। इस तरह बहुत सारा शाही दरबार का कीमती सामान, सोलह बैल-गाड़ियां रुपयों कीं, पांच सौ थैलियां सोने की, मोहरों कीं, गुलाब सिंघ लेकर जम्मू चलता बना। 21 जनवरी, 1841 को शेर सिंघ तख़्त पर बैठा, ध्यान सिंघ वज़ीर-ए-आज़म बना। लहणा सिंघ संधावालिया आदि सतलुज पार के इलाके की ओर चले गए, इनकी सब जागीरें ज़ब्त कर ली गईं। महाराजा नौनिहाल सिंघ की पत्नी को बच्चा होने वाला था, उसका गर्भ गिरवा दिया गया तथा 19 जून, 1841 को महारानी चाँद कौर को भी दासियों द्वारा मार पीट करवाकर ख़त्म कर दिया। भाई राम सिंघ ने महाराजा शेर सिंघ को सुझाव दिया कि सिक्ख-राज्य को डोगरा-गर्दी से बचाने के लिए संधावालियों को फिर बुला लेना चाहिए। संधावालिये फिर बुला लिए गये परन्तु ध्यान सिंघ ने महाराजे तथा संधावालिये के बीच फूट पैदा करनी आरम्भ कर दी। 15 सितम्बर, 1843 की बात है कि महाराजा शेर सिंघ शाही किले से दो-तीन मील बाहर फ़ौजी परेड देखने के लिए तंबू लगाए बैठा था।

स. लहणा सिंघ तथा अजीत सिंघ संधावालिया पांच हज़ार सेना के साथ वहां पहुँचे तथा अजीत सिंघ ने बंदूक देखने के बहाने महाराजा शेर सिंघ के सीने में गोली मार दी। वापसी पर रास्ते में महाराजा शेर सिंघ के आठ वर्षीय मासूम बालक टिक्का प्रताप सिंघ को कत्ल कर दिया गया, इस दिन किले में पहुँचकर सभी फ़सादों की जड़ ध्यान सिंघ को भी सरदार अजीत सिंघ ने गोली मारकर ख़त्म कर दिया।

लाहौर दरबार के ख़ूनी कत्लों के बारे में 'ब्रिटिश फ्रैंड् ऑफ़ इंडिया' पत्र ने दिसम्बर 1843 के अंक में आलोचना करते हुए कहा था:

'हमारे पास इस बात का प्रमाण तो कोई नहीं कि रणजीत सिंघ की मृत्यु के पश्चात् जो कत्ल हुए हैं, वे कम्पनी के इशारे से हुए हैं...परन्तु हम यह आवश्य कहेंगे कि हमें इनसे आवश्य बू आती है।'[1]

महाराजा दलीप सिंघ

इसके पश्चात् रानी जिन्दां के छह वर्षीय पुत्र दलीप सिंघ (जन्म 4 सितम्बर, 1838) को 16 सितम्बर को तख़्त पर बैठाया गया। संधावालियों का विचार था कि हीरा सिंघ सुचेत सिंघ को भी मार दिया जाये, परन्तु वे किले से बाहर ही रहे। ध्यान सिंघ की मृत्यु के बाद हीरा सिंघ ने संधावालियों के विरुद्ध सेना में बहुत प्रचार किया कि इन्होंने महाराजा शेर सिंघ तथा उसके टिक्के को मारकर फ़िरंगियों को लाहौर देने की योजना बनाई हुई है। इस बात का बहुत प्रभाव पड़ा तथा 40 हज़ार सेना लेकर हीरा सिंघ ने किले पर धावा बोला तथा अन्दर संधावालियों ने भी मोरचे लगा लिये। सारी रात युद्ध होता रहा। स. लहणा सिंघ तथा अजीत सिंघ दोनों युद्ध में मारे गये। अब महाराजा दलीप सिंघ का हीरा सिंघ वज़ीर बना, उसने अपने विरोधियों को चुन-चुनकर मारा तथा सेना की तनख़ाह बढ़ाई गई।

इस ख़ाना जंगी के अवसर पर कुँवर कश्मीरा सिंघ और कुँवर पिशौरा सिंघ ने भी सयालकोट की ओर कुछ गड़बड़ी करवाई, परन्तु वह तुरन्त दबा दी गई। हीरा सिंघ को मनमानी करने में रानी जिन्दां का भाई जवाहर सिंघ कुछ रुकावट पा रहा था, इसके विरूद्ध भी यही दोष लगाया गया कि यह फ़िरंगियों से सौदे-बाज़ी करके सिक्ख-राज्य

---

1. गंडा सिंघ, *पंजाब उत्ते अंग्रेज़ां दा कबज़ा*, पृष्ठ 58.

का ख़ात्मा करना चाहता है। सिक्ख फ़ौज फ़िरंगियों के विरूद्ध बहुत घृणा रखती थी। डोगरों ने जिसको भी मारना चाहा, उसके विरूद्ध यही दोष लगाकर उसको बदनाम करके ख़त्म किया, परन्तु इस गुनाह के सबसे बड़े दोषी वे स्वयं थे। हीरा सिंघ ने स. जवाहर सिंघ को भी कैद कर लिया परन्तु फिर मजबूरन रिहा करना पड़ा। राजा सुचेत सिंघ अपना प्रभाव बढ़ाने में लगा हुआ था परन्तु हीरा सिंघ ने 27 मार्च, 1844 को उसको कत्ल करवा दिया। यद्यपि लाहौर दरबार घरेलू युद्ध में उलझा हुआ था फिर भी बाहरी जीतें कुछ सीमा तक जारी थीं। 1843 ई० में सिक्ख सेना ने गिलगत को जीतकर अपने इलाके सूबा कश्मीर में मिलाया।

बुरछागर्दी

लहणा सिंघ संधावालिये का भाई अतर सिंघ संधावालिया डोगरों के षड्यंत्रों का अंत करने के कार्य में था तथा वे अपने भाईयों के ख़ून का बदला भी लेना चाहता था। नौरंगाबाद में भाई साहिब बीर सिंघ के डेरे पर अतर सिंघ तथा कुँवर कश्मीरा सिंघ इकट्ठे हुए। हीरा सिंघ ने मुस्लिम तथा डोगरा फ़ौज भेजकर पवित्रात्मा भाई बीर सिंघ के साथ तीनों को क़त्ल करा दिया। सिक्ख फ़ौजों को भी इस बात का पता लग गया कि किस तरह हीरा सिंघ ने फ़ौज के हाथों अच्छे अच्छे सरदार मरवा दिये हैं।

एक बार इसने रानी जिन्दां को भी विष देकर मरवा देना चाहा था। जब सिक्ख सेना को इस सारे भेद का पता लगा तो जोशीले फ़ौजियों ने उसको भी मार देने का निश्चय कर लिया। यह सूचना पाकर हीरा सिंघ अपने साथी पंडित जल्ले समेत काफ़ी दौलत ख़ज़ाना तथा और कीमती सामान लेकर जम्मू की ओर निकलने लगा, परन्तु फ़ौज ने पीछा करके 21 दिसम्बर, 1844 को दोनों दुश्मनों को मार दिया तथा साथ ही राजा गुलाब सिंघ का पुत्र मियां सोहन सिंघ तथा लाभ सिंघ आदि भी मार दिंये गये। इसके पश्चात् जवाहर सिंघ वज़ीर बना। इस समय बुरछागर्दी के कारण असल शक्ति फ़ौज के हाथों में आ गई थी तथा फ़ौजियों ने डोगरागर्दी को ख़त्म करने का निश्चय कर लिया था।

राजा गुलाब सिंघ जम्मू में था तथा काफ़ी समय से मालिया नहीं भेज रहा था। ख़ालसा फ़ौज ने जम्मू पर घेरा डाल लिया। गुलाब सिंघ के सुलह के लिए निवेदन करने पर स. फ़तह सिंघ को भेजा गया,

परन्तु डोगरों ने घेरा डालकर उसको क़त्ल कर दिया। ख़ालसा फ़ौज ने गुस्से में आकर राजा गुलाब सिंघ को गिरफ़्तार करके लाहौर ले आई। अप्रैल 1845 में इसने सारा रुपया अदा करके सुलह कर ली।

परन्तु गुलाब सिंघ दिल का साफ़ नहीं था, उसने कुँवर पिशौरा सिंघ को कहा कि तू ही वास्तव में इस गद्दी का अधिकारी है ? कुँवर पिशौरा सिंघ ने फ़ौज के साथ गाँठ-साँठ करके किला अटक पर अधिकार किया। स. चतर सिंघ अटारी हज़ारे से तथा फ़तह ख़ां टिवाना डेरा इस्माईल ख़ां से इस बलवे को दबाने के लिए अटक पहुँचे तथा कुँवर के साथ समझौता कर लिया गया, परन्तु जवाहर सिंघ का आदेश था कि उसको मरवा दिया जाये। इसलिए 30 अगस्त, 1845 को कुँवर पिशौरा सिंघ को भी रात को धोखे से क़त्ल कर दिया गया। जब फ़ौज को इस बात का पता लगा तो फ़ौज जवाहर सिंघ के विरुद्ध हो गई तथा पृथी सिंघ डोगरे ने इस बात को बहुत हवा दी। पड़ी हुई घबराहट तथा ग़ल्त-फ़हमी को दूर करने के लिए स. दलीप सिंघ तथा रानी जिन्दां जवाहर सिंघ के साथ हाथी पर सवार होकर सेना में आये, परन्तु सेना बहुत भड़की हुई थी तथा 21 सितम्बर, 1845 को बेकाबू फ़ौजियों ने उसी स्थान पर जवाहर सिंघ को गोलियों से मार दिया। इस समय लाहौर दरबार फ़ौजी ख़ूनी कार्यों का अड्डा बन गया था, फ़ौज महाराजे तथा वज़ीर के अधीन नहीं थी बल्कि ख़ुद राजा और वज़ीर फ़ौज के अधीन थे। फ़ौजी जिसको चाहते गद्दी पर बिठा देते तथा जिसको चाहते क़त्ल कर देते। समकालीन कवि शाह मुहंमद लिखता है :

पिछे इक सरकार दे खेड विचली,
पई नित हुंदी मारो मार मीआं।
सिंघां मार सरदारां दा नास कीता,
सभो कतल होए वारो वार मीआं।
सिर फ़ौज दे रिहा न कोई कुंडा,
होए शुतर जिउँ बाझ मुहार मीआं।
शाह मुहंमदा फिरन सरदार लुकदे,
भूत मंडली होई तिआर मीआं।४१।

जिस वज़ीरी के लिये इतने ख़ून-ख़राबे होते रहे, अब उस वज़ीरी को कोई भी संभालने को तैयार नहीं था। कुछ समय रानी जिन्दां, फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन, भाई राम सिंघ तथा दीवान दीनानाथ आदि की सहायता से

राज्य-कार्य चलाती रही। अंत नवम्बर 1845 में मिसर लाल सिंघ वज़ीर तथा मिसर तेजा सिंघ (जमादार ख़ुशहाल सिंघ का पुत्र) ख़ालसा फ़ौज का प्रधान सेनापति बना।

फ़िरंगीगर्दी

फ़िरंगी लुधियाना तथा फ़िरोज़पुर में डेरा लगाए लाहौर दरबार की इस ख़ानाजंगी को बड़े ध्यान से देख रहे थे कि किस तरह शीघ्र ही सारे पंजाब पर अधिकार किया जाये। इसी आशय के लिए वे अफ़ग़ानिस्तान के अमीरों, बहावलपुर के नवाबों तथा मालवे के राजे रईसों के साथ गाँठ-जोड़ करते आ रहे थे। हिन्द का गवर्नर जनरल लार्ड अैलनबरो अक्तूबर 1841 में ही डीयूक ऑफ़ वलिंगटन से पूछता है, 'मुझे राय दी जाये कि पंजाब पर आक्रमण करने का सबसे अच्छा तरीका कौन-सा है ?' जुलाई 1844 में इसके स्थान पर सर हैनरी हार्डिंग गवर्नर जनरल बनकर आया। इसने मेजर बराडफुट जैसे शैतान की विशेष ड्यूटी लगाई कि वह लाहौर दरबार में अधिक फूट पैदा करने की कोशिशें करे। शेर-ए-पंजाब के देहांत के पश्चात् जनरल वैंतूरा जैसे विदेशी अफ़सर भी अंग्रेज़ों को ख़बरें पहुँचाने तथा फूट पैदा करने में व्यस्त हो गये थे। मेजर बराडफुट ने राजा नाभा तथा मोहतमिद केडा सिंघ को इस बुरे कार्य के लिए कहा, परन्तु उसने नितांत इन्कार कर दिया। इस अंग्रेज़ ने बहुत ऐसी नियम विरुद्ध बातें कीं, जिस पर कई बार इसकी अपनी हुकूमत ने भी इस को डांटा।

ख़ालसा सरकार तथा अंग्रेज़ी सरकार के बीच 1809 ई० में हुए इकरारनामे के अनुसार फ़िरंगी केवल' अढ़ाई हज़ार सेना ही रख सकता था। परन्तु इस समय लार्ड हार्ड़िंग ने सिक्ख राज्य की सीमा पर 32 हज़ार सेना, 98 तोपें तथा सतलुज पार करने के लिए बंबई से 70 बेड़ियां भी मंगवा रखी थीं। इस तरह इकरारनामे को खंडित करके कई और कार्य भी किये। स. धन्ना सिंघ मिसल भंगी की रानी लछमन कौर का फ़िरोज़पुर के नज़दीक का इलाका सिक्ख राज्य के अधीन था, इस तरह लुधियाना के नज़दीक कुछ गांव थे, यह सभी अंग्रेज़ी सरकार ने अपने अधीन कर लिए तथा राजा सुचेत सिंघ के 18 लाख रुपये जो फ़िरोज़पुर में जमा थे, उसको भी ज़ब्त कर लिया गया। इस इकरारनामे

के विरुद्ध अंग्रेज़ों ने मुल्तान के बाग़ी दीवान मूल राज की भी सहायता की। ये तथा और कई ऐसी बातें यह सिद्ध करती हैं कि अंग्रेज़ों ने युद्ध की नींव रखी। मेजर समिथ इस सम्बन्धी प्रकाश डालता हुआ स्पष्ट लिखता है, 'अगर 1809 का इकरारनामा दोनों हुकूमतों के बीच था तो सीधा प्रश्न यह है कि दोस्ती के नियमों को पहले किसने ख़त्म किया ? मेरी दृढ़ राय यह है कि पहल हमने की है।'[1]

लाहौर दरबार के वज़ीर तथा फ़ौजों के सेनापति मिसर लाल सिंघ तथा तेजा सिंघ पहले ही अंग्रेज़ सरकार के साथ मिल चुके थे। कुछ सरदारों की राय थी कि अभी घरेलू फूट के कारण अंग्रेज़ों से युद्ध आरम्भ नहीं करना चाहिए, परन्तु तेजा सिंघ के भड़काये फ़ौजी रुकने वाले नहीं थे। इसलिए लाहौर दरबार की ओर से 17 नवम्बर, 1845 को अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध का ऐलान कर दिया गया तथा 11 दिसम्बर, 1845 को 30 हज़ार ख़ालसा फ़ौज ने सतलुज पार करके अपने इलाके फ़तेगढ़ (सभरा) में मोरचे बना लिए। यहां से 20 मील पर फ़िरोज़पुर अंग्रेज़ी छावनी और 60 मील पर लुधियाना था। सिक्ख फ़ौजों की इच्छा पहले सीधा फ़िरोज़पुर पर अधिकार करने की थी, जैसा कि फ़ौजी मुखियों के लिखती प्रमाण-पत्र से प्रगट है कि 'धर्म नियमानुसार पहले नवराते सरबत ख़ालसा फ़िरोज़पुर फ़िरंगी से युद्ध आरम्भ करेगा।'[2]

परन्तु मिसर तेजा सिंघ तो सिक्ख फ़ौज को ख़त्म करने के इरादे से इधर लाया था, उसने कहा, 'सीधा गवर्नर जनरल से टक्कर लेंगे।' यह अंग्रेज़ों की ख़ुशकिस्मती थी कि सिक्खों ने फ़िरोज़पुर पर धावा न बोला, वहां उस समय केवल सात हज़ार सिपाही थे। अगर इस समय ईमानदार देश-प्रेमी हरी सिंघ नलवे जैसा जरनैल अगुवाई कर रहा होता तो 60 हज़ार ख़ालसा फ़ौज फ़िरोज़पुर तथा लुधियाने में से फ़िरंगियों को निकाल कर दिल्ली की ओर धकेल देती। कारण यह था कि सिंघ फ़ौजों में जोश बहुत था तथा फ़िरंगियों के विरुद्ध अत्यन्त घृणा थी, उनको मान था :

'असां मारे चुफेरे दे किले भारे,
असां मारिआ कुल्लू भुटंत मीआं।

---

1. *सिक्ख इतिहास बारे,* पृष्ठ 163.
2. *वही,* पृष्ठ 144.

शाह मुहंमदा गल्ल तां सोई होणी,
जेहड़ी करेगा ख़ालसा पंथ मीआं।'
'चली सभ पंजाब दी बादशाही,
नहीं दलां दा अंत शुमार मीआं।
शाह मुहंमदा किसे ना अटकणा ई,
सिंघ रहणगे दिल्ली नूं मार मीआं।'

13 दिसम्बर, 1845 को लार्ड हार्डिंग ने सतलुज के दक्षिण इलाके को ज़ब्त कर लेने का ऐलान कर दिया। 18 दिसम्बर को मुदकी के स्थान पर दोनों दलों की टक्कर हुई। वज़ीर लाल सिंघ के अचानक भाग जाने के कारण सिक्ख फ़ौजों को नुकसान उठाना पड़ा। 21 दिसम्बर को फेरू के स्थान पर शाम के समय भारी युद्ध हुआ, ख़ालसे के तोपख़ाने ने अंग्रेज़ सेना का दिल तोड़ दिया तथा फ़िरंगी दल भाग निकला परन्तु गवर्नर जनरल तथा प्रधान सेनापति लार्ड गफ़्फ़ ने दिल न छोड़ा।

22 दिसम्बर प्रातःकाल ही सिंघ फिर ज़बरदस्त आक्रमण करने की इच्छा रखते थे, लेकिन चाल चलकर ग़द्दार तेजा सिंघ ने कोई पेश न चलने दी। यह भी षड्यंत्र से पीछे भाग निकला। इस समय कनिंघम की लिखित अनुसार, 'अंग्रेज़ों का गोली-सिक्का ख़त्म हो चुका था, अंग्रेज़ उस स्थान के भी मालिक नहीं रह गये थे जहां पर वह खड़े थे।' उनकी सेना का सातवां हिस्सा मारा जा चुका था तथा सिक्खों ने 70 तोपें छीन ली थीं परन्तु सिक्ख फ़ौजों के ग़द्दार मुखियों ने यह ध्यान न दिया। अंग्रेज़ सेना फ़िरोज़पुर की ओर पीछे हो गई तथा सिक्ख सतलुज पार करके इधर अपने इलाके में आ गये। जब रानी जिन्दां को इन षड्यंत्रों का पता लगा तो उसने सिंघों के स्वाभिमान की रक्षा के लिए स. शाम सिंघ अटारी को संदेशा भेजा। यद्यपि स. शाम सिंघ अंग्रेज़ों के साथ अभी युद्ध करने के विरुद्ध था, परन्तु पंथक सम्मान की रक्षा के लिए बूढ़ा जरनैल अपने शस्त्र पहनकर 28 दिसम्बर को सतलुज के किनारे सिक्ख सेना में आ मिला। कुछ सरदार सतलुज पार करने के पक्ष में नहीं थे तथा इधर ही मज़बूत मोरचाबंदी करना चाहते थे परन्तु जोशीले फ़ौजी दरिया पार करके धावा बोलने के इच्छुक थे। इसलिए सभरावां के नज़दीक पुल बांधने की तैयारी होने लगी। आठ हज़ार सिक्ख फ़ौजों ने 6 जनवरी, 1846 को दरिया पार किया। बात यह थी कि फ़िरंगी सेना फ़िरोज़पुर की ओर इकत्रित हो रही थी तथा इधर लुधियाना में उतना

ज़ोर नहीं था। इसलिए फिल्लौर किले का हाकिम स. रणजोध सिंघ लुधियाना पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। 17 जनवरी को यह सतलुज पार करके स. अजीत सिंघ लाडोवालिये को जा मिला जो कि ख़ालसा राज्य का हमदर्द था। स. रणजोध सिंघ ने फिर बदोवाल के किले पर अधिकार कर लिया तथा लुधियाना की अंग्रेज़ छावनी का भी कुछ हिस्सा फूंक दिया।

21 जनवरी, 1846 को इसकी सर हैनरी समिथ की सेना से टक्कर हुई, जिसमें सिक्खों का पलड़ा भारी रहा परन्तु सरदार ने इससे लाभ न उठाया, बल्कि वह बदोवाल का किला भी स्वयं ही छोड़ गया, जिस पर फिर फिरंगी फ़ौज ने अधिकार कर लिया। 28 जनवरी, 1846 को अलीवाल के स्थान पर ज़बरदस्त युद्ध हुआ, रणजोध सिंघ भाग गया परन्तु सिंघ बहुत मर्दानगी से लड़े। जनरल समिथ बताता है, 'एक सिंघ अकेला ही तोप से गोलों की वर्षा करता रहा, उसको कहा गया कि वह भाग निकले परन्तु उसने ऐसा करना स्वीकार न किया तथा वहां ही लड़ता लड़ता शहीद हो गया।'

कप्तान हंबले अपने रोज़नामचे में सिक्खों की बहादुरी बताता लिखता है, 'सिक्ख प्यादा सिपाही हमारे भाले की चोट अपने शरीर पर खाता, परन्तु उसमें इतना बल तथा साहस था कि चुभे हुए भाले की नोक को खींचकर बाहर निकालने से पहले ही हमारे सवार का सिर अपनी तलवार के साथ उड़ा देता।' कारण यह था कि वह गोरे सवार को मियान में से तलवार निकालने का अवसर ही नहीं देता था। इसके बावजूद सिक्ख सेना को दृढ़ता से जूझने पर भी सरदारों की ग़द्दारी के कारण अलीवाल की झड़पों में सिक्खों को पीछे हटना पड़ा। परन्तु इसमें गोरों का जानी नुक्सान सिक्खों से बहुत अधिक हुआ।

सभराउँ की जंग

इस समय लाहौर दरबार की बागडोर तीन दुष्टों के हाथ में थी। गुलाब सिंघ डोगरा वज़ीर-ए-आज़म था, लाल सिंघ (रुहतास के नज़दीक) संघोई का नीच ब्राह्मण वज़ीर था, तथा तेज सिंघ पूरबिया प्रधान सेनापति के पद पर था तथा तीनों ही अंग्रेज़ के साथ मिले हुए थे। गुलाब सिंघ के बारे में हैनरी हैवलाक का कथन ठीक है कि 'अगर किसी मुस्सवर (चित्रकार) ने एशियाई षड्यंत्रों तथा सकीमों की मक्कार तस्वीर चित्रित

करनी हो तो गुलाबे को देखकर काल्पनिक ढांचे कल्पित करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।'

31 जनवरी, 1846 को राजा गुलाब सिंघ बड़ा वज़ीर बना। आशा थी कि शायद इस संकट काल में वह अच्छी अगुवाई कर सके। परन्तु इस स्वार्थी तथा चालाक लोमड़ी ने इस अवसर का पूरा पूरा लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए अन्दर-खाते अंग्रेज़ों के साथ सौदेबाज़ी कर ली। सौदेबाज़ी यह कि ख़ालसा फ़ौज को जंगी-शस्त्र, बारूद, रसद आदि न पहुँचाकर फिरंगी सेना की जीत करवाई जाये। मिसर लाल सिंघ पहले ही अपनी फ़ौजी पेशबंदी का नक़शा मुन्शी शमसुद्दीन कसूरिए के हाथ 8 फरवरी को अंग्रेज़ों के पास पहुँचा चुका था। अन्त 10 फरवरी को सभराउँ के स्थान पर भारी युद्ध आरम्भ हुआ तथा सरदार शाम सिंघ अटारी जैसे सिक्ख-राज्य के शुभचिन्तक आगे बढ़कर बहुत बहादुरी से लड़े, सिंघों के तोपख़ाने ने एक बार तो दुश्मन को आश्चर्य में डाल दिया :

आईआं पड़तलां बीड़ के तोपख़ाने,
अगे सिंघां ने पासड़े तोड़ सुटे।
मेवा सिंघ ते माखे ख़ां होए सिधे,
हल्ले तिंन फ़िरंगी दे मोड़ सुटे।
शाम सिंघ सरदार अटारी वाले,
बन्ह शसत्रीं जोड़ विछोड़ सुटे।
शाह मुहंमदा सिंघां ने गोरिआं दे,
वांग निंबूआं लहू निचोड़ सुटे।९०।...
जंग हिन्द पंजाब दा होण लगा,
दोवें पातशाही फ़ौजां भारीआं नी।
अज होवे सरकार तां मुल पावे,
जिहड़ीआं ख़ालसे ने तेग़ां मारीआं नी।
घोड़े आदमी गोलिआं नाल उडण,
हाथी ढहिंदे सणे अंबारीआं नी।
शाह मुहंमदा इक सरकार बाझों,
फ़ौजां जित के अंत नू हारीआं नी।९२।

सतलुज पार 30 हज़ार सिक्ख सिपाही तथा 70 तोपें थीं। शेष सेना इस तरफ़ खड़ी थी। ज़बरदस्त युद्ध हो रहा था, अंग्रेज़ों की जीत

का कोई ढंग नहीं दिखाई देता था। इस अवसर पर ग़द्दार सेनापति तेजा सिंघ तथा वज़ीर लाल सिंघ बेड़ियों का पुल तोड़कर दरिया पार करके भाग निकले ताकि ख़ालसा फ़ौज स्वयं संकट में फँसकर ख़त्म हो जाए। स. शाम सिंघ अटारी सात ज़ख़्म खाकर भी रणभूमि में लड़ते हुए शहीद हो गये। ज्ञानी ज्ञान सिंघ लिखते हैं—

पांच सात सरदार जि औरैं, लरते शाम सिंघ सम गौरै।
तो अंगरेज़न को कलकत्ते, भी था टिकन औख अलबत्ते।

(पंथ प्रकाश)

ग़द्दार आगू बारूद के स्थान पर सरसों रख गये थे, इसलिए सिंघ लड़ने से भी असमर्थ हो गये, अंग्रेज़ी तोपख़ाना गोले बरसा रहा था और पीछे से पुल तोड़ दिया गया था। यह सभी कुछ केवल सिक्ख सेना को तबाह करने के लिए था, लेकिन फिर भी सिंघ पूरी दृढ़ता तथा शान के साथ लड़े। कनिंघम लिखता है, 'यदि हमारी पलटनों तथा रसालों ने हर तरफ़ से बढ़-चढ़कर धावे किये, परन्तु गुरु गोबिन्द सिंघ के किसी भी सिंघ ने हार माननी स्वीकार न की।' इस प्रकार अंग्रेज़ कमांडर लार्ड गफ़्फ़ स्पष्ट कहता है कि 'अगर सिक्ख आगू ग़द्दार तथा धोखेबाज़ न होते तो मेरा विचार है कि पंजाब की इन लड़ाईयों का परिणाम कुछ और ही होता।' वह यह भी कहता है, 'मेरा ओहदा तथा मेरी पदवी इस बात से रोकते हैं कि मैं सिक्ख फ़ौज की उस शानदार बहादुरी, चतुराई तथा भरोसे का अपनी लिखितों में वर्णन करता, जिससे उन्होंने हमारी सेना का मुकाबला किया।'

इस प्रकार सभराउँ की जंग में ग़द्दारों के छलावे से सिक्खों की हार हुई। इन लड़ाई-झगड़ों की जड़ मेजर ब्रौडफुट भी युद्ध में मारा गया, जो पता नहीं, क्या क्या बनने के सपने ले रहा था। कई इस बात का दोष रानी जिन्दां के ज़िम्मे लगाते हैं कि उसने अपने भाई का बदला लेने के लिए यह सब कुछ किया, परन्तु यह सारा डोगरों का प्रापेगंडा (प्रचार) था। क्या रानी जिन्दां यह नहीं जानती थी कि सिक्ख फ़ौज की तबाही का अर्थ उसके पुत्र महाराजा दलीप सिंघ के राज्य की तबाही है ? तथा उसकी अपनी तबाही है ?

अंग्रेज़ फ़ौजें सतलुज पार करके 12 फ़रवरी 1846 को कसूर जा पहुँची। 14 फ़रवरी को गवर्नर जनरल हार्डिंग ने ऐलान किया कि 'हम तब तक आगे बढ़ते रहेंगे, जब तक अंग्रेज़ सरकार के किये अपमान

तथा 1809' के इकरारनामे को तोड़ने का बदला न लिया जाये।' 15 फ़रवरी को सलाह के लिए राजा गुलाब सिंघ कसूर पहुँचा, परन्तु हार्डिंग ने कहा, 'समस्त शर्तें लाहौर पहुँचकर ही पूर्ण की जाएंगी।' हार्डिंग 20 फ़रवरी को लाहौर पहुँचा। सिक्ख फ़ौज की शक्ति देखकर पंजाब को एक दम अंग्रेज़ी इलाके में शामिल न किया गया।

9 मार्च, 1846 को अंग्रेज़ों का मनमाना इकरारनामा तैयार हुआ, जिस के द्वारा लाहौर दरबार से यह शर्तें मनवा ली गईं; 'सतलुज तथा ब्यास का इलाका कम्पनी का होगा, लाहौर दरबार को डेढ़ करोड़ रुपये जंगी हरजाना देना होगा, क्योंकि ख़ज़ाने में रुपये नहीं हैं, इसलिए कम्पनी इसके बदले में कश्मीर तथा हज़ारे का इलाका ले लेगी। महाराजा सारी बाग़ी फ़ौज को निकाल देगा, तथा केवल 20 हज़ार घुड़सवार ही रख सकेगा तथा अंग्रेज़ों के विरूद्ध युद्ध में प्रयोग 36 तोपें कम्पनी के हवाले की जाएंगी। अंग्रेज़ी सरकार की आज्ञा के बिना ख़ालसा दरबार अपनी सीमाएँ बढ़ा-घटा नहीं सकेगा। जम्मू के राजा गुलाब सिंघ ने क्योंकि अंग्रेज़ों तथा महाराजे के बीच समझौता करवाने का कार्य-भार उठाया है, इसलिए उसको आगे से जम्मू का ख़ुदमुख़्तार राजा मानना होगा।' कुछ और ऐसी शर्तों के कारण फ़िरंगी ने पंजाब में आकर पाँव पक्के किये। 11 मार्च को एक ओर संधि-पत्र द्वारा चतुराई करके दस हज़ार अंग्रेज़ फ़ौज लाहौर दरबार की रक्षा के लिए तैनात कर दी गई तथा यह भी निर्णय हुआ कि आगे के लिए नई सेना की भरती भी अंग्रेज़ अफ़सरों की सहमती के साथ ही की जा सकेगी।[1]

जंगी हरजाने में से 75 लाख रुपये अदा करके राजा गुलाब सिंघ ने कश्मीर भी अपने अधीन कर लिया, परन्तु कनिंघम निश्चय के साथ लिखता है कि यह रकम कोई नहीं दी गई थी। शेष कुछ रुपया सिक्ख सरदारों ने अपनी जेब में से पूरा किया।

इस प्रकार अंग्रेजों ने फ़ौजी विद्रोह से डरते हुए पंजाब पर पूर्ण सीधा अधिकार तो न किया, परन्तु इसकी पक्की नींव रख दी। डॉ. मैकग्रेगर के शब्दों में, 'इस समय ही सिक्ख हुकूमत ख़त्म हो गई तथा अंग्रेज़ पंजाब के शासक बन गये, वज़ीर बादशाह जैसे तो दिखाने के लिए कठ-पुतलियां मात्र थे।' 23 मार्च, 1846 को गवर्नर जनरल लाहौर

---

1. देखें, कनिंघम, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द सिखज़,*—ज़मीमा 18 तथा 19.

से चल पड़ा। संधि-पत्र के अनुसार पुराने सिपाहीओं को वेतन देकर अपने अपने घर को भेज दिये गये तथा सर जान लिटनर की अगुवाई में अंग्रेज़ फ़ौज लाहौर में रही। हैनरी लारंस के प्रबन्ध के नीचे एक राज्य-प्रबन्ध कौंसल बनाई गई, लाल सिंघ वज़ीर तथा तेजा सिंघ सेनापति बना। महारानी जिन्दां को महाराजा दलीप सिंघ का सरप्रस्त मानकर एक लाख रुपए मासिक देना स्वीकार किया गया।

भरोवाल का इकरारनामा

जब राजा गुलाब सिंघ खुदमुख़्तार राजा बनकर कश्मीर का कब्ज़ा लेने के लिये गया तो वहां के ख़ालसा दरबार की ओर से नियुक्त हाकिम शेख़ इमामुद्दीन ने कब्ज़ा देने से इन्कार कर दिया, क्योंकि वज़ीर लाल सिंघ ने उसको ऐसा करने के लिए लिखा था। फ़ौजी सहायता के साथ कश्मीर का अधिकार दिलाया गया तथा लाल सिंघ का दोष साबित होने पर उसको पैनशन देकर जलावतन कर दिया गया। 1846 ई॰ वर्ष के समाप्त होने पर इकरारनामे के अनुसार अंग्रेज़ फ़ौज का लाहौर से चले जाना बनता था, परन्तु गवर्नर जनरल को यह कतई पसन्द नहीं था। इसलिए 16 दिसम्बर, 1846 को भरोवाल के स्थान पर एक और नया इकरारनामा किया गया। इस अनुसार निर्णय हुआ कि 'गवर्नर जनरल की ओर से नियुक्त किये गये अंग्रेज़ अफ़सर को प्रत्येक महकमे के हरेक कार्य में पूर्ण-रूप से दख़ल देने का अधिकार होगा। गवर्नर जनरल को यह भी अधिकार होगा कि वह देश में शान्ति स्थापित रखने के लिए ख़ालसा सलतनत के किसी भी किले पर अधिकार कर सकता है। महाराजे की रक्षा के लिए लाहौर में भी अंग्रेज़ फ़ौज तैनात रहेगी। लाहौर दरबार अंग्रेज़ फ़ौज के ख़र्च के लिए 22 लाख रुपये वार्षिक देगा तथा महारानी जिन्दां को उसके ख़र्च के लिए आगे से केवल डेढ़ लाख रुपये वार्षिक मिलेगा। ये संधि-पत्र की शर्तें महाराजा दलीप सिंघ के नाबालग होने तक ही लागू होंगी; 4 सितम्बर, 1854 को जब महाराजा 16 वर्ष का हो जाएगा तो यह इकरारनामा भी समाप्त हो जाएगा।[1]

इस संधि-पत्र के अनुसार रानी जिन्दां का दख़ल समाप्त कर दिया गया, तथा हैनरी लारंस रैज़ीडंट नियुक्त किया गया। इस की कूटनीति

---

1. विस्तृत पढ़ने के लिए देखें, कनिंघम-ज़मीमा 21.

इससे सिद्ध होती है, वह कहा करता था कि 'इन हलवाहक पंजाबी सरदारों से तलवार छीनकर फिर हल की हथ्थी पकड़वाना मेरा काम है।'

इस इकरारनामे के अनुसार तेजा सिंघ, शेर सिंघ अटारी, दीवान दीना नाथ, फ़कीर नूरुउद्दीन, रणजोध सिंघ मजीठिया, भाई निधान सिंघ, अतर सिंघ कालेवाला तथा शमशेर सिंघ संधावालिया—इनकी कौंसिल बनाई गई, जो ख़ालसा दरबार के अंदरूनी प्रबन्ध को चलाये। जुलाई 1847 में गवर्नर जनरल ने रैज़ीडंट के अधिकार और बढ़ा दिये कि वह जिसको चाहे कौंसिल के सदस्य पद से हटाकर नया सदस्य नियुक्त कर सकता है, तथा जहां चाहे सिक्ख फ़ौज हटाकर अंग्रेज़ फ़ौज रख सकता है। तेजा सिंघ को षड्यंत्रों की सज़ा देने के लिए क़त्ल करने की योजना बनी, महारानी जिन्दां के सचिव परमे को इसके लिए दोषी ठहराकर फांसी दे दी गई। इसके पश्चात् तेजा सिंघ को ऊँचा उठाने तथा विरोधियों को चिढ़ाने के लिए 7 अगस्त, 1847 को भारी शाही दरबार करके 'राजा' का ख़िताब दिया गया। आम परम्परा यह थी कि जिसको 'राजा' का ख़िताब मिलता, उसको महाराजा अपने हाथों से तिलक लगाया करता था, परन्तु छोटी आयु के महाराजा दलीप सिंघ ने अपनी माता के आदेशानुसार इस ग़द्दार के माथे पर तिलक लगाने से साफ़ इन्कार कर दिया।

रानी जिन्दां कैद में

रानी जिन्दां तथा दीवान दीनानाथ अंग्रेज़ों की बुरी करतूतों में रुकावट साबित हो रहे थे और हार्डिंग भी रानी को जल्दी जलावतन करने के लिये हुकम भेज रहा था। लारंस ने रानी की राजकीय दख़ल-अंदाज़ी तो पहले ही बंद करके एक तरह उसको सम्मन बुरज में नज़रबंद कर दिया था। रानी जिन्दां की दर्दनाक मानसिक अवस्था तथा कैद की हालत का, उसको साहिब हैनरी लारंस की ओर (अगस्त, 1847 में) अपने हाथों द्वारा लिखी चिट्ठी से पता लगता है, जो शायद लारंस पास नहीं पहुँच सकी।

'लिखतुम बीबी साहिब, आलारानि साहिब जोग रोबकारी ! असां आपुणा सिर तुहाडे हवाले कीता सी, तुसां निमक हरामां दे पैरां विच

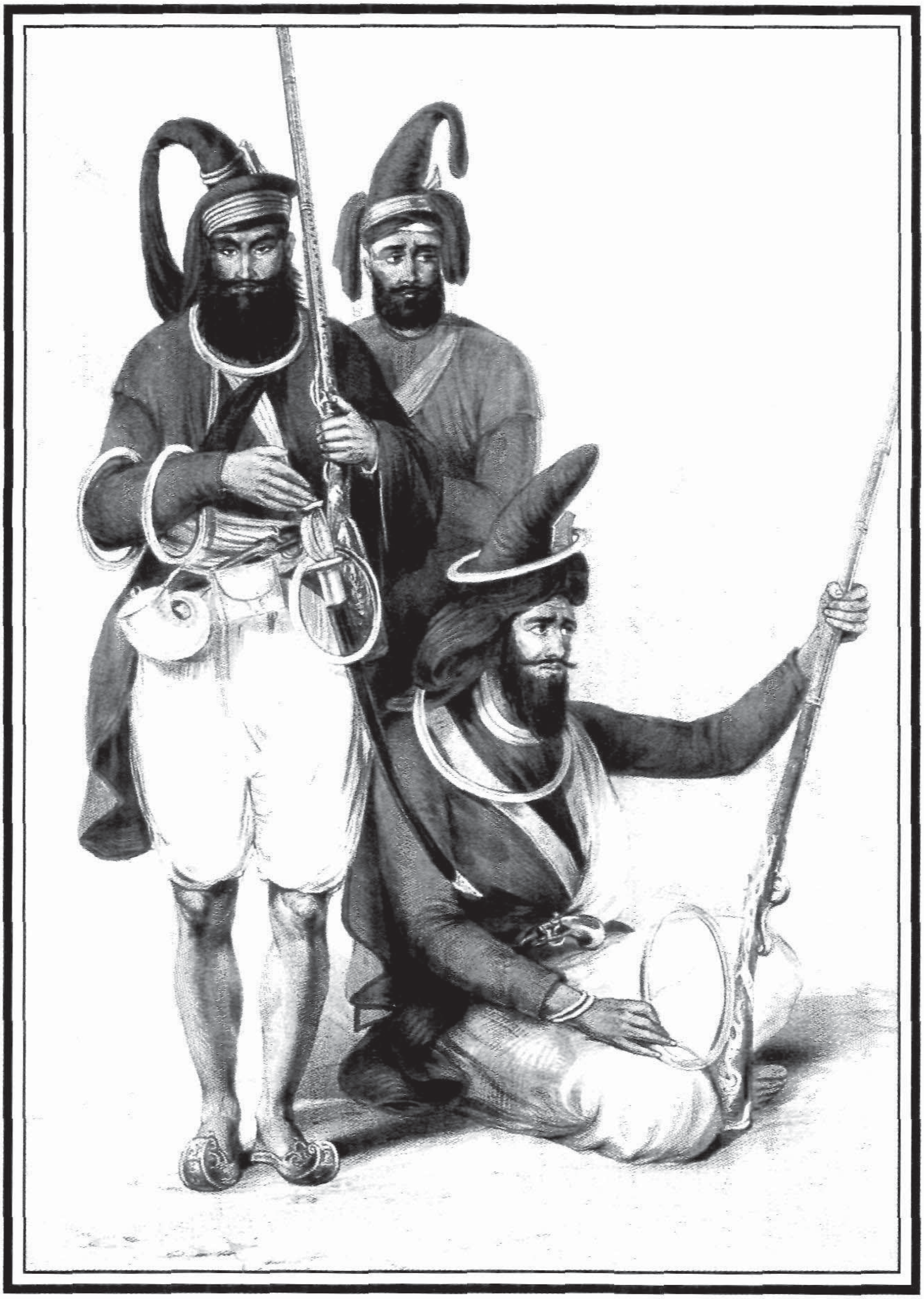
दे दिता सु। तुसां साडी मुनसबी न पाई। तुहानूं जो चाहीदा सी, जो दिरआफती कर के, जो साडे जुंमे लगदा सो लांदे, निमक हरामां दे कहे नहीं सी लगणा। तुसां वडे महाराज दी दोस्ती वल बी नहीं डिठा। तुसां मेरी अबरो लोकां तों लड़ाई ए, तुसां करारनावे ते ऐहद्नावे उपर बी कुछ अबल (अमल) नहीं कीता। राजा लाल सिंघ मेरा मुहतब्रि सी ते ख़ैर खा, सो तुसां तकसीर कर के भेज दिता तां असां कुछ नहीं तुसानूं आखेआ। साडे दिल विच इह गल्ल सी जो आप साहिब साडे पास ने सानूं डर किसदा ए।

'सानूं इस गल्ल दी खबर नहीं सी झूठीआं गल्लां साडे जुमे ला के कैद चहा कीता। कोई साडी लिखत दसो व कुछ साडे जुमे लाओआ फेर जो तुहाडी मरजी हुंदी सो करदे। इक मैं ते इक महाराज ते बाई टहेलणा असीं संमण विच कैद वां होर नौकर सब कढ दिते हेन। असीं बहुत लाचार होए आं। पानी ते रोटी भी नहीं आउण देंदा। इस तरे जु सानूं तंग करदे हो, ऐस गल्ल कोलों फांसी लिगा देउ। जे तुसां साडी अदालत कीती तां अच्छी गल्ल नहीं तां नंदण सतर विच फरयाद करांगे। होर जेड़ा डूड लख लाएआ सी, उह बी नहीं किसे दिता होर जेहड़ा चुहु महीनेआं दे विच ख़र्च कीता सी, इकवंजा (51) हज़ार, सो गैहने वेच मिसर मेगा राम नूं दे दिता ऐ। किसे कोलु कुछ मंगदे नहीं सां आपने गिहेने वेच के गुजरान करदे सां, बेनहक साडी आबरो किउँ लाही। मंगला की तकसीर कीती उनूं बी कड दिता। अज महाराज साडे पास...आ के ते बहुत रोंदे रहे ने, आखण लगे सानूं बिछन सिंघ ते गुलाब सिंघ डरांदे ने जे तां महाराज नूं डर नाल कुझ हो गिया तां फिर मैं की करांगी। ऐनां उनां नूं आखेआ ने तुहानू सहब दा हुकम है जो छाला बाग जा के उतरु, उह सुण के ते बहुत रोंदे रहे। ए जेड़ीआं गल्लां साडे नाल करदे हो, किसे रजवाड़े विच नहीं होईआं, तुसीं कुझे (गुझे) राज किउँ सांबदे उ, जारा (जाहर) हो के किउँ नहीं करदे। नाले विच दोस्ती दा हरफ़ रखदे उ। मेरी अदालत करोउ नहीं तां नंदण (लंडन) फिरआद करांगी। तिनूं चउँ निमक हरामां नूं रख लउ, होर सारी पंजाब नूं कतल करा देउ, इनां दे आखे लग के ते।'[1]

(मोहर) *अकाल सहाए*

---

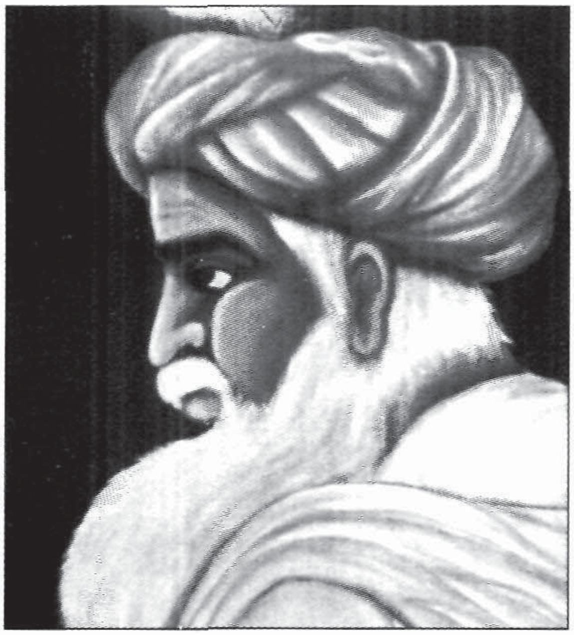
1. यह असल पत्र ख़ालसा कालिज, अमृतसर के पुस्तकाल्य में मौजूद है।



गुरु की लाडली फ़ौज



सिक्खी का प्रेरणा स्त्रोत श्री हरिमंदर साहिब, अमृतसर



भाई लक्खी शाह वणजारा



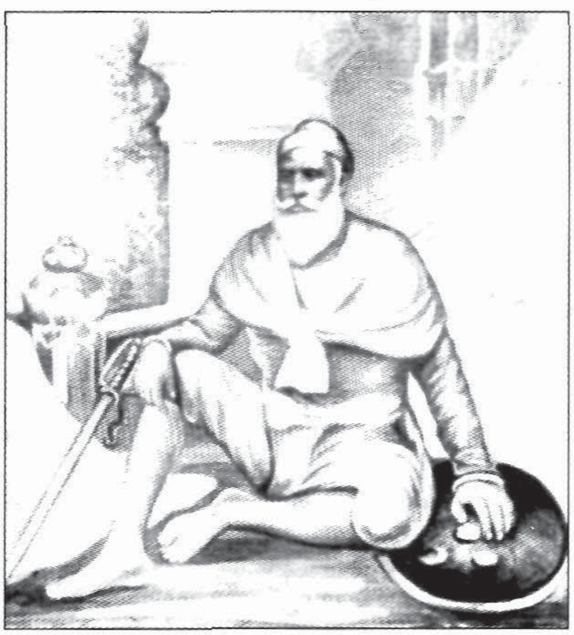
बाबा दीप सिंघ जी शहीद



स: जस्सा सिंघ आहलूवालिया



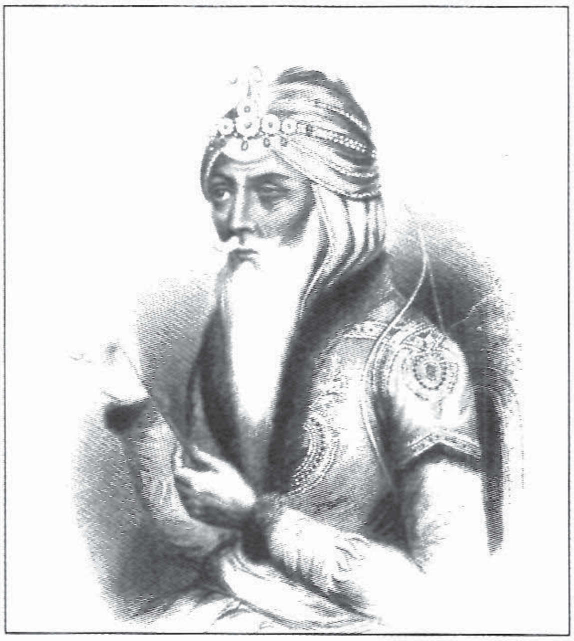
स: जस्सा सिंघ रामगढ़ीआ



बाबा आला सिंघ



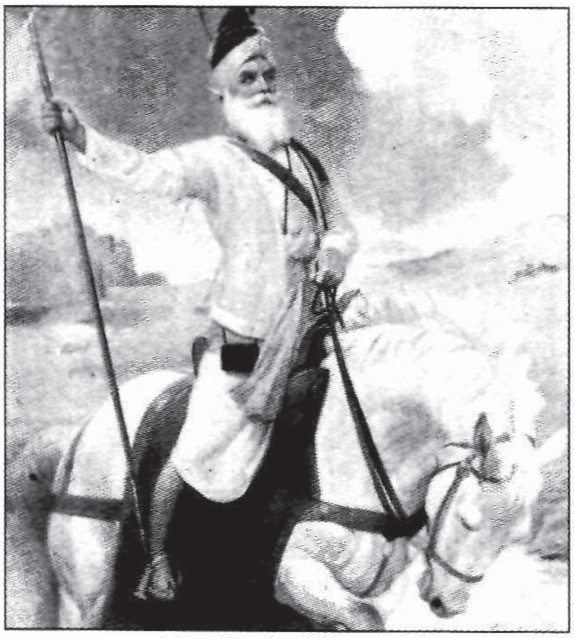
नवाब कपूर सिंघ



शेर–ए–पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ



स: हरी सिंघ नलवा



अकाली फूला सिंघ



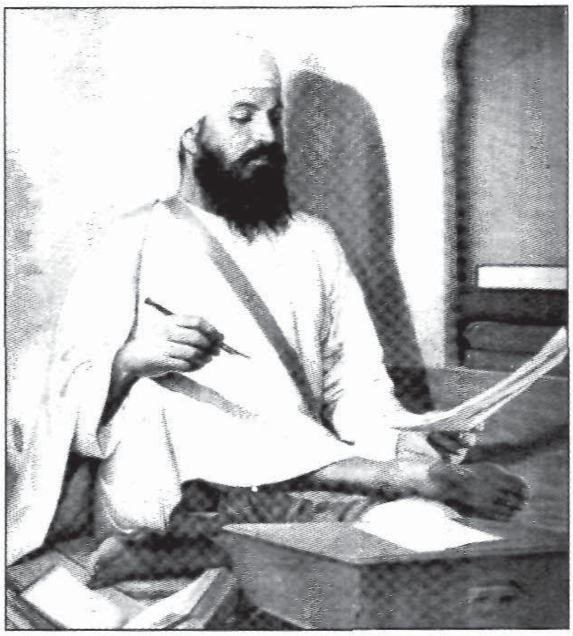
स: शाम सिंघ अटारीवाला



महाराजा शेर सिंघ



महाराजा दलीप सिंघ



महाकवि भाई संतोख सिंघ



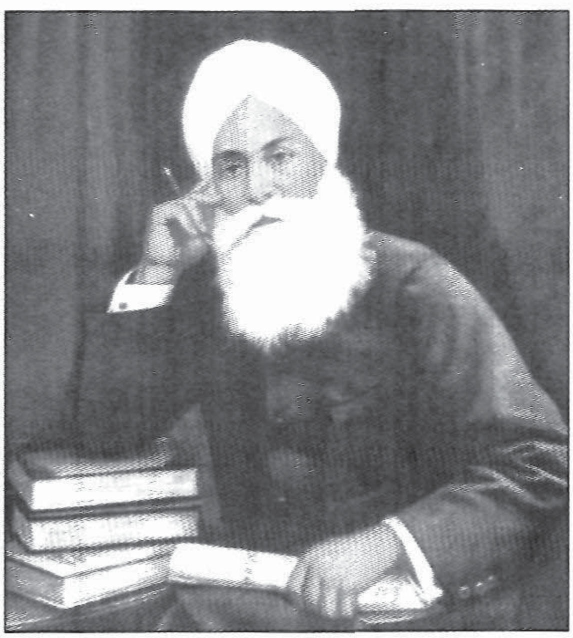
ज्ञानी संत सिंघ



ज्ञानी ज्ञान सिंघ



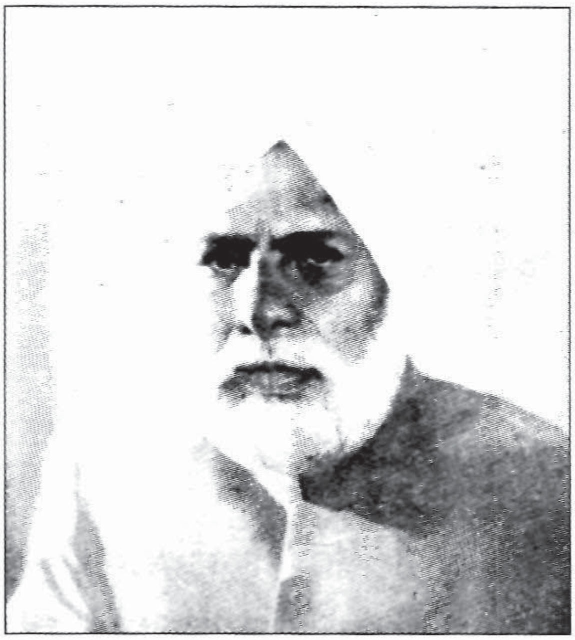
भाई वीर सिंघ



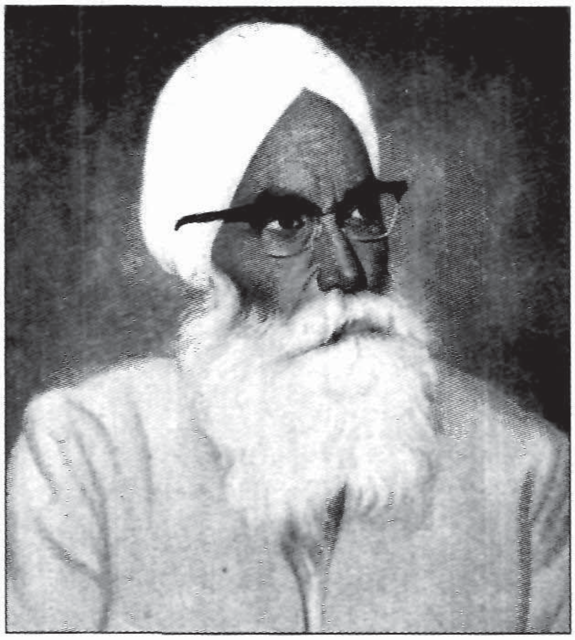
भाई कान्ह सिंघ नाभा



प्रो. पूरण सिंघ



स: ठाकुर सिंघ



स: सोभा सिंघ

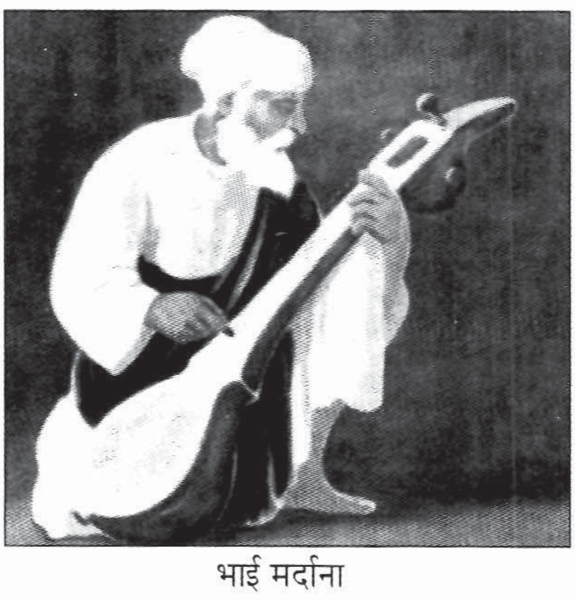


स: ज्ञान सिंघ नकाश

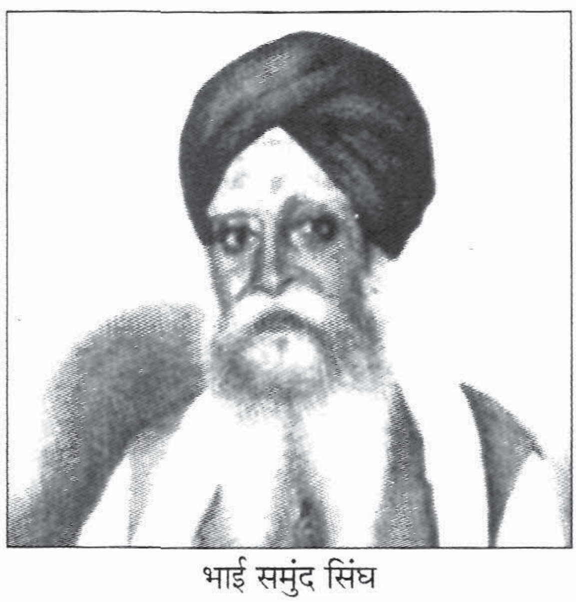


जी. एस. सोहन सिंघ

ननकाणे के गव्वईए



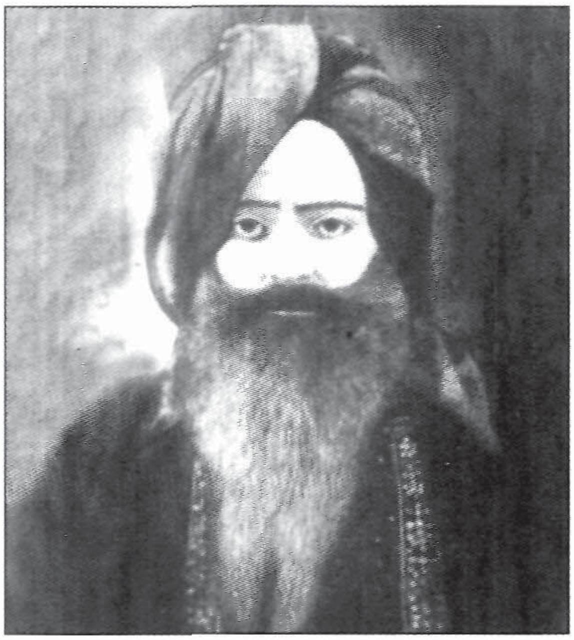
भाई मर्दाना



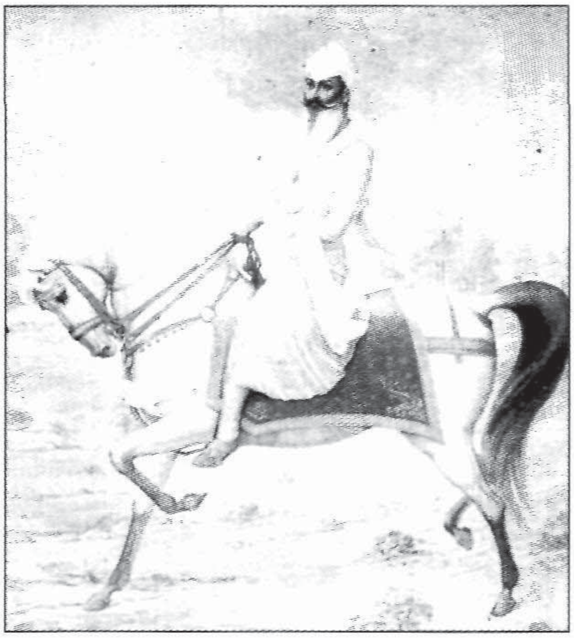
भाई समुंद सिंघ



प्रो. गुरमुख सिंघ



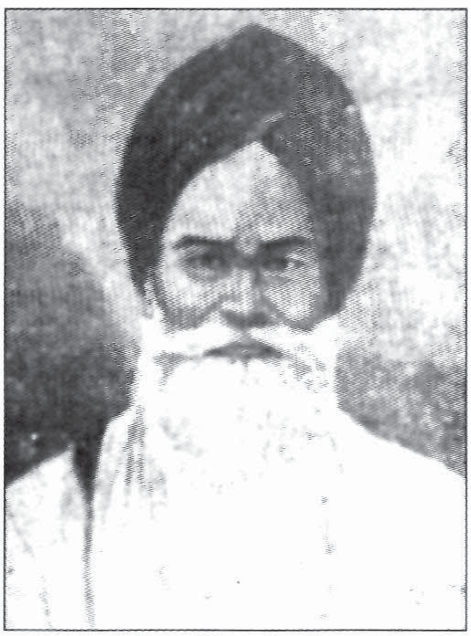
स: ठाकुर सिंघ संधावालिया



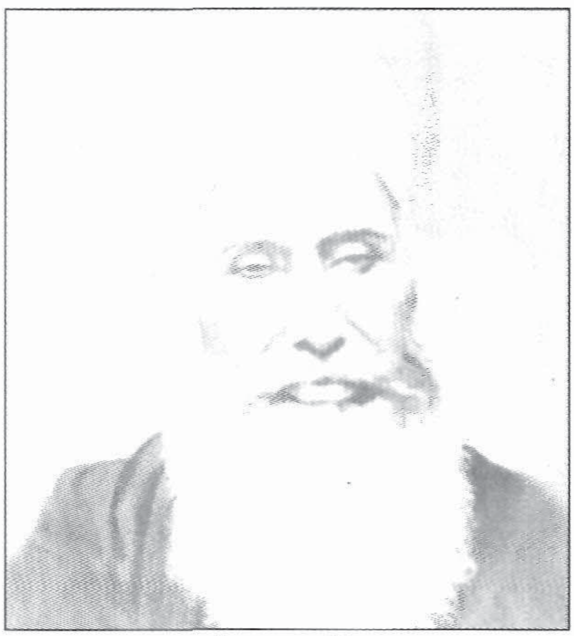
बाबा राम सिंघ



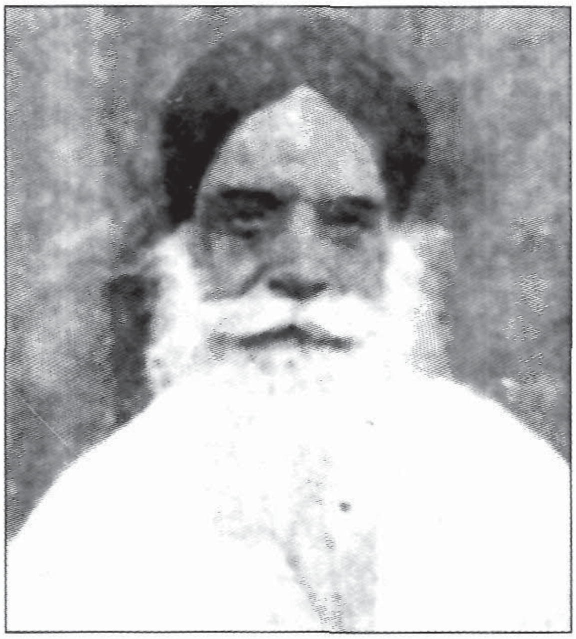
ज्ञानी दित्त सिंघ



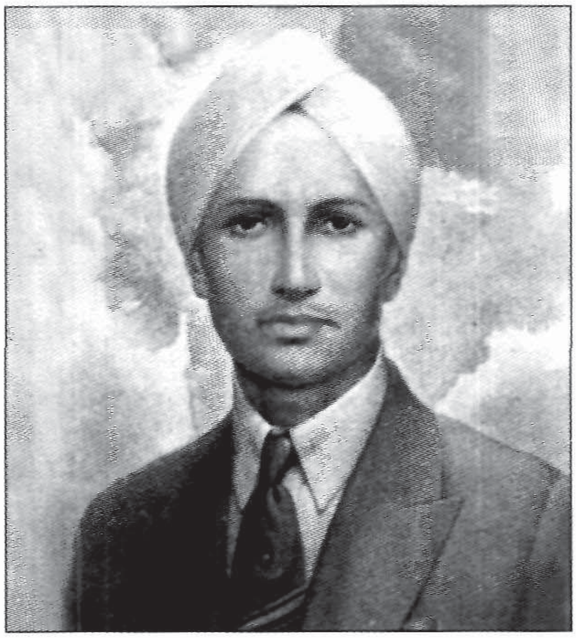
स: सेवा सिंघ ठीकरीवाला



संत अत्तर सिंघ



बाबा खड़क सिंघ



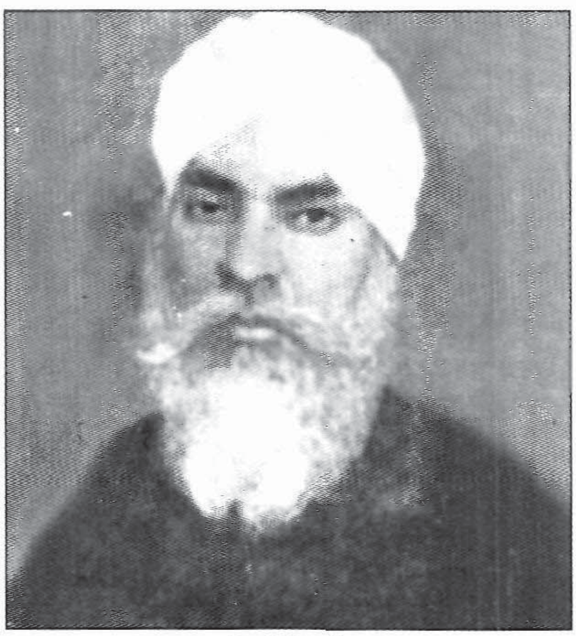
स: करतार सिंघ सराभा



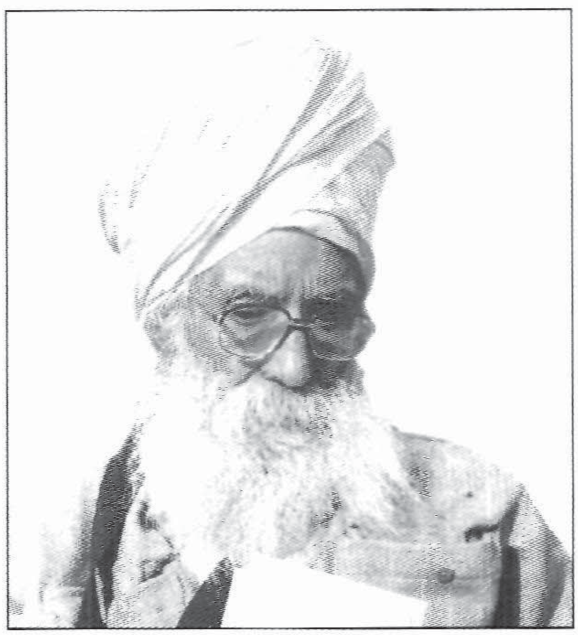
भाई रणधीर सिंघ



मास्टर तारा सिंघ



स: दर्शन सिंघ फेरूमान



भगत पूरन सिंघ

इसके अतिरिक्त रानी जिन्दां की दो चिट्ठियां और भी मिलती हैं।

आख़िर इस प्रकार बहुत मुश्किलों के पश्चात् 19 अगस्त, 1847 को लाहौर से महारानी जिन्दां को शेख़ूपुरे के किले में ले जाकर नज़रबंद कर दिया गया तथा डेढ़ लाख की बजाए 48 हज़ार वार्षिक ख़र्च देना स्वीकार हुआ। अब रैज़ीडंट लारंस निश्चिंत था और शेष सभी सरदार उसके आदेशानुसार ही चलते थे। 1847 ई० वर्ष के अन्त में गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग और रैज़ीडंट हैनरी लारंस विलायत चले गये, परन्तु जाते जाते हार्डिंग अफ़सोस प्रगट करता है कि सिंध के तटों पर अंग्रेज़ी झण्डा झुलाना मेरे भाग्य में नहीं था। 1848 ई० में मारकुइस डलहौज़ी नया गवर्नर जनरल बनकर आया तथा लाहौर का रैज़ीडंट फ्रैडरिक करी नियुक्त हुआ, जिसने मार्च 1848 में चारज लिया तथा जनवरी और फ़रवरी 1848 में दो मास तक जॉन लारंस कार्य चलाता रहा।

मुल्तान का शासक दीवान सावण मल्ल का पुत्र दीवान मूल राज अंग्रेज़ों के इशारे से बाग़ी हो रहा था तथा लाहौर दरबार को रकम नहीं भेजता था, फिर 18 लाख रुपये देकर इसने संधि कर ली। अंग्रेज़ों के साथ युद्ध आरम्भ होने के कारण फिर यह बाग़ी हो गया तथा फ्रैडरिक करी के आने तक यह मामला लटकता रहा। इसने दीवान कान्ह सिंघ को नया हाकिम बनाकर भेजा, इसके साथ दो अंग्रेज़ अफ़सर—वानस ऐगनियू तथा लैफ़्टीनैंट ऐंड्रसन—एक हज़ार गोरखा तथा सिक्ख सेना सहित मुल्तान गये। मूल राज ने दीवान कान्ह सिंघ को सब कुछ सौंप दिया। दो निहंगों ने जोश में आकर इन अंग्रेज़ों पर आक्रमण करके मार दिया। मूल राज डर गया। यदि वे अंग्रेज़ों की सहायता करता था तो उसके सिपाही ही उसको मारने के लिए तैयार थे, इसलिए मजबूरन वह विद्रोहियों के साथ शामिल हो गया। इस समय अंग्रेज़ के इशारे पर सिक्ख सेना में से निकाले हुए 30 हज़ार के लगभग सिपाही बेकार हुए इधर उधर घूम रहे थे तथा युद्ध करने के अतिरिक्त कोई और हुनर नहीं जानते थे। मुल्तान के विद्रोह का प्रभाव चारों ओर फैल गया। इस समय मेजर जार्ज लारंस पेशावर में, मेजर जेम्ज़ ऐबट हज़ारे में, ऐडवार्डस बंनू में तथा जनरल कोर्ट लैंड डेरा इस्माईल ख़ां में अंग्रेज़ अफ़सर नियुक्त थे तथा ये लोगों को सिक्ख राज्य के विरुद्ध तैयार कर रहे थे।

15 मई, 1848 को रानी जिन्दां पर गुप्त साज़िशें करने का दोष लगाकर उसको जलावतन करके बनारस भेज दिया गया तथा ख़र्च 48

हज़ार से कम करके 12 हज़ार वार्षिक कर दिया। माता जिन्दां के निवार्सित होने की सूचना ने सिक्खों को और भड़काया, वे इसको अपना कौमी अपमान समझते थे। मुल्तान में बाग़ी सेना इकत्रित होती गई तथा मूलराज भी मुल्तान के किले में आकी बन बैठा। स. चतर सिंघ अटारी वाले की पुत्री की महाराजा दलीप सिंघ के साथ सगाई हुई थी, इनको हरीपुर हज़ारे की हाकिमी से हटा दिया गया तथा जागीर भी ज़ब्त कर ली गई। इन्होंने भी 14 सितम्बर, 1848 को अंग्रेज़ों के विरुद्ध बग़ावत का ऐलान कर दिया तथा इस बात की सूचना अपने पुत्र राजा शेर सिंघ अटारी को मुल्तान पहुँचा दी जो कि इस समय ख़ालसा सेना के जरनैल थे तथा मुल्तान के विद्रोह को दबाने के लिए लाहौर दरबार की ओर से आये हुए थे। राजा शेर सिंघ भी अंग्रेज़ों की कूटनीति से दुःखी था तथा तंग आकर वह भी 9 अक्तूबर, 1848 को मुल्तान से अपने पिता सरदार चतर सिंघ अटारी की ओर चल पड़ा। मुल्तान के चारों ओर 30 हज़ार सेना ने घेरा डाला हुआ था, कई दिन युद्ध होता रहा। किसी तोप के गोले से किले के बारूद को आग लग गई, जिस से हज़ारों सैनिकों सहित नये दीवान कान्ह सिंघ भी मारे गए। बाद में 21 जनवरी, 1849 को किला विजय हुआ और दीवान मूल राज को कालेपानी की सज़ा मिली।

चिलियाँ वाले तथा गुजरात का युद्ध

राजा शेर सिंघ अटारी ने झनां के तट पर अपना डेरा लगाया और बाग़ी सिपाही यहां इकत्रित होने लगे। अंग्रेज़ सेनापति लार्ड गफ़्फ़ के लिए यह मनभावनी बात थी, क्योंकि अंग्रेज नीति यह थी कि युद्ध का बहाना मिले और समस्त पंजाब पर सम्पूर्ण अधिकार कर लिया जाये। 16 नवम्बर, 1848 को लार्ड गफ़्फ़ 25 हज़ार सेना तथा 101 तोपें लेकर रावी दरिया पार कर गया और 22 नवम्बर, 1848 को राम नगर के स्थान पर राजा शेर सिंघ के साथ टक्कर हुई। प्रथम आक्रमण में लगभग 300 अंग्रेज़ मारे गये और काफ़ी गिरफ़्तार किये गये परन्तु कैदी अंग्रेज़ों को राजा शेर सिंघ ने बड़े आदर से उनकी छावनी में पहुँचा दिया। अब जोज़फ़ को 7 हज़ार सेना देकर वज़ीराबाद के पास झनां दरिया पार कर सिक्ख सेना पर पीछे से आक्रमण करने के लिए भेजा गया।

राजा शेर सिंघ ने भी सूचना मिलने पर सैदुल्लापुर के पास फ़िरंगियों से डटकर मुकाबला किया तथा उन्होंने ईख के खेत में छिपकर अपने प्राणों की रक्षा की। सिंघ दरिया जेहलम की ओर रवाना हुए और रसूल गांव के पास अपना डेरा लगाया। लार्ड गफ़्फ़ डेढ़ मास तैयारी करता रहा। 13 जनवरी, 1849 को चिलियां वाले स्थान पर दोनों दलों की टक्कर हुई। अंग्रेज़ों का बुरा हाल हुआ, अढ़ाई हजार अंग्रेज़ मारे गये, जिसमें 89 आफ़ीसर थे और सिक्खों ने उनसे 18 तोपें छीनीं। मिस्टर थैकवल आँखों देखा हाल ब्यान करता हुआ लिखता है, 'कई लोग इस बात पर निश्चय नहीं करेंगे कि चिलियां वाले युद्ध में एक सिक्ख सिपाही ने तीन नेज़ाबाज़ अंग्रेज़ सवारों को पराजित किया। यह एक वास्तविकता है कि वह सिंघ पहले अपनी ढाल पर नेज़े का आक्रमण झेलता था और फिर झपटकर अपने तेगे से नेज़ाबाज़ को काट देता था।' यही लेखक आगे लिखता है कि 'सिक्ख सिपाही दुश्मन की संगीन को बायें हाथ से पकड़कर दायें से उसको घायल कर देते थे।' सर ऐडवन आरनलड इस युंद्ध के बारे में कहता है, 'यदि सिक्ख अंग्रेज़ों पर इस तरह की एक और विजय प्राप्त कर लेते तो पंजाब में ही नहीं अपितु अंग्रेज़ों को हिन्द से भी हाथ धोने पड़ते।' मुसलमानी इलाका होने के कारण राजा शेर सिंघ को यहां से रसद पानी आदि की कोई सहायता की आशा नहीं थी। वह चाहता था कि माझे की ओर निकला जाये और वहां अपना इलाका होने के कारण पूरी सहायता मिल सकेगी और अंग्रेज़ों को हाथ दिखलाकर पंजाब से निकाला जा सकेगा। सरदार राम सिंघ नूरपुरिये ने माझे में बाग़ियों को संगठित करने का भी कार्य किया, परन्तु अंग्रेज़ों ने इसकी गिरफ़्तारी का इनामी ऐलान कर दिया।

19 जनवरी को सरदार चतर सिंघ अटक पर कबज़ा करता हुआ अपने पुत्र राजा शेर सिंघ को रसूल के मुकाम पर आ मिला। दूसरी ओर 12 फ़रवरी को मुल्तान विजय करने वाली सेना भी लार्ड गफ़्फ़ की सहायता के लिए पहुँच गई। 14 फ़रवरी को सिक्ख सेना ने रसूल से गुजरात की ओर कूच किया। इस समय सिक्ख सेना 30-32 हज़ार थी और लार्ड गफ़्फ़ के पास 50 हज़ार के लगभग सेना और अनगिनत तोपें थीं। सिक्खों के पास शस्त्रों की बहुत कमी थी। 21 फ़रवरी को गुजरात में दोनों दलों का युद्ध हुआ, सिंघों के पास बारूद ख़त्म हो जाने के कारण वे तलवारें लेकर निकले, परन्तु तोपों तथा तलवारों का क्या

मुकाबला था, आख़िर सिक्ख पराजित हुए और काफ़ी इधर उधर निकल गये। कैप्टन ऐबट और जनरल गिलबर्ट ने पीछा करके रावलपिंडी के पास 14 मार्च, 1849 को राजा शेर सिंघ को जा घेरा और उन्होंने अपने साथियों सहित शस्त्र डाल दिये। जनरल गिलबर्ट के सामने सिंघों ने तलवारें रखते हुए बहुत आँसु बहाकर कहा, 'वास्तव में आज शेर-ए-पंजाब की मृत्यु हुई है।' बेदी बिक्रम सिंघ और कर्नल रछपाल सिंघ आदि ने अपने शस्त्र न रखे। उनको गिरफ़्तार करके आगरे नज़रबंद कर दिया गया। इसी तरह राजा शेर सिंघ तथा उसके वृद्ध पिता सरदार चतर सिंघ अटारी को भी पकड़कर कलकत्ते भेज दिया गया। राजा शेर सिंघ की 1877 में यहीं ही फोर्ट विलियम के किले में मृत्यु हुई। यदि सतलुज के युद्ध में ही राजा शेर सिंघ जैसा जरनैल सिक्ख सेना को मिल जाता तो अंग्रेज़ों के लिए पंजाब के किसी भाग में भी पांव टिकाना मुश्किल हो जाना था।

लाहौर पर फ़िरंगी झण्डा

अब लार्ड डलहौज़ी, जो पंजाब को अंग्रेज़ी राज्य में सम्मिलित करने के लिए बहुत उतावले थे, उसने इस कार्य के लिए इलियट को लाहौर भेजा। 28 मार्च, 1849 को इलियट ने कौंसिल के सामने हस्ताक्षर करने के लिए शर्तें रखीं तथा कहा—अगर ये आप स्वीकार नहीं करेंगे फिर भी यह तो सभी कुछ आवश्य हो जायेगा, साथ ही आप की जागीरें भी ज़ब्त कर ली जायेंगी। 29 मार्च को आख़िरी बार महाराजा दलीप सिंघ अपने पिता के शाही सिंहासन पर बैठा, दरबारियों के चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। इलियट ने लार्ड डलहौज़ी का ऐलान पढ़कर सुनाया, जिसमें कहा गया था कि अत्याचार तथा अशान्ति को रोकने के लिए पंजाब में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित किया जाता है।...गवर्नर जनरल को अफ़सोस है कि महाराजा रणजीत सिंघ के वारिस महाराजा दलीप सिंघ को, जब कि अभी वह बालक ही है, मजबूरन सिंहासन से उतारा जा रहा है। दीवान दीना नाथ ने कहा कि अंग्रेज़ी सरकार को इतनी सख़्ती के स्थान पर कुछ उदारता से काम लेना चाहिए, परन्तु अब क्या हो सकता था। आख़िर इन शर्तों पर कौंसिल तथा महाराज दलीप सिंघ से हस्ताक्षर करा लिये गये :

1. महाराजा दलीप सिंघ स्वयं अपने, अपने वारिसों तथा अपने जानशीनों की ओर से पंजाब राज्य के समस्त अधिकार छोड़ता है।
2. पिछले कर्ज़े तथा जंगी हरजाने के स्थान पर लाहौर दरबार की हर तरह की जायदाद अंग्रेज़ सरकार ज़ब्त कर लेगी।
3. महाराजा कोहिनूर हीरा इंग्लैंड की मलिका को अर्पित कर देगा।
4. महाराजा दलीप सिंघ को जो पैनशन दी जायेगी, वह चार लाख से कम तथा पांच लाख से अधिक नहीं होगी। यह पैनशन उसको उसकी सारी आयु मिलती रहेगी, अगर वह अंग्रेज़ों का आज्ञाकारी रहेगा।

इन शर्तों पर डलहौज़ी, इलियट, लारंस, महराजा दलीप सिंघ, राजा दीना नाथ, भाई निधान सिंघ, फ़कीर नूरुउद्दीन, तथा सरदार लाल सिंघ कालियां वाला सभी के हस्ताक्षर हो गये। किले से ख़ालसाई झंडा उतारकर अंग्रेज़ी झंडा झुला दिया गया।

महाराजा दलीप सिंघ को देश निकाला

सभ्य अंग्रेज़ कौम ने कुछ विद्रोहियों को सज़ा देने के नाम पर 11 वर्ष के महाराजे को सिंहासन से उतार दिया, महाराजे की रक्षा के लिए आई अंग्रेज़ सेना स्वयं लाहौर दरबार की मालिक बन बैठी।

क्या न्याय की दृष्टि से किसी तरह भी यह अधिकार करना उचित था ? इस सम्बन्धी कुछ ईमानदार अंग्रेज़ों की राय सुननी आवश्यक है। डलहौज़ी के दुष्कर्मों के सम्बन्ध में मेजर ऐडवर्डज़ स्पष्ट कहता है, 'अनजान लोग हमें निस्संदेह निर्दोष मान लें, परन्तु परमात्मा तथा हमारी अन्तरात्मा ऐसा कभी नहीं मान सकेगी।'

मेजर ईवनज़ बैल्ल की राय है, 'डलहौज़ी' का पंजाब पर अधिकार जाबराना विश्वासघात था, उसने इकरारनामे भंग किये तथा एक पवित्र विश्वास का दुरुपयोग किया। अन्याय तथा बेसमझी के साथ यह अधिकार प्राप्त करके हमारी सीमा को दुर्बल कर दिया, हमारी सेना-शक्ति को फैला दिया तथा हुकूमत पर आर्थिक बोझ लाद दिया। मेरे विचार में आने वाली पीढ़ी तथा तारीख़ उन अवसरों की उपस्थिति में हमारे इस कार्य के प्रति यही निर्णय देगी।'

जौहन लडलो कहता है, 'दलीप सिंघ बालक था, उसकी नाबालगी

1854 ई० में समाप्त होनी थी। हमें देश में अपने अन्तिम प्रवेश के समय (18 नवम्बर, 1848 को) ऐलान किया था कि हम विद्रोहियों को दण्ड देने तथा राज्य के सशस्त्र विरोधियों को दबाने के लिए आए हैं। हमने इस प्रतिज्ञा की पालना छह महीनों में समस्त देश को अधिकार में लेकर की...। परन्तु दलीप सिंघ को एक बार स्वीकार करके तथा इसकी रक्षा की ज़िम्मेंदारी लेकर उसको उसकी प्रजा के दोष का दण्ड देना एक उपहास था।'

जॉन सलिवन लिखता है, 'इतिहास में शायद यह प्रथम उदाहरण है जब किसी रक्षा करने वाले (गार्डीयन) ने अपने बुरे कार्य अपने रक्षक (वार्ड) के सिर पर ठोसें हों।'

'निर्णय हमारे विरुद्ध आवश्य यह होगा कि पूर्व कार्यों में इस (अंग्रेज़) कौम की कोई ज़मीर नहीं है।[1]

अब डलहौज़ी महाराजा दलीप सिंघ को पंजाब में रखना उचित नहीं समझता था, इसीलिए अचानक ही सैर के बहाने दलीप सिंघ के सहित महाराजा शेर सिंघ के शहज़ादा सहदेव सिंघ को, फ़तहगढ़ (यू.पी.) में पहुँचा दिया गया। 21 दिसम्बर, 1849 के दिन शेर-ए-पंजाब का सुन्दर रत्न महाराजा दलीप सिंघ, लाहौर से विदा हुआ तथा फिर उसको अपनी मात्र-भूमि देखने का अवसर न मिला। फ़तहगढ़ के किले में रहते हुए उसको अंग्रेज़ी की मुहारत करवाई गई। यद्यपि डॉ. लागन पहले लाहौर में भी उसको अंग्रेज़ी की शिक्षा दे रहा था। इस प्रकार सूझवान अंग्रेज़ों ने धीरे धीरे उसको अपना देश, अपना रहन-सहन, अपनी भाषा तथा अन्त अपना धर्म भी छुड़वा दिया। दिसम्बर 1851 में डलहौज़ी स्वयं आकर दलीप सिंघ को मिला। अंग्रेज़ों की इच्छा थी कि इसको ईसाई बनाकर शीघ्र विलायत भेज दिया जाये। केश काट दिये गए तथा डलहौज़ी की लिखित अनुसार उसके निजी नौकरों तथा फ़तहगढ़ के चौधरियों की मौजूदगी में 8 मार्च, 1853 को बपतिस्मा देकर उसको ईसाई बना लिया गया, डलहौज़ी ने इस ख़ुशी में उसको स्वर्ण जिल्द वाली बाईबल भेजी। कुछ समय के पश्चात् फ़तहगढ़ से कलकत्ता तथा फिर 19 अप्रैल, 1854 को 17 वर्ष की आयु में दलीप सिंघ को इंग्लैंड भेजने के लिए जहाज़ पर चढ़ा दिया गया।

---

1. गंडा सिंघ, *पंजाब उत्ते अंग्रेज़ां दा कब्ज़ा,* पृष्ठ 220-21.

इधर रानी जिन्दां को बनारस के किले में से लेजाकर फिर ज़िला मिरज़ापुर (यू.पी.) के प्रसिद्ध किले चिनार में कैद कर दिया गया था, वह पंजाब की जट्टी (युवति), शेर-ए-पंजाब की महबूबा तथा महाराजा दलीप सिंघ की माता, दासी का भेस धारण करके, सिर पर गागर रखकर 15 अप्रैल, 1849 को किले में से भाग गई। पहले तो उसकी आशा पंजाब की ओर आने की थी परन्तु जब हुकूमत ने उसकी गिरफ़्तारी के लिए इनाम का ऐलान किया, उसने यह निर्णय बदल लिया तथा भेस बदलकर नेपाल पहुँच गई। यहां के राजे ने खटमांडू में इस बेवतन महारानी के निवास के लिए सुन्दर महल दिया तथा वह काफ़ी समय विषनुपती दरिया के तट पर इस महल में रहती रही।

उधर महाराजा दलीप सिंघ जून 1854 में इंग्लैंड जा पहुँचा तथा लंडन के कालरेज होटल में निवास किया। यद्यपि उसको ईसाई बनाया गया था, परन्तु उसका हिन्दुस्तानी पहरावा-पगड़ी, कश्मीरी कमीज़, मखमली अंगरखा तथा पतलून और हीरे जवाहरात की झिलमिल झिलमिल करती माला बता रही थी कि यह पंजाब का फ़कीर बनाया बादशाह है।[1] डलहौज़ी दलीप सिंघ को ऐसे पहरावे में नहीं देखना चाहता था। वह हिन्द में बैठा लिख रहा था जैसा कि उसके 22 अक्तूबर, 1854 के पत्र से पता लगता है, उसकी टोपीनुमा रात्रि पगड़ी (छोटी पगड़ी) उसकी राष्ट्रीयता का सबसे बड़ा चिन्ह है, अगर उसकी पगड़ी उतार दी जाये तो उसके पास सिक्ख धर्म का कोई भी बहिर्मुखी चिन्ह शेष नहीं रह जायेगा।' यह है कुटिल डलहौज़ी की शुभ कामना! दलीप सिंघ ने विश्वविद्यालय की परीक्षा देने का विचार बनाया, परन्तु यह भी स्वीकार न किया गया। तीन वर्ष यहां रहने के पश्चात् वह फ्रांस, इटली की सैर को गया। यहां उसको पता लगा कि नवाब वाजिद अली

---

1. लार्ड डलहौज़ी 8 अप्रैल, 1854 के पत्र में लिखता है, 'उसकी आयु न तो लड़कों जैसी ही है और न ही आदमीयों जैसी। समस्त मुख पर काली काली रोमावली (लुई) है, परन्तु उसका खड़े होना, बैठना बड़ा श्रेष्ठ तथा शरीफ़ाना है। वह अंग्रेज़ी बड़ी ही सुन्दर बोलता है।' इसी तरह 26 अगस्त, 1845 के पत्र में वह लिखता है, 'दलीप की सुन्दर आँखें, जिन्होंने सारी कोर्ट को मोह लिया है, उसकी माता की आँखें हैं, वही कि जिनके साथ उसने पंजाब के बूढ़े शेर को मोह कर अपने अधीन रखा हुआ था।

(सोढी ब्रिजेन्द्र सिंघ जी का लेख, *पंज दरिआ,* जुलाई 1941)

शाह को 50 लाख पैनशन दी गई है, इसने भी अधिक पैनशन की मांग की, परन्तु कोई सफलता न मिली। बल्कि 20 मई, 1859 को उसको एक सरकारी पत्र मिला जिसमें लिखा था कि अब आप की पैनशन पांच लाख के स्थान पर अढ़ाई लाख वार्षिक कर दी गई है क्योंकि अब आप बालिग बन गये हैं। बाद में दलीप सिंघ ने लिखा कि मेरी मृत्यु के पश्चात् यही रकम मेरे वारिसों को दे दी जाये तथा जो शेष रहे वह ट्रस्ट बनाकर पंजाब में विद्या प्रचार के लिए प्रयोग की जाये। परन्तु उसकी ये बातें सुनने के लिए कौन तैयार था।

माता जिन्दां को मिलने के लिए दिसम्बर 1860 में दलीप सिंघ हिन्दुस्तान आया। सरकार ने इस शर्त पर आज्ञा दी कि वह पंजाब नहीं जायेगा। दलीप सिंघ को कलकत्ते सपैनासिज़ होटल में ठहराया गया तथा माता को लाने के लिए नेपाल आदमी भेजा। फ़रवरी 1861 में राणीगंज दोनों माता-पुत्र का 12-13 वर्ष के पश्चात् मिलाप हुआ। बहुत सारे पंजाबी अपने बादशाह को मिले, परन्तु सरकार के लिए यह असहनीय था। दलीप सिंघ माता जिन्दां को साथ लेकर विलायत चला गया। इंडियन कौंसिल का सदस्य हैनरी लारंस अंग्रेज़ी सरकार को बार बार कह रहा था कि 'यद्यपि जिन्दां बूढ़ी तथा आँखों से अँधी है फिर भी दलीप सिंघ को इससे बचायें, कभी भी ख़तरा हो सकता है।' अन्त में डॉ. लागन द्वारा सरकार से दबाव डाला गया कि 'अगर वे माता-पुत्र अलग अलग न हुए तो उसकी पैनशन पर भी प्रभाव पड़ सकता है।' अन्तः दलीप सिंघ लंडन ही रहा तथा माता जिन्दां को कुछ मील दूर कैनसिंगटन शहर में रखा गया। यह था अंग्रेज़ी सरकार का व्यवहार, वे माता-पुत्र को इस अवस्था में भी इकट्ठे रहने देना पसन्द नहीं करते थे। 1 अगस्त, 1863 को माता जिन्दां स्वर्गवास हो गई तथा मृत्यु के समय उसने निवेदन किया कि मेरे शव का इस निर्दयी भूमि की बजाए पंजाब में जाकर संस्कार किया जाए। दलीप सिंघ संस्कार के लिए हिन्दुस्तान आया। बंबई पहुँचते ही हिन्द सरकार का आदेश मिला कि वह बंबई की सीमा पार नहीं कर सकता। अन्तः वह नर्बदा तट पर अपनी माता का संस्कार करके विलायत वापस लौटा। बंबई से वापसी पर असकंदरीया में उसने एक मिसर की लड़की कुमारी बंबा से विवाह किया। उसने अपनी पैनशन बढ़ाने के लिए भी कई प्रयत्न किये। 31 अगस्त, 1882 के *टाइमज़* अख़बार में अपना सारा मामला अंग्रेज़ लोगों के सामने लाया। महाराजा लिखता है :

'लार्ड डलहौज़ी ने देखा कि असहाय बच्चे के साथ सम्बन्ध बना है, इसीलिए उस लालच में आकर पंजाब को अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया तथा भैरोवाल के पवित्र वायदों को पूर्ण न किया। मेरी समस्त अपनी जायदाद बेच दी गई। जवाहरात, सोने चांदी के बर्तन, कीमती कपड़े तथा घर का शेष सामान बेचकर अढ़ाई लाख पौंड प्राप्त हुए तथा यह रकम सेना में ईनाम के तौर पर बांट दी गई। मेरी 1 लाख 30 हज़ार पौंड की वार्षिक आय वाली निजी जायदाद भी ज़ब्त कर ली गई। मैं परमात्मा के आगे प्रार्थना करता हूँ कि इस खुले-दिल और न्याय वाले देश में कम से कम एक आदरणीय न्याय-पसन्द नेक अंग्रेज़ तो निकला जो संसद में मेरे हक की बहस करे। नहीं तो जब मेरा लूटने वाला सरपरस्त जज, वकील तथा जीऊरी अंग्रेज़ कौम स्वयं ही है तो मुझे न्याय की क्या आशा हो सकती है।' परन्तु इन बातों का कोई प्रभाव न पड़ा। ऐसी दर्दनाक बेबसी तथा तंगी की अवस्था में उसने हिन्द में आकर शेष दिन बिताने चाहे, जैसा कि अपने देश वासियों के नाम लिखे पत्र[1] से प्रगट होता है। यह पत्र 17 अप्रैल, सन् 1885 के *ट्रिब्यून* में प्रकाशित हुआ था। इसका पंजाबी रूपांतर इस प्रकार है :

'मेरे प्यारे देश वासियो !

'मेरी हिन्दुस्तान में रहने के लिए कभी भी वापिस लौटने की इच्छा नहीं थी परन्तु सतिगुरु ने जो सब घटनाक्रम का मालिक है तथा मेरे जैसे भूलने वाले से अधिक समर्थ है, परिस्थितियां इस तरह की बना दी हैं कि मैं अपनी इच्छा के विपरीत हिन्दुस्तान में एक साधारण व्यक्तित्व में रहने के लिए इंग्लैंड छोड़ने के लिए विवश हो गया हूँ। मैं उसके हुक्म के आगे सिर झुकाता हूँ, मुझे भरोसा है कि जो कुछ मेरे भले के लिए है, वह आवश्य होगा।

'परम पवित्र ख़ालसा जी ! मैं अब अपने बजुर्गों का धर्म त्यागकर विदेशी धर्म ग्रहन करने के लिए आप से क्षमा मांगता हूँ। परन्तु मैं उस समय जब ईसाई धर्म धारण किया था, बहुत छोटा था। बंबई पहुँचकर पाहुल (अमृत) पीने की बड़ी तीव्र इच्छा है तथा उस समय मैं सतिगुरु के समक्ष आप की अरदास (प्रार्थना) की सच्चे हृदय से आशा रखता हूँ। मैं विवशता की हालत में आप को यह लिख रहा हूँ, क्योंकि जैसा

---

1. *सिख इतिहास वल,* पृष्ठ 175.

कि मैं बड़ी आशा लगाए बैठा था, मुझे पंजाब में आकर आपके दर्शन करने की अनुमति नहीं है।

हिन्दुस्तान की मल्लिका के लिए मेरी 'अडिग वफ़ादारी' का यह कितना 'शानदार नतीजा' है परन्तु सतिगुरु की इच्छा ही चलेगी। वाहिगुरु जी की फ़तह कहता हुआ मै हां, प्यारे देश वासियो !

लंडन | आप का अपना लहु तथा मास

25 मार्च, 1886 | दलीप सिंघ

हिन्दुस्तान लौटते समय जब वह अप्रैल 1886 में अदन की बंदरगाह पर पहुँचा तो यहां उसने अमृतपान किया तथा ब्रिटिश सरकार ने आपको बिना वारंट के ही गिरफ़्तार कर लिया। सरकार आपका हिन्द में पहुँचना 'ख़तरनाक' ख़्याल करती थी, इसीलिए आपको विवश होकर वापिस विलायत लौटना पड़ा। महाराजे ने सरकार के इस भद्दे व्यवहार से तंग आकर गुस्से में पैनशन लेनी भी छोड़ दी। फ्रांस से बातचीत की गई कि अगर आप माने तो मैं पांडेचरी में ही जा रहूं, परन्तु सरकार के क्रोध से डरते हुए वे भी न माने। यहां से महाराजा जर्मनी होता हुआ अप्रैल 1887 में मास्को पहुँचा, यहां ही उसको अपनी पत्नी श्री बंबा के स्वर्गवास होने की सूचना मिली। अब उसने रूसी सेना की सहायता से हिन्द पहुँचने की योजना बनाई तथा प्रत्येक हिन्दुस्तानी के लिए एक पैसा प्रति मास तथा पंजाबी के लिए आना प्रति मास इकत्रित करने हेतु प्रार्थना की। इस प्रार्थना का कोई अधिक प्रभाव न पड़ा। अन्त यहां से भी निराश होकर वह वापिस फ्रांस आ गया तथा यहां एक फ्रांसीसी लड़की से विवाह किया। उसकी देश में आकर रहने की इच्छा थी जो कभी पूर्ण न हो सकी। पहली पत्नी से उसके तीन पुत्र विक्टर दलीप सिंघ, फ्रैडरिक दलीप सिंघ तथा एडवर्ड दलीप सिंघ तथा तीन पुत्रियां-मिस बंबा, सोफिया तथा कैथराइन थीं। दूसरी शादी से कोई औलाद नहीं थी। महाराजे की पुत्रियां पंजाब में आकर सिक्ख सरदारों से विवाह करना चाहती थी परन्तु ऐसा न हो सका। अंत: 23 अक्तूबर, 1893 में पैरिस के एक होटल में दु:खों तथा ग़मों से झूझता बेवतन पंजाबी महाराजा स्वर्गवास हो गया।

यह है शेर-ए-पंजाब के राज्य के विकास तथा विनाश की कहानी।

यह कहानी पढ़कर हृदय में सल्ल आवश्य पड़ते हैं परन्तु सिक्ख राज्य के विनाश को हम केवल डोगरागर्दी तथा फ़िरंगीगर्दी पर दोष लगाकर स्वयं को नितांत निर्दोष तथा निरापराध सिद्ध नहीं कर सकते। यह मानना पड़ेगा कि राजनैतिक सूझ, ज़ब्त, राष्ट्रीय प्यार, देश भक्ति, पवित्र बे-गरज़ी तथा ईमानदारी की कमी ने ऐसे ख़ूनी कार्यों के लिए मैदान तथा अवसर बनाया। रणजीत सिंघ ने जहां ख़ालसई पंचायती परम्परा को छोड़कर गद्दी को पैत्रिक बनाया, वहां डोगरों को इतना शक्तिशाली बना देना भी उसकी भूल थी। सिक्ख सिद्धांत एकाधिकार की आज्ञा नहीं देते, 'सरबत ख़ालसा' की कौंसिल ही उचित रास्ता था परन्तु रणजीत सिंघ ने मुग़ल सरकार के ढांचे को अपनाकर उसके अवगुणों को भी गले में डाल लिया। सिक्ख सरदारों का शराबों के प्याले पीकर बेसुध रहना भी इसी लापरवाही का नतीजा था, जो इन्कलाबियों को भोग-विलासों की नींद सुलाकर राष्ट्रीय आत्मघात का कारण बनती है।

इससे इन्कार नहीं कि फ़िरंगी कूटनीति के आगे हमारी पराजय हुई, वह इस क्रीड़ा के अधिक चतुर खिलाड़ी थे तथा उनका हिन्द भर में व्यापक प्रभाव था। परन्तु अकेले अंग्रेज़ भी पंजाब की आज़ादी को छीनने के लिए समर्थ नहीं थे, अगर हमारे देश के घटिया वृति के स्वार्थी लोग उनकी सहायता न करते। पंजाब को आघात पहुँचाने वाले पूर्वी या मदरासी सिपाहियों को यह सुध या होश न आई कि हम अपने ही भाईयों की आज़ादी छीनकर फ़िरंगी ज़ंजीरों को मज़बूत कर रहे हैं। हम ग़ैर-पंजाबी सिपाहियों पर भी क्यों गिला प्रकट करें, सतलुज जमुना बीच के सिक्ख, हिन्दु, मुस्लिम रईसों तथा राजाओं ने 'सिक्ख-अंग्रेज़-युद्ध' में स्वयं अपनी सेना भेजकर विशेष रूप से सहायता की तथा बदले में जागीरें तथा ईनाम प्राप्त किये। यह अवस्था असल में गिरावट वाली थी।

डलहौज़ी ने सिक्ख सेना को निहत्थे करके, जिनके छीने हुए शस्त्रों की गिनती 1,19,796 बताई गई है, घरों में बिठा दिया। समस्त सिक्ख सरदारों के किले गिरा दिये गये। नया आया कमांडर-इन-चीफ़ सर चारलस नेपियर तो फ़ौजी राज्य ही स्थापित करना चाहता था, परन्तु सारा राज्य-प्रबन्ध हैनरी लारंस, जौहन लारंस तथा चारलस मैनसल गोरों की तिकड़ी के हाथ में दिया गया, जिन्होंने सिक्ख शान को मिट्टी में मिलाने की कोई कमी शेष न छोड़ी। जौहन लारंस की इस सेवा के बदले में उसको

1853 में चीफ़ कमिश्नर, 1859 में लैफ़्टीनैंट गवर्नर पंजाब तथा बाद में वायसराय हिन्द बनाया गया। इस प्रकार फ़िरंगी विपदा आने के कारण शेर-ए-पंजाब का राज्य एक अतीत की कहानी बनकर रह गया और हज़ारों बहादुर सिपाही जिन्होंने दूर दूर अपनी वीरता की प्रसिद्धि प्राप्त की थी, एकदम मूक होकर ग़ुलामी की निंद्रा में सो गये। यह है सिक्ख राज्य की कहानी :

राज़ी बहुत रहिंदे मुसलमान हिन्दु,
सिर दोहां दे उत्ते अफ़ात आई।
शाह मुहंमदा विच पंजाब दे जी,
कदे नहीं सी तीसरी जात आई।

•

राजपाट युग (२)

(1764-1948 ई०)

'तेरा घरु मेरा असै।'

(हुकमनामा)

'न ज़रह दरीं राह, ख़तरह तुरासत।
हमा कौमे बैराड़ हुकमे मरासत।'

(ज़फ़रनामा)

सच्चा सिध्धु ते बराड़ा, चौधरीआं दा तपा चारा
पात शाही फरयादां गईआं, घारा घागेहारां दा।
पटियाले दे चौधरी भारे, जिन्हां अकबर दे उमरा संभाले
तखत मल्लि, हटावे लशकर, सुआद चखावे सारां दा।

(एक मीर)

राज लीला राजन की रचना, करिआ हुकमु अफारा ।।
सेज सोहनी चंदनु चोआ, नरक घोर का दुआरा ।।

(सोरठि महला ५, पन्ना 642)

राज-पाट युग (२)

(1764-1948 ई०)

यूनानी इतिहासकार क्रीटीयस तथा ऐरीयन ने पंजाब की बहादुर मानव-जाति के स्वतन्त्रता इच्छुक तथा युद्ध-प्रेमी होने की बड़ी व्यापक चर्चा की है। युद्ध-प्रेमी होने के कारण संस्कृत लेखकों ने इनको 'आयुद्ध जीवी' लिखा है। प्रथम पांच सतिगुरु अधिकतर मध्य पंजाब अर्थात माझे की ओर रहे तथा बाद में पांच गुरुओं की सरगर्मी का क्षेत्र ज़्यादातर मालवा रहा। मलवई वीरों पर, गुरुओं द्वारा अमृतपान करवाने का कार्य सोने पर सुहागे जैसा सिद्ध हुआ। जब गुरु गोबिन्द सिंघ "तेरा घरु मेरा असै" अथवा "हमा कौमि बैराड़ हुकमै मरासत" कह रहे थे तो इससे अनुमान लगाना सरल ही है कि उनको अपने मलवई श्रद्धालुओं पर कितना भरोसा था। अन्त में जब गुरुओं ने इस दूध को इनक़लाबी संग्राम का खमीर लगाया तो राज-पाट का मक्खन टपकना अवश्य था। गुरु हरिराय साहिब की भविष्य दृष्टि, नितांत ठीक थी कि यहां के सरदारों की संतान अपने घोड़ों को जमुना का पानी पिलायेगी।

आज़ादी का खुला-व्यापक जीवन व्यतीत करने वाले ये जंगल-देश के निवासी, मुग़लों का दबदबा कम ही मानते थे तथा अपनी तलवार के बल से दिन गुज़ारते थे। इनमें सिध्धु गोत्र वालों की बहुत प्रसिद्धि थी। सिध्धु ख़ानदान में से महराज का पोत्र मोहन हुआ, मोहन के पुत्र रूप चन्द तथा काला थे। रूप चन्द के पुत्र संदली तथा फूल और फूल के छः पुत्रों में से चौधरी तिलोका तथा रामा बहुत प्रसिद्ध हुए। ये दोनों गुरु गोबिन्द सिंघ जी के प्रेमी सिंघ थे। भाई तिलोका की संतान में से रियासत नाभा तथा रियासत जींद का ख़ानदान चला तथा भाई रामे की वंश में से रियासत पटियाला, भदौड़िए, भलौदिए तथा कोट दुन्ने वाले आदि सरदार थे।

रियासत पटियाला

चौधरी रामे (1639-1714 ई०) के छः पुत्रों (दुन्ना, सभा, आला, बखता, लध्धा, बूढ़ा) में से बाबा आला सिंघ अत्यंत तेज प्रतापी पुरुष हुआ, जिसने वास्तविक अर्थों में राजसी सत्ता की नींव रखकर इस घराने को चार चांद लगाये।

18वीं शताब्दी के स्वतन्त्रता-संग्राम में जहां स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया, स. चढ़त सिंघ शुक्रचक्किया तथा स. हरी सिंघ भंगी आदि बहुत प्रसिद्धि रखते हैं वहां मालवे क्षेत्र में बाबा आला सिंघ, स. बघेल सिंघ क्रोड़िया, स. तारा सिंघ घेबा के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं। उधर (दूसरी तरफ) ख़ालसे को आमने-सामने लड़ना पड़ता था तथा इधर सतलुज के उरार मालवे की ओर सरकारी सख़्ती का ज़ोर कम था। इसीलिए यहां के चौधरियों सरदारों के लिए एक अच्छा अवसर था कि वे दिल्ली सरकार और लाहौर सरकार की व्यवस्तता तथा बे-ध्यानी से पूर्ण लाभ उठायें तथा अपना इलाका बनायें।

बाबा आला सिंघ

बाबा आला सिंघ (1694-1765 ई०) इस कार्य में सबसे आगे था। जहां शेष सिंघ साधारणतः समय की अत्याचारी सरकार के साथ सम्बन्ध न रखते हुए स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहे थे, वहां बाबा आला सिंघ सम्बन्ध रखने वाला सिक्ख था जो आवश्यकता अनुसार हाकिमों से मेल-मिलाप करके तथा राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा इलाके प्राप्त करने का कार्य कर रहा था। वह देग-तेग़ का धनी, संत लिबास वाला नीतिवान् पुरुष था जिसने अपनी चतुराई से गड़बड़ी के समय रियासत का ढांचा खड़ा किया। उस समय सतलुज तथा जमुना के बीच सचमुच ऐसा शक्तिशाली जाट और कोई न था। विरासत में उसको केवल 20-30 गांवों की हुकूमत प्राप्त हुई थी, परन्तु 1761 ई० तक वह 726 गाँवों पर अपनी हुकूमत कायम कर चुका था। इसीलिए अहमद शाह अब्दाली को विवश होकर सूबा सरहिन्द के इलाके से उसकी अलग ख़ुदमुख़्तारी माननी पड़ी।

बाबा आला सिंघ ने 1722 ई० में बरनाले को हैँड क्वार्टर बनाया, 1727 ई० में लौंगोवाल को आबाद किया। नज़दीक के मुसलमान चौधरी आलो जाट की इस चढ़त को देखना पसन्द नहीं करते थे, इसलिए रायकोट

का चौधरी, तलवंडी का फ़तह ख़ां, हलवारे का दलेल ख़ां, मैलसियां का कुतबदीन, मलेरकोटले का जमाल ख़ां तथा जालंधर दुआब का फ़ौजदार सय्यद असद अली ख़ां, सभी ने मिलकर बरनाले शहर पर घेरा डाला, उधर आले ने भी ख़ालसे को बुलावा भेज दिया, भारी युद्ध हुआ, अन्त में सिंघों की विजय हुई। इस समय बाबा दीप सिंघ से अमृतपान करके आला जाट आला सिंघ कहलवाया, यह बात 1731 ई० की है। 1738 ई० में भट्टी राजपूतों के साथ कई युद्ध हुए। 1745 ई० में सरहिन्द के सूबेदार अली मुहंमद रुहेले की सहायता से इसने रायकोट वालों पर भी आक्रमण किया। फिर किसी न किसी धोखे से अली मुहंमद ख़ां सूबेदार सरहिंद ने आला सिंघ को सुनाम के किले में नज़रबंद कर दिया, जहां उसने 1747 ई० में फरार होकर रिहाई प्राप्त की। 1749 ई० में भवानीगढ़, 1752 ई० में सनौर तथा 1754 ई० में दल ख़ालसा के सिंघों की सहायता से बुडलाढा जीता। 1757-58 ई० में समानी तथा सुनाम पर कब्ज़ा किया। हिसार की ओर भट्टियों पर विजय प्राप्त की। 1759 ई० में बांगर का नरवाणा, धमधाण, खरल तथा खनौड़ी आदि का इलाका फ़तह किया। एक बार हाकिम सरहिन्द सादक बेग से भी टक्कर ली। 1759 ई० में मालवे में भारी अकाल पड़ा तो आप ने जगह जगह पर लंगर लगाये।

जब 1761 ई० में पानीपत के मैदान में अहमद शाह अब्दाली तथा मराठों की भयानक टक्कर हुई तो आला सिंघ बड़ी चतुराई के साथ मराठों को रसद-पानी पहुँचाता रहा। जब अब्दाली को यह सूचना मिली तो उसने सेना भेजकर बरनाला लूटा। बाबा आला सिंघ स्वयं तो मूनक की ओर चला गया, बीरम ढिल्लों ने चार लाख ख़िराज देकर पीछा छुड़वाया। जब अब्दाली स्वयं सरहिन्द पहुँचा तो आला सिंघ नज़राने लेकर मिला। यह बात 30 मार्च, 1761 की है, जब अब्दाली ने बाबा आला सिंघ की राजसी शक्ति को देखकर हाकिम सरहिन्द के नाम यह आदेश जारी किया—"इसका इलाका स्वतन्त्र समझा जाये, यह सरहिन्द की हुकूमत में नहीं। इसके मित्र हमारे मित्र, इसके दुश्मन हमारे दुश्मन समझे जायेंगे।"[1]

अहमद शाह अब्दाली सिंघों की कारवाईयों से दुःखी था और वह चाहता था कि किसी सिक्ख को ही आगे लाकर अपना सहायक बनाया जाये, यद्यपि सरहिन्द के इलाके में उसने राजनीतिक दृष्टि से आला सिंघ

---

1. करम सिंघ, *बाबा आला सिंघ*, पृष्ठ 194.

को प्राथमिकता देनी आवश्यक समझी। इस बात से दल ख़ालसा बहुत नाराज़ हुआ और आला सिंघ पर आक्रमण कर दिया। सरदार जस्सा सिंघ आहलूवालिये ने बीच में पड़कर समझौता करवा दिया और आला सिंघ ने पंथ से क्षमा मांग ली और अपने पौत्र कंवर अमर सिंघ को आहलूवालिये के हाथों से अमृतपान करवाया। फ़रवरी 1762 में भयानक युद्ध हुआ और हज़ारों सिंघ शहीद हुए, अब्दाली के पास शिकायत की गई कि आला सिंघ भी सिंघों का सहायक है, उसने इस समय शाह की कोई सहायता नहीं की। अब्दाली ने कहा, 'हां ! उसको मेरे सामने पेश करो और केस काट दो।' आला सिंघ ने पांच लाख नज़राना और सवा लाख रुपये केसों के बचाव के लिए देकर शाह को ख़ुश किया। 1762 में पटियाले नगर की सजावट की, सरहिन्द से बे-घर लोगों को प्रोत्साहित करके यहां निवास करवाया तथा 12 फ़रवरी, 1764 को पटियाले के पक्के किले की नींव रखी।

जनवरी 1764 में सिंघों ने ज़ैन ख़ां को कत्ल करके सरहिन्द को बरबाद किया तथा इलाकों का बंटवारा किया। गुरु-मारी सरहिन्द लेने को कोई तैयार नहीं था, अन्त शहर निवासियों के निवेदन अनुसार सरहिन्द शहर, सरदार बुड्ढा सिंघ के हिस्से में आया। बाबा आला सिंघ सरहिन्द की विशेषता समझते थे, इस पर अधिकार होने के कारण शाही सड़क के पास के बहुत सारे स्थानों पर अधिकार हो जाता था तथा उनसे चुंगी द्वारा बहुत आमदन थी। इसलिए माई फत्तो के रोकने के बावजूद भी बाबा आला सिंघ ने 25 हज़ार रुपये नकद देकर सरहिन्द ख़रीद लिया। इस अवसर पर 1764 ई० में जब सातवीं बार अब्दाली ने आक्रमण किया तो उसने आला सिंघ को बड़ा नगारा तथा झण्डा दिया तथा सरहिन्द की सूबेदारी दी। यह अब्दाली की सिंघों के आगे हार मानने वाली बात थी।

बाबा आला सिंघ की बुद्धिमत्ता माननी पड़ती है जिसने इतने विरोधी वातावरण में मुग़लों, मराठों, सिंघों, रुहेलों तथा अब्दाली, सभी को समय समय प्रसन्न किया, नजीबुदौला तथा स. जस्सा सिंघ आहलूवालिये के साथ इसकी दोस्ती तथा मेल-मिलाप प्रसिद्ध है। गेहूँ के भंडार जमा रखने, 6-7 हज़ार की साझी सेना तैयार करनी तथा फिर इतना इलाका अधिकार में लेना, उसकी बहादुरी, साहस, जत्थेबंदक तथा प्रबन्धक सुझ बुझ की प्रतीक है।

बाबा आला सिंघ सत्संगी स्वभाव का व्यक्ति था तथा भाई मूल

चन्द सुनाम तथा सन्त दयाल दास भुचो जैसे महापुरुषों का प्रेमी था। इसकी पत्नी माई फत्तो सदैव लंगर लगाकर अनाथों ग़रीबों को स्वयं भोजन खिलाया करती थी।

इस तरह सिंघों के बुलन्द हौसले के दृष्य देखता बाबा 7 अगस्त, 1765 को स्वर्गवास हो गया।

राजा अमर सिंघ

बाबा आला सिंघ के तीन पुत्र—टिक्का सरदूल सिंघ, कंवर भूमिया सिंघ तथा कंवर लाल सिंघ स्वर्गवास हो चुके थे, इसलिए अठारह वर्षों के पौत्र अमर सिंघ (1748-1781 ई०) को राजगद्दी प्राप्त हुई। यह बाबे जैसा अच्छा नीतिवान् तथा तेग़ का धनी था, इसने रियासत की सीमायें दूर दूर बढ़ाकर राज्य को और दृढ़ किया। पहले पहल कंवर हिम्मत सिंघ ने बड़ा पुत्र होने के नाते गद्दी का अधिकारी बनने की कोशिश की, परन्तु वह सफल न हो सका, इसने क्योंकि स. जस्सा सिंघ आहलूवालिये के हाथों से अमृतपान किया था, इसलिए वह भी इसके सिर पर हाथ रखते थे। 1766 ई० में ईसतू तथा पायल का इलाका जीता। ईसतू स. जस्सा सिंघ के हिस्से आया। इसी वर्ष अब्दाली ने आकर सरहिन्द की फ़ौजदारी पर 'राजाए-राजगान' का ख़िताब दिया ताकि इसको पक्के तौर पर दल ख़ालसा से अलग किया जा सके। 1767 ई० में जब गिलजे, मथुरा तथा सहारनपुर की हज़ारों लड़कियों को कैद करके ले जा रहे थे तो राजा अमर सिंघ ने अब्दाली को दो लाख रुपये भेंट करके लड़कियां छुड़वा लीं तथा 'बंदी छोड़' की उपाधि प्राप्त की और जमुना पार अपनी जै जै कार करवाई।

रियासत पटियाला ने सरदार बघेल सिंघ के कुछ गांवों को कब्ज़े में ले लिया था, इसलिए 1769 ई० में सिंघ उसके साथ आक्रमण करने के लिए आये, परन्तु लहल के पास राजा अमर सिंघ ने संधि कर ली तथा स. बघेल सिंघ के हाथों अपने पुत्र साहिब सिंघ को अमृतपान कराया।[1] 1771 ई० में सुखचैन सिंघ से बठिंडे का किला जीता। 1774 ई० में सफैदों का किला तथा बहादुरगढ़ किले वाला स्थान अपने राज्य में मिलाया। 1774 में बिघड़ां के मुकाम पर भट्टियों को बुरी तरह हराकर फ़तहबाद

1. डॉ. गुप्ता, *ए हिस्ट्री ऑफ़ द सिक्खज़*, द्वितीय भाग, पृष्ठ 38।

तथा सरसागढ़ अधिकार में लिये। 1779 ई० में दिल्ली से मिजादुदौला अब्दुल अहद ख़ां सहित शहज़ादा फरख़ंदा बख़त के सिक्ख रईसों से ख़िराज प्राप्त करने हेतु चढ़ाई करके आया तथा घुड़ाम डेरा किया। परन्तु राजा अमर सिंघ उसको न मिला। दीवान नानू मल्ल पांच लाख नज़राना देता था परन्तु नवाब कहता था कि राजा स्वयं आये। इसी समय राजे ने उधर सिंघों को संदेशा भेज दिया, स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया तथा स. तारा सिंघ घेबा के आने की देरी थी कि मुग़लों की शाही सेना दिल्ली की ओर भाग गई। यह प्रथम अवसर था जब राजा पटियाला ने दिल्ली सरकार को आँखें दिखाईं। राजा अमर सिंघ ने राज्य-प्रबन्ध अच्छा चलाया तथा नीति शाही वफ़ादारी वाली रखी तथा समय-असमय सिंघों की सहायता लेकर भी वक्त गुज़ारा।

सर लैपल ग्रिफन का यह कथन ठीक है कि अगर राजा अमर सिंघ की आयु वफ़ा करती तो वह शायद मलवई रियासतों का एकीकरण करके लाहौर दरबार जैसे एक स्वतन्त्र विशाल राज्य स्थापित करने में सफल हो जाता। फ़रवरी 1781 ई० में जलोधर की बीमारी के कारण वह पैंतीस वर्ष की आयु में ही स्वर्गवास हो गया।

महाराजा साहिब सिंघ

इस समय महाराजा साहिब सिंघ (1773-1813 ई०) लगभग सात वर्ष के हुए थे, जब गद्दी पर बैठे। इनकी दादी हुकमां दीवान नानूंमल की सहायता से राज्य-प्रबन्ध चलाती रही। दादी की मृत्यु के पश्चात् बूआ राजिन्द्र कार्य चलाती रही। इसके पश्चात् राजे की बहन बीबी साहिब कौर ने बहुत समय राज्य-प्रबन्ध की देख-रेख की तथा बाद में रानी आस कौर रियासत का कार्य-भार संभालती रही। कारण यह था कि राजा साहिब सिंघ इतना बुद्धिमान् नहीं था, कमज़ोर दिल तथा भ्रम वाला व्यक्ति था, इसका वज़ीर सुनाम का बानिया बहुत चालाक था तथा 'बाणिआं हाकम कहर ख़ुदा' वाली बात सत्य हो रही थी। इसी समय ही लोगों ने यह उक्ति बनाई :

> नानूं मल्ल दीवान,' दीवानी कहर दी।
> साहिब सिंघ नादान, गल्ल न ठहरदी।

सो इस अवस्था में इसके ज़माने में रियासत का कार्य घर की सूझवान

स्त्रियां ही चलाती रहीं। इस समय, मराठे तथा सिक्ख, रियासत पर टूट टूट पड़ते थे, लूटमार उन दिनों का साधारण खेल था। 1786 ई० में स. ख़ुशहाल सिंघ सिंघपुरिये के साथ बनूड़ के पास युद्ध आरम्भ हुआ तो पटियाले वालों ने धारा राव मराठे को तीन लाख देना करके बुलाया। 1790 ई० में फिर सिक्ख सरदार हमलावर हुए तो उन्होंने राणे ख़ां मराठे को बुलाया। सिंघ तो चले गये परन्तु मराठे पैसों के लिए अड़ बैठे जिसका निर्णय राजिन्द्र कौर ने स्वयं मथुरा जाकर महाद जी सिंधिये के साथ निपटाया। इस झगड़े में दीवान नानूंमल की शरारत थी। 1791 ई० में राजिन्द्र कौर के देहांत के पश्चात् बीबी साहिब कौर ने राज-भाग संभाला, इसका कन्हैया मिसल वाले स. जैमल सिंघ के साथ फ़तहगढ़ विवाह हुआ था। बीबी, नानूंमल की साज़िशों को जानती थी, इसने सबसे पहले समस्त जायदाद ज़ब्त करके उसको सबक सिखाया तथा वह दुःखों में घुलता हुआ मलेर कोटले में 21 नवम्बर, 1791 को मर गया। इसके पश्चात् सय्यद इलाही वज़ीर बना, परन्तु यह शीघ्र कत्ल कर दिया गया।

1794 ई० में अनंतराव तथा लछमनराव मराठे ख़िराज प्राप्त करने हेतु पटियाले पर चढ़ आए तो बहादुर बीबी ने स्वयं तलवार पकड़कर सेना की अगुवाई की तथा रात्रि को अचानक हमला करके मराठों को भगाया। इसी वर्ष बेदी साहिब सिंघ ऊनेवालों ने मज़हबी जोश में आकर मलेर कोटले पर हमला कर दिया ताकि यहां के गो-वध करने वाले कसाईयों का नामो-निशान मिटाया जा सके।

इनके साथ कई और सिक्ख सरदार—स. बघेल सिंघ, स. भंगा सिंघ (1815 ई० स्वर्गवास) आदि जैसे भी शामिल हुए, आगे नवाब अताउल्ला ख़ां कुछ समय के लिए आगे होकर लड़ा, परन्तु सिंघों के दल के आगे अफ़ग़ानों की कोई पेश न चली। रियासत पटियाले की ओर से मलेरकोटले[1]

---

1. मलेरकोटले वाले पठानों का बजुर्ग शेख़ सदरुद्दीन शेरवानी अफ़ग़ान था, जिसका विवाह सुल्तान बहलोल की पुत्री के साथ हुआ। उसने इसको लुधियाना के पास 68 गांव दहेज में दिये। औरंगज़ेब ने 1657 ई० में बायज़ीद ख़ां को नवाब का ख़िताब दिया, इसके पश्चात् नवाब फ़िरोज़ ख़ां, नवाब शेर मुहंमद ख़ां (1713 ई० तक), ग़ुलाम हुसैन ख़ां, नवाब जमाल ख़ां (1761 ई० तक), भीखन ख़ां (1763 ई० तक), बहादुर ख़ां (1767 ई० तक), उमर ख़ां (1779 ई० तक), अताउल्ला ख़ां (1810 ई० तक), वज़ीर अली ख़ां (1821 ई० तक), अमीर अली ख़ां (1846 ई० तक), महबूब अली ख़ां (1857 ई० तक), सिकंदर अली ख़ां (1871 ई० ☛

की सहायता के लिए सेना गई तो उन्होंने बेदी साहिब को नज़राना दिलाकर वापिस भिजवा दिया। 1798 ई० में बेदी साहिब ने रायकोट पर और बाद में लुधियाना के किलेदार हसन ख़ां पर भी आक्रमण किया था, उद्देश्य गो-रक्षा करना तथा ख़िराज प्राप्त करना था।

1796 ई० में नाहन में गड़बड़ हो गई तो स्वयं बीबी साहिब कौर ने जाकर अशान्ति को दबाया। 1798 ई० में जब सिंघ, शाह ज़मान का हमला रोकने हेतु मिलकर गये हुए थे तो अवसर पाकर जार्ज थामस ने सिक्ख सरदारों के इलाकों पर धावा बोल दिया तथा जींद को जा लूटा, बीबी साहिबा ने और सरदारों को साथ लेकर थामस के दांत खट्टे किये। एक बार फिर इसने लूट मचाई तो मराठों के फ्रांसीसी जरनैल पेरों की सहायता से इसको हांसी हिसार में से ही भगा दिया गया। इसका जार्जगढ़ किला झज्जर के नज़दीक था तथा यह 1802 ई० में मर गया। 1799 ई० में बीबी साहिब कौर के स्वर्गवास होने के पश्चात् रानी आस कौर ने कार्य संभाला। महाराजे के साथ इसकी बहुत विरोधता रही, परन्तु यह हिम्मत के साथ रियासत का कार्य चलाती रही।

महाराजा साहिब सिंघ के समय की बड़ी घटना—सिक्ख राजनीतिक क्षेत्र में महाराजा रणजीत सिंघ का उभार है। लखनौर में रणजीत सिंघ ने साहिब सिंघ के साथ पगड़ी भी बदली। 1806 ई० में शेर-ए-पंजाब ने पटियाला तथा नाभा के बीच दुल्लदी गांव पर हो रहे झगड़े का निपटारा किया और रायकोट का इलाका जीतकर मलवई रईसों में विभाजित किया। 1807 ई० में महाराजा साहिब सिंघ तथा रानी आस कौर के बीच भी समझौता करवाया। 1804 ई० में मराठों को हटाकर अंग्रेज़ों ने दिल्ली दरबार को अधिकार में लेकर बादशाह को भी अपनी रक्षा में ले लिया था। इस कार्यवाही में राजा भाग सिंघ जींद, भाई लाल सिंघ कैंथल तथा स. भंगा सिंघ थानेसर वाले ने भी अंग्रेज़ों की सहायता की थी। अब सूबा सरहिन्द की यह रियासतें इस दुविधा में थीं कि दोस्ती अंग्रेज़ से बनाई जाये अथवा रणजीत सिंघ के साथ। मार्च 1808 ई० में समाने में समूह

☛तक), इब्राहीम अली ख़ां (1908 ई० तक), मुहंमद अहमद अली ख़ां (1947 ई० तक), मुहंमद इफ़तख़ार अली ख़ां (1948 ई० तक) गद्दी पर रहे। बाद में 167 वर्ग मील की यह अफ़ग़ान रियासत, जो कि सिक्ख इलाके में दाँतों में जिह्वा समान रही, पैपसू में लीन होने के पश्चात् पंजाब में मिल गई।

सिक्ख रियासतों के प्रतिनिधि इकत्रित हुए। सूझवानों की राय थी कि रणजीत सिंघ सरसाम है, यह तो हमें ख़त्म कर देगा और अंग्रेज़ तपेदिक है, इसके साथ जीवन के अधिक दिन मिल जाने की संभावना है, अन्त निर्णय यही हुआ कि अंग्रेज़ों की अधीनगी में जाना लाभदायक है।[1]

महाराजा रणजीत सिंघ ने इनको अमृतसर बुलाकर बातचीत की तथा भरोसा दिलाया, परन्तु इनका दिल न माना। अंग्रेज़ों की चतुराई ने इन सभी राजाओं रईसों को पहले से ही अपनी लपेट में ले लिया था। 20 फ़रवरी, 1809 को कर्नल अकटर लोनी लुधियाना में डेरा लगाई बैठा था। 25 अप्रैल, 1809 को हुए इकरारनामे के अनुसार सतलुजी रियासतों की ओर महाराजा रणजीत सिंघ की सरगर्मी समाप्त हो गई तथा ये बरतानवी साम्राज्य की कठ-पुतलियां बनकर रह गईं। 3 मई, 1809 को अंग्रेज़ों ने ऐलान जारी किया कि मालवे की रियासतें तथा सरदारों का इलाका अंग्रेज़ों ने अपनी निगरानी में ले लिया है, इसलिए यह रणजीत सिंघ के प्रभाव अधिकार से स्वतन्त्र होंगे। अंग्रेज़ इनसे कोई ख़िराज अथवा नज़राना प्राप्त नहीं करेंगे। सभी सरदारों के अपने अपने इलाकों में पूर्ण हक्क और अधिकार रहेंगे। जब कभी इनके इलाकों में से सेना को गुज़रना पड़ जाये, ये अंग्रेज़ों की खान-पान तथा और आवश्यक वस्तुएँ देकर पूर्ण सहायता करेंगे। अगर कोई दुश्मन देश पर आक्रमण करे तो ये पूर्ण वफ़ादारी के साथ अंग्रेज़ों से मिलकर युद्ध करेंगे। यह निर्णय अंग्रेज़ों की भारी जीत थी तथा पंजाब पर सम्पूर्णतः अधिकार करने की ओर प्रथम कदम था। 1810 ई० में कर्नल अकतर लोनी की सिफ़ारिश पर बादशाह अकबर सानी ने साहिब सिंघ को महाराजा का ख़िताब दिया था।

महाराजा करम सिंघ

महाराजा करम सिंघ (16 अक्तूबर 1798—23 दिसम्बर 1845) 1813 ई० में गद्दी पर बैठे, मिसर नौधा इसका बड़ा वज़ीर था। 1814 ई० के गोरखा युद्ध में इसने अंग्रेजों की बहुत फ़ौजी सहायता की तथा किउँतल, बघाट जैसे 17 परगने ईनाम में मिले। 1837 ई० में रियासत ने अंग्रेज़ सरकार को 20 लाख कर्ज़ दिया।

1833 ई० में सभी फूलकियां रियासतों ने भवानीगढ़ में इकत्रित होकर

---

1. सोहन लाल, *रोज़नामचा रणजीत सिंघ,* दफ़तर दूसरा, पृष्ठ 79.

साथ चलने का समझौता किया। 1849 ई० में राजा उदय सिंघ के देहांत के पश्चात् जब कैथल में गड़बड़ हुई तो पटियाला की सेना ने कैथल के फ़ौजदार टेक सिंघ को घेर कर अंबाले में कैद करवाया। टेक सिंघ भागकर रणजीत सिंघ का आश्रय लेना चाहता था। उसके पास डेढ़ लाख रुपया, दो पीतल की तोपें, चार हाथी तथा और बहुत-सा सामान था।

इस महाराज के समय रियासत की सीमाबंदी भी हुई, अंग्रेज़ों के साथ कई झगड़े चलते रहे, जिसमें हरियाणा अर्थात् नाली तथा भटियाणे का मामला अधिक पेचीदा था। 1840 ई० में मि. कनौली की रिपोर्ट अनुसार 266 गांवों में से 119 गांव पटियाले को मिले। भटियाणे के इलाके में 103 गांवों का झगड़ा था, इसमें से कैप्टन राबिनसन की रिपोर्ट के अनुसार 41 गांव मिले, शेष अंग्रेज़ी सरकार ने अपने अधीन कर लिये। महाराजा करम सिंघ सूझवान् था, राज्य-प्रबन्ध अच्छा चलाता रहा तथा अंग्रेज़ सरकार से ख़ुशी प्राप्त करता रहा। इसने अपने समय में तंबाकू पीने की मनाही करवाई तथा गुरुद्वारों की भी अच्छी सेवा करवाई। 1845 में लाहौर दरबार से अंग्रेज़ी सरकार की टक्कर होने वाली थी तो रियासत ने अंग्रेज़ों को सहायता देने का ऐलान किया। इसी समय 23 दिसम्बर, 1845 को महाराजे का देहांत हो गया।

महाराजा नरेन्द्र सिंघ

महाराजा नरेन्द्र सिंघ (26 नवम्बर, 1824—13 नवम्बर, 1862 ई०) 1846 ई० में गद्दी पर बैठे। सिक्खों तथा अंग्रेज़ों की युद्धों में सहायता देने के कारण अंग्रेज़ों ने पटियाले को नाभे के अधिकार में लिए इलाके में से कुछ इलाका तथा हरिद्वार के बीच वाली लाडवे वालों को कोठी दी।

1847 ई० में नये ढंग की अदालतें शुरु हुईं। 1849 ई० में अंग्रेज़ों ने कुछ मुख्य रियासतें छोड़कर शेष छोटी छोटी सभी रियासतें तथा जागीरें अपने राज्य में सम्मिलित कर लीं। 1857 ई० के गद्दर में पटियाला सेना ने बहुत सहायता की, इसके बदले में नारनौल का इलाका तथा दिल्ली में एक लाख की कोठी 'ज़ीनत महल' ईनाम में प्राप्त हुई। मोती बाग़ महल तथा दीवान ख़ाना आदि इमारतें इस समय बनीं। यह महाराजा धर्म सिंह विद्या का भी प्रेमी था, कई विद्वान् कवियों को पास

रखकर इसने महाभारत का हिन्दी अनुवाद करवाया, तथा और पुस्तकें लिखवाईं। 1852 ई॰ में हरिद्वार जाकर साधु-संतों से गोष्टियाँ भी करता रहा। 1860 ई॰ में भदौड़, पटियाला के अधीन आया। 1861 ई॰ में महाराजे ने 80 हज़ार नकद सहायता देकर तथा रियासत नाभा तथा रियासत जींद से सहायता दिलाकर निरमलों का पंचायती अखाड़ा सजाया तथा पटियाले मुख्य डेरा 'धरमधुजा' बनाया। 1862 ई॰ में यह वायसराय कौंसिल का सदस्य बनकर कलकत्ते गया तथा इसी वर्ष 13 नवम्बर को इसका देहांत हुआ।

महाराजा महेन्द्र सिंघ

महाराजा महेन्द्र सिंघ (16 सितम्बर, 1852—12 अप्रैल, 1876) ने लोगों की भलाई के कार्य किये। 1868-69 ई॰ में दीवान कुलवंत राय तथा ख़लीफ़ा मुहंमद हसन ख़ां की पार्टियों का भी झगड़ा चलता रहा, जिसमें ख़लीफ़े कामयाब रहे। महाराजे के राज्य-काल में ही रोपड़ से सरहिन्द नदी निकालने की स्कीम बनी जिस पर रियासत की सवा करोड़ रुपये लागत आई। 1870 ई॰ में आप ने पंजाब विश्वविद्यालय को 70 हज़ार रुपये दान दिया, 1873 ई॰ में बंगाल के अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए एक लाख भेजा। 1874 ई॰ में अमृतसर दीवाली पर 51 हज़ार रुपये गुरु के लंगर के लिए भेंट किये। 29 मार्च, 1875 को वायसराय हिन्द पटियाले आया तथा महेन्द्रा कालिज की नींव रखी गई।

महाराजा राजेन्द्र सिंघ

महाराजा राजेन्द्र सिंघ (25 मई, 1872—8 नवम्बर, 1900 ई॰) 6 जनवरी, 1877 को गद्दी पर बैठे, नाबालगी के समय 1889 तक कौंसिल कार्य चलाती रही। मद्रास, बंबई के अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए अंग्रेज़ सरकार को अढ़ाई लाख रुपये कर्ज़ा दिया, 25 हज़ार रुपये पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर को दान दिये। 1886 में ऐचिसन चीफ़ कालेज की नींव रखते समय महाराजे ने बहुत माली सहायता दी। इस समय राजपुरा-बठिंडा रेलवे लाईन तैयार हुई। क्रिकेट तथा पोलो के खेल में आपको बहुत रुचि थी। अठारह वर्ष की आयु में ही स्वर्गवास हो गये।

महाराजा भूपेन्द्र सिंघ

महाराजा भूपेन्द्र सिंघ (12 अक्तूबर, 1891—23 जनवरी, 1938) 1900 ई० में गद्दी पर बैठे। नाबालगी के समय कार्य कौंसिल चलाती रही, जिसमें स. गुरमुख सिंघ जान प्रधान, लाला भगवान दास तथा ख़लीफ़ा मुहंमद हुसैन सदस्य थे। 1909 ई० से राज्य का कार्य स्वयं संभाला। आप बड़े नीति निपुन्न, दलेर, तथा दानी स्वभाव के थे। 1911 ई० में क्रिकेट टीम के कैप्टन बनकर विलायत गये। 1918 ई० में जंगी कौंसिल के सदस्य बने। 1930 ई० में हिन्दुस्तानी राजाओं के प्रतिनिधि की हैसियत में गोलमेज़ कान्फ्रेंस में शामिल हुए। आपकी बुद्धिमत्ता का बड़ा प्रमाण यह है कि बावजूद कई बड़ी रियासतों के राजपूत राजाओं के, नवाबों के, आप 1926 ई० से काफ़ी समय नरेन्द्र मंडल के कुलपति रहे। राजनीति के हित के लिये हिस्सेदारी आमतौर पर राजपूतों से करते रहे। इनके समय रियासत नाभा के साथ काफ़ी विरोध बढ़ा। आप अच्छे दानी थे, 1900 ई० में विक्टोरिया हाल कलकत्ते के लिए एक लाख रुपया दिया। 1911 ई० में मैडिकल कालेज के लिए दो लाख रुपया दिया। ख़ालसा कालेज अमृतसर के लिए नाभा तथा जींद के साथ मिलकर पांच लाख इकट्ठा करके दिया। 2 अगस्त, 1911 को 80 हज़ार पौंड देकर लंडन में गुरुद्वारा (भूपेन्द्रा धर्मशाला) बनवाया। 1912 ई० में शिक्षण कान्फ्रेंस को 21 हज़ार दिया तथा 1918 ई० में रैंड क्रॉस सुसाइटी को 21 हज़ार दिया। पंजाबी को अदालती भाषा बनाया तथा सबसे पहले रामिंगटन वालों से पंजाबी टाईप की मशीनें तैयार करवाईं। 1930 ई० में 70 हज़ार रुपये खर्च करके भाई कान्ह सिंघ नाभा का महान् ग्रन्थ 'महान् कोष' प्रकाशित करवाया। राजाओं वाले गुण-अवगुण दोनों उसमें थे। कई स्वार्थी अहलकारों ने उसको ग़ल्त रास्ते पर भी डाला, तथा अय्याशी तथा धक्केशाही ने बदनामी भी दिलाई तथा उसने राजाओं के मूल स्वभाव के अनुसार लोक-लहरों को दबाने में भी सख़्ती से काम लिया, परन्तु वह जट्ट बादशाह था, जिधर भी जाता, जोश से जाता था। पोलो तथा क्रिकेट की खेल में भी उसने ख़ूब प्रसिद्धि प्राप्त की।

महाराजा यादवेन्द्र सिंघ

महाराजा यादवेन्द्र सिंघ (जन्म 7 जनवरी, 1913) 23 मार्च, 1938

को गद्दी पर बैठे। शिकार तथा नज़ूल पर हो रहे फ़ालतू ख़र्च बंद करके रियासत की भलाई के लिए कई कार्य किये। इनका समय भारतीय राजनीति में परिवर्तन का समय था। इसने हिन्दुस्तानी राजाओं को भारतीय संघ में शामिल होने की ज़ोरदार प्रेरणा दी। जब देश का बंटवारा हुआ तो लाखों हिन्दु सिक्ख शरणार्थियों को भारी सहायता देकर रियासत में निवास करवाया। फिर भारत सरकार ने हिन्दु रियासतों के संगठन की बात चलाई तो आप 20 अगस्त, 1948 में पूर्वी पंजाब रियासतों की यूनियन के राज्य-प्रमुख स्थापित किये गये तथा बाद में जब पैप्सू का पंजाब के साथ एकीकरण हुआ तो आप ने इस देश-भलाई के कार्य को प्रसन्नतापूर्वक सम्पूर्ण किया। इस प्रकार 5812 वर्ग मील की रियासत पटियाला पंजाब राज्य का भाग बन गई।

रियासत जींद

राजा गजपत सिंघ

बाबे फूल के बड़े पुत्र चौधरी तिलोके का छोटा पुत्र सुखचैन सिंघ था, जिसके घर रियासत जींद के बानी राजा गजपत सिंघ का 1738 ई० में जन्म हुआ। यह बड़ा नीतिवान् तथा बहादुर तेग़ का धनी था। जब सिंघों ने 1764 ई० में सरहिन्द बरबाद किया तो इसने भी जींद तथा सफैदों पर अधिकार किया। इस नीति के कारण दिल्ली के बादशाह का ख़िराज अदा करता था, परन्तु अब्दाली के आक्रमणों के कारण तथा कुछ और बातों के कारण ख़िराज अदा न कर सका। इसलिए 1767 ई० में नजीबु ख़ां रुहेले ने इसको दिल्ली में कैद कर लिया, दो तीन वर्ष की कैद काटने के बाद अपना पुत्र ज़मानत के तौर पर और तीन लाख रुपये देकर रिहाई प्राप्त की। इस पर प्रसन्न होकर बादशाह शाह आलम सानी ने 6 फ़रवरी, 1772 को इसको 'राजा' का ख़िताब दिया, जिस पर इसने अपना सिक्का चलाया। 1774 ई० में इसने अपनी पुत्री राज कौर का विवाह स. महां सिंघ शुक्रचक्किये के साथ किया, जिसके उदर से महाराजा रणजीत सिंघ ने जन्म लिया। विवाह के अवसर पर नाभे के अधिकारी याक़ूब ख़ां ने कुछ झगड़े वाली बात की थी, इसलिए राजा हमीर सिंघ नाभा और याक़ूब ख़ां को राजा गजपत सिंघ ने बहाने के साथ अपने पास बुलाया तथा कैद

कर लिया। याकूब ख़ां को तो क़त्ल कर दिया गया तथा नाभे वालों का इलाका, संगरूर कब्ज़े में ले लिया। बाद में राजा अमर सिंघ ने दोनों का समझौता करवाया तथा संगरूर राजा गजपत सिंघ के अधिकार में माना गया।

पहले बडरुखीं ही निवास था, फिर जींद किला बना लिया। 1775 ई० में रहीम दाद ख़ां ने जींद पर हमला कर दिया, सभी रियासत वालों ने मिलकर मुकाबला किया, दुश्मन को मार दिया तथा और इलाका भी अधिकार में ले लिया। 1781 ई० में मिरज़ा शफ़ी ने जब सिक्ख सरदारों के विरुद्ध मुहिंम चलाई, तो उसने, राजा गजपत सिंघ को कैद करके दिल्ली भेज दिया। इसने दो लाख रुपया देकर प्राण छुड़वाये। बड़ा चतुर तथा बहादुर व्यक्ति था।

राजा भाग सिंघ

1789 ई० में राजे के देहांत के पश्चात इसका छोटा पुत्र भाग सिंघ गद्दी पर बैठा। छोटा भाई रूप सिंघ बडरूखों की जायदाद का वारिस बना तथा जींद का राज-पाट इसके हिस्से में आया। राजा भाग सिंघ पटियाले वालों से मिलाप रखता था तथा दिल्ली से भी उसका मेल मिलाप था, जिस पर गौहाना तथा खरखौंडा के इलाके उसको मिले। जब पटियाले पर 1794 ई० में मराठों ने धावा बोला तो इसने मराठों को भगाने में बहुत सहायता की। 1797-98 ई० में इसकी जार्ज थामस के साथ भी कई बार झडपें हुईं। परन्तु यह सिक्ख सरदारों तथा दिल्ली सरकार की सहायता से बचता रहा। महाराजा रणजीत सिंघ का यह मामा लगता था। 1804 ई० में जब होल्कर, शेर-ए-पंजाब से सहायता लेने के लिए पंजाब आया तो लार्ड लेक राजा भाग सिंघ को साथ लाया ताकि यह अपने भांजे को कहे कि वह मराठे सरदार की सहायता न करे। हुआ भी ऐसे ही। इससे अंग्रेज़ प्रसन्न हो गये तथा इस को बहाणे का इलाका ईनाम में प्राप्त हुआ।

1806 में राजा ने हरिद्वार सन्यासियों को सीधा करके उदासी साधुओं की भी बहुत सहायता की थी। इधर महाराजा रणजीत सिंघ ने 1806 ई० में लुधियाना, जंडियाला, कोट तथा जगराऊँ परगने के कई गांव राजा भाग सिंघ को जीत कर दिये। बाद में अंग्रेज़ों ने करनाल देने के बदले में राजा भाग सिंघ से लुधियाना ले लिया, परन्तु फिर करनाल भी न दिया।

1809 ई॰ के ऐलान के मुताबिक कुछ इलाके पहले मालिकों को ही मिल गये अथवा अंग्रेज़ों ने संभाल लिये। अंतिम वर्षों में राजा भाग सिंघ बहुत बीमार रहा। इसके तीन पुत्र थे तथा यह बड़े पुत्र फ़तह सिंघ को छोडकर बीच वाले पुत्र प्रताप सिंघ को गद्दी देना चाहता था, परन्तु अंग्रेज़ों ने यह बात न मानी। प्रताप सिंघ ने क्रोध में आकर जींद पर धावा बोल दिया तथा 23 अगस्त, 1814 को दीवान जैसीराम को, माता सभराई के साथ ही क़त्ल कर दिया। अंग्रेज़ों ने उसको कैद कर लिया तथा वह कैद में ही 1816 ई॰ में स्वर्गवास हो गया। दीर्घ बीमारी के पश्चात् 1819 ई॰ में भाग सिंघ भी प्राण त्याग गया तो फिर बड़ा पुत्र राजा फ़तह सिंघ गद्दी पर बैठा जिसका तीन वर्ष राज्य करने के पश्चात् 3 फ़रवरी, 1822 को देहांत हो गया।

राजा संगत सिंघ

इसके पश्चात् 11 वर्ष का इसका पुत्र संगत सिंघ (1811-1834 ई॰) 30 जुलाई, 1822 को गद्दी पर बैठा। यह रिश्तेदारी के नाते महाराजा रणजीत सिंघ के साथ भी प्यार रखता था यद्यपि 1826 ई॰ तथा 1827 में दो बार यह लाहौर उसको मिलने भी गया था तथा उस प्रेम-भाव के साथ इसको जालंधर के इलाके में कुछ जागीर भी दी परन्तु अंग्रेज़ सतलुज के इधर के किसी राजे के शेर-ए-पंजाब के साथ सम्बन्ध सहन नहीं करते थे, इसलिए इस बात का उसने बहुत बुरा मनाया और आगे के लिए ऐसा करने की मनाही की। यह सुन्दर नौजवान था तथा मौज-मेले में मस्त रहने के कारण राज-काल की ओर ध्यान नहीं देता था।

इसका बसीयां में 3 नवम्बर, 1834 को देहांत हुआ।

राजा सरूप सिंघ

राजा सरूप सिंघ का कोई पुत्र नहीं था, इसलिए गद्दी का वारिस 1837 ई॰ में एक नज़दीकी वजीदपुरिया सरदार, सरूप सिंघ बना। परन्तु अंग्रेज़ों ने शरारत के साथ उसको राजा गजपत सिंघ वाली मालिकी-जींद तथा सफैदों के इलाके का अधिकारी माना तथा शेष बाद में जीते लुधियाना, बसीया, मोरिंडा, दयालपुरा आदि के 146 गांव अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिये। परन्तु राजा सरूप सिंघ ने भी इसका बुरा न मनाया, अपितु अंग्रेज़ों का

अच्छा हितैषी ही बना रहा। यह अच्छा दानी तथा बहादुर था, इसने 1848 ई॰ के अंग्रेज-सिक्ख युद्ध के समय तथा 1857 के ग़दर में अच्छी सहायता करके अंग्रेज़ों को प्रसन्न किया, जिसके फलस्वरूप दादरी का परगना तथा परगना कुलारां के तेरह और गांव प्राप्त हुए। 1854 में लजवाणौ (बांगर) के विद्रोहियों को सुधारा। यह भी राजा सरूप सिंघ की बुद्धिमत्ता थी कि उसने विशेष कोशिश करके अंग्रेज़ों की सहायता से मुसलमानी अधिकार में से जगह लेकर गुरुद्वारा सीस गंज तैयार करवाया। बाद में मुसलमानों ने कलकत्ते अपील करके फिर दोबारा अपने अधिकार में ले लिया, परन्तु राजा सरूप सिंघ के सपुत्र राजा रघबीर सिंघ जी ने प्रिवी कौंसिल तक मुकद्दमा लड़ा और यह निर्णय लिया कि 1857 के ग़दर के समय हुए निर्णयों में कोई परिवर्तन न किया जाये। इसलिए दूसरी बार फिर गुरुद्वारे की स्थापना हुई। संगरूर राजधानी भी इसी ने बनवाई। सर लैपल ग्रिफ़न लिखता है, 'राजा सरूप सिंघ शाही सूरत का मालिक था। जब यह शस्त्रों से बन-ठन कर आता तो ऐसा लगता कि शायद ही कोई और हिन्दुस्तानी शहज़ादा ऐसा सुन्दर, सुडोल तथा रोब-दाब वाला बहादुर हो। इसने अंग्रेज़ों के साथ दोस्ती प्रेम से निभांई, न कि भय से।'

राजा रघबीर सिंघ

26 जनवरी, 1864 में राजा सरुप सिंह का देहांत हो जाने के बाद इसका छोटा सपुत्र राजा रघबीर सिंघ 31 मार्च, 1864 को गद्दी पर बैठा। इसने 1878-80 अफ़ग़ान युद्ध के समय अंग्रेज़ों की सहायता की तथा 'राजाए राजगान' की उपाधि प्राप्त की। यह बहुत समझदार राजा था तथा इसने रियासत की उन्नति के लिए कई प्रशंसनीय कार्य किये। इसके पुत्र बलबीर सिंघ की मृत्यु हो गई थी, इसलिए 1887 ई॰ में इसके देहांत के बाद इसके पौत्र महाराजा रणबीर सिंघ गद्दी का अधिकारी बना। इनके वज़ीरे-आज़म स. शमशेर सिंघ थे जिसने बड़े अच्छे तरीके के साथ राज्य-प्रबन्ध चलाया। 36 सदस्यों की असैंबली बनाकर एक नया तजुर्बा किया, दीवानी कानून अपने पास रखे, अंग्रेज़ों वाले नहीं चलाए। अंग्रेज़ सरकार ने 1911 ई॰ में इसको 'महाराजा' का ख़िताब दिया। पहले बड़े युद्ध में इसने सरकार की अच्छी सहायता की। 1948 ई॰ में देहांत के बाद महाराजा राजबीर सिंघ गद्दी पर बैठा जिसके समय 1268 वर्ग मील की संगरूर रियासत अगस्त 1948 में पूर्वी पंजाब रियासती यूनियन में मिल गई।

रियासत नाभा

बाबे फूल के बड़े पुत्र चौधरी तिलोके का बड़ा पुत्र गुरदित्त सिंघ था। चौधरी गुरदित्त सिंघ का पुत्र सुरतिया सिंघ 1752 ई॰ में स्वर्गवास हो गया था और 1754 ई॰ में चौधरी गुरदित्त सिंघ के देहांत के बाद राजा हमीर सिंघ गद्दी पर बैठा। इसने 1755 ई॰ में नाभा नगर बसाया। 1764 ई॰ में जब सिंघों ने सरहिन्द का मुस्लिम राज्य तोड़ा तो हमीर सिंघ ने अमलोह का इलाका अधिकार में लिया तथा अपना सिक्का चलाया। 1776 ई॰ में रहीम दाद ख़ां की मृत्यु के पश्चात् रोड़ी का परगना अधिकार में किया। राजा गजपत सिंघ के साथ कुछ झगड़ा हो गया था, परन्तु पटियाला वाले ने समझौता करवा दिया।

राजा जसवंत सिंघ

दिसम्बर 1783 ई॰ में देहांत हो जाने पर राजा हमीर सिंघ का पुत्र राजा जसवंत सिंघ गद्दी पर बैठा। यह आठ वर्ष का था। इसकी सौतेली माता देसो 1790 ई॰ तक राज्य-प्रबन्ध चलाती रही। जब 1806 ई॰ में शेर-ए-पंजाब सतलुज पार हुआ तो उसने बसीयां तथा जगराओं परगने के 31 गांव तथा घुंगराने परगने के 7 गांव महाराजा जसवंत सिंघ को जीत कर दिये। जहां और रियासतों का झुकाव अंग्रेज़ों की ओर था, यह इसके विपरीत लाहौर दरबार के साथ स्नेह रखता था, इस दोस्ती के कारण रियासत को कुछ हानि भी उठानी पड़ी। परन्तु फिर भी कर्नल अकतर लोनी ने राजे की बुद्धिमत्ता तथा अच्छे राज्य-प्रबन्ध की बहुत प्रशंसा की और दिल्ली सरकार की ओर से महाराजे को 'मालवेन्द्र बहादुर' का ख़िताब भी दिलवाया था। 22 मई, 1840 को राजा का देहांत हो गया।

राजा देवेन्द्र सिंघ

इसके पश्चात् इसका छोटा पुत्र राजा देवेन्द्र सिंघ गद्दी का वारिस बना। यह साधु स्वभाव का था तथा अधिकतर वैरागियों ब्राह्मणों के कहने पर चलता था। एक बार ब्राह्मणों ने कहा कि 'तुम अश्वमेध यज्ञ' करने से चक्रवर्ती राजा बन जायोगे।' यह झांसा देकर ब्राह्मणों ने इससे काफ़ी सोना और धन ठग लिया। इसके समय में सिक्खों और अंग्रेज़ों में युद्ध हुआ, राजा देवेन्द्र सिंघ की दिली हमदर्दी लाहौर दरबार के साथ थी।

कुछ बात यह भी थी कि अंग्रेज़ों के राजसी दूत मेजर ब्राडफुट ने नाभे के वकील केडा सिंघ को लाहौर में रहकर वहां के भेद बताने हेतु रहने के लिए कहा था, परन्तु यह बात न बनी, जिससे चिढ़कर ब्राडफुट ने नाभे के विरुद्ध शिकायतें कीं। कुछ ऐसी बातों के कारण, युद्ध के पश्चात् तुरन्त अंग्रेज़ों ने राजा को गद्दी से उतार कर तथा पचास हज़ार पैनशन देकर मथुरा भेज दिया और रियासत का चतुर्थ भाग, पख्खोवाल की ओर का इलाका अपने अधिकार में ले लिया। बाद में राजे को लाहौर लाया गया और वहीं पर नवम्बर 1865 ई॰ में उसका स्वर्गवास हो गया।

राजा भरपूर सिंघ

इसी समय जनवरी 1847 में ही सात वर्ष के टिक्का भरपूर सिंघ को राज-गद्दी पर बिठा दिया गया था तथा राज्य का कार्य का काम राजा जसवंत सिंघ की रानी चाँद कौर की देख-रेख में स. गुरबख़्श सिंघ मानशाहिया, बहाली राम तथा फ़तह सिंघ तीनों की कौंसिल चलाती रही। 1857 के ग़दर में राजा भरपूर सिंघ ने अंग्रेज़ों की अच्छी सेवा की जिसके फलस्वरूप उसको दोबारा लुधियाना तथा फ़िरोज़पुर के बीच का ज़ब्त किया हुआ इलाका तथा रियासत झज्जर के कुछ भाग बावल तथा कांटी मिले। इस तरह और भी रियायतें प्राप्त हुईं जो शेष रियासतों को प्राप्त थी। 1863 ई॰ में 'सतारा-ए-हिन्द' का ख़िताब दिया तथा वायसराय की कौंसिल का सदस्य बनाया। यह राजा योग्य प्रबन्धक और फ़ारसी अंग्रेज़ी का विद्वान् था तथा स्वयं काव्य रचना भी किया करता था। ग्वाल कवि इसी के दरबार में रहा। 9 नवम्बर, 1863 को इसका देहांत हो गया।

संतान न होने के कारण इसका छोटा भाई भगवान सिंघ 17 फ़रवरी, 1864 ई॰ को राज्य का वारिस बना। यह सुन्दर रूप वाला तथा अय्याश राजा था, बहुत बुद्धिमान् न था बल्कि दूसरों के कहने पर चलने वाला था। इसके समय कई अहलकारों ने मनमाने झगड़े किये। 31 मई, 1871 को यह भी निस्संतान मर गया। इस प्रकार चौधरी गुरदित्त सिंघ वाली शाख़ा का राज-पाट समाप्त हो गया।

महाराजा सर हीरा सिंघ

इसके पश्चात् बडरुखों के सरदार सुखा सिंघ का सपुत्र हीरा सिंघ

रिश्तेदारी में नज़दीकी होने के कारण 10 अगस्त, 1871 ई॰ को गद्दी पर बैठा। यह धर्मात्मा राजा था तथा अपने समय का राज-ऋषि था। दीवान सेवा सिंघ की सहायता के साथ इसने रियासत के प्रबन्ध को बहुत अच्छे तरीके से चलाया। उसके न्याय तथा नेकी की कहानियां राजा विक्रमाजीत की तरह लोग आज तक सुनाते हैं। लोग भलाई हेतु इसने सड़कें, पुल, सरायें तथा तालाब आदि बनवाये। हीरा महल, हीरा बाग़ तथा छावनी आदि इसके प्रयत्नों के परिणाम हैं। साहित्य तथा धर्म-विद्या का बड़ा शौकीन था। बड़े बड़े पंडितों गुणवानों को बुलाकर शास्त्रार्थ कराया करता था। एक बार इसने भाई प्रेम सिंघ को 'बुधि बारधि' का ग्रन्थ लिखने पर सवा लाख रुपये का नकद इनाम दिया था। मि. मैकालिफ़ की भी इसने बहुत सहायता की और ख़ालसा कालिज को पक्के पावों पर खड़ा करने हेतु पूरा ज़ोर लगाया। 25 दिसम्बर, 1911 को इसका देहांत हो गया।

महाराजा रिपुदमन सिंघ

इसके बाद इसका पुत्र राजा रिपुदमन सिंघ (जन्म 4 मार्च, 1883 ई॰) 24 जनवरी, 1912 को गद्दी पर बैठा। पहले दो-तीन साल यह वायसराय की कौंसिल का ऐडिशनल मैंबर भी रहा तथा राष्ट्रीय सुधार के लिए प्रयत्न भी करता रहा। आनंद मैरिज ऐक्ट इसी की कोशिश का नतीजा था। पंडित मालवीय को हिन्दु विश्वविद्यालय के लिए एक लाख रुपये दान दिया। वास्तव में महाराजा आत्मसम्मान तथा राष्ट्रवादी भावनाएँ रखने वाला था और यह बात अंग्रेज़ों को किस तरह पसन्द आ सकती थी। बड़े युद्ध में और राजाओं की तरह इसने अंग्रेज़ों को सहायता नहीं दी। ननकाणे के साके के समय स्वयं काली पगड़ी बांधकर सोग मनाया। एक बार पंजाब गवर्नर लूई डेन रियासतों का दौरा कर रहा था तो उसने नाभे को भी लिखा। आगे महाराजा ने उत्तर दिया कि अफ़सोस है कि मैं भी इस समय दौरे पर हूँ, फिर कभी आपके दर्शनों का लाभ प्राप्त करूँगा। फिर नाभा-पटियाला का झगड़ा चला, जिसमें अंग्रेज़ी सरकार ने जानबूझ कर रियासत नाभा के विरुद्ध अयोग्य निर्णय दिये। जब अकाली लहर चली तो महाराजे की सहानुभूति देश-भक्त अकालियों के साथ थी। इस लिए अंग्रेज़ों ने जुलाई, 1923 में इसको गद्दी से ही उतार दिया और तीन लाख वार्षिक पैनशन दे कर देहरादून भेज दिया, परन्तु इसके राजसी विचारों

में कोई परिवर्तन न हुआ बल्कि देश-भक्त नेताओं के साथ मेल-मिलाप रखता रहा, इस बात से दुःखी होकर सरकार ने 'महाराजा' आदि के ख़िताब भी 1928 ई० में ज़ब्त कर लिए। पैनशन घटाकर मद्रास में कुडाई कुनाल में नज़रबंद कर दिया। परन्तु देश-भक्त महाराजे ने इसी तरह ही निडर जीवन व्यतीत किया। हजूर साहिब में अमृतपान करके गुरबचन सिंघ नाम रख लिया। अकाली मुखियों ने इसकी सहानुभूति के लिए जैतो का मोरचा भी लगाया था।

इधर महाराजा रिपुदमन सिंघ के पुत्र महाराजा प्रताप सिंघ को जुलाई 1923 में गद्दी पर बिठा दिया गया था, रियासत का प्रबन्ध हिन्द सरकार की ओर से नियुक्त प्रबन्धक करता रहा। 1938 में महाराजा प्रताप सिंघ को पूर्ण अधिकार मिले, जिस अनुसार यह रियासत का कार्य 1948 तक चलाते रहे। शेष रियासतों की तरह अगस्त 1948 में ये 961 मुरब्बा मील की नाभा स्टेट भी पूर्वी पंजाब रियासती यूनियन में मिल गई और फिर पंजाब का भाग बन गई।

रियासत फ़रीदकोट

बादशाह अकबर के ज़माने के सिध्धू बराड़ घराने में भल्लण मालवे का सुप्रसिद्ध चौधरी था जो अपने पिता संघर की तरह बड़ा योद्धा था और रोब-दाब वाला व्यक्ति था। कहते हैं कि भट्टियों के सरदार नवाब मनसूर ख़ां (सिरसा) और चौधरी भल्लण को अकबर ने दरबार में बुलाकर इनका समझौता करवाना चाहा। मनसूर ख़ां को दरबार की ओर से सिरोपाउ का चीरा* दिया गया तो भल्लण ने वहीं सब के सामने ही आधा चीरा फाड़ लिया।

बादशाह अमीर वज़ीर, रहे हैरान निहार।
भल्लण चीरा पाड़िआ, अकबर दे दरबार।

यह देखकर अकबर ने दोनों को बराबर सम्मान दिया और अपने अपने इलाके का चौधरी स्थापित किया। उस समय इसके पास फ़रीदकोट, कोटकपूरा तथा मुक्तसर आदि का इलाका था। भल्लण गुरु हरिगोबिन्द साहिब का भी श्रद्धालु था तथा उसने 1634 ई० में गुरु साहिब की युद्ध

---

* सर पर बांधने के लिए कपड़ा जिसकी लंबाई तकरीबन दो मीटर होती है।

में सहायता भी की थी। यह 1643 में निस्संतान मर गया तथा चौधरी की गद्दी इसके छोटे भाई लाले को मिली। बाद में लाले का पुत्र कपूरा चौधरी बना। कपूरे (जन्म 1628 ई०) ने बहुत अच्छे कार्य किये तथा 1661 ई० में कोटकपूरा बसाया। यह गुरु-जनों का श्रद्धालु सिक्ख था, परन्तु कष्ट के समय इसने श्री दसमेश गुरु जी को अपना किला देने से मना कर दिया। कहने लगा, 'अगर मैं आपको किला दे दूँ तो मुझे दूसरे दिन मुग़ल आकर फांसी लगा देंगे।' गुरु साहिब ने कहा, 'कपूरिया ! ईमान से गिरे व्यकित फांसी ही लगते हैं।' कहते हैं कि 1708 ई० में ईसे ख़ां मंझ ने कपूरे को फांसी लगाकर मारा। इसका बदला लेने के लिए कपूरे के पुत्रों ने ईसे ख़ां को क़त्ल कर दिया तथा बड़ा पुत्र चौधरी सुक्खा सिंघ इलाके का मालिक बना। 1732 ई० में सुक्खा चौधरी मर गया तथा उसका पुत्र हमीर सिंघ हुआ जिसने फ़रीदकोट को चहल-पहल दी। जोध सिंघ का पुत्र टेक सिंघ कुछ समय गद्दी पर बैठा तथा उसने किला बनवाया। 1782 ई० में हमीर सिंघ की मृत्यु के पश्चात् मोहर सिंघ वारिस बना। इसके पुत्र चढ़त सिंघ तथा भूप सिंघ खाड़कू थे और वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहे। यह (मोहर सिंघ) भी 1798 में मर गया। मोहर सिंघ के बड़े भाई दल सिंघ ने चढ़त सिंघ को क़त्ल करके फ़रीदकोट के किले पर अधिकार कर लिया, बाद में यह भी कत्ल कर दिया गया तथा चढ़त सिंघ का सात वर्षीय पुत्र गुलाब सिंघ मालिक बना। वास्तव में अधिकारी इसका मामा फ़ौजा सिंघ था। 1807 ई० में महाराजा रणजीत सिंघ ने फ़रीदकोट पर अधिकार कर लिया था, परन्तु बाद में इकरारनामे के अनुसार यह इलाका वापिस कर दिया गया। 1826 ई० में किसी ने गुलाब सिंघ को गोली मारकर मार दिया, इसका पुत्र अतर सिंघ कुछ समय गद्दी पर बैठा तथा वह भी अगस्त 1827 ई० में मर गया। बाद में पहाड़ा सिंघ मालिक बना। इसने अंग्रेज़ सिक्ख युद्ध के समय बड़ी बेशर्मी से अंग्रेज़ों की सहायता की, ख़ालसा दरबार तथा फ़ौजों के भेद बताये, जिसके फलस्वरूप उसको काफ़ी इलाका प्राप्त हुआ तथा अप्रैल 1846 में 'राजे' का ख़िताब मिला। अप्रैल 1849 में इसका देहांत हो गया।

इसके बाद इसका पुत्र राजा वज़ीर सिंघ फ़रीदकोट के तख़्त पर बैठा। 1857 के ग़दर में उसने भी और राजाओं की तरह अंग्रेज़ों की पूर्ण रूप से सहायता की, मुक्तसर, दीने आदि के गुरुद्वारे बनवाये तथा

लख्खी जंगल में कई कुएं खुदवाये। यह धार्मिक वृत्ति रखने वाला था। लंबी तीर्थ यात्रा के पश्चात् अप्रैल 1874 में कुरुक्षेत्र में इसका देहांत हुआ। इसका पुत्र राजा बिक्रम सिंघ गद्दी का अधिकारी बना जिसने फ़रीदकोट शहर को सुन्दर बनाने के लिए कई प्रयत्न किये। यह धार्मिक रुचियों वाला व्यक्ति था। इसने एक लाख रुपए दरबार साहिब में बिजली लगवाने के लिए दिये तथा ज्ञानी बदन सिंघ जैसे गुणी ज्ञानी रखकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का टीका करवाया तथा सुधाई की। सिंघ सभा लहर के मुखियों की बहुत सहायता करता रहा। 8 अगस्त, 1898 को इसका देहांत हो गया। बाद में राजा बलबीर सिंघ गद्दी पर बैठा, जो 1906 ई० में युवावस्था में ही मर गया, राजा बलबीर सिंघ के सन्तान नहीं थी, इसलिए इसके छोटे भाई राजिन्द्र सिंघ का सपुत्र ब्रिजेन्द्र सिंघ 15 मार्च, 1906 को गद्दी पर बैठा। इसने कई इमारतें बनवाईं और रियासत का विकास किया। गांव गांव जाकर लोगों के कष्ट दूर करने हेतु प्रयत्न किये। बड़े युद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता की जिसके फलस्वरूप इसको 'महाराजा' का ख़िताब भी प्राप्त हुआ। 1918 ई० में देहांत के पश्चात् उसके पुत्र राजा हरिन्द्र सिंघ ने 23 दिसम्बर, 1918 को गद्दी संभाली। पहले स. फ़तह सिंघ मौड़ तथा स. इन्द्र सिंघ बरसालां की कौंसिल कार्य चलाती रही। फिर 1934 ई० में अधिकार स्वयं संभाले। इसने रियासत में सड़कों का जाल बिछवाया, स्कूल आरम्भ करवाये और प्रजा को नये हालात के अनुसार सुरक्षित करने हेतु कार्य किये। अगस्त 1948 में यह 643 मुरब्बा मील की बैराड़ रियासत पैपसू का भाग बनकर पंजाब में लीन हो गई।

रियासत कैथल

सिध्धू बराड़ों में से भाई भगतू, गुरु अर्जुन देव का प्रसिद्ध सिक्ख था, इसका पुत्र भाई गौरे का पौत्र (भाई राम दयाल का पुत्र) स. गुरबख़्श सिंघ था, जिसने रियासत कैथल की नींव रखी। यह ख़ानदान 'भाई कियां' का ख़ानदान कहलवाता है। स. गुरबख़्श सिंघ बाबा आला सिंघ का बहादुर साथी था तथा इसने कई इलाके जीतने हेतु बाबा आला की सहायता की। भाई गुरबख़्श सिंघ के पांच पुत्र बुड्ढा सिंघ, सुक्खा सिंघ, तख़्त सिंघ, देसू सिंघ तथा धन्ना सिंघ थे। 1764 ई० में सरहिन्द भाई बुड्ढा सिंघ के हिस्से में आया, परन्तु इसने 25 हज़ार में यह बाबा आला सिंघ को बेच दिया।

सुक्खा सिंघ ने अरनौली पर अधिकार किया हुआ था, धन्ना सिंघ ने ककराले तथा बुढलाडे को अधिकार में कर लिया तथा भाई देसू सिंघ ने कैथल पर कब्ज़ा करके इसकी नींव रखी। भाई देसू सिंघ बड़ा नीतिवान् था, इसने कई बार थानेसर पर भी अधिकार किया परन्तु स. भंगा सिंघ ने फिर वापिस ले लिया। इसी तरह कुंजपुरे का अफ़ग़ानों का इलाका भी अधिकार में लिया। एक बार नवाब अब्दुल अहद ने सितम्बर 1779 में इसको कैद कर लिया। इसने चार लाख रुपये नज़राना देकर पीछा छुड़वाया। भाई देसू सिंघ के सितम्बर 1780 में देहांत के पश्चात् भाई लाल सिंघ अपने बड़े भाई बहाल सिंघ को मारकर स्वयं रियासत का अधिकारी बना। इसको भी पहले मुग़ल सरकार ने कैद कर लिया था, इसकी माता ने 50 हज़ार रुपये देकर छुड़वाया था। यह बड़ा चतुर व्यक्ति था, जिसने सबसे पहले 1803 ई० में अंग्रेज़ों से मेल-मिलाप किया था। 1808 ई० में अंग्रेज़ों की रक्षा में आने के समय यह सबसे आगे था। देहांत के पश्चात् इसका पुत्र राजा उदय सिंघ गद्दी पर बैठा जिसने भाई संतोख सिंघ (1788-1843 ई०) जैसे महान् कवि को आश्रय प्रदान कर गुरु इतिहास की महान् सेवा करवाई। 15 मार्च, 1843 को राजा उदय सिंघ निस्संतान मर गया, जिस करके रियासत अंग्रेज़ों ने अधिकार में कर ली। इस ख़ानदान में से अरनौली, सुधूवाल, भाई का चक्क तथा भुच्चो के सरदार हैं।

रियासत कपूरथला

अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सिंघ जरनैल स. जस्सा सिंघ आहलूवालिये ने रियासत कपूरथला की नींव रखी। 1761 ई० में लाहौर को कब्ज़े में लेकर इसने अपने नाम का एक सिक्का चलाया तथा 1664 ई० में यह लाहौर के सिंहासन पर बैठकर 'सुल्तानुल कौम' कहलवाया। सिंघ इसको साधारणत: 'बादशाह सिंघ' कहकर स्मरण किया करते थे। 1777 ई० में राय इब्राहिम भट्टी से कपूरथला छीनकर इसने अपनी राजधानी बनाई। आपका कोई पुत्र नहीं था, इसलिए 1783 ई० में इनके देहांत के बाद इनके भतीजे का पुत्र स. भाग सिंघ मिसल का आगू बना, यह भी समय समय आक्रमणों में भाग लेता रहा। यह अच्छा शूरवीर, दानी तथा सत्संगी स्वभाव का था तथा 1801 ई० में इनकी मृत्यु हो गई। इसके

बाद इसका पुत्र राजा फ़तह सिंघ गद्दी पर बैठा जो कि महाराजा रणजीत सिंघ का समकालीन तथा पगड़ी बदलवाकर भाई बना हुआ था। 1803 में शेर-ए-पंजाब ने फगवाड़े का इलाका जीत कर राजा फ़तह सिंघ को दिया तथा बाद में यह रणजीत सिंघ की अनेक सरगर्मियों में शामिल होता रहा। मिसल रामगढ़िया तथा राजा संसार चन्द कांगड़े के साथ भी इसकी टक्कर हुई। इसने दो शेर स्वयं अपने हाथों से मारे।

1825 ई० में कुछ शंका पैदा हो जाने के कारण कि 'कहीं शेर-ए-पंजाब कपूरथले पर अधिकार ही न कर ले,' राजा फ़तह सिंघ भागकर सतलुज पार चला गया, जहां पर उसकी 454 गांवों की जागीर थी। महाराजे ने ग़लत फ़हमी दूर करके फ़तह सिंघ को वापिस बुलाया। अक्तूबर 1836 में देहांत के बाद इसका पुत्र राजा निहाल सिंघ गद्दी पर बैठा, इसका भाई अमर सिंघ कुछ विरोध करता रहा परन्तु शेर-ए-पंजाब ने निहाल सिंघ की सहायता की। जब अंग्रेज़ों की लाहौर दरबार से टक्कर हुई तो कपूरथले की सिक्ख सेना लाहौर दरबार की ओर हो गई तथा रियासत के अंगेज़-परस्त वज़ीर मौलवी ग़ुलाम मुहंमद जान को मार दिया। इस पर लुधियाना की ओर के इलाके अंग्रेज़ों ने ज़ब्त कर लिये और जालंधर दुआब में से कुछ भाग अंग्रेज़ी राज्य में मिला लिया।

इसका 13 सितम्बर, 1852 को देहांत हुआ तथा रणधीर सिंघ रियासत का मालिक बना। इसने भी और राजाओं की तरह 1857 के ग़दर में अंग्रेज़ों की सहायता की जिसके फलस्वरूप अवध के इलाके में बूंदी तथा भटोली के चार लाख की आमदनी वाले परगने जागीर में प्राप्त हुए। 1870 ई० में रियासत के प्रबन्ध की देख-रेख टिक्का खड़ग सिंघ को सौंप कर 1870 ई० में ही राजा स्वयं विलायत के लिए चल पड़ा, परन्तु रास्ते में 2 अप्रैल, 1870 को अदन बंदरगाह पर उसकी मृत्यु हो गई। राजा खड़क सिंघ की दिमाग़ी हालत ठीक नहीं थी, इसलिए दीवान् रामजस, दीवान् बैजनाथ और ग़ुलाम जीलानी तीनों की कौंसिल कार्य चलाती रही और 1877 में राजा स्वर्गवास हो गया। इसके पश्चात् इसका पांच वर्षीय पुत्र जगजीत सिंघ गद्दी पर बैठा। अंग्रेज़ सरकार ने सर लैपल ग्रिफ़न को रियासत का सुपरिंटेंडैंट नियुक्त किया। 1890 में इस राज्य-प्रबन्ध की देख-रेख स्वयं संभाली। ख़ालसा कालेज के लिए एक लाख रुपया दान दिया। यह अंग्रेज़ी, फ़ारसी, फ़्रांसीसी तथा हिन्दी आदि का अच्छा विद्वान् था और

इसने बड़ी समझदारी से रियासत के प्रबन्ध को अच्छे तरीके से चलाया। कपूरथले को सुन्दर ईमारतों और बाग़ों से सजाया। कई बार दूर दूर देशों की सैर भी की। जब अगस्त 1948 में पूर्वी पंजाब रियासती यूनियन बनी तो इसको उप राज्य-प्रमुख स्थापित किया गया इसकी 1949 ई॰ में मृत्यु हो गई और यह 652 वर्ग मील की रियासत पैप्सू का भाग बनकर पंजाब में मिल गई।

रियासत कलसीया[1]

रियासत कलसीया के बज़ुर्ग मिसल क्रोड़िया में से थे। 1761 ई॰ में स. बघेल सिंघ इस मिसल का जत्थेदार बना, जिसने सतलुज के उत्तर तथा दक्षिण दोनों ओर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। स. गुरबख़्श सिंघ संधु (गांव कलसीया, ज़िला लाहौर) भी इसी मिसल का बहादुर सरदार था, जिसने 1764 ई॰ में सरहिन्द जीतते समय छछरौली तथा सयालबा के परगने संभाले। 1774 ई॰ में देहांत के पश्चात् इसका पुत्र स. जोध सिंघ मालिक बना। इसने डेरा और बस्सी कब्ज़े में किये। 1802 ई॰ में स. बघेल सिंघ का हरियाणा में देहांत हो गया, और मिसल का जत्थेदार भी स. जोध सिंघ बना। यद्यपि कुछ समय स. बघेल सिंघ की धर्म-पत्नी राम कौर हरियाणा की तथा रत्न कौर छलौदी की जायदाद की मालिक रही, परन्तु 1802 ई॰ में शेर-ए-पंजाब ने खुरदीन, बादला, खेडी तथा शाम चपाल के इलाके जोध सिंघ को दिये। बाद में स. बघेल सिंघ की अधिकतर जागीर अंग्रेज़ों ने अपने अधिकार में ले ली। मुलतान जीतने के पश्चात् यह 1818 ई॰ में शेर-ए-पंजाब की ओर से वहां का फ़ौजदार भी नियुक्त हुआ परन्तु युद्ध के समय लगे गहरे घावों के कारण शीघ्र ही मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् स. शोभा सिंघ जागीर का मालिक बना। 1858 ई॰ में इसके देहांत के पश्चात् लहणा सिंघ जो 1869 ई॰ में मर गया। इसके पश्चात् बिशन सिंघ 1883 ई॰ तक और उसका पुत्र जगजीत सिंघ 1886 ई॰ तक रहा। जगजीत सिंघ का भाई रणजीत सिंघ 1908 ई॰ तक मालिक रहा। इसके बाद स. रविशेर सिंघ मालिक बना। जिसको बड़े युद्ध में अंग्रेज़ों की अच्छी सहायता करने के कारण 'राजा' का ख़िताब प्राप्त हुआ।

---

1. भाई कान्ह सिंघ नाभा, *महान् कोश*।

राजा रविशेर सिंघ जनवरी 1947 में स्वर्गवास हो गया और इसका पुत्र राजा करनशेर सिंघ गद्दी पर बैठा। अगस्त 1948 में यह 170 वर्ग मील की रियासत भी पैप्सू में मिलकर पंजाब में शामिल हो गई।[1]

इतिहास के पाठकों का ध्यान इस संकल्प की ओर आवश्य आयेगा कि अगर ये सतलुज के समस्त सिक्ख रईस महाराजा रणजीत सिंघ के साथ शामिल हो जाते तो अंग्रेज़ों की ग़ुलामी का पांव पंजाब की धरती पर पड़ना असंभव था, परन्तु तवारीख़ इस शुभ मिलाप का रास्ता ही देखती रही। बात बड़ी स्पष्ट थी कि ये स्वार्थी राजे राष्ट्रीय संयुक्त मोरचे हेतु स्वयं अपना अस्तित्व तथा मौज-मेला छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। इस भय से डरते हुए इन्होंने विदेशी शक्ति फ़िरंगियों को शरण प्राप्त की थी, जिन्होंने उनको बाद में अपनी इच्छानुसार कठपुतलियों का नाच करवाया। अंग्रेज़ों की लाहौर दरबार के साथ टक्कर हुई तो इन्होंने अपने ही सिक्ख भाईयों के विरुद्ध तलवार चलाई तथा अंग्रेज़ों की सम्पूर्ण सहायता की। फिर 1857 का ग़दर हुआ तो इन राजे रईसों ने अपनी फ़ौजें भेजकर दिल्ली में मरते मरते अंग्रेज़ों को बचाया और बाद में प्रसन्नतापूर्वक जागीरें और ईनाम प्राप्त किये। इस समस्त घटनावली की राष्ट्रीय दृष्टि से कभी भी प्रशंसा नहीं की जा सकती। अन्त में यह मानना पड़ता है कि राज्य प्राप्त करके राजाओं वाले अवगुणों से बचना किसी परम-मनुष्य का ही कार्य है।

उपरोक्त वर्णित किये गये मुख्य रईसों के इलावा और भी कई सिक्ख सरदार हुए जो अपनी अपनी जगह राज-पाट के मालिक थे। उनके हालात सर लैपल ग्रिफ़न ने द *पंजाब चीफ़स* (1890 ई०) को दो भागों में वर्णित किये हैं और ज्ञानी ज्ञान सिंघ जी ने भी *सरदार ख़ालसा* में लिखे थे जो प्रकाशित नहीं हुई। परन्तु जिस तरह कहते हैं, 'तपों राज ते राजों नरक' बात वही हुई। जितना समय ऊँचे चरित्र वाले योद्धा सरदार थे, उनका शाही सम्मान भी बना रहा। जब चरित्रिक बल कम हो गया तो फिर सभी कुछ ही जाता रहा। किसी ने ठीक कहा है कि जब तलवार वाले हाथ प्याला पकड़ लें तो प्याला खंजर बनकर प्राण ले लेता है। परमात्मा की लीला ही इस तरह है कि वह नीचे ऊपर सदैव होती ही रहती है।

---

1. Ganda Singh, *Pepsu : Historical Background.*

कबीर का कथन है :

भेखारी ते राजु करावै, राजा ते भेखारी ।।
खल मूरख ते पंडितु करिबो, पंडित ते मुगधारी ।।
नारी ते जो पुरखु करावै, पुरखन ते जो नारी ।।
कहु कबीर साधू को प्रीतमु, तिसु मूरति बलिहारी ।।

(सारग कबीर, पन्ना 1252)

●

पुर्नजागृति युग

(1849-1920 ई॰)

अब मन जागत रहु रे भाई ।।
गाफलु होइ कै जनमु गवाइओ,
चोरु मुसै घरु जाई ।।

(गउड़ी कबीर, पन्ना 339)

सो जागै जिसु सतिगुरु मिलै ।।
पंच दूत ओहु वसगति करै ।।
सो जागै जो ततु बीचारै,
आपि मरै अवरा नह मारै ।।
कहत नानक जनु जागै सोइ ।।
गिआन अंजनु जा की नेत्री होइ ।।

(भैरउ म: ३, पन्ना 1128)

जब लग ख़ालसा रहे निआरा ।।
तब लग तेज दीओ मैं सारा ।।
जब इह गहै बिपरन की रीत ।।
मैं न करों इन की प्रतीत ।।

(रहितनामा)

पुर्नजागृति युग

(1849-1920 ई॰)

'ख़ालसा सरकार' का सूर्य अस्त हो जाने के पश्चात् एक बार तो सिक्ख संसार में अन्धेरा छा गया। कल तक राज-पाट की मालिक कौम, जिसका झण्डा सतलुज से लेकर दर्रा ख़ैबर तक और सिन्ध से लेकर तिब्बत तक झूलता था, नितांत भिखारियों जैसी असहाय और अरक्षित बना दी गई थी। सिक्ख सैनिक मारे मारे बेकार फिर रहे थे, उनकी हमदर्दी में कोई आह भरने वाला भी दिखाई नहीं देता था, वे परेशान तथा पीड़ित थे कि किस तरह सात आठ दहाके लम्बे संघर्ष के पश्चात् बनाई शानदार सलतनत डोगरागर्दी और फ़िरंगीगर्दी का शिकार बनकर सात वर्षों में ही मिट्टी में मिला दी गई है, परन्तु हैनरी लारंस जैसे हाकिम अंग्रेज़ों की अब यह नीति थी कि सिक्खों की किसी भावना को किसी तरह ठेस न पहुँचाई जाये ताकि अंग्रेज़ी अधिकार से लगा गहरा घाव भर जाये। अब सिक्ख दुबारा अपने आंतरिक गुणों को बढ़ाने हेतु स्वयं को जागृत करने लगे।

सिक्खों की राजनीतिक 'चढ़दी कला' के समय में ही सिक्ख समाज में फिर सनातन हिन्दु-मत का प्रभाव बढ़ गया था, गुरु-जनों ने जिन भ्रमों-वहमों से निकालकर स्वतन्त्र किया था, वही भ्रम करम के किरम ब्राह्मण पुरोहित द्वारा सिक्ख सरदारों के घरों में प्रवेश कर गये थे। सूतक, पातक, श्रद्धा, हवन, गोदान, शगुन, अपशगुन, आरती, पूजा, पित्तर पूजा आदि ऐसे कर्म थे, जिन्हें सिक्ख सरदार रोक नहीं रहे थे, बल्कि ग़रीब ब्राह्मण की परिपालना के नाम पर स्वभाविक किये जा रहे थे। ऐसी अवस्था में ब्राह्मणों को अपने रीति रिवाजों को प्रचलित करने का सुअवसर मिलता गया। दूसरी ओर राज-पाट के मद ने नाम स्मरण, भक्तिभाव, आदि और आत्मिक उच्चता के गुणों को नीचे गिरा दिया था। यद्यपि सिक्ख राज्य के समय

बड़े बड़े संतों महात्माओं—बाबा ख़ुदा सिंघ, बाबा कूंमा सिंघ सीतलाणी वाले, भाई बीर सिंघ नौरंगाबादी, बेदी साहिब सिंघ, बाबा नत्था सिंघ, ज्ञानी संत सिंघ, बावा प्रीतम दास और बावा संतोख दास आदि ने जगह जगह जाकर नाम-बाणी का प्रचार किया, परन्तु सोने के कड़े, कण्ठे पहनने वाले सरदार शराब के नशे में मस्त होकर यह आवाज़ सुन नहीं पाते थे। कई पीढ़ियों से जंगलों में संत-सिपाहियों का जीवन-व्यतीत करने वाली कौम केवल सिपाही बनकर और ताज तख़्त प्राप्त करके भोग-बिलास के रोगों का शिकार होती गई। इस प्रकार धार्मिक भाव मध्यम पड़ जाने के कारण परस्पर प्रेम के स्थान पर राज-गद्दी के लिए ख़ून-ख़राबा होने लगा। यद्यपि इस दोष की सारी ज़िम्मेंदारी डोगरागर्दी पर लगाई जाती है, परन्तु सिक्ख चरित्र की मूल कमज़ोरी को भी किसी तरह आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। भाई बीर सिंघ जैसे राज-जोगी भले पुरुष की हत्या सिक्ख सेना की शान के प्रतिकूल थी। ऐसी संयुक्त कमज़ोरियों और ग़लतियों का यह नतीजा हुआ कि सिक्खों का धर्म ब्राह्मणों और पाखंडी साधुओं संतों ने अपने अधिकार में कर लिया और राज्य फ़िरंगी ने दबोच लिया। इस प्रकार सिक्ख कौम धार्मिक और राजनीतिक दोनों तरह की बरकतों से वंचित हो गई। किसी शायर ने ठीक कहा है:

चमन वालों ने मिलकर लूट ली है कारवां मेरी।
किसी ने दिल लिया मेरा, किसी ने ले ली जां मेरी।

राजसी चढ़दी कला के समय बाबा नानक की बताई नाम की चढ़दी कला भूल जाने से राजसी अवस्था भी गिरावट में परिवर्तित हो गई तो फिर उस समय गुरु का संदेश स्मरण आया और निरंकार के नाम का ध्यान आने लगा। इस समय कोई ऐसी जत्थेबन्दी नहीं थी जो समूची कौम की देख-रेख कर सकती। कहीं कहीं सिक्ख राज्य समय के सम्मान-प्राप्त बेदी, भल्ले, तरेहण और सोढी साहिबज़ादे अपनी अपनी गद्दियों को चला रहे थे और गुरु-स्थानों के महंत साधु संत, महाराजा रणजीत सिंघ की ओर से प्राप्त जागीरों जायदादों को अपनी मलकियत बनाकर मौज-मेला कर रहे थे, कौमी सुधार अथवा धर्म प्रचार की उनको कोई चिन्ता नहीं थी और साधारण सिक्ख जनता सिक्ख धर्म से दूर होती जा रही थी।

1853 ई० में सर रिचर्ड टैंपल लिखता है, 'सिक्ख धर्म और इसकी

धार्मिक आन-शान भी वहीं जा रही है, जहां सिक्खों की राजसी प्रभुता जा चुकी है...। गुरु गोबिन्द सिंघ के सिक्ख, जिनका आरम्भ थोड़ी देर पहले का ही है और जो ख़ास तरह के सिंघ (शेर) बनाये सँवारे गये थे और जिन्होंने इस धर्म को युद्ध और जीत का धर्म समझकर ग्रहण किया था, वे अब ख़ालसे का सम्मान नहीं करते क्योंकि अब इसकी कीर्ति इसको तिलांजलि दे गई है। जो व्यक्ति हज़ारों की गिनती में इस धर्म में सम्मिलित हुए थे, वे उसी प्रकार अब इसको छोड़ रहे हैं और पुनः हिन्दुओं में सम्मिलित हो रहे हैं, जहां से वह पहले आए थे। वे अपने बच्चों को भी हिन्दु ही बना रहे हैं।' यह साधारण सिक्ख जनता की स्थिति थी। दूसरी ओर कई अभिमानी अंग्रेज़ तो यहां तक कहते थे कि सिक्खों की दस्तार और कड़े कृपान पहनने वाली सूरत अब केवल संग्रहालयों में ही देखी जाया करेगी। फ़िरंगियों ने राज्य पर अधिकार करके ही संतोष प्राप्त नहीं किया, अपितु वे स्थान स्थान पर ईसाई मत के प्रचार हेतु पादरियों को बाईबल देकर इधर उधर भेज रहे थे। मिशन स्कूल खोलकर हिन्दु सिक्ख बच्चों को बाईबल का पाठ्यक्रम आरम्भ से पढ़ाया जा रहा था और लोग नई विद्या ग्रहण करने के शौक में अपने बच्चे निस्संकोच भेजते जा रहे थे। महाराजा रणजीत सिंघ के समय में ही लुधियाना और अम्बाला की ओर तो अंग्रेज़ों का राजसी प्रभाव बढ़ने के कारण ईसाई मत का प्रचार आरम्भ हो गया था। कारण यह था कि समस्त पंजाब पर अधिकार हो जाने से अंग्रेज़ी राज्य ने ईसाई मत को फैलाने के लिए और रास्ते खोल दिये थे। 1853 ई० में अमृतसर में ईसाई स्कूल खुला, जिस के लिए सहायता के तौर पर महाराजा दलीप सिंघ के जेब-ख़र्च में से ही पांच सौ रुपये वार्षिक कई वर्ष इस स्कूल को मिलते रहे। इसी वर्ष बालक महाराजे को धोखे से ईसाई बना लिया गया था। चालाक पादरियों ने 6-7 वर्षों में ही तरनतारन, बटाला, कोटगढ़, कांगड़ा, बंनू, डेरा इस्मायल ख़ां, मुल्तान आदि में तीस के लगभग प्रचार केन्द्र स्थापित कर लिये। अंग्रेज़ नीतिवानों की राय थी कि अमृतसर लाहौर का इलाका (माझा) सिक्खों का गढ़ है और पेशावर की घाटी में पठानों की सघन आबादी है, इसलिए अगर इन दोनों स्थानों पर ईसाई मत का प्रभाव डाल दिया जाये तो समस्त पंजाब को अधिकार में करना आसान हो जायेगा। अतः सर एच. ऐडवर्डज़ लाहौर के शासक, जौहन लारंस को एक पत्र में लिखता है :

'There are only two obligatory points the Peshawer valley and Majha. The rest are mere dependencies, holding these two points you will hold whole Punjab.'

(द पंजाब एण्ड सिन्ध मिशन, पृष्ट 38[1]*, राबर्ट कलार्क)*

निरंकारी लहर

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण मत ने सिक्ख मत में कई तरह के भ्रम-वहम डाल दिये थे, वहां स्वयं सिक्ख अपनी मर्यादा से भी बहुत ढीले पड़ गये थे तथा बेदी-सोढी के शिष्य बनकर मनमत कर रहे थे। दूसरी ओर ईसाई प्रचारक भी सरकारी सहायता से अपना अधिकाधिक प्रभाव डाल रहे थे। हिन्दु मत के भ्रमों को दूर करने हेतु और नाम-बाणी के प्रचार की लहर चलाने हेतु प्रथम पोठोहार के इलाके में भाई दयाल जी (1783-1855 ई०) रावलपिंडी वालों ने यह कार्य संभाला। यह सरगुण ईश्वर को मानने और मूर्ति पूजा के विरुद्ध थे और बाबा नानक निरंकारी के शिष्य होने के कारण निरंकार की पूजा का ही प्रचार करते थे और स्वयं भी 'धन्य निरंकार, धन्य निरंकार' की ध्वनि गुँजारते रहते थे। एक बार इनकी प्रसिद्धि सुनकर महाराजा रणजीत सिंघ की ओर से इनके नाम कुछ जागीर भी लगाई गई थी। साधारण लोग आपके भ्रम तोड़ने वाले विचारों के साथ अधिक सहमति भी नहीं रखते थे, कुछ तो सीधा ही विरोध करने लग पड़े थे, जिनमें से सरदार निहाल सिंघ छाछी और दीवान् तोरू राय मुख्य थे। इसलिए आप ने रावलपिंडी शहर से बाहर सत्संग स्थान 'निरंकारी दरबार' बनवाया और वहां श्रद्धालुओं को जीवन प्रर्यंत नाम का संदेश देते रहे। 30 जनवरी, 1855 को देहांत के पश्चात् आपके सपुत्र बाबा दरबारा सिंघ (1814-1870) यही निरंकारी उपदेश देते रहे और ख़ास तौर पर विवाह की सीधी-सादी आनन्द मर्यादा का आप ने अधिकाधिक प्रचार किया, बाबा राम सिंघ नामधारी ने भी विवाह सुधार के लिए आप से प्रेरणा ली थी। एक बार बाबा खेम सिंघ बेदी ने कहा कि तुम्हारे कारण गो-ग़रीब ब्राह्मण तो भूखे रहने लग पड़े हैं, इसलिए इनका कोई प्रबन्ध करो। बाबा दरबारा सिंघ ने अपने एक श्रद्धालु के द्वारा हरा घास मंगवाकर कहा, यह इन गऊओं के लिए हाज़िर है।[2] 1870

---

1. शमशेर सिंघ अशोक, *पंजाब दीआं लहरां।*

2. *वही,* पृष्ठ 46.

में इनका देहांत हुआ तो इनके छोटे भाई रत्ता जी (1830-1909 ई०) प्रचार के कार्य की संभाल करने लगे। आप ने स्थान स्थान पर जाकर प्रचार के केन्द्र स्थापित किये और सिक्खों को हिन्दु भ्रम-कर्मों से वर्जित किया। आप के प्रभावशाली व्यक्तित्व ने पोठोहार की ओर बहुत जागृति उत्पन्न की और लोगों को निरंकारी नाम की ओर प्रेरणा दी। इसलिए इनके श्रद्धालुओं को 'निरंकारिये' कहा जाने लगा और जागृति लहर का नाम 'निरंकारी लहर' पड़ गया। इनके उपदेशों का सार यह है कि पाखंडी देहधारी गुरु के स्थान पर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब को मानो, हिन्दुओं वाले भ्रम-कर्म, सूतक, पातक, श्राध, सुखना और आरती, पूजा, आदि इन सभी का त्याग करो।

1857 का ग़दर

अंग्रेज़ों ने राजपूतों, मराठों और सिक्खों से दाव-पेच लगाकर इनसे राज-पाट छीन लिया था। ख़ासकर 1856 में अवध को अधिकार में कर लिया, बादशाह बहादुर शाह के अधिकार छीन लिये, कुछ और रईसों-राजाओं की पैनशनें दबा लीं, इससे मुसलमान जोश में आ गये। ज़्यादातर मुख्य अफ़सर अंग्रेज़ नियुक्त हो गये थे और बहुत सारे अंग्रेज़ी फ़ैशन और ईसाई मत के रीति-रिवाज आरम्भ किये जा रहे थे, इसलिए हिन्दुस्तान में नाराज़गी की लहर उत्पन्न हुई, जिससे 1857 में भारी ग़दर हुआ। इस ग़दर की आगू पूर्वी सेना थी और मुग़ल बादशाह बहादुर शाह और उसके और मुसलमान सहायक थे। सिक्खों को समूचे तौर पर पंजाब-घाती पूर्वियों के विरुद्ध यह क्रोध था कि उनकी सेना-शक्ति ने अंग्रेज़ों को सहायता पहुँचाकर हिन्द के अन्तिम आज़ाद प्रदेश पंजाब को ग़ुलाम बनाने हेतु बहुत हिस्सा डाला था। उस समय कई स्थानों पर पूर्वी सेना ने अपने नये मालिक फ़िरंगी को ख़ुश करने हेतु सिक्खों का अपमान भी किया था, इसी तरह मुग़ल बादशाहों के ज़ुल्मों को तो सिक्ख भूले ही नहीं थे, जिन्होंने पीढ़ियों से सिक्ख गुरु-जनों, साहिबज़ादों और लाखों सिंघों को अपने आदेशों द्वारा शहीद कराया था। इसलिए सिक्खों ने ग़दर के समय यही उचित समझा कि पूर्वियों और मुग़ल शक्ति को लाभ पहुँचाने की आवश्यकता नहीं। एक बात और भी स्पष्ट है कि उस समय ग़दर के आगू ने भी कल के ताज-तख़्त के मालिक सिक्खों को अपने विश्वास में लेने की आवश्यकता ही न समझी।

उस समय पंजाब में केवल दस हज़ार गोरा फ़ौज और 58 हज़ार देसी फ़ौज थी। जिन में से ग़दर के दिनों में 13 हज़ार देसी सेना को बिना शस्त्र भी कर दिया गया था। परन्तु क्योंकि यह ग़दर की योजना इनके सहयोग और भरोसे से वंचित थी, इसलिए कुछ भी न हो सका। ऐसी अवस्था में कुछ सिक्ख रईस सरदारों ने अंग्रेज़ों की सहायता आवश्य की, परन्तु सिक्खों ने फ़ौजी बग़ावत करने हेतु ग़दर में पूरा हिस्सा न लिया। हां, यह बात आवश्य है यदि पंजाब ग़दर में पूर्ण सहायता देता तो अंग्रेज़ों का रहना कठिन था। इसीलिए वास्तव कारणों को न जानते हुए यह कहना कि सिक्खों ने ग़दर के समय विदेशी हुकूमत की सहायता की, न्याय भरी सच्चाई नहीं। इस बात का सिक्खों को एक लाभ आवश्य हुआ कि सिक्ख राज्य के अनगिनत बेकार फ़ौजी फिर से भरती किये जाने लगे, गोरा सरकार को नीति में परिवर्तन करना पड़ा।

नामधारी लहर

इस समय मालवे में निरमले, उदासी संत और झंग-मुल्तान की तरफ़ सेवा पंथी साधु सिक्खी प्रचार की सेवा कर रहे थे। छछ्छ (हज़ारे) के इलाके में साईं जवाहर मल्ल भगत सिक्खी भावनाओं का बीज बो रहे थे। इनके एक सेवक भाई बालक सिंघ (1799-1861) जिनका जन्म छोई में हुआ और रिहायश हजरो में रखते थे, उन्होंने 1840 से ही आस-पास के गांवों में नाम-बाणी के अभ्यास की प्रचार लहर चलाई हुई थी, साईं जवाहर मल्ल इनको यह काम सौंप कर ख़ुद रावलपिंडी आ गये। बाबा बालक सिंघ जी के मुख्य शिष्य भाई कान्ह सिंघ जी ने हजरो में, भाई लाल सिंघ ने अमृतसर में, और भाई राम सिंघ जी ने लुधियाने में सिक्खी प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाया। यह वही राम सिंघ थे जो बाद में नामधारी लहर के पूजनीय संचालक माने गये।

आप (जन्म 3 फ़रवरी, 1816) गांव भैणी, ज़िला लुधियाना के निवासी थे। आप का बहनोई काबुल सिंघ रायपुरिया ख़ालसा फ़ौज के तोपख़ाने में तोपची था। उसकी प्रेरणा से भाई राम सिंघ 1837 के नज़दीक कंवर नौनिहाल सिंघ की ख़ास फ़ौज में लाहौर आकर भरती हुए। 1841 में यह सेना पेशावर जाते हुए हजरो नगर के पास से गुज़री और भाई राम सिंघ जी को संत बालक सिंघ के दर्शनों का सौभाग्य मिला। इनके साथ

ही भाई कान्ह सिंघ हवलदार संतों का श्रद्धालु बना। 1846 में अंग्रेज़ों की कूटनीति के कारण बहुत सारी ख़ालसा सेना को बर्ख़ासत कर दिया और इस समय भाई राम सिंघ जी फ़ौजी नौकरी से हटकर घर आकर अपना लोहार तथा लकड़ी का कार्य करते रहे और कुछ समय कपड़े की दुकान भी चलाई।

1857 के ग़दर के पश्चात् एक बार भाई राम सिंघ फिर बाबा बालक सिंघ जी को हजरो जाकर मिले। बाबा जी ने इनको अपने इलाके में सिक्खी प्रचार और समाज सुधार के लिए प्रेरणा दी। इस समय जैसा कि पीछे वर्णन किया जा चुका है, ब्राह्मणी भ्रम-कर्म, बेदियों सोढियों का बनावटी गुरु-डंम और पादरियों का ईसाई मत का प्रचार सिक्खों को गिरावट की ओर ले जा रहा था। भाई राम सिंघ ने जाति-पाति के भ्रम मिटाकर सब स्त्री पुरुषों को खण्डे का अमृतपान करवाना आरम्भ किया। नाम अभ्यास करना और गुरमुखी शिक्षा पर ख़ास बल दिया गया। इस समय आप को आदर से बाबा राम सिंघ जी कहा जाने लगा और आप के श्रद्धालु शिष्य नाम का अभ्यास करने के कारण, नामधारी तथा दीवानों-समागमों में मस्ताने होकर ऊँची ऊँची कूकने के कारण 'कूके' कहे जाने लगे। आरम्भ में आप ने आत्मिक उच्चता के लिए प्रयत्न किये और समाज में प्रचलित कुरीतियों को सुधारने पर बल दिया। स्वच्छ वस्त्र पहनने; सम्पूर्ण शारीरिक सफ़ाई रखना; भ्रम, वहम छोड़कर एक वाहिगुरु का भजन करना और स्त्री पुरुष का बराबर आदर करना आदि ऐसी बातें थीं, जिनका उन्होंने विशेष तौर पर प्रचार किया। 1863 की सरकारी रिर्पोटें इस बात पर स्पष्ट प्रकाश डालती हैं—भाई राम सिंघ सिक्खों में जाति-पाति का भेद-भाव मिटा रहा है। वह सभी जातियों में परस्पर मुक्त विवाह सम्बन्धों के हक में है, विधवा विवाह के लिए छूट देता है। शराब और दूसरे नशों से लोगों को रोकता है। उसके दीवानों—समागमों में स्त्रियां-पुरुष आम विचरण करते हैं। हज़ारों नौजवान लड़के और लड़कियां सामान्य उसके सम्प्रदाय में शामिल हो रहे हैं। वह अपने सेवकों को ख़ास तौर पर पवित्र और सच्चा बनने पर बल देता है, उसकी एक शिक्षा यह भी है कि हर आदमी अपने पास लाठी अथवा सोटी आवश्य रखे।[1]

इन सरकारी रिपोर्टों से स्पष्ट है कि बाबा जी ने कैसे महान् कार्य

1. गंडा सिंघ, *कूकियां दी विथिआ*।

आरम्भ किये और उनको इसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई। आरम्भ में आप का प्रचार लुधियाना, होशियारपुर, अमृतसर और सयालकोट के इलाकों मे फैला और फिर पंजाब के अतिरिक्त बाहर भी उन्होंने प्रचारक भेजे, जिनको 'सूबे' कहा जाता था। मुग़लों के ज़माने में हिन्द 22 सूबों में विभाजित था, गुरु अमरदास जी ने 22 मंजीआं (धर्म केन्द्र) स्थापित करके एक तरह से हिन्द में सिक्खी प्रचार को जत्थेबन्द करने की मुहिंम चलाई थी। कुछ इसी तरह की योजना पर बाबा राम सिंघ जी ने 22 सूबे स्थापित करने की रीति अपनाई, बनारस में भाई कान्ह सिंघ, गवालियर में नारायण सिंघ, काबुल में भाई बिशन सिंघ, नेपाल में भाई सुरजू सिंघ आदि सूबे धर्म प्रचार और राष्ट्रीय संगठन का कार्य कर रहे थे।

बाबा राम सिंघ जहां धर्म प्रचार का कार्य करते, धार्मिक वहमों और पाखंडों का सम्पूर्णतः विरोध कर रहे थे, वहां स्वयं अंग्रेज़ सरकार के प्रति भी भारी रोष रखते थे, जिसने बुरी कूटनीति से उनके देखते ही कुछ समय में ही सिक्ख राज्य को बर्बाद करके पंजाब पर अपना झण्डा लहराया था। 1857 के ग़दर में हिन्दु-मुसलमानों के हृदयों में उत्पन्न हुए राजनीतिक रोष को ताकत से अंग्रेज़ों ने दबा दिया था और फिर किसी को आवाज़ उठाने का साहस न पड़ा। सिक्खों में यह आंदोलन बाद में आरम्भ हुआ जिसके बानी बाबा राम सिंघ थे। आप ने सिक्खों के राजसी स्वाभिमान को जागृत किया और अंग्रेज़ सरकार से असहयोग रखने के साधनों को अमल में लाए। विदेशी वस्त्र तथा दूसरे सामान प्रयोग न करने की मनाही की गई, सरकारी डाक घरों के स्थान पर हरकारों द्वारा पत्र भेजने का यथायोग्य प्रबन्ध किया गया, सरकारी नौकरी करने का निषेध किया गया, रेल गाड़ी की यात्रा भी कम की गई और न्यायालयों में मुकदमे ले जाने के स्थान पर पंचायतों में ही झगड़े निपटा दिये जाते। ये ऐसी बातें थीं जिससे नामधारी सिक्खों में विश्वास आ गया कि आधा स्वराज्य तो उन्होंने प्राप्त ही कर लिया है और शेष शीघ्र ही प्राप्त कर लिया जायेगा। बाबा राम सिंघ जी अब ऐसे कार्यों में व्यस्त थे कि किसी तरह अंग्रेज़ों की ग़ुलामी से देश को निकाला जाये। अंग्रेज़ सरकार ने जहां जहां अपना अधिकार किया, वहां वहां उन्होंने लोगों को बिना शस्त्र करके बे-सहारे बना दिया था, बाबा जी इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि फ़ौजी जत्थेबन्दी के बिना फ़िरंगी को यहां से निकाला नहीं जा सकता। इसलिए

रियासत जम्मू और नेपाल के साथ गुप्त सम्बन्ध स्थापित किये और फ़ौजी शक्ति बनाने के लिए कुछ उपाय शुरू किये।

1863 की वैशाखी के समय बाबा राम सिंघ जी हज़ारों श्रद्धालुओं सहित अमृतसर पहुँचे और यह उत्सव बड़े ज़ोर-शोर से मनाया। अंग्रेज़ शासकों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। 1857 के ग़दर से भयभीत हुए अंग्रेज़ हर ऐसी छोटी से छोटी लोक-लहर को अपने लिए 'ख़तरनाक' मानते थे और सरकार के पास पहले से ही रिर्पोटें पहुँच रही थीं कि भाई राम सिंघ रात को सिक्ख नौजवानों के हाथों में डांग-सोटे पकड़ा कर फ़ौजी अभ्यास करवाता है और उसकी आशा फिर सिक्ख राज्य स्थापित करने की है। वैशाखी तो शान्ति से गुज़र गई, परन्तु अंग्रेज़ शासकों के हृदय में ख़तरे का डर दृढ़ बैठ गया। बाबा जी ने जून 1863 में ज़िला फ़िरोज़पुर के गांव खोटियां में दीवान करने का प्रोग्राम बनाया, परन्तु सरकार ने मनाही कर दी। आप का ख़्याल था कि पंजाब भर में भ्रमण करके इस नई लहर को दृढ़ किया जाये, परन्तु सरकार ने डरते हुए 2 जून, 1863 को ही आप को भैणी साहिब में नज़रबन्द कर दिया ताकि सिक्खों में इनक़लाबी भाव न जागृत हो सकें। इस सरकारी रोक ने लोगों की नज़रों में उनके द्वारा चलाई लहर की और इज़्ज़त बढ़ाई और सेवकों ने उत्साह और जोश से आंतरिक रूप से कार्य किया। डाक और रेल का प्रयोग तो नामधारी कर ही नहीं रहे थे, इसलिए उन्होंने अपने आने-जाने के साधनों द्वारा ही स्थान स्थान पर सरगर्मियों को जारी रखा। ग़दर के पश्चात् साधारण तौर पर लोग 'अंग्रेज़ी राज्य की बरकतें' वाली कहानियां सुना-सुनाकर गुज़ारा करने लग पड़े थे, परन्तु बाबा राम सिंघ जी की देख-रेख में जा रही सिक्ख जनता फ़िरंगियों के विरुद्ध नई इनक़लाबी लहर को जन्म दे रही थी। सरकारी रिर्पोट बताती है कि बाबा जी के इस कार्य पर इनक़लाबी आंदोलन से प्रभावित होकर कुछ मुसलमान भी उनके श्रद्धालु बन गये थे।

लोगों में जोश का एक तरह ज्वार-भाटा आ गया था जो कब्र-गिराना और बुच्चड़-मार आंदोलन के रूप में प्रकट हुआ। 1865-66 में कूकों ने अपने अपने इलाकों में गुग्गे सुल्तान की मढ़ी-समाधें, कबरें, ख़ानगाहें, पीरखाने, माता रानी तथा और इसी तरह के भ्रमों-वहमों के स्थान नष्ट करने की मुहिंम चलाई। इस मढ़ी-गिराना लहर के कारण हज़ारों

कूकों को कैद और जुर्मानों के दण्ड भी भुगतने पड़े, परन्तु वे इस भ्रम-नष्ट कार्य से भागे नहीं, वे ऊँची ऊँची पढ़ते थे :

मढ़ी मसीतां ढाए के, कर दिउ मैदाना
पैहलां मारो पीर बहनोई, फिर मारो सुल्ताना।
भैणी सतिगुर जागिआ, होर झूठ जहाना।

इस समय कूकों की गिनती एक लाख से अधिक हो गई थी। मार्च 1867 में आनंदपुर होले-महल्ले पर बाबा राम सिंघ जी को सरकार ने जाने की अनुमति दे दी। आप अपने घुड़सवार सूबों, झण्डों, नगाड़ों और हज़ारों श्रद्धालुओं सहित 19 मार्च को वहां पहुँचे। तख़्त केसगढ़ के पूजारियों ने आप की अरदास न की। उन्होंने कूकों की और से कुछ मत-भेद वाले रीति रिवाजों का वर्णन किया, परन्तु बाबा जी अधिक इस झगड़े में न पड़े। वह तो सिक्ख गुरु-जनों पर सम्पूर्ण श्रद्धा रखकर सिक्ख धर्म के नियमों को ही उजागर करने हेतु यत्न कर रहे थे। यह सत्य है कि उनके श्रद्धालु कई ऐसी बातें करने लग पड़े थे जो सिक्ख धर्म के अनुकूल नहीं थीं। फिर भी होले महल्ले के समय आप का सिक्ख जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। सरकार को भी लम्बी खोज-पड़ताल के पश्चात् निश्चय हो गया कि बाबा राम सिंघ जी केवल धार्मिक सुधारक ही है, इसलिए चार वर्ष के पश्चात् आप पर से नज़रबंदी की पाबंदी हटा ली गई। अक्तूबर 1867 में दुशहरे को भैणी में कूकों का अच्छा समागम हुआ और बाबा जी ने आदेश दिया कि समस्त संत ख़ालसा ज़ोर-शोर से दीवाली के अवसर पर अमृतसर पहुँचें। दीवाली मनाई गई, परन्तु हैज़े की बीमारी फैलने के कारण ज़्यादा एकत्रिता न हो सकी। हरिमंदर दरबार की ओर से बाबा जी को सिरोपाउ दिया गया परन्तु अकाल तख़्त पर उनकी अरदास न की गई। वास्तव में और छोटे छोटे भिन्न-भेदों के अतिरिक्त बड़ी बात यह थी कि उस समय के डरपोक पुजारी सरकारप्रस्त बने हुए थे और बाबा जी की सरकार के विरुद्ध सरगर्मियां और उनका बढ़ता सम्मान पूजारियों को नहीं भाता था। एक बात और कूकों की मढ़ी-गिराने की लहर से भी कुछ लोग तंग थे क्योंकि कई अपरिचित कूकों ने हिन्दु-मन्दिरों की मूर्तियों की बडी तेज़ी से तोड़-फोड़ की थी, इसी तरह सूझवान सिक्ख भी कूकों का अधिक सत्कार नहीं करते थे, क्योंकि उन्होंने बाबा जी को 'गुरु' समझकर पूजना शुरू कर दिया था।

1869 में बाबा जी ने अपने दूत महाराजा रणबीर सिंघ जम्मू कश्मीर के पास भेजे और वहां स. हीरा सिंघ की देख-रेख में सिंघों की पलटन खड़ी की गई परन्तु अंग्रेज़ शासक भी सारी बात को समझ रहे थे और आख़िर अंग्रेज़ों के इशारों पर 1871 में यह पलटन महाराजे को तोड़नी पड़ी। 1870 में बाबा राम सिंघ जी ने महाराणा जंग बहादुर नेपाल के पास मित्रता मिशन भेजा, इच्छा यह थी कि आवश्यकता के समय फ़ौजी सहायता प्राप्त की जाए। इस प्रकार काबुल के अमीर के साथ भी बातचीत की गई, उसके शहज़ादे भैणी आये। वास्तव में बात यह थी कि बाबा जी का 'सौ साखी' के वचनों पर काफ़ी भरोसा था और उनका ख़्याल था कि किये जा रहे यत्नों के निष्कर्ष के रूप में शीघ्र ही राजनीतिक शक्ति हाथ में आ जायेगी। उनको आँखों देखा सिक्ख राज्य का चढ़ती कला का समय नहीं भूलता था और भविष्य में शीघ्र वापिस लौटने का आभास होता था। शायद उनके स्वतन्त्रता के लिए उठाये गये यह कदम काफ़ी सफल साबित होते, परन्तु कुछ अदूरदर्शी जोशीले कूकों के कार्यों ने इन योजनाओं को आगे न बढ़ने दिया। कूकों में साधारण चर्चा चल पड़ी थी कि शीघ्र ही अपना राज्य हो जाना है, इसी सोच में कुछ कूकों ने 14 जून, 1870 को अमृतसर में कुछ कसाई मार दिये। इसी तरह 16 जुलाई, 1871 को रायकोट में बुच्चड़ों का कत्ल किया गया। इस बुच्चड़-मार लहर को बाबा जी की प्रेरणा ही समझा जाता था और कई कूके इस जोश में फांसी लगे। ज्ञानी रतन सिंघ जी, जिनका कूकों में बड़ा प्रभाव और सत्कार था, इनको भी सरकार ने बिना खोज किये बुच्चड़-मार दोष में फांसी लगा दिया, इस बात ने कूकों में बहुत जोश फैलाया।

मलेरकोटले का साका

जनवरी 1872 माघी के उत्सव पर कूकों का भैणी में भारी समागम हुआ और सरकार की इस अन्यायपूर्ण करतूत की निन्दा की गई। 13 जनवरी, 1872 को माघी मनाने के पश्चात् मसताने कूकों का जत्था मलेर कोटले के बुच्चड़ों को मारने के लिए चल पड़ा। बाबा राम सिंघ जी ने इनको बहुत रोका, परन्तु ये न रुके। आख़िर उन्होंने अपना आदमी भेजकर डिप्टी कमिश्नर लुधियाना को भी सूचना दे दी। ये सौ के लगभग का जत्था जिनके आगू स. हीरा सिंघ और स. लहणा सिंघ सकरौदी वाले

थे, पहले रात को मलौदिए सरदार बदन सिंघ की हवेली पर जाकर हमला किया, कूकों का मनोरथ यहां से घोड़े और शस्त्र प्राप्त करना था ताकि मलेर कोटले पर भारी आक्रमण किया जाये। परन्तु यहां लड़ाई गले पड़ गई, दो कूके मारे गये और चार घायल हुए। कुछ तो यह भी कहते थे कि सरदार ने पहले शस्त्र देने का वचन किया हुआ था। 15 जनवरी को सुबह के समय कूकों ने कोटले पर धावा बोला, पुलिस के साथ ज़बरदस्त लड़ाई हुई, जिसमें कोटले के आठ व्यक्तियों के साथ साथ अहमद ख़ां कोतवाल और 7 कूके मारे गये। कूकों की आशा यहां से शस्त्र प्राप्त करना था, परन्तु इसमें भी सफलता प्राप्त न हुई। कोटले से चलकर ये व्यक्ति रड़ पहुँचे। सूचना मिलने पर पुलिस द्वारा 68 कूकों को पकड़कर शेरपुर की गढ़ी में लाया गया। मलौद और कोटले के फ़साद की सूचना सुनकर लुधियाना का डिप्टी कमिश्नर मि. कावन भी 15 जनवरी संध्या के समय मलेर कोटले पहुँच गया। 16 जनवरी को भैणी से बाबा राम सिंघ जी को बुलाया गया, परन्तु बिना किसी विशेष बात के लौटा दिया। 17 जनवरी को 68 कूके मलेर कोटले लाये गये, इन में से दो स्त्रियों को एक तरफ़ करके उनके घरों में भेज दिया गया। इनमें 22 पहले से ही घायल थे। मि. कावन ने बिना किसी ब्यान के और पूछ-ताछ किये बिना मुकद्दमा चलाये स्वैच्छा से 17 जनवरी की संध्या को जमालपुर के स्थान पर 49 कूकों को तोपों के आगे रखकर उड़ा दिया। एक बिशन सिंघ नाम के कूके ने क्रोध में आकर मि. कावन का गला दबा दिया, जिससे उनको बड़ी मुश्किल से छुड़ाया गया। इसको तलवार के साथ उसी स्थान पर टुकड़े टुकड़े कर दिया गया। इस प्रकार ज़ालिम कावन ने 50 मस्ताने सिंघों की हत्या करके सांस लिया। कहते हैं कि एक नामधारी सिंघ कुछ छोटे कद का था, वह तोप की मार के बराबर नहीं आता था। उसने पांवों के नीचे ईंटें रखकर स्वयं को बलिदान के लिए पेश किया। जिस समय सिंघ तोपों के आगे खड़े हुए तो अंग्रेज़ों ने कहा कि पीठ करके खड़े हों, तो सिंघों ने गरजती आवाज़ में उत्तर दिया, "हम सिंघ हैं, तोपों के सामने जूझेंगे।" इस तरह सात सात सिंघ बारी बारी सात तोपों के आगे शहीदी प्राप्त करते गये।

इस समय बाबा राम सिंघ सियाढ़ गांव में ठहरे हुए थे और तोपों की आवाज़ सुनकर 'देहि सिवा बर मोहि इहै' का पाठ कर रहे थे। उधर टी.डी. फोरसाइथ कमिश्नर अंबाला ने 17 जनवरी की रात को एक बजे

बाबा राम सिंघ जी को उनके 4 सूबे साथी बाबा साहिब सिंघ, बाबा लक्खा सिंघ, बाबा जवाहर सिंघ और भाई नानू सिंघ के साथ पकड़कर मंगवाया और 18 जनवरी को सुबह चार बजे की गाड़ी चढ़ाकर गोरखा गारद अधीन इलाहाबाद किले में नज़रबंद करने के लिए भेज दिया। यह कार्य कर के फोरसाइथ कोटले पहुँचा और शेष 16 कूकों को भी, मलौद ले जाकर तोप के साथ उड़ा दिया। कमिश्नर ने बाद में दरबार करके मलेर कोटले के ख़ज़ाने में से दो हज़ार रुपये के लगभग नकद ईनाम बांटे। ये ख़ूनी कारनामा, दोनों अंग्रेज़ अफ़सरों ने बिना किसी पूछ ताछ के, बिना कोई मुकद्दमा चलाये धक्केशाही में किया। ऊपर से सरकार ने भी इनके विरुद्ध कोई विशेष कार्यवाही न की। मि. कावन को नौकरी से हटाकर तीन सौ रुपये मासिक पैनशन दे दी गई और मि. फोरसाइथ को किसी और जगह तबदील कर दिया गया।[1]

18 जनवरी को भैणी, बाबा राम सिंघ जी के डेरे की तलाशी ली गई और 172 बच्चों, बूढ़ों, स्त्रियों और जवानों, सबको पैदल ले जाकर लुधियाना लाया गया। कई सूबों[2] को उमर कैद और कालेपानी की सज़ायें दी गईं। भैणी में पुलिस की चौकी बिठा दी गई, जो 10 दिसम्बर, 1920 तक 48 वर्ष लगातार रही। बाबा राम सिंघ जी का इलाहाबाद में ठहरना भी हिन्द सरकार ने ख़तरनाक समझा, इसलिए अप्रैल 1872 में आप को काले कानून के अधीन रंगून पहुँचा दिया गया, जहां वह 29 नवम्बर 1884 को स्वर्गवास हो गये। इस प्रकार सरकारी जबर का शिकार होकर कूका लहर धीमी पड़ गई। इस सख़्ती का एक और प्रभाव पड़ा कि 30-40 वर्षों के लिए सिक्ख अंग्रेज़ी वफ़ादारी में ही ग्रस्त रहें।[3] बाबा राम सिंघ जी ने जिन आशाओं को लेकर इस लहर का आरम्भ

---

1. Teja Singh, *Essays in Sikhism,* p. 124.
2. 22 सूबे ये थे—स. मंगल सिंघ बिशनपुरिया, सुध सिंघ, साहिब सिंघ, कान्ह सिंघ, जवाहर सिंघ, हुकमा सिंघ, हरदित सिंघ, मलूक सिंघ, दीदार सिंघ, रतन सिंघ, सरमुख सिंघ, जोता सिंघ, लखा सिंघ, बुध सिंघ, नरैण सिंघ, ख़ज़ान सिंघ, हरनाम सिंघ, साधु सिंघ, समुन्द सिंघ, गोपाल सिंघ, ब्रहमा सिंघ, लाभ सिंघ।

(नाहर सिंघ, नामधारी इतिहास, पृष्ठ 209)

3. दो मास के पश्चात् ही 22 मार्च, 1872 ई॰ को रईस सरदारों और पुजारियों की ओर से गवर्नर पंजाब को दिये गये एक स्वागती भाषण में इस तरह की ख़ास 'वफ़ादारी' प्रकट की गई है : ☛

किया था, उसमें उनको काफ़ी सफलता प्राप्त हुई, परन्तु अनजान श्रद्धालुओं ने उनको गुरु मानकर इस लहर को संकुचित कर दिया और सारे सिक्खों में न फैलने दिया। इसी तरह जोशीले सिक्खों ने जोश में आकर मढ़ी-गिराना और बुच्चड़-मार लहर चलाकर सरकारी विरोधता गले डाल ली और गुप्त प्रयत्नों को धीमा कर दिया। साधारण सिक्खों के लिए न मानने वाली बात तो यह थी कि कूके बाबा राम सिंघ जैसे सुधारक महांपुरुष को 'गुरु' करके पूजा करने लग पड़े थे, परन्तु बाबा जी शिष्यों की इस बात के विरुद्ध थे। जैसा कि सरकारी रिपोर्टों से भी पता चलता है कि उन्होंने स्वयं बेदियों, सोढियों के गुरु-पाखंड के विरुद्ध प्रचार करके गुरु ग्रन्थ साहिब को गुरु मानने पर बल दिया और जलावतनी के समय अपने प्रेमियों के नाम लिखे पत्रों में भी इसी बात की पुष्टि होती है कि उन्होंने कभी स्वयं को गुरु नहीं माना।

> मुझे तो गुरु बनने की आवश्यकता नहीं,
> न मैं गुरु हूँ, मैं तो आदेश मानने वाला व्यक्ति हूँ।
> मैं गुरु नहीं, रपटिये की माफ़िक हूँ।
> और भाई ! दसों पातशाहियों के पीछे
> गुरु तो, महाराज जी, गुरु ग्रन्थ साहिब
> को स्थापित कर गये हैं। सो सदैव ही स्थित हैं, और कोई गुरु नहीं।
>
> *(हुकमनामे—टहल सिंघ)*

ऐसी सैंकड़ों लिखितों से बाबा जी के विनम्रता भरे श्रेष्ठ सिक्ख हृदय का पता लगता है कि वह स्वयं गुरु कहलाने के इच्छुक नहीं थे, उनके शिष्यों ने ही ऐसा किया। आप ने कौम को भ्रमों की दलदल में से निकालकर नितांत सोये हुए सिक्खों को जागृत किया और राजसी चेतना को जगाया। बाबा जी के बाद भैणी का डेरा और साधु-संतों के डेरे जैसा बन गया। पहले तो इसकी संभाल बाबा राम सिंघ जी के भाई, हरी सिंघ

☛'हम जुमला सिंघान अमृतसर मुतफ़िक होकर यकदिली से गुज़ारिश करते हैं कि यह जो कौम कूका, चंद अरसा से मशहूर है, हमसे और उनसे किसी किसम का तुअलक या मुआफ़िकत नहीं।... हाल में जो इंतज़ाम इस... फिरका का सरकार जुलइकतदार की तरफ़ से हुआ है, निहायत मुनासिब और मुसतहसन है और ख़सूसन ख़ुशी इस बात की है कि ऐसे इंतज़ाम से आइन्दा किसी का ऐसी हरकति नशायस्ता पर हौसला ना रहेगा और ना ऐसे लोगों की किसी हरकति नामाकूल पर दूसरों पर शुबह हो सकेगा।' *(पंजाब गौरमैंट गज़ट, 28 मार्च, 1872)*

जी, जिनका पहला नाम बुध सिंघ (देहांत, मई 1906) था, करते रहे। बाद में बाबा प्रताप सिंघ जी इसको बड़े प्यार और सब के सहयोग से चलाते रहे। ख़ासकर पुरातन कीर्तन रीतें सुरक्षित कीं। 22 अगस्त, 1959 को देहांत के पश्चात् अब उनके सपुत्र बाबा जगजीत सिंघ जी ने इस कार्य को संभाल लिया है।

सिंघ सभा लहर

लगभग 12 वर्ष आत्मिक, सामाजिक और राजसी जागृति हेतु बाबा राम सिंघ जी ने महान् कार्य किया, लेकिन और 1872 में जलावतन हो जाने के कारण उनकी शेष योजना ठप्प कर रह गई। और कुछ कारणों से उनका प्रचार अधिक व्यापक न हो सका, एक साम्प्रदाय के रूप में कुछ इलाके तक सीमित रहा। परन्तु लोग-चेतना को अब और सुलाया नहीं जा सकता था, यह शीघ्र 'सिंघ सभा लहर' के रूप में जागृत हुई, जिसका मुख्य उद्देश्य सिक्ख भाईचारे को ब्राह्मणी दलदल से निकालकर स्वतन्त्र रूप में विकसित करना था। इसकी देख-रेख प्रो. गुरमुख सिंघ और ज्ञानी दित्त सिंघ जैसे सूझवान पुरुषों ने की।

हालत यह थी कि राजनीतिक तौर पर ख़त्म हो चुकी, सिक्ख कौम को प्रत्येक खा जाना चाहता था, जब ईसाई मत ने पंजाब पर धावा बोला तो सबको अपनी अपनी पड़ गई, हिन्दु मत की रक्षा के लिए 'देव समाज' और 'आर्य समाज' खड़े हुए, बंगाल में 'ब्रह्म समाज' लहर इसी आशय के अनुसार थी, मुसलमानों में मिरज़ई फ़िरका इसी समय चला।[1] यह सैद्धान्तिक चर्चा बहस अर्थात् शास्त्रार्थ का युग था। किसी को अपना मत श्रेष्ठ व्यक्त करने के लिए तर्क से कार्य लेना पड़ता था। नई प्रवेश

---

1. ब्रह्म समाज बंगाल की सुधारक लहर थी जो राजा राम मोहन राय (1772-1833 ई०) ने आरम्भ की और देवेन्द्र नाथ ठाकुर, बाबू केशव चन्द्र सेन ने इसका प्रचार किया। पंजाब में बाबू प्रताप चन्द, मजुमदार ने लाहौर में इसकी शाख़ा खोली थी। 1875 में थिउसाफीकल सोसाइटी अदिआर (मद्रास) बनी, जिसको ऐनी बिसेंट ने चमकाया। आर्य समाज 1875 में बंबई में स्थापित हुआ और 1887 में इसका केन्द्र लाहौर बना। देव समाज का आरम्भ फ़रवरी 1887 में पं. शिवनारायण अग्निहोत्री ने किया। जमात अहमदीया 1889 में स्थापित हुई जिसके आरम्भिक ग़ुलाम अहमद कादियां वाले थे। फिर मौलवी नूरुद्दीन के पीछे मिरज़ा बशीरुद्दीन ख़लीफा बने।

हुई अंग्रेज़ी विद्या ने लोगों की दिमाग़ी सूझ को तीक्ष्ण कर दिया था। नामधारी लहर के आरम्भिक सिक्खों ने जागृति तो दी परन्तु उनके नये शिक्षा सम्बन्धी ढंगों से सांझ न बनाई। ख़ासकर नई विद्यक रोशनी में पल रहे नौजवानों को नये साधनों की अत्यन्त आवश्यकता थी।

इस समय स्वामी दयानंद (1824-1883 ई०) अन्ध-विश्वासी सनातनियों और पादरियों के मुकाबले विचार-विमर्ष करके आर्य समाज को दृढ़ बना रहे थे। विदेशियों और विदेशी मत से सबको घृणा थी, सब बचाव के प्रयत्न कर रहे थे। इस विरोधता के मुहाज़ पर हिन्दुओं के साथ सिक्ख भी सम्मिलित होते गये। स. जवाहर सिंघ सरबहिन्द आर्य परोपकारी सभा के उप-प्रधान थे और भाई दित्त सिंघ ज्ञानी और भाई मईया सिंघ जैसे सूझवान पुरुष भी आर्य समाज के सदस्य थे। सिक्खों की प्रसन्नता के लिए आर्य समाज के समागमों में कई स्थानों पर 'आसा की वार' का भी कीर्तन किया जाता था। परन्तु विरोध वाली बात भी छुपती नहीं थी, जिस तरह पं. श्रद्धा राम फिलौरी ने गुरु के बाग़ में कथा करते हुए गुरु-जनों के सम्बन्धी कुछ अपमानजनक शब्द कह दिये थे। दूसरी ओर पादरी मिशन स्कूलों द्वारा बच्चों को आरम्भ से ही ईसाई मत की शिक्षा दे रहे थे। 1873 ई० की बात है कि अमृतसर मिशन स्कूल के चार सिक्ख लड़कों—अतर सिंघ, आया सिंघ, संतोख सिंघ और साधु सिंघ ने ईसाई मत धारन करना चाहा, परन्तु सूझवान सिक्खों ने समझाकर उनको पतित होने से बचा लिया। ऐसी दशा देखकर आगू सिक्खों ने सिक्ख धर्म को संभालने के लिए शीघ्र निरोल सिक्ख सुसाइटी बनाने का यत्न किया। 1873 (15 सावन) को स्वर्गवासी लहणा सिंघ संधावालिये के सपुत्र स. ठाकुर सिंघ संधावालिये की कोशिश से अमृतसर मजीठियों के बुंगे में विशेष सिंघों का इकट्ठ हुआ, जिसमें से बाबा खेम सिंघ बेदी, ज्ञानी हज़ारा सिंघ, ज्ञानी ज्ञान सिंघ, ज्ञानी सरदूल सिंघ और कंवर बिक्रम सिंघ कपूरथला आदि सम्मिलित हुए। दीर्घ विचार के पश्चात् प्रथम 'श्री गुरु सिंघ सभा' स्थापित की गई, जिसके प्रधान स. ठाकुर सिंघ संधावालिया (देहांत 1887) और ज्ञानी सरदूल सिंघ सचिव नियुक्त हुए। सभा का कार्य समय की आवश्यकता अनुसार गुरमति-मर्यादा का प्रचार करना और गुरमति साहित्य सृजन करना था। गुरपुर्व प्रकाश, गुरसिक्खों के नित्य कर्म, गुरमति सिद्धान्त' सद सिद्धान्त रिपोर्ट, दसम ग्रन्थ जी की सुधाई, यात्रा श्री हजूर साहिब और गुर-प्रणाली आदि छोटे बड़े ट्रैक्ट इस सभा की मेहनत

का ही परिणाम था, जिन लिखितों से उत्साहित होकर बाद में ज्ञानी ज्ञान सिंघ जी ने *पंथ प्रकाश* और *तवारीख़ गुरु ख़ालसा* तथा पंडित तारा सिंघ नरोतम जी ने *गुरमति निर्णय सागर, गुरु गिरार्थ कोष* और *गुरुतीर्थ संग्रह* आदि विचार-पूर्ण पुस्तकें लिखीं। 1885 में बनी 'गुरमति ग्रन्थ प्रचारक सभा' ने इन रचनाओं को प्रकाशित करके सिक्ख संगतों की आवश्यकताओं को पूर्ण किया।

अमृतसर सिंघ सभा से उत्साहित होकर 2 नवम्बर, 1879 को लाहौर में भी 'सिंघ सभा' स्थापित हुई, इसके प्रधान दीवान बूटा सिंघ और सचिव प्रो. गुरमुख सिंघ (1849-1898 ई०) ओरीऐंटल कालिज लाहौर वाले थे। भाई हरसा सिंघ ग्रन्थी दरबार साहिब तरनतारन जो इसी कालिज में 1877 में आकर पंजाबी अध्यापक लगे थे, इन्होंने इस सभा को दृढ़ बनाने में बहुत योगदान दिया। सिक्ख धर्म का प्रचार करना, धार्मिक ग्रन्थों का प्रकाशन, पंजाबी बोली की उन्नति करना आदि अनिवार्य उद्देश्यों के अतिरिक्त 'ख़ैरख़ाही कौम और फरमाबरदारी सरकारी' भी आवश्यक उद्देश्यों में शामिल थी। वास्तव में कारण यह था कि नामधारी लहर से भयभीत हुई फ़िरंगी सरकार सिक्खों की प्रत्येक जत्थेबन्दी में क्रान्ति की बू देखती थी, इसलिए सिंघ सभा, लाहौर बनते ही सरकार ने अपने मेल-मिलाप वाले व्यक्तियों को इसमें सम्मिलित होने के लिए प्रेरणा दी ताकि कोई सरगर्मी सरकार के विरुद्ध न हो सके।

सिंघ सभा लाहौर ने नवम्बर 1880 में पंजाबी का प्रथम सप्ताहिक पत्र 'ख़ालसा अख़बार' आरम्भ किया। प्रो. गुरुमुख सिंघ जी ने 'विद्यारक' नाम का मासिक पत्र आरम्भ करके गुरमति सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचारपूर्ण निबन्ध लिखने आरम्भ किये और भाई मईया सिंघ जी ने उर्दू में 'ख़ालसा गज़ट' प्रकाशित करना आरम्भ किया। 1882 में एक 'पंजाबी प्रचारिनी सभा' भी स्थापित हुई। प्रो. गुरमुख सिंघ बड़े पुरुषार्थी और बुद्धिमान् पुरुष थे, इन्होंने भाई मईया सिंघ, भाई जवाहर सिंघ और ज्ञानी दित्त सिंघ को इधर सिंघ सभा की ओर प्रेरित किया। वास्तव में प्रो. गुरमुख सिंघ को सिंघ सभा का प्रवर्त्तक कहना उचित ही है, जिन्होंने अपनी नौकरी में से समय निकालकर स्थान स्थान पर सिंघ सभाएं स्थापित कीं। इन सभी सिंघ सभाओं की केन्द्री जत्थेबन्दी बनाने हेतु 1883 में ख़ालसा दीवान अमृतसर स्थापित किया गया, जिसके सरप्रस्त महाराजा बिक्रम सिंघ फ़रीदकोट और गवर्नर पंजाब बने। इस दीवान के प्रधान बाबा खेम सिंघ

बेदी और सचिव प्रो. गुरमुख सिंघ जी स्थापित किये गये। वैशाखी, दीपावली को सिंघों के अमृतसर में भारी मेले होने लगे और गुरुद्वारों तथा बुंगों के पुजारी, संत भी दीवान का साथ देते रहे।

सरकार के हितचिंतक और सिक्खी-सेवकी रूप में धर्म के शिष्यों से पूजा कराने वाले कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे, जो कई तरह से धार्मिक सुधारों में बाधा डाल रहे थे। उदाहरण के तौर पर छुआ-छूत, जाति-पाति, सिक्ख मंदिरों में आरती उतारनी, परिक्रमा में ठाकुर पूजा होनी आदि ऐसी बातें थीं जिनको दूर करना अनिवार्य था। पुरातन संत महंत और ख़ासकर बाबा खेम सिंघ बेदी ये बातें रोकने से झिझकते थे। बेदी साहिब तो स्वयं भी महाराज के हजूर में गदेले बिछाकर और तकीये लगाकर बैठते थे। प्रो. गुरमुख सिंघ ये बातें सहार न सके, मतभेद बढ़ जाने के कारण प्रो. साहिब ने दीवान से त्याग पत्र दे दिया और बेदी साहिब के सेवक भाई अवतार सिंघ, दीवान के मुख्य सचिव बनाये गये।

महाराजा बिक्रम सिंघ फ़रीदकोट की पंथक सेवा से इन्कार नहीं किया जा सकता, जिन्होंने एक लाख रुपया देकर दरबार साहिब अमृतसर के लंगर और बिजली लगाने की सम्पूर्ण सहायता की, और इसी तरह प्रसिद्ध विद्वान् ज्ञानी बदन सिंघ सेखवां को पांच वर्ष अपने पास रखकर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का भाष्य (टीका) लिखवाया, जिसकी सोध बाद में बाबा सुमेर सिंघ पटना, पंडित बालक सिंघ, ज्ञानी संत सिंघ कपूरथला, ज्ञानी भजन सिंघ और भाई लद्धा सिंघ आदि पुरुषों ने की और यह महाराज बलबीर सिंघ के समय प्रकाशित हुआ। महाराजा बिक्रम सिंघ जी ने बेदी साहिब जी के मत की हिमायत की। बेदी साहिब की सरकारे-दरबारे अच्छी इज़्ज़त थी और बाद में आप कौंसिल ऑफ़ स्टेटस के भी सदस्य रहे, स्त्री विद्या के लिए भी कई प्रशंसनीय यत्न किये, परन्तु हिन्दु रीति-रिवाजों को हटाने हेतु, वह समपूर्णतः तैयार नहीं थे।

ख़ालसा दीवान लाहौर

प्रो. गुरमुख सिंघ अमृतसर दीवान से अलग होकर घर में तो बैठ नहीं सकते थे, उनका मिशन अभी तो अधूरा पड़ा था, इसलिए उन्होंने फिर हिम्मत करके 1886 (चैत, 1942 विक्रमी) में 'ख़ालसा दीवान लाहौर' की सृजना की। स. अतर सिंघ भदौड़िये प्रधान और प्रो. गुरमुख सिंघ मुख्य सचिव बने। आप ने अब 'सुधारक' नाम का मासिक पत्र आरम्भ

किया, जिसमें हिन्दु-धर्म के भरमों-कर्मों का खंडन किया जाता था। जून 1886 में भाई झण्डा सिंघ जी की सम्पादकीय के नीचे 'ख़ालसा' अख़बार आरम्भ हुआ, इसमें ज्ञानी दित्त सिंघ जी की कलम से ज़ोरदार निबन्ध प्रकाशित होते। महाराजा बिक्रम सिंघ, बेदी खेम सिंघ और सभी पुजारी, संत, महंत प्रोः गुरमुख सिंघ जी के विरोधी बन गये, परन्तु प्रो. गुरमुख सिंघ की सहायता के लिये ऊँचे विद्वान् और रईस सर अतर सिह भदौड़िए (1833-1896 ई०) थे, जिनकी विद्या-क्षेत्र में बड़ी प्रतिष्ठा थी और अपने सिक्ख धर्म और इतिहास के सम्बन्ध में कुछ अंग्रेज़ी पुस्तकें भी लिखीं। आपने प्रो. गुरमुख सिंघ जी को राष्ट्रीय सुधारों के लिए हर तरह से सहायता दी। इस समय ख़ालसा दीवान लाहौर बड़े प्रभुत्व में था। ज्ञानी दित्त सिंघ, प्रो. गुरमुख सिंघ, भाई जवाहर सिंघ, भाई मईया सिंघ, डॉ. जय सिंघ, स. मेहर सिंघ चावला, स. धर्म सिंघ घरजाखीये आदि व्यक्ति इसके कर्त्ता-धर्ता थे। प्रो. साहिब जी का सर्वाधिक सत्कार था और इनकी पाखंड-खंडन और दंभ-निवारन लिखितों और भाषणों से विरोधी बहुत नाराज़ हो रहे थे। खासकर बेदी खेम सिंघ, जिनकी धार्मिक गद्दी-नशीनी को कुछ चोट लगती थी। एक बार प्रो. साहिब अमृतसर व्याख्यान देने के लिए आये, बेदी साहिब ने इनको गिरफ़्तार करवाने की योजना बनाई परन्तु वह पूर्ण न हो सकी। फिर ख़ालसा दीवान अमृतसर ने फ़रीदकोट में एकत्रता करके प्रो. गुरमुख सिंघ पर यह दोष लगाया कि यह अपनी पत्रिका 'सुधारक' में सिक्ख-धर्म के विरुद्ध बातें लिखते हैं, इसलिए इनको ख़ालसा दीवान से अलग किया जाये। इस निर्णय का सिक्ख संगत में प्रचार किया गया और 'तख़्तों", सिक्ख धर्म के विशेष पूजास्थानों से भी रूढ़ीवादी पूजारियों की ओर से प्रो. साहिब सिंघ जैसे सच्चे सिक्ख को 'तनख़्वाहिया' ठहराया गया। अकाल तख़्त की ओर से विशेष 'हुकमनामा' जारी हुआ, "कोई शख़्स उसका पैरोकार न हो, जो शख़्स उसकी पैरवी करेगा वह भी बेमुख और पंथ की ओर से तनख़्वाह योग्य समझा जाएगा।" 1887 की वैशाखी के उत्सव पर दोनों दीवानों का अमृतसर में बहुत झगड़ा भी हुआ, एक दूसरे पर सख़्त नुकताचीनी की गई। ज्ञानी दित्त सिंघ जी की सम्पादकीय के नीचे इस समय 'ख़ालसा' पत्र चलता था। 16 अप्रैल, 1887 के पत्र में आप ने एक 'सुपन नाटक' लिखकर पाखंड करने वालों का अच्छा पर्दा-फ़ाश किया। बेदी साहिब ने इसको अपना अपमान समझकर ज्ञानी जी पर मुकदमा चलाया, जिस पर ज्ञानी दित्त सिंघ जी को न्यायालय की

ओर से 51 रुपये जुर्माना हुआ, परन्तु सर अतर सिंघ भदौड़िए और स. बिक्रम सिंघ जालंधरी आदि की सहायता से सैशन कोर्ट में अपील करने पर आप बरी हो गये। इस तरह प्रो. गुरमुख सिंघ जैसे साहसी व्यक्ति की मेहनत के फलस्वरूप ख़ालसा दीवान लाहौर बहुत उन्नति की ओर गया। अमृतसरी दीवान के साथ केवल अमृतसर, फ़रीदकोट, रावलपिंडी ये तीन सिंघ सभाएं ही रह गईं, शेष सभी सौ से अधिक सभाएं ख़ालसा दीवान लाहौर के साथ सम्मिलित हो गईं।

ज्ञानी दित्त सिंघ (1852-1901) अच्छे विद्वान् लेखक मुबाहिस और कवि भी थे। 'सुल्तान पुआड़ा', 'दुर्गा प्रबोध,' 'पंमा प्रबोध', 'नकली सिक्ख प्रबोध', 'दंभ विदारण', आदि ज़ोरदार रचनाएँ लिखकर आप ने हिन्दु भ्रमों-कर्मों का ज़ोरदार निषेध किया। स्वामी दयानन्द के साथ आपको तीन बार बहस करने का अवसर मिला, जिसमें आप ने उनको सदैव निरोत्तर किया। यह बहस 'मेरा ते साधू दयानन्द दा संवाद' नाम से आप द्वारा रचित मिलती है। ज्ञानी दित्त सिंघ सचमुच कलम का धनी और तर्क से काम लेने वाला था, जिसने पाखंडियों और मनमुखों को अच्छी तरह पराजित किया। किसी कवि ने ठीक लिखा था :

जिहदा नाम लैंदिआं ही दिल विच जोश उठे,
झुक जावे धौण वड्डे वड्डे अभिमानी दी।
सुत्ती हुई घूक कौम आण के जगाई जीहने,
अज्ज तक धुंम पई होई जिह्दी कानी दी।
ऐसा कौण बीर जीहने भरम लीर लीर कीते,
आई अज्ज याद उस सिंघ सभा बानी दी।
भावें उहदी पाई न कदर पूरी पंथ ने है
भासे अज्ज लोड़ फेर दित सिंघ गिआनी दी।

परन्तु पुरातनता के पुजारी ज्ञानी जी की कलम से दुःखी थे, यद्यपि तख़्त केसगढ़ से पुजारियों की ओर से जारी किये हुकमनामे में ये शब्द अंकित मिलते हैं, "सब दित्त सिंघ रमदासीए के गुटके पढ़ने से हिलजुल मच गई है, याने मुसलमान सिंघ सजौणा, आरती की बत्ती न जगाउणा, यह सब मनमत है।" ज्ञानी जी ने 1893 में 'ख़ालसा प्रिंटिंग प्रैस' और 'ख़ालसा' अख़बार को स. हीरा सिंघ की सहायता से पक्के पांवों पर खड़ा किया और अन्तिम साँसों तक यह कार्य निभाते रहे। सिक्खों का अंग्रेज़ी पत्र कोई भी न था, आर्य समाज का 'आर्य मैसंजर' अंग्रेज़ी पत्र गुरमति

के विरुद्ध बड़ी ग़ल्त धारनाएं फैलाता था। इस समय सिक्खों की टक्कर ईसाई मत से बहुत नहीं रही थी, आर्य समाज के हृदय दुखाने वाले बुरे व्यवहार के विरुद्ध अधिक थी। वास्तविकता यह थी कि आर्य समाज की पुस्तक *सत्यार्थ प्रकाश* में श्री दयानन्द ने प्रत्येक धर्म के आगू के विरुद्ध अयोग्य नुकताचीनी की थी और इसी कारण आर्य समाजी प्रचारक दूसरे धर्म पर डंक मारने से संकोच नहीं करते थे। इस नीति का परिणाम यह निकला कि एक मुसलमान ने जोश में आकर लेख राम प्रचारक का वध कर दिया था। कुछ शरारती आर्य समाजी लोगों ने दुआबे के सिक्खों को लाहौर ले जाकर भरी सभा में उनके केश काट कर 'शुद्ध' किया। यह बड़ा भयानक दृश्य था, जिसको देख कर कई हिन्दु बज़ुर्ग भी रो पड़े। एक हिन्दु वृद्ध ने दुहाई देते कहा, 'जिन सिंघों के बज़ुर्गों ने हमारी बहू बेटियों की इज़्ज़त बचाने हेतु प्राण तक न्योछावर कर दिये, उनके साथ यह क्या अनर्थ कर रहे हो ?' डॉ. जय सिंघ जी ने अप्रैल 1893 में लाहौर 'शुधी सभा' स्थापित की, जिस के द्वारा ईसाई या मुसलमानी झगड़ों में फँस जाने वाले हिन्दु सिक्खों को फिर शुद्ध कर दिया जाता था। डॉ. साहिब ने 'गुरमति ग्रन्थ सुधारक कमेटी' बनाकर शुद्ध पुस्तकें प्रकाशित करवाने का अच्छा प्रबन्ध किया।

विद्या प्रचार

जहां सिंघ सभा ने अन्य मति लोगों के घिनौने आक्रमणों से सिक्ख-धर्म को बचाया, वहां विद्यक क्षेत्र में जगह जगह पर हाई स्कूल खोल कर और ख़ालसा कालेज अमृतसर स्थापित करके कौम की योग्य सेवा की। अकेले बाबा खेम सिंघ बेदी ने 50 से अधिक स्कूल खोले। 1889 में ख़ालसा हाई स्कूल गुजरांवाला, 1892 में फ़िरोज़पुर सिक्ख कन्या पाठशाला, 1893 में ख़ालसा कालेज स्कूल, संत सिंघ सुखा सिंघ स्कूल, 1894 में सुखो, 1899 में सैय्यदां, 1900 में पिंडी घेब और कहूटे आदि स्थानों पर ख़ालसा स्कूल खुले। ख़ालसा कालिज की योजना के लिए ख़ालसा कालिज अस्थापन कमेटी बनी, जिसकी एकत्रता 22 फ़रवरी, 1890 को हुई। इसके प्रधान विद्या विभाग के डायरैक्टर हालरायड और सचिव मि. डबल्यू. बैल्ल प्रिंसीपल गवर्नमेंट कालेज लाहौर बनें। सिक्ख महाराजों और रईसों से राशि जमाकर ली गई और फिर काफ़ी समय सिक्खों में

इस विषय पर झगड़ा रहा कि ख़ालसा कालेज अमृतसर में बनाया जाये अथवा लाहौर ? आर्य समाजी सिक्खों का कालेज लाहौर में बनने के लिए सहमत नहीं थे। सर जेमज़ लायल गवर्नर पंजाब के किये निर्णय अनुसार आख़िर अमृतसर में 5 मार्च, 1892 को कालेज की नींव रखी गई। 14 अप्रैल, 1892 को ख़ालसा कालेज कौंसिल बनी, जिसके प्रधान पंजाब के चीफ़ जस्टिस रैटीगन और सचिव भाई जवाहर सिंघ नियुक्त हुए। जे.सी. ओमन प्रथम प्रिंसीपल बने। मार्च 1896 में एफ.ए. कक्षाएं और 1899 में बी.ए. कक्षाएं आरम्भ हुईं। 1908 ई. में महाराजा हीरा सिंघ नाभा की प्रधानगी में कालेज में सिक्ख मुखियों और राजे रईसों की भारी एकत्रता हुई। कालेज के लिए 15,30,477 रुपये की फंड राशि जमा हुई और बिल्डिंग फ़ंड के लिए 328480 रुपये अलग रूप में इकत्र हुए, जिसमें 50 हज़ार रुपये सरकार ने भी दिये थे। इसी तरह कालेज के लिए सरकार ने सिक्ख ज़िमींदारों से दो पैसे प्रति रुपये के हिसाब से मालिये द्वारा रकम प्राप्त करके दी।

लिखती सेवा

ज्ञानी दित्त सिंघ और प्रो. गुरमुख सिंघ जी के अतिरिक्त ज्ञानी सरदूल सिंघ जी ने 'गुरमति ग्रन्थ प्रचारक सभा' द्वारा कई ग्रन्थ प्रकाशित किये। इसी समय 1885 में मि. ऐचीसन लैफ़्टीनैंट गवर्नर पंजाब ने विलायत में पहुँची पुरातन जन्म साखी की फ़ोटोस्टेट कापी करके सिक्ख रईसों को दी। फिर नया गुरमति साहित्य लिखने के लिए 1894 में 'ख़ालसा ट्रैक्ट सुसाइटी' बनी। मि. मैक्स आर्थर मैकालिफ़ (1837-1913) भी 'सिक्ख रिलीजन' पुस्तक लिखने की तैयारी के लिए 1893 में न्यायाधीश की उपाधि छोड़कर इस कार्य में व्यस्त हुए। महाराजा हीरा सिंघ नाभा ने आप की हर तरह से सहायता की। आख़िर में यह पुस्तक छह भागों में 1909 में आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस ने प्रकाशित की। भाई कान्ह सिंघ नाभा (1861-1938) ने 1898-99 में *गुरमति प्रभाकर* और *गुरमति सुधाकर* ग्रन्थ लिखे। अंग्रेज़ी पत्रों की सिक्खों में बड़ी कमी महसूस की जा रही थी। 1899 में भगत लछमण सिंघ जी ने, जो कि 1893 से सिंघ सभा के सरगर्म कारकुन थे, अंगेज़ी पत्र 'दी ख़ालसा' लाहौर से प्रकाशित किया, जो कि 1901 तक अच्छा चला। आर्य-समाजी हिन्दुओं ने स.

दयाल सिंघ मजीठिये की लाखों की जायदाद मुकद्दमा चलाकर अपने अधिकार में कर ली, जिससे दयाल सिंघ कालेज, पुस्तकालय और ट्रिब्यून पत्र आदि चले। यह अदालती निर्णय केवल शरारत का निष्कर्ष था। भगत जी ने अपने पत्र में इस अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध निरंतर कई ज़ोरदार निबंध लिखे। भगत जी के अतिरिक्त ज्ञानी निहाल सिंघ सूरी, सर अतर सिंघ और स. सेवा राम सिंघ जी आदि ने पहले पहल अंगेज़ों से सिक्ख धर्म की चर्चा आरम्भ की और कुछ वाणी का अनुवाद भी किया।

'हम हिन्दु नहीं'

इस समय पंजाब भर में लगभग डेढ़ सौ से ऊपर सिंघ सभाएँ थीं, जिन्होंने अपने अपने इलाके में हिन्दु मत का प्रभाव हटाकर निरोल ख़ालसा धर्म को प्रकाशमान किया। सारी लहर का उद्देश्य सिक्ख धर्म को सनातनी धर्म और भ्रमों से छुटकारा दिलाना था, इस लम्बे संघर्ष का निष्कर्ष सिक्ख कौम की यह आवाज़ थी कि 'हम हिन्दु नहीं'। भाई साहिब कान्ह सिंघ जी नाभा ने इस सिंघ-नाद को 1897 में पुस्तक रूप में प्रकाशित किया। कुछ लोगों का ख़्याल है कि अंग्रेज सरकार की प्रेरणा से यह भिन्नता उत्पन्न की गई, परन्तु यह कहना उचित नहीं है। वास्तव में सिक्ख अपने मूल सिद्धांतों के कारण ही हिन्दुओं से भिन्न थे, समय के चक्कर से सिक्ख-मर्यादा हिन्दु रीति-रिवाजों की लपेट में आ गई थी। सिक्ख सिद्धांतों के अनुसार देवी देवते का पूजन, अवतार पूजा, वर्ण मर्यादा, जाति-पाति, मूर्ति पूजा, सूतक पातक, सौच, भिट्ट, व्रत, तीर्थ-स्नान, शगुन-अपशगुन, सभी भ्रम-कर्म माने गये हैं और सिक्खों को इनसे वर्जित किया गया है। परन्तु साधारण सिक्ख इस गोरख-धंधे में उलझे पड़े थे। 1881 की सरकारी रिर्पोट में लिखा है, 'सिक्ख भी ब्राह्मणों की मर्यादा पर चलते थे।' सिंघ सभा ने सारी कौम के कंधों से यह भार उतारा और गुरमति मर्यादा प्रचलित की। दूसरी बात जो सिंघ सभा ने की वह बेदी, सोढी, भल्ले, रामरईयां, धीरमल्लियां आदि गुरु-पाखंडियों से बचाकर सिक्खों को गुरु ग्रन्थ साहिब जी के साथ जोड़ा। तीसरी, विद्या के क्षेत्र में अनेक स्कूल खोले और ख़ालसा कालेज, अमृतसर स्थापित करके जो सेवा सभा ने की, वह प्रशंसनीय है और पंजाबी के विकास के लिए भी सभा ने विशेष कार्य किये।

राजनीतिक पक्ष से सिंघ सभा के कार्यों में हमें कोई महान्ता नहीं दिखाई देती। 1886 में महाराजा दलीप सिंघ ने विलायत से अपने देश

वापिस लौटने के लिए विनती की, परन्तु सिंघ सभा के कारकुनों ने इसकी विरोधता ही की। जून 1889 में निर्वासित महाराजे ने प्रत्येक हिन्दुस्तानी को एक पैसा, प्रत्येक सिक्ख को फ़ी आना फ़ंड देने की अपील की, परन्तु 30 अक्तूबर, 1889 को सिक्ख सरदारों ने जवाब दे दिया, 'तुम्हारी सहायता नहीं की जा सकती, तुम लंडन जा के क्षमा मांगो।" ऐसे अयोग्य और सम्मान रहित जवाब, सिक्ख कौम के लिए शोभा नहीं देते थे। आभास ऐसा होता है कि नामधारी लहर के भयानक अंत को देखकर सिंघ सभा लहर वालों ने केवल सामाजिक सुधारों की ओर ही अपना ध्यान रखा। 10 जून, 1896 को सर अतर सिंघ भदौड़, प्रधान ख़ालसा दीवान लाहौर, 8 अगस्त, 1898 को महाराजा बिक्रम सिंघ फ़रीदकोट सरप्रस्त ख़ालसा दीवान अमृतसर, 24 सितम्बर, 1898 को प्रो. गुरमुख सिंघ सचिव ख़ालसा दीवान लाहौर और 6 सितम्बर, 1901 को भ्रम-तोड़ जरनैल ज्ञानी दित्त सिंघ स्वर्गवास हो गये और इस प्रकार यह लहर सिंघों में नई जागृति उत्पन्न करके अपने आरम्भिक सेवकों के साथ ही समाप्त हो गई।

शायद यह बात पाठकों को अच्छी न भाये कि सिंघ सभा लहर के पावन उद्देश्यों में 'अंग्रेज़-भक्ति' क्यों सम्मिलित थी ? उस समय के सिक्ख नेता नामधारी लहर और महाराजा दलीप सिंघ के साथ हो रहे अन्याय के सम्बन्ध में हां का नारा क्यों नहीं लगा सके ? इसका स्पष्ट कारण तो यह है कि अभी पूर्ण जागृति उत्पन्न नहीं हुई थी। यह रईस लोग इतने ही सामर्थय थे। दूसरा, अंग्रेज़ों को कूका लहर का तजुर्बा था, इसलिए वे स्वयं जान-बूझकर हर लहर के साथ अपना वफ़ादार व्यक्ति जोड़ देते थे ताकि राज्य-विरोधी कोई बात न हो सके। यह स्थिति केवल सिंघ सभा की ही नहीं थी अपितु आर्य समाज आदि सभी इसी रास्ते के पथिक हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ने तो एक स्थान पर यहां तक कहा था, 'वे मूर्ख आर्य समाजी हैं, जो अंग्रेज़ी राज्य का साया सिर पर से हटाने का सोचेंगे'। इसके साथ शेष हिन्दुस्तान में भी कहीं अंग्रेज़-विरोधी भावना प्रबल नहीं हुई थी। 1893 ई० में कांग्रेस का प्रथम इजलास दादा भाई नारोजी की प्रधानगी में लाहौर में हुआ। इसकी स्वागती कमेटी के प्रधान स. दयाल सिंघ मजीठिया थे, जिनके दान का फल दयाल सिंघ कालेज, दयाल सिंघ पुस्तकालय और ट्रिब्यून पत्र हैं। यह सरदार दयाल सिंघ उस समय के मुख्य सरदारों में थे, जिनके अंग्रेज़ भी अपना समझते थे।

एक पहलू यह भी है कि उस समय अंग्रेज़ी राज्य-विरोध के समक्ष कोई स्पष्ट उद्देश्य भी नहीं था, अपितु प्रबन्ध की सुधार की कई नई बातें हुईं। दीवानी प्रबन्ध के संचालन के लिए सर रिचर्ड टैंपल और सर राबर्ट मिंटगुमरी ने 'पंजाब सिविल कोड' तैयार की, 1866 में चीफ़ कोर्ट लाहौर स्थापित हुआ। इस समय सड़कें, रेलें और नदियों का भी जाल बिछाया गया, जिससे लोगों की ख़ुशहाली और सरकार की आय बढ़ रही थी। 1882 में सरहिन्द नहर आरम्भ हो चुकी थी, 1892 में लोअर चनाब नहर निकली जिससे सांदल बार-लायलपुर आबाद हुआ। 1897 में लोअर जेहलम नहर के फलस्वरूप शाहपुर सरगोधे का इलाका उपजाऊ हुआ और 1905-1915 तक अपर जेहलम नहर के साथ नीली बार बसी, जिसका नाम लार्ड मिंटगुमरी के नाम से पड़ा। दूसरी ओर विद्या और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी कुछ कार्य हुए। 1855 में शिक्षा विभाग और 1865 में डॉ. लाइटनर की सहायता के साथ 'अंजुमनि पंजाब' बनीं, इसने कुछ पुस्तकों का पंजाबी में अनुवाद करवाया और कवि दरबार भी आरम्भ किये। 1868 में पंजाब यूनिवर्सिटी कालेज, 1876 में औरीऐंटल कालेज, 1882 में पंजाब यूनिवर्सिटी लाहौर स्थापित हुए, 1885 में पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी खुली। ऐसी विकास योजनाओं के अच्छे प्रभाव पड़े और अंग्रेज़ी राज्य की कुछ प्रशंसा भी हुई।

चीफ़ ख़ालसा दीवान

ख़ालसा दीवान लाहौर के कर्ता-धर्ता ही वास्तव में सिंघ सभा लहर की जान थे, इसी दीवान से देश भर की सभी सिंघ सभाएँ सम्बंधित थीं। आरम्भिक संचालकों के बारी-बारी चले जाने से लाहौर दीवान नितांत शून्य बनकर रह गया। इसके मुकाबले पर ख़ालसा दीवान अमृतसर साधारण और सीमित विचारों वाली पार्टी थी जो कि लाहौर दीवान के सुधारक प्रयत्नों में पांव अड़ाना ही अपना कर्त्तव्य समझती थी, परन्तु यह सरकारी वफ़ादारी को निभाने में आगे थी। मैदान ख़ाली देखकर इसके कारकुन आगे आये तथा और भी कुछ प्रेमी इस यत्न में सम्मिलित हुए ताकि पंथक कार्यों के लिए एक शिरोमणी जत्था बनाया जा सके। प्रथम ख़ालसा दीवान लाहौर को भी साथ मिलाने के प्रयत्न किये जाते रहे, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। आख़िर में 30 अक्तूबर, 1902 को मलवई बुंगा, अमृतसर में 'चीफ़ ख़ालसा दीवान' बना, इसकी आरम्भिक अरदास बाबू तेजा सिंघ

जी भसौड़ ने की। भाई साहिब भाई अर्जुन सिंघ बागड़ियाँ प्रधान और स. सुन्दर सिंघ मजीठा, सचिव नियुक्त हुए। उस समय केवल 29 सिंघ सभाएँ ही इसके साथ सम्बंधित हुईं। 9 जुलाई, 1904 को दीवान रजिस्टर्ड करवाया गया। स. सुन्दर सिंघ मजीठा 1902 से 1920 तक और फिर 1934 से 1937 तक इस दीवान के निरन्तर सचिव रहे, इससे स्पष्ट है कि आप ने इस दीवान को बनाने और चलाने में सर्वाधिक भाग लिया। आप बड़े गुरमुख सिक्ख थे और सरकारी मिलाप द्वारा ही समस्त पंथक कार्यों को सम्पूर्ण करने में विश्वास रखते थे। 1902 से 1912 तक ख़ालसा कालेज अमृतसर के भी आप सचिव रहे और 1920 से 1941 तक ख़ालसा कालेज कौंसिल की प्रधानगी की सेवा करते रहे। आप के प्रयत्नों से चीफ़ ख़ालसा दीवान ने शिक्षा क्षेत्र में कई अच्छे कार्य किये। अप्रैल 1904 में सैंट्रल ख़ालसा यतीमख़ाना अमृतसर खोला, 1908 में ख़ालसा यतीमख़ाना शिकारपुर (सिंध) और 1909 में ख़ालसा उपदेशक यतीमख़ाना घरजाख (गुजरांवाला) में बना। इन आश्रमों द्वारा अनाथ सिक्ख बच्चों का पोषण और उनको सुशिक्षित किया गया। 1908 में ख़ालसा प्रचारक विद्यालय तरनतारन में स्थापित हुआ, जहां प्रचारक तैयार किये जाते थे। इसके साथ ही ख़ालसा हस्पताल तरनतारन 1915 में खोला गया, जहां रोगियों की मुफ़्त सेवा की जाती है। 19 जनवरी, 1908 को चीफ़ ख़ालसा दीवान के सबसे बड़े कार्य 'सिक्ख ऐजूकेशनल कान्फरेंस' की नींव रखी गई, जिसके द्वारा दीवान ने लाखों रुपये शिक्षा प्रचार हेतु ख़र्च करके कौम की सेवा की। सरदार बहादुर धर्म सिंघ जी (1881-1933 ई०) ने 1926 में 'गुरु नानक विद्या भण्डार ट्रस्ट' स्थापित करके गुरद्वारों और धर्मशालाओं में स्कूल स्थापित किये, ये भी ऐजूकेशनल कान्फरेंस से ही सम्बंधित थे। धर्म प्रचार के लिए 'ख़ालसा ट्रैक्ट सोसाइटी' और ख़ालसा समाचार ने ठोस कार्य किया, जिसका श्रेय चीफ़ ख़ालसा दीवान के मुख्य सलाहकार भाई साहिब भाई वीर सिंघ (1872-1957) जी को है।

जैसा कि हमने पहले बताया था कि चीफ़ ख़ालसा दीवान के मुख्य व्यक्तियों ने सरकारी वफ़ादारी को सबसे आगे का स्थान दिया और कई आवश्यक पंथक कार्यों को पीछे डाला। वास्तव में रईस लोगों को सरकारी नाराज़गी प्राप्त करनी किसी भी कीमत पर भाती नहीं थी। इसीलिए दीवान के कार्यों में सिंघ सभा लहर के जैसा धार्मिक उत्साह तो पैदा न हो सका, ग़दर पार्टी या अकाली लहर जैसी राजनीतिक सरगर्मी और बलिदान देने

का चाव कहां से उत्पन्न होता। यह अयोग वफ़ादारी के कीटाणू पहले से ही मौजूद थे, जिसको सिंघ तबीयत सहार नहीं सकती थी। इसीलिए सैंट्रल ख़ालसा दीवान माझा, गड़गज्ज ख़ालसा दीवान, पंचायत ख़ालसा दीवान गुरदासपुर और मालवे की ओर पंच ख़ालसा दीवान भसौड़ आदि जत्थे बने।

पंच ख़ालसा दीवान

जिस बाबू तेजा सिंघ भसौड़ ने चीफ़ ख़ालसा दीवान की अरदास की थी, उन्होंने ही 1907 ई० में वैशाखी पर दमदमा साहिब में पंथक एकत्रिता बुलाकर 'पंच ख़ालसा दीवान' स्थापित किया, इसमें भाई साहिब भाई रणधीर सिंघ, भाई कान्ह सिंघ नाभा, डॉ. नत्था सिंघ, भाई साहिब वसावा सिंघ और स. बचन सिंघ वकील आदि मुखिये शामिल हुए। बाबू तेजा सिंघ जी ने 1911 से सिक्ख धर्म के प्रचार हेतु अपना सारा जीवन ही अर्पित कर दिया और भसौड़ एक तरह पंच ख़ालसा दीवान की सरगर्मियों का केन्द्र बन गया। आलसियों को सोधना, भ्रमों का खंडन, सिक्ख संसकारों को सुरजीत करना, दाढ़ी खुली रखना, स्त्रियों को आभूषण पहनने का निषेध और पगड़ी बांधना, लड़कियों के लिए विद्या प्रचार, गुरमुखी का प्रचार, पद-निषेध करके बाणी प्रकाशित करना, विशेष करके दशम गुरु जी की बाणी का प्रचार करना आदि उन्हीं के मुख्य उद्देश्य थे। जो निर्णय लिया जाता, उस पर दीवान में लम्बी चर्चा के पश्चात् मता पास किया जाता, फिर उसको व्यवहार में लाया जाता था। कई बार तो एक एक विषय पर कई कई दिन बहस होती रहती। प्रथम स्त्रियों को अमृत पान, 'खंडे' के स्थान पर कृपान के साथ कराया जाता था, 'खंडे' की मर्यादा पंच ख़ालसा दीवान ने ही ज़ोर देकर चलाई। इसी तरह कोई मुसलमान या चूहड़ा-चमार भी शीघ्रता से सिंघ नहीं बन सकता था क्योंकि क्षुद्र विचारों वाले लोग इसकी सख़्त विरोधता करते थे। बाबू तेजा सिंघ ने निर्भय और साहसी होकर इस मर्यादा का प्रचार किया। 14 जून, 1903 को गांव बकापुर, ज़िला जालंधर में एक प्रभावशाली अमृत-समागम किया गया, जिसमें मौलवी करीम बख़्श—सन्त लखमीर सिंघ, फतेदीन—कृपाल सिंघ, नूरां, वरयाम कौर, ग़ुलाम मुहंमद—हरनाम सिंघ और मुंशी रुकनदीन—भाई महताब सिंघ बने। बाद में भाई महताब सिंघ बीर ने ख़ालसा बरादरी जत्थे बनाकर बहुत सेवा की। पंच ख़ालसा दीवान की सरगर्मियों

में सन्त गुरबख़्श सिंघ, सन्त अतर सिंघ, भाई साहिब रणधीर सिंघ, पंडित भगवान सिंघ, भाई तख़्त सिंघ, पंडित करतार सिंघ, डॉ. रण सिंघ, संत तेजा सिंघ एम.ए., मास्टर मोता सिंघ, ज्ञानी शेर सिंघ आदि व्यक्ति भी भाग लिया करते थे। भाई नारायण सिंघ घड़ूंयां, लाल सिंघ गुजरांवालिया, ज्ञानी गुरमुख सिंघ बड़ूंदी, बाबा महाबली सिंघ, ज्ञानी इन्द्र सिंघ अलूणे, ज्ञानी प्राक्रम सिंघ और भाई लाल सिंघ कनेच आदि ने अच्छी प्रचार-सेवा की। दीवान के लिए ट्रैक्ट, पुस्तकें और लेख आदि लिखने का कार्य स्वयं बाबू तेजा सिंघ जी निभाते थे या ज्ञानी लाल सिंघ जी। इस गर्म सुधारक जत्थे को चलाने में भाई साहिब कान्ह सिंघ जी नाभा का भी अच्छा हाथ था। वास्तव में चीफ़ ख़ालसा दीवान तो एक तरह रुढ़िवादी विचारों वाला अमीरों का जत्था था और पंच ख़ालसा दीवान भसौड़ प्रगतिशील विचारों वाला ग़रीब सिक्खों का और ख़ासकर तत्त ख़ालसे का दल बन गया था और इसको अच्छी सफलता भी प्राप्त हुई थी।

पंच ख़ालसा दीवान वाले अपने जत्थे को 'ख़ालसा पार्लीयामैंट' भी कहते थे, जिससे चीफ़ ख़ालसा दीवान वाले बहुत चिढ़ते थे। अंग्रेज़ों ने महाराजा भूपेन्द्र सिंघ के पास ज़ोर डाला कि किसी तरह पंच खंडियों की सरगर्मियों को रोकें। महाराजा पटियाला ने यहां तक भी कहा कि अगर पंच ख़ालसा दीवान वाले अपने नाम के साथ 'ख़ालसा पार्लीयामैंट' लगाना छोड़ दें तो मैं उनको पांच लाख रुपये दूँगा परन्तु बाबू तेजा सिंघ जी ने नितांत इन्कार कर दिया, वास्तव में यह जत्थेबन्दी निरोल पंचायती चिन्हों पर चलकर दिन प्रतिदिन उन्नति कर रही थी और ख़ालसा पार्लीयामैंट के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर रही थी। यह बात फ़िरंगी सरकार को नहीं भाती थी। इसीलिए महाराजा पटियाले द्वारा इस पर कई तरह के दबाव डाले गये, चौंकियां बिठाई गईं और दीवान तथा ख़ज़ाने की पेटियां उठाकर भी सरकारी अधिकार में की गईं। परन्तु पंच ख़ालसा दीवान के व्यक्ति डटे रहे। इन्होंने 1917 में पंजाबी को अदालती भाषा बनाने का और इसी तरह 1918 में 'पुजारी सुधार मता' पास किया कि वे धर्म-स्थानों की जायदादों को जद्दी न बनायें, ऐसी बातें जो बाद में पंथक निशाना बनीं, पंच ख़ालसा दीवान ने उनको पहले ही चलता करने का संकल्प किया था।

इस सुधार और धर्म-प्रचार के अतिरिक्त पंच ख़ालसा दीवान का दूसरा शानदार कार्य स्त्री-विद्या का प्रचार है। 1909 में 'विद्या भण्डार

आश्रम' आरम्भ किया गया जिसमें हज़ारों सिक्ख लड़कियों ने विद्या प्राप्त की। इसी से प्रेरित होकर भाई तख़्त सिंघ जी ने 1911 में बाहरी टापूओं से 60 हज़ार के लगभग फ़ंड एकत्र करके फ़िरोज़पुर 'कन्या महाविद्यालय' आरम्भ किया। 1921 में 'ख़ालसा स्त्री कान्फरेंस' की नींव रखी गई। 1924 में 'ख़ालसा पार्लीयामैंट गज़ट', 1925 में 'पंच ख़ालसा समाचार' और 'ककार बहादुर' पत्र आरम्भ किये। 29 अगस्त, 1933 को बाबू जी का देहांत हो गया।

चीफ़ ख़ालसा दीवान और पंच ख़ालसा दीवान इन दोनों जत्थेबंदियों ने सिंघ सभा लहर उत्पन्न की थी। प्रथम में सरकारी वफ़ादारी और दूसरे में पंथक अथवा राष्ट्रीय वफ़ादारी थी। सरकार चाहती थी कि सिक्ख कौम तो चीफ़ ख़ालसा दीवान के चिन्हों पर चलकर आगे बढ़ती रहे और किसी तरह के राज-विद्रोह में भाग न ले, परन्तु स्वाभिमानी, स्वतन्त्रता-ऐच्छुक और पंचायती रवायतें रखने वाली कौम इस रास्ते पर कितना समय चल सकती थी। अंग्रेज़ी ज़बर बढ़ता गया और साथ-साथ सिक्खी जोश में भी बढ़ौतरी होती गई। आख़िर में सिंघों को विदेशी राज्य-विरोधी मुहाज़ में सबसे आगे आना पड़ा।

जबै बाण लागै ।। तबै रोस जागै ।।

●

क्रान्ति युग

(1910—1925 ई०)

जे जीवै पति लथी जाइ ।।
सभु हरामु जेता किछु खाइ ।।

(वार माझ म: १, पन्ना 142)

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा, सांई मुझै न देहि ।।
जे तू एवै रखसी, जीउ सरीरहु लेहि ।।

(सलोक फरीद, पन्ना 1380)

रते सेई जि मुखु न मोड़ंन्हि, जिन्ही सिञाता साई ।।
झड़ि झड़ि पवदे कचे बिरही, जिन्हा कारि न आई ।।

(सलोक म: ५, पन्ना 1425)

सिर जावे तां जावे, मेरा सिक्खी सिदक़ न जावे ।

(लोक गीत)

क्रान्ति युग

(1910—1925 ई०)

निरंकारी और नामधारी लहर ने सिक्खों में आत्मिक-जागृति उत्पन्न की। सिंघ सभा लहर ने धार्मिक, सामाजिक सुधार और विद्या-प्रचार द्वारा सिक्ख-धर्म की विशिष्टता प्रकट कर गुरु नानक के नाम-लेवा अनुयायियों (सिक्खों) को अपने आपका अहसास करवाया। वे समझ गये कि गुरु की शिक्षा स्वाभिमान, स्वतन्त्रता और न्याय के रास्ते पर चलने की ताकीद करती है, इसीलिए सिक्ख किसी के अधीन नहीं हो सकता। 'अंग्रेज़ी वफ़ादारी' की बात जो सच्च-झूठ से निभाई जा रही है, यह सब गहरी नींद और नीम-बेहोशी का निष्कर्ष था। अब जब राजसी चेतना की जागृति आ गई तो यह विदेशी ग़ुलामी का कलंक माथे से दूर करना होगा, इसको बहुत देर तक बरदाश्त नहीं किया जा सकता, यह जागृति एक दम नहीं आ गई, ठोकरें खा खाकर काफ़ी समय के पश्चात् आँखें खुलीं। बाबा राम सिंघ जी ने एक बार ऊँचीं आवाज़ में कहा था परन्तु वह आवाज़ तोपों के ख़ूनी शोर-शराबे में गुम हो गई।

1857 से 1907 तक सिक्ख 50 वर्ष अंग्रेज़ों की वफ़ादारी में फँसे रहे परन्तु इसके बाद का समय नीति-परिवर्तन का समय है, जबकि अंग्रेज़-पक्ष नीति का पतन और लोक-पक्ष नीति बल पकड़ती है। परन्तु यह तब हुआ जब अंग्रेज़ अत्याचारियों ने सिक्खों की धार्मिक स्वतन्त्रता और इज़्ज़त पर हाथ डाला और उचित माँगों को भी अनैतिक दृष्टि से देखा। फ़िरंगी व्यापारी था, परन्तु वह देसी व्यापारी श्रेणी के लाभों को तो मुख्य रखता था, परन्तु किसानों के लाभ उसके ध्यान में नहीं थे। इसका परिणाम यह निकला कि किसान ऋणी होकर ज़मीनें बेचने लगे। 1901 तक 4 लाख 13 हज़ार एकड़ भूमि बिक चुकी थी और 1901 से 1909 तक अढ़ाई करोड़ एकड़ से अधिक भूमि गहने पड़ चुकी थी। सरकार के लिए बेकारी

लाभदायक थी, क्योंकि बेकार लोग ही इनकी फ़ौजी भरती से पेट भर सकते थे। परन्तु हर कोई इस नौकरी के लिए तैयार नहीं था, बेकार लोग रोज़गार की तलाश में बर्मा, मलाया, चीन और फिर कैनेडा, अमरीका की ओर चले गये। मेहनती पंजाबी का हर कम्पनी, कारख़ाने और फर्म में सत्कार था। 1905 में बंगाल के विभाजन ने लोगों के स्वाभिमान और आन पर चोट लगाई। 1907 में पंजाब कालोनीज़ेशन बिल ने किसानों की अंतड़ियों का रक्त चूसा, मुरब्बों की मलकीयत पर पाबंदी लगाई, मामले बढ़ाये, इसके विरुद्ध जोश उठा। 22 मार्च, 1907 को लायलपुर में लाला लाजपत राय ने भाषण दिया। 21 अप्रैल को रावलपिंडी में स. अजीत सिंघ ने फ़िरंगी नीति के पर्दे-फाश किये, इस पर दोनों को जलावतन करके मई 1907 में मांडले जेल भेज दिया गया। लाला बांके दयाल ने इस समय 'पगड़ी संभाल जट्टा, पगड़ी संभाल ओए' वाली नज़म अख़बार 'झंग सिआल' में प्रकाशित की थी।

1908 में ख़ालसा कालेज का प्रबन्ध सरकार ने अपने अधीन कर लिया। 1913 में कृपान पर पाबंदी लगनी आरम्भ हुई। अगस्त 1914 में मि. किंग डी.सी. अमृतसर ने हंसली नहर का पानी बंद करा कर ट्यूब्वैल द्वारा पानी लगाने का सुझाव दिया।

रकाब गंज

1914 में वायसराय के महल की ओर सीधी सड़क निकालने हेतु गुरुद्वारा रकाब गंज की दीवार गिरा दी गई। तीन चार वर्ष के पश्चात् 1920 में स. हरचन्द सिंघ, मास्टर मोता सिंघ की राय के साथ सिक्ख लीग की ओर से स. सरदूल सिंघ कविशर ने वहां सौ व्यक्तियों का शहीदी जत्था ले जाकर मोरचा लगाने का निर्णय किया तो स. गुरचरन सिंघ नाभा की राय पर गवर्नर मैक्लेगन ने कहकर सरकार द्वारा गिराई गई दीवार की मुरंमत करवाकर अपने किये पर पश्चाताप किया और शहीदी जत्था जय जय कार करता हुआ वापिस आ गया।

बज बज घाट का साका

29 सितम्बर, 1914 को बज बज घाट पर कैनेडा से आये 'गुरु नानक जहाज़' के बेगुनाह मुसाफ़िरों पर गोलियां चलाना सरकार का सख़्त अन्याय

था। बात यह थी कि रोज़गार की तलाश में पंजाबी, कैनेडा से अमरीका की ओर बहुत बड़ी मात्रा में जा रहे थे और ऐसी सरगर्मी में सिक्ख सबसे आगे थे। 1903 से यह रोज़गार-यात्रा आरम्भ हुई थी। सटाकटन और वैनकोवर (1908) में सिंघों ने अच्छे गुरुद्वारे भी बना लिये थे, जो आते जाते सिक्खों और ग़ैर-सिक्खों, सभी यात्रियों के लिए रहने के बढ़िया स्थान थे। नस्ली पक्षपात के कारण कैनेडा सरकार आवाजाही पसंद नहीं करती थी। इसलिए 9 मई, 1907 को सरकारी आदेश जारी हुआ कि वही लोग यहां उतारें जो सीधा अपने देश से आएं। इस समय कैनेडा में 6-7 हज़ार हिन्दी थे जिसमें बहुत गिनती सिक्खों की थी। 1909 से सिक्ख अमरीका की ओर चल पड़े। 1913 तक वहां भी पांच हज़ार के लगभग गिनती हो गई। सिक्खों की काफ़ी आमद देखकर कैनेडा सरकार के इशारे पर जहाज़ी कम्पनियों ने इनको ले जाना भी बंद कर दिया। बाबा गुरदित्त सिंघ जी ने हांगकांग में कामागाटा मारू (गुरु नानक जहाज़) वैनकोवर जाने के लिए 11 हज़ार मासिक डालर देना करके किराये पर लिया। जब 376 यात्री लेकर यह जहाज़ 23 मई, 1914 को वैनकोवर पहुंचा तो कैनेडा सरकार ने यात्रियों को उतरने न दिया, विवशता में लाखों का ख़र्च करके और छह मास की मुसाफ़री और परेशानी सहकर यह वापिस बजबज घाट कलकत्ते आ गया। अब यात्रियों की इच्छा अपने अपने घर लौटने की थी, परन्तु कुछ गोरे फ़ौजियों ने शंका होने पर झगड़ा कर लिया और गोली चला दी, जिस से 26 व्यक्ति मरे और कई गिरफ़्तार कर लिए गये। बाबा गुरदित्त सिंघ छिप गये और सात वर्ष के पश्चात् फिर गांधी जी के कहने पर स्वयं 21 फ़रवरी, 1922 को ननकाने में गिरफ़्तार हुए।

ग़दर पार्टी

जो लोग रोज़गार की तलाश में बाहर प्रदेशों में गये हुए थे, उनको स्वतन्त्रता का बोध होने पर ग़ुलामी का अहसास होना शुरू हुआ। लोग ताने देते थे कि तुम्हें 30 करोड़ को, लाख-सवा लाख गोरे काबू किये बैठे हैं, तुम्हारा अपना राष्ट्रीय झण्डा और राष्ट्रीय नारा भी कोई नहीं, यह सुनकर उन्होंने उस समय से ही देश में क्रान्ति लाने के सपने आरम्भ किये। बाहर से और यहां से भी वे बग़ावत के लिए कार्य आरम्भ करने लगे। 23 दिसम्बर, 1912 को जब दिल्ली के शाही जलूस के समय लार्ड हार्डिंग

पर बंब फैंका गया तो यह प्रकट करने के लिए था कि हिन्दुस्तानी जाग पड़े हैं और उनको यह जागृति प्रदेशों में से प्राप्त हुई है। 'ख़ालसा दीवान सोसाइटी वैनकोवर' ने पहले-पहल देश की स्वतन्त्रता हेतु प्रयत्न आरम्भ किये। संत तेजा सिंघ, भाई भगवान सिंघ और भाई परमानंद इसके प्रचारक और कर्ता थे। बाबा जवाला सिंघ और बाबा विशाखा सिंघ ने 'पैसेफिक कोट ख़ालसा दीवान सुसाइटी' बनाई। 1900 में 'हिन्दुस्तान ऐसोसीएशन' और 1911 में 'यूनाईटिड इंडिया लीग' बनी। 21 अप्रैल, 1913 को आसटेरिया (आरेगन स्टेट) में 'हिन्दी पैसेफिक ऐसोसीएशन की बुनियाद रखी गई, जिसका आशय शस्त्रबद्ध क्रान्ति द्वारा हिन्द में स्वतन्त्रता लाना था। इसके प्रधान बाबा सोहन सिंघ भकना और जनरल सैक्रेट्री लाला हरदयाल थे। सान फ़रांसिसको की हिल स्ट्रीट के मकान नंबर 436 में 'युगांतर आश्रम' खोला गया।[1] जहां से नवम्बर 1913 से 'ग़दर' अख़बार (उर्दू) आरम्भ हुआ। जनवरी 1914 से पंजाबी में 'ग़दर' पत्र प्रकाशित होने लगा। यह अख़बार बाद में हिन्दी, गुजराती, बंगाली, पश्तो और नेपाली में भी प्रकाशित होता रहा। 1916 में सप्ताह भर में इसकी गिनती दस लाख छपाई बताई जाती है।[2] आख़िर इसी के नाम पर 'ग़दर पार्टी' का नाम प्रचलित हुआ। जब पार्टी प्रोग्राम अनुसार लाला हरदयाल सविटज़रलैंड और बाबा भकना अपने देश आ गये तो भाई भगवान सिंघ (डसका) प्रधान और सरदार संतोख सिंघ पार्टी के जनरल सैक्रेट्री बने। भाई भगवान सिंघ अच्छा जोशीला लैक्चरार और कवि था।[3]

बहुत सारे ग़दरी कार्यकर्ता हिन्द पहुँचे और जगह जगह पर योजनाएं बनाकर गुप्त कार्य करने आरम्भ किये। ज़िला लुधियाना के गांव झाबेवाल और रियासत नाभा में लैहटवद्दी बम्बसाज़ी का कार्य डॉ. मथुरा सिंघ और परमानंद झाँसी की देख-रेख में होता था। ग़दरियों का अड्डा पहले अमृतसर और फिर लाहौर में था, जो बाबू सचिन्द्र नाथ सानियाल और रास बिहारी बोस की देख-रेख में कार्य करता था। कारकुनों में 90 प्रतिशत

1. बाद में मार्च 1916 में वुड स्ट्रीट में तीन मंज़ला मकान बनाकर ग़दर पार्टी ने अपना दफ़तर बनाया।
2. गुरचरन सिंघ सैंहसरा, *ग़दर पार्टी दा इतिहास*, पृष्ठ 97
3. गड दिओ जग दीआं लाल झंडीआं। वढ दिहु गोरे मेमां कर दिहु रंडीआं।
चार ते क्रोड़ इथे गोरे वसदे। तेती ते क्रोड़ ने हिन्दी वसदे।
अठ अठ एक दीआं पा लो वंडीआं। वढ दिहु गोरे मेमां कर दिहु रंडीआं।

सिक्ख थे। जनरल मैकमन का कहना उचित है कि ग़दर लहर के अनोखे और जनूनी जोश में रंगे बहु-संख्या में सिक्ख ही आगे आये। बाबू सानियाल अपने अनुभव के आधार पर लिखते हैं कि 'सिक्खों जैसी समर्थावान और चेतन्न कौम हिन्दुस्तान में और नहीं। सिक्ख जैसे स्वाभाविक ही जोश-भरपूर हो जाते हैं, ऐसे और नहीं हो सकते। सिक्खों में प्रचंड उत्साह और साहस था, वे दु:ख भी सहार सकते थे। उनका सुडौल शरीर, सुन्दर मूछें, सुन्दर दाढ़ी, अनोखी पगड़ी और दृढ़ता भरपूर प्रभावी चेहरे को देखकर बड़े बड़े जाबिरों का हृदय कांप जाता था।' (*बंदी जीवन*)

बंगाल का कार्य अधिक संगठित था, अब इन लोगों ने जगह जगह पर बग़ावत करने के लिए प्रयत्न आरम्भ किये। 'ऐलाने जंग' सब स्थानों पर बांटा गया। परन्तु, पैसे की बड़ी कमी थी, इसलिए चार पांच जगह डाके भी डाले, परन्तु स. नानक सिंघ रईस भदौड़ ने भरोसा दिलाया कि ऐसा न करो, पैसे का इंतजाम मैं करूँगा। फ़ौजों में बग़ावत करने हेतु, सकीमें बनाई गईं, आख़िर 21 फ़रवरी, 1915 को ग़दर की तारीख़ निश्चित हुई। निर्णय यह था कि पहले मियां मीर (लाहौर) छावनी और फ़िरोज़पुर पर अधिकार किया जाए, परन्तु एक अमृतसरी कृपाल सिंघ मुख़बर ने सारा भेद सरकार को पहुँचा दिया और स्कीम वहां की वहां धरी रह गई। अप्रैल 1915 में रास बिहारी बोस तो फ़रार होकर जापान चले गये और पीछे सरकार ने सख़्ती का तीव्र चक्कर चलाया और हर जगह से ग़दरियों को गिरफ़्तार कर लिया। लार्ड हार्डिंग लिखता है, 'मैंने गवर्नर ओडवायर के कहने पर 300 से अधिक सिक्ख इनक़लाबियों को काले कानून के अधीन पकड़ने के अधिकार दे दिये थे।'

आख़िर मुकद्दमें चले, फांसी और उम्र-कैद तीव्र मात्रा से बढ़ीं। लाहौर साज़िश केस के पहले मुकद्दमे में सात इनक़लाबियों (करतार सिंघ सराभा, जगत सिंघ सुर सिंघ वाला, हरनाम सिंघ भट्टी गिरां, बख़शीश सिंघ, सुरैण सिंघ, सुरैण सिंघ गिलवाली और मराठा विष्णू गणेश पिंगले को फांसी और 44 व्यक्तियों को उम्र कैद दी गई, जिनमें बाबा सोहन सिंघ भकना, भाई परमानन्द, परमानन्द झांसी, भाई निधान सिंघ चुघ्घा, संत विशाखा सिंघ और बाबा जवाला सिंघ ठट्टियां आदि मुख्य थे। 14 नवम्बर, 1915 को उपरोक्त सात फांसी लगाये गये। दूसरे मुकद्दमें में पांच (उत्तम सिंघ हांस, ईशर सिंघ ढुडीके, रूड़ सिंघ तलवंडी, बीर सिंघ बाहोवाल, रंगा सिंघ खुरदपुर) को फांसी हुई और वे 18 जून, 1916 को फांसी लगाये

गये। 45 को उम्र कैद सुनाई गई, जिनमें संत रणधीर सिंघ, भाई सज्जण सिंघ आदि थे। तीसरे मुकद्दमे में पांच को फांसी और छह को उम्र कैद हुई। भाई बलवंत सिंघ वैनकोवर के ग्रन्थी फांसी लगने वालों में थे। 8 इनक़लाबी फ़िरोज़पुर में फांसी लगे, जिनमें भाई गाधा सिंघ जी भी थे। बनारस साज़िश केस में दस को लम्बी सज़ाएं और श्री सचेन्द्र नाथ सानियाल को उम्र कैद हुई। दो मुकद्दमे और थे जिनमें डॉ. मथरा सिंघ ढुडियाल और भाई जवंद सिंघ नंगल कलां को फांसी का आदेश जारी हुआ। मांडले साज़िश केस में 6 फांसी लगे और 11 काले पानी में भेजे गये। अन्य पर भी कई मुकद्दमे चले, जिनमें फांसी और काले पानी आम सज़ाएं थीं।[1]

इसके अतिरिक्त जिन्होंने ग़दर फैलाने के लिए सेना में सरगर्मी दिखाई, उनमें से 23वें रसाले के जो कि मियाँ मीर छावनी में थे, 12 सैनिकों को डगशई में गोली से मार दिया गया और छह को उम्र कैद हुई। 12 में से 11 सिक्ख थे और एक मुसलमान अब्दुल्ला था। इसको कहा गया कि काफ़िरों के साथ फांसी चढ़कर क्या लेना है, क्षमा मांग लो। उसने कहा, "जहां दफ़ेदार लछमण सिंघ जैसे साथी हों, उनके साथ मैं स्वर्ग में ही जाऊँगा।' मेरठ में 12 नंबर के रसाले के चार सिंघ फांसी लगा दिये। 128वीं पायनिअर्ज़ के फूला सिंघ शहीद हुए। सिंगापुर में 15 फ़रवरी को पांचवीं पलटन की मुस्लिम फ़ौज में बग़ावत हो गई और वहां बाग़ी सैनिकों ने तीन चार दिन सिंगापुर के किले पर अधिकार जारी रखा, यहां 41 सैनिकों को गोलियों से उड़ा दिया गया। बात यह कि इन ग़दर करने वालों पर मुकद्दमे चलाकर सौ से अधिक फांसी और दो सौ से अधिक को उम्र कैद और जायदाद ज़ब्त करने की सज़ा हुई। जिस प्रकार सिक्खों ने ग़दर के लिए पैसा और समय भी अधिकाधिक दिया था, उसी प्रकार प्राणों का भी सबसे अधिक बलिदान दिया। बाद में राजा महेन्द्रा प्रताप, मौलवी बरकतुल्ला और डॉ. मथुरा सिंघ ने जर्मनी की सहायता से काबुल में बैठकर बग़ावतों की स्कीमें बनाईं, परन्तु सफलता प्राप्त न हुई। इसी प्रकार सयाम-बर्मा और बंगाल के मुहाज़ पर सोहन लाल पाठक, हरनाम सिंघ काहरी सारी, भाई संतोख सिंघ और एम.एन. राय आदि पूर्ण ज़ोर-

---

1. जगजीत सिंघ, *ग़दर पार्टी लहर*, 1957.
   गि. नाहर सिंघ, *आज़ादी दीआं लहरां*, 1960.

शोर से कार्य करते रहे। जर्मन की ओर से 'मैवरिक' जहाज़ द्वारा तीस हज़ार राइफलें और प्रत्येक राइफल के पीछे 500 गोलियां और दो लाख रुपये आने थे, परन्तु ये स्कीमें पूर्ण न हो सकीं और इनक़लाबी बारी बारी पकड़े गये और मौत या जेलों का शिकार बनते गये।

काले पानी की जेलें भी नरक थीं और यहां की जेलों की भी बुरी अवस्था थी। सिक्खों को टोपी पहनने के लिए मजबूर किया जाता था परन्तु किसी भी सिक्ख ने यह हीनता वाली बात न मानी। भाई गुरमुख सिंघ जब्बोमाजरिये ने सात वर्ष जेल में केवल कंबल ही बांध रखा। भाई रणधीर सिंघ और बाबा विशाखा सिंघ जी भी काफ़ी समय इसके लिए संघर्ष करते रहे, परन्तु किसी ने टोपी न पहनी। 1922 में जब स. सुन्दर सिंघ मजीठा वज़ीर बने तो उन्होंने जेलों में सिक्खों के लिए पगड़ियों का इन्तज़ाम किया।

एक ओर जेलों में सिक्खों की यह हालत थी, दूसरी ओर अनेकों सिंघ बहादुर अंग्रेज़ी फ़ौज में भरती होकर 1914-18 की जंग ब्रिटिश सरकार के लिए लड़ रहे थे।[1] अंकड़े गिनती करें तो लड़ाई के आरम्भ में एक लाख पंजाबी फ़ौज थी, युद्ध के समय 3 लाख, 80 हज़ार नई

---

1. सिक्ख सेना की बहादुरी और आचरण ने समस्त यूरोप में अपना सिक्का जमाया, जिसकी प्रत्येक सूझवान अंग्रेज़ ने प्रशंसा की है। सी.एच. पाइन लिखता है, 'सिक्ख, हिन्दुस्तानी फ़ौजी पौधे का फूल हैं। छूत-छात की बंदिशों से आज़ाद होकर सिक्ख फ़ौजी हर स्थान पर चला जाता है और हर कार्य कर सकता है। वह बहादुर, अच्छे स्वभाव वाला, दुःख में भी शान्त रहने वाला, ज़ाबते का पालक है, उसकी वीरता अद्वितीय है, वह यह जानता ही नहीं कि उसको पराजय होगी ?'

जे.एच. गार्डन लिखता है, 'किसी स्थान पर भी ज़बरदस्त युद्ध होना है तो सिक्ख उसी स्थान पर अपनी ईमानदारी, अडोल दृढ़ता और निर्भय वीरता को कायम रखते हुए सबसे आगे दिखाई देते हैं, ये गुण इनको विरासत से प्राप्त हैं।'

एक बार जनरल बर्डवुड कमांडर इन-चीफ़ हिन्द ने कौंसिल में भाषण देते समय कहा था, 'मुझे अपनी पत्नी और लड़की को एक सिक्ख सिपाही की रक्षा में रहते हुए कोई रत्ती भर भी झिझक नहीं होती क्योंकि मैं समझता हूँ कि एक सिक्ख सिपाही की मौजूदगी में वह बिल्कुल ही सुरक्षित हैं।'

मि. एच.एस. हिंडेमन लिखता है, 'अगर भारत में कोई भी मामला था, जिससे न्याय किया जाता और जिसको बराबरी का अधिकार दिया जाता, वह पंजाब के सिक्खों का मामला था। अंग्रेज़ी सरकार को भूल नहीं जाना चाहिए कि इन योद्धाओं ने हम पर क्या क्या अहसान किये हैं।'

भरती हुई, इस सारी फ़ौज में 90 हज़ार सिक्ख थे। इस बड़ी जंग में पंजाब ने अढ़ाई करोड़ रुपये चंदा और 11 करोड़ रुपया कर्ज़े पर सरकार को दिया। सर जौहन मेनारड के अनुमान के अनुसार व्यक्ति और सामान जो सिक्खों ने युद्ध के समय दिया, वह हिन्द भर में किसी भी कौम से दस गुणा अधिक था। दूसरी ओर यह विदेशी सरकार सिक्खों का रक्त चूसने पर तुली हुई थी। स्वतन्त्रता और लोक राज्य के लिए लड़ने का नारा लगाने वाले अंग्रेज़, हिन्द को रत्ती भर आज़ादी देने के लिए तैयार नहीं थे, बल्कि अज़ादी का नाम लेने वालों को फांसी पर लटका रहे थे। दुर्भाग्य से इन दिनों में पंजाब का गवर्नर सर माइकल ओ'डवायर जैसा तानाशाह था जो लोक राज्य की बात तक सुनने के लिए तैयार न था।

और तो और कई बार सरकार को सिक्खों के धार्मिक चिन्ह—कृपान के बारे में भी ग़लतफ़हमी हो चुकी थी, कई गिरफ़्तारियां भी की गईं, अनेकों मुकद्दमे चलाये गये, परन्तु होश आने पर सरकार ने 25 जून, 1914 को पंजाब में, 17 जुलाई, 1914 को दिल्ली में, 27 अक्तूबर को बर्मा में, 22 फ़रवरी, 1917 को यू.पी. में, 26 फ़रवरी, 1917 को सूबा सरहद में और 19 मई, 1917 को समस्त हिन्द में ही बड़ी कृपान (तलवार) को कानूनी तौर पर आज़ाद करार दे दिया, परन्तु ये सभी बलिदानों का ही निष्कर्ष था—सरकार की कोई मेहरबानी नहीं थी।

जलियांवाला बाग़

जैसा के हमने ऊपर वर्णित किया है कि सन 1918-19 की जंग में सिक्खों की ओर से सरकार को इतने बड़े पैमाने पर मिलवर्तन तथा सहायता देने के स्थान पर सिक्ख आशा करते थे कि सरकारी रवईया कुछ बदलेगा, परन्तु बात इसके विपरीत हुई। 1917 की मांटैगू चैमस फ़ोर्ड रिपोर्ट ने भी सिक्खों के पल्ले कुछ न डाला, जब कि बिहार में मुसलमानों की गिनती 10 प्रतिशत थी और वहां उनको 33 प्रतिशत अधिकार दिये गये। लोगों में जोश बढ़ रहा था। लोग कहते थे जिस आज़ादी के लिए ब्रिटिश सरकार इतनी बड़ी जंग लड़ती रही है, वह आज़ादी हमें भी दी जाये। आख़िर सर सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में एक कमेटी बनी जो लोगों की क्रान्तिकारी सरगर्मियों को रोकने के लिए सुझाव दे। इनकी

सिफ़ारिश से 'ऐनारकिकल एण्ड रैवोलूशनरी क्राइमज़ ऐकट' पास हुआ जिसको 'रोलट ऐक्ट' अथवा 'काला कानून' नाम दिया जाता है। इसके विरुद्ध हिन्द भर में हड़तालें हुईं। 30 मार्च, 1919 को अमृतसर में पूर्ण तौर पर हड़ताल हुई और 9 अप्रैल को इस हड़ताल के आगु—डॉ. सैफ़ुद्दीन किचलू और डॉ. सतपाल को सरकार ने जलावतन कर दिया। भीड़ ने ग़ुस्से में आकर दो तीन अंग्रेज़ों को वहीं पर मार दिया। 11 अप्रैल को ब्रिगेडीयर जनरल ऐडवर्ड हैरी डायर अमृतसर आया और मारशल लॉ लगने पर समस्त शहर पर फ़ौजी अधिकार हो गया। 13 अप्रैल को वैशाखी थी, लोग हज़ारों की गिनती में बाहर से अमृतसर की दर्शन-यात्रा के लिये आये हुए थे। इस दिन जलियांवाला बाग़ के स्थान पर लीडरों की गिरफ़्तारी के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए एक भारी जलसा होना नियत था, लोग हज़ारों की गिनती में एकत्रित हुए थे। एक दम डायर ने मशीनगन द्वारा गोली चलानी आरम्भ कर दी जो कि दस मिन्ट निरन्तर चलती रही। हंटर कमेटी की रिर्पोट अनुसार 1650 गोलियां चलीं, 379 व्यक्ति मरे और इससे तिगुने चौगुने घायल हुए। लोग असहाय थे और मेला देखने के लिए आये थे, परन्तु ज़ालिम डायर ने बिना सोचे-समझे यह हत्या-काण्ड किया। यह जलियांवाला बाग़ का साका वह चिंगारी थी, जिसने देश भर में आज़ादी की आग लगा दी। ग़दर लहर जो आंतरिक रूप में दहक रही थी, फिर सिवल ना-फुरमानी और अकाली लहर के रूप में ज्वाला बनकर ऊँचीं उठी। ऐसी बातों ने संग्रामिये सिक्खों में बेचैनी उत्पन्न कर दी और उन्होंने सरकार के विरुद्ध जहाद खड़ा करने का सोचा। दिसम्बर 1919 में सरब हिन्द कांग्रेस का इजलास अमृतसर में हुआ, जिसमें अंग्रेजी सरकार के इस जाबर बर्ताव की निन्दा की गई। इस समय स. गज्जण सिंघ लुधियाना की अध्यक्षता में 'सैंट्रल सिक्ख लीग' का प्रथम समागम हुआ, यह अपनी तरह का पहला राजसी इकट्ठ था। अब अधिक समय शान्ति के साथ बैठा नहीं जा सकता था, विशेष तौर पर गुरुद्वारों में हो रही कुरीतियों और सरकार परस्त बातों ने सिक्ख भावनाओं को प्रेरित किया और अकाली लहर की बाढ़ आ गई। इस बाढ़ ने सरकार-पूजन तथा चापलूसी करने वाले महंतों, पूजारियों की फैलाई गंदगी का सफ़ाया कर दिया। इस अकाली तूफ़ान से अंग्रेज़ को भी होश आ गई कि 'वफ़ादार' सिक्ख क्या कुछ कर सकते हैं और किस तरह सरकार के साथ टक्कर भी ले सकते हैं।

अकाली लहर (गुरुद्वारा सुधार लहर)

सिक्ख धर्म जत्थेबंद और प्रचारक धर्म है जो अपने धर्म-स्थानों और धर्म प्रचारकों द्वारा जीवन का क्रान्तिकारी संदेश लोगों तक पहुँचाता आया है। इन धर्म-स्थानों की सेवा-संभाल समय समय सिक्खों के त्यागी-वैरागी साधु-उदासी, निर्मले और निहंग सिंघ आदि करते आये हैं। सिक्ख राज्य के समय सिक्ख सरदारों और राजाओं महाराजाओं ने गुरु-स्थानों की ईमारतों और लंगर आदि के लिए जागीरें आदि लगाईं और ज़मीन जायदादें दीं, जिसका अन्तिम फल अच्छा न हुआ। जिस प्रकार भौतिक सुखों में पड़-कर सरदार ढीले हो गये, उसी प्रकार माया नागिनी ने गुरु-स्थानों के सेवकों को भी डंक मारा और वे कुपथगामी हो गये।

सिक्ख राज्य की समाप्ती पर धर्म प्रचार का कार्य धीमा पड़ गया, संत महंत गुरु-मर्यादा की ओर से बे-परवाह होकर धार्मिक या कौमी जायदाद को निजी बनाकर ऐशो-आराम के लिए प्रयोग करने लगे, और वास्तविक फ़र्ज़ को भूल गये। इन फ़र्ज़ों की चेतावनी देते हुए निरंकारी और नामधारी लहर ने नाम वाणी का प्रचार किया। सिंघ सभा लहर ने सामाजिक बुराईयां मिटाकर सिक्ख संस्कार प्रचलित किये। पंच ख़ालसा दीवान ने भ्रम के किले तोड़े और चीफ़ ख़ालसा दीवान ने 'विद्या मन्दिर' का निर्माण किया, परन्तु इन सुधारकों ने सिक्ख धर्म के केन्द्रों—गुरुद्वारों को अपने हाथों में लेने के लिए कोई ठोस कदम न उठाया। इसका अर्थ यह नहीं था कि वे चाहते नहीं थे, अपितु बात यह थी कि सभी सिक्ख गुरुद्वारों के प्रतिगामी विचारों वाले ऐशप्रस्त महंतों-पूजारियों की सरकार पीठ ठोक रही थी। सरकार यह नहीं चाहती थी कि इन केन्द्रीय स्थानों को जागृत लोगों के हाथ में जाने दिया जाये। ऐसा होने से सिक्ख-शक्ति बढ़ने का ख़तरा था। दूसरा, सरकार को यह भी लाभ था कि धर्म के नाम पर इच्छानुसार इन धर्म मन्दिरों से 'हुक्मनामे' निकलवाकर अपने हाथ मज़बूत किये जा सकते थे। सिंघ सभा के समय ऐसी कई बातें हुईं, महाराजा दलीप सिंघ को अंगेज़ी सरकार का वफ़ादार रहने के लिए हुक्मनामे भेजे गये। प्रो. गुरमुख सिंघ, ज्ञानी दित्त सिंघ आदि महान् सुधारक आगूओं को 'तख़्त' से 'तनख़्वाहिया' करार दिया गया, इसी तरह अंग्रेज़-पूज महंतों द्वारा आज़ादी के परवाने ग़दरी सिक्खों को पतित कहा गया। एक और जलियांवाला बाग़ में ख़ूनी डायर सिक्खों के रक्त के साथ हाथ रंग रहा

था और दूसरी ओर सिक्खों के बड़े धर्म स्थान हरिमन्दिर से सरबराह रूढ़ सिंघ के हाथ से उसी को सोने का कड़ा और सिरोपाउ दिया जा रहा था। ये थी पुजारी-वर्ग की पाप-नीति।

अंग्रेज़ इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि अगर सिक्ख कौम धार्मिक तौर पर सम्पूर्ण जागृति में आ गई और अपने चर्च (गुरुधाम) की स्वयं मालिक बन गई तो फिर इसके क्रान्तिकारी आंदोलन को रोकना कठिन हो जायेगा। हां लगभग 70 वर्ष से 'नीचे भुझंगी और ऊपर फ़िरंगी' की नीति का प्रयोग किया जा रहा था, और सिक्ख, सरकार के वफ़ादार ही बनते चले आ रहे थे परन्तु ये बातें सिक्ख-आचरण के विरुद्ध थीं। सिक्ख कभी भी जबर के साथ समझौता नहीं कर सकता और न ही ग़ुलामी को शान्ति से सहार लेना उसकी ऐतिहासिक रिवायतों के अनुकूल है। जैसे जैसे अंग्रेज़ की जाबर नीति नग्न होती गई, वैसे वैसे सिक्खों की इनक़लाबी जोश उभरता गया। इसके जन्मदाता तो ग़दरी आगू और अकाली ही थे, जिन्होंने यह संग्राम जारी करके कौम को गहरी नींद से जगाया। अतः ऐसी अवस्था में गुरुद्वारा सुधार लहर चलाना, सरकार के साथ टक्कर लेने का ही दूसरा नाम था। क्योंकि मुकद्दमे-बाज़ी में भी सरकार महंतों की सम्पूर्ण रूप से सहायता कर रही थी। उदाहरण के तौर पर उस समय सरकार ने एक नया कानून बनाया कि जिस किसी के पास 12 वर्षों से जायदाद हो, वही उसका मालिक रहेगा। इसी तरह महंतों को गुरुद्वारों की समस्त जायदाद का मालिक बना दिया गया। कितने ही महंतों ने ये जायदादें बेच भी दीं और अपनी ऐश-प्रस्ती जारी रखी। पवित्र स्थान व्यभिचार और शराब के अड्डे बनते गये। महंत सरकारी सहायता से बे-लगाम हुए खुलेआम दुराचार कर रहे थे और इस दुराचार को बढ़ाने में सरकार का हाथ था। मुकद्दमे के दौरान एक व्यभिचारी महंत ने अदालत में यह बात प्रकट की, 'मैं सबसे बड़ा श्री महंत हूँ और मेरे हाथ में 300 गुरुद्वारे हैं। स्वयं सरकार मुझे प्रत्येक वर्ष दो भांग की भरी नाव देती है और मैं आगे सभी गुरुद्वारों में भेजता हूँ।'[1]

इस प्रकार सिक्ख गुरुद्वारे, महंतों के बुरे चाल-चलन और अंग्रेज़ की कूटनीति का शिकार बनते गये थे। अंग्रेज़ चाहते थे कि सिक्खों की राजनीतिक स्वतन्त्रता तो छीनी ही है, साथ साथ इनकी धार्मिक स्वतन्त्रता

---

1. Teja Singh, *Essays in Sikhism*, p. 185.

पर भी दबाव डाला जाए। श्री दरबार साहिब का प्रबन्ध तो सीधा सरकार के हाथ में था। सरबराह डिप्टी कमिश्नर की सलाह से ही समस्त कार्य चलता था।

ऐसी करतूतें देखकर सिक्ख बैचेन हो गये, उन्होंने सोचा कि अब ख़तरे में पड़े बिना सरकारी ज़ुल्म को रोका नहीं जा सकता और न ही दुराचारी महंतों को निकाला जा सकता है। अकाली लहर का तूफ़ान, जिसने फ़िरंगी सरकार को पांच वर्ष (1920-25) चक्कर में डाले रखा, इन दोनों कारणों से ही था। एक तो वे अपने गुरुद्वारे आज़ाद देखना चाहते थे, दूसरा, फ़िरंगी नीति से तंग आये अपने राजनीतिक बंधन तोड़ने के लिए बेचैन थे। इस समय बहादुर अकालियों का क़ाफ़िला इस रण-क्षेत्र में लड़ने के लिए मैदान में आया। गुरुद्वारे आज़ाद करवाये और अकालियों ने, आदर्शिक शान्तिमय सत्याग्रह का सफल तजुर्बा कर एक तरह महात्मा गांधी और समस्त हिन्द के लिए सत्याग्रह का दरवाज़ा भी खोल दिया। लहरें कभी पूर्व योजनाएँ बनाकर नहीं चलतीं—एक अवसर ही होता है, जब ज्वारभाटे की तरह आंतरिक जोश उभरता है, बिजली जैसी चकाचौंध छा जाती है।

'अकाली' अख़बार

मई 1920 ई० में लाहौर से 'अकाली' पत्र आरम्भ हुआ। इसके संचालक मास्टर सुन्दर सिंघ लायलपुरी थे। इस अख़बार ने महंतों की करतूतों और सरकार की धक्केशाही के विरुद्ध सिक्ख जनता को सुचेत करके नई शक्ति का संचार किया। इस पत्र की सरगर्मी को अकाली लहर का बुनियाद-पत्थर समझना चाहिए और इसी से ही इस गुरुद्वारा सुधार लहर का नाम 'अकाली लहर' पड़ा। इसके प्रथम पर्चे की यह नज़म थी :

अख्खाँ खोलो ढिल्लड़ वीरो, आ गिआ फेर अकाली जे।
झंडा फड़िआ हथ सच्च दा, जोति मारदी लाली जे।...
कितना पिआ हनेर भरावो, बाग़ उजाड़े माली जे।
अख्खाँ खोलो ढिल्लड़ वीरो ... ...।

इससे और ऐसे अन्य अख़बारों द्वारा और प्लेटफ़ार्मों पर दिये व्याख्यानों द्वारा सिक्ख कौम के दृश्य की इच्छा बताई जा चुकी थी, परन्तु सरकार

प्रसन्नतापूर्वक उसको पूर्ण नहीं होने देना चाहती थी। कुछ महंत सुधार की बातें मानने के लिए भी तैयार हो गए थे। परन्तु सरकार ने ऐसा होने में बाधा डाली। आख़िर अकालियों ने स्वयं ही गुरुद्वारों पर अधिकार करने की योजना बनाई। लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में कांग्रेस ने कलकत्ते वाले इजलास में ना-मिलवर्तन करने का मता पास किया और सितम्बर 1920 में महात्मा गांधी जी ने 'ना-मिलवर्तन' लहर का मुहूर्त कर दिया और इधर 'सिक्ख लीग' ने भी इसकी पुष्टि का ऐलान कर दिया। इस प्रकार अकाली लहर, ना-मिलवर्तन लहर के साथ ही कंधे से कंधा मिलाकर चलनी आरम्भ हुई।

सबसे पहले 'बाबे की बेर' सियालकोट के ऐतिहासिक गुरुद्वारे पर अक्तूबर 1920 में सिंघों का अधिकार हुआ। यहां सरकार ने स्वैच्छा से हरनाम सिंघ की मृत्यु के पश्चात् (सितम्बर 1918) एक गंडा सिंघ पतित को गुरुद्वारे का सरबराह बना दिया। सिक्खों ने मुकद्दमा किया, परन्तु अदालत ने पचास हज़ार रुपये कोर्ट फ़ीस लगाकर मुकद्दमा दर्ज करने में रुकावट खड़ी कर दी। यह फीस अदा न की जा सकी और अदालत ने मुकद्दमा ख़ारिज कर दिया। स. अमर सिंघ और स. जसवंत सिंघ झबाल सियालकोट गये। सिक्ख संगत में अथाह जोश था। 5 अक्तूबर, 1920 को गुरुद्वारे के प्रबन्ध हेतु 13 मुखी सिंघों की कमेटी बनाकर प्रबन्ध संभाल लिया गया। इस अवसर पर ही सियालकोट के रईस सरदार बाबा खड़क सिंघ (देहांत 1963) जो अकाली लहर के साहसी आरम्भिक जरनैल कहे जाने चाहिए, वे अपनी सरदारी तथा तमाम सुख आराम छोड़कर पंथक सेवा के क्षेत्र में आये।

इस अधिकार से सिक्खों के हृदय में उत्साह उत्पन्न हुआ, उन्होंने चाहा कि अमृतसर दरबार साहिब सिक्खों का केन्द्र है, इसका प्रबन्ध भी कौमी हाथों में आना ज़रूरी है। साधारणतः पुजारी महंत, सुबह के समय मज़हबी सिक्खों को दरबार साहिब में जाने नहीं देते थे। उनकी ओर से लाया गया प्रसाद तो बिल्कुल ही स्वीकार नहीं किया जाता था। ख़ालसा बिरादरी जत्थे ने जलियांवाला बाग़ में दीवान करके निर्णय किया कि ख़ुद देग तैयार करके सतिगुरु के हजूर लेकर जायें। अतः 12 अक्तूबर 1920 को मज़हबी सिंघ प्रसाद लेकर गये, ख़ालसा कालेज के प्रोफ़ैसर, विद्यार्थी तथा और शहर के मुख्य लोग साथ शामिल थे, परन्तु पुजारियों ने प्रसाद लेने और अरदास करने से इन्कार कर दिया। सिक्ख संगत ने कहा कि

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का शब्द पढ़कर, जो गुरु आज्ञा करें, वही कर लें। पढ़ते समय यह शब्द आया :

निगुणिआ नो आपे बखसि लए भाई, सतिगुर की सेवा लाइ ।।
सतिगुर की सेवा ऊतम है भाई, राम नामि चितु लाइ ।।

(सोरठि महला ३, पन्ना 638)

ग़रीब नवाज़ सतिगुरु का यह वचन सुनकर जयकारों की आवाज़ से दरबार साहिब गूँज उठा और पूजारियों का भी झूठा भ्रम मिट गया और उन्होंने अरदास की। यही सिक्ख संगत फिर अकाल तख़्त की ओर माथा टेकने गई और पुजारी बेचारे अपनी ग़ल्तियों के आंतरिक भय से तख़्त से भाग गये। तख़्त के प्रबन्ध के लिए जत्थेदार तेजा सिंघ भुच्चर की देख-रेख में 25 सिंघ वहां ठहरे। अब सरकार को होश आई कि उनके एजंटों और उनकी नीति की किस तरह मिट्टी पलीत हो रही है। इस बात पर पर्दा डालने हेतु दूसरे दिन डिप्टी कमिश्नर ने 9 व्यक्तियों की आरज़ी प्रबन्धक कमेटी बनाई और स. सुन्दर सिंघ रामगढ़िये सरबराह को प्रधान नियुक्त किया। बावा हरकृष्ण सिंघ, प्रो. तेजा सिंघ, भाई देवा सिंघ, हकीम बहादुर सिंघ, तेजा सिंघ भुच्चर, करतार सिंघ झब्बर, चन्दा सिंघ सम्पादक 'पंथ सेवक' और डाक्टर गुरबख़्श सिंघ आदि सदस्य थे।

शिरोमणी कमेटी

अकाल तख़्त से समस्त सिक्ख संगत के नाम हुक्मनामा जारी करके गुरुद्वारों का प्रबन्ध चलाने हेतु विशेष प्रतिनिधि पंथक जत्थे का चुनाव करने के लिए समस्त सिक्ख मुखियों को अमृतसर बुलाया गया। यह बैठक 15 नवम्बर को होनी नियत हुई थी। इससे पहले 13 नवम्बर को सरकार ने अपनी घिनौनी हरकतों से संकोच न किया और स. हरबंस सिंघ अटारी को प्रधान बनाकर स्वयं 36 व्यक्तियों की कमेटी बना दी। प्रोग्राम अनुसार 15 और 16 नवम्बर को भारी पंथक इकट्ठ हुआ। 175 सदस्यों की कमेटी बनाई गई और इसका नाम 'शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' रखा। सरकार की ओर से नियत किये 36 सदस्यों को भी इसमें शामिल करके पंथक नेताओं ने सूझबूझ का परिणाम दिया ताकि समस्त कार्य सर्व-सम्मति से ही चल सके। स. सुन्दर सिंघ मजीठा के विरुद्ध सरकारी भक्त होने के कारण सिक्ख संगत में काफ़ी नाराज़गी थी, उन्होंने खड़े होकर पंथ से क्षमा मांगी। अंतः इस कमेटी के प्रधान स. सुन्दर सिंघ मजीठा, मीत प्रधान स. हरबंस सिंघ अटारी और सचिव स. सुन्दर सिंघ

रामगढ़िया नियुक्त हुए। सिक्ख कौम ने अपनी पंचायती रवायत के अनुसार शायद सिक्ख मिसलों के समय के बाद प्रथम बार अकाल तख़्त के सामने इतनी भारी गिनती में एकत्रित होकर इस पंथक जत्थेबन्दी की सृजना की। कमेटी सृजना का मुख्य उद्देश्य यह था कि समस्त कार्य पंचायती नियमानुसार हों, कोई मनमानी न करे। गुरुद्वारों की संभाल और गुर-मर्यादा का प्रचार एक ही प्रोग्राम अनुसार चलाया जाये।

18 नवम्बर, 1920 को स. अमर सिंघ झबाल और भाई करतार सिंघ झब्बर की देख-रेख में 25 सिक्खों का जत्था पंजा साहिब पहुँचा और शान्तिपूर्वक गुरुद्वारों का प्रबन्ध संभाल लिया। 12 दिसम्बर, 1920 को 'शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' की पहली इकत्रता हुई। इस समय समझदार मुखियों ने गुरुद्वारा प्रबन्ध के इलावा और कार्यों को निपटाने हेतु पंथक जत्थेबन्दी बनाने का कार्य किया। अतः 14 दिसम्बर, 1920 को 'शिरोमणी अकाली दल' नाम की जत्थेबन्दी बनाई गई। इसके पहले जत्थेदार स. बलवंत सिंघ जी और सैक्रेट्री जत्थेदार तेजा सिंघ भुच्चर नियुक्त हुए। दिनों में ही अकाली जत्थेबन्दी मज़बूत होती गई और सभी सरगर्म पंथ-सेवक इसमें सम्मिलित होते गये।

दिसम्बर 1920 में ही सरकार ने ख़ालसा कालेज का प्रबन्ध भी सिक्खों को सौंप दिया। इस समय अकाल तख़्त साहिब पर अकाली सिंघों का अधिकार होने के कारण शेष महंतों पुजारियों को भी अपनी अपनी जगह पर चिन्ता पड़ रही थी। तरनतारन के पूजारी, मिस्टर किंग, कमिश्नर लाहौर के पास पहुँचे और उसने आवश्यकता के समय सहायता देने का भरोसा दिलाकर वापिस भेज दिया। इस आश्वासन से अहंकार में आये हुए पुजारियों ने स. लछमण सिंघ जी धारोवाल कन्या पाठशाला के यात्री जत्थे और तरन तारन के ख़ालसा सेवक जत्थे को दरबार साहिब में कीर्तन करने से रोक दिया। इसी तरह एक स्त्री को अनोचित्य शब्द बोलकर अपमानित किया गया और उसने अकाल तख़्त पर आकर समस्त कहानी सुनाई, जिस पर सिंघों में काफ़ी जोश और रोष पैदा हुआ। अब 26 जनवरी को अकालियों ने दरबार साहिब, तरन तारन पर अधिकार करने का प्रोग्राम बनाया। सिंघों को वहां पहुँचे देखकर पुजारी बहुत घबराये। अकालियों की इच्छा थी कि समस्त कार्य शान्तिपूर्वक ही ख़त्म किया जाये, परन्तु पुजारी बीचो-बीच लड़ाई करने की तैयारी करने लगे। दिन भर समझौते की बातचीत होती रही। शर्तें भी लिखी गईं, परन्तु अन्धेरा होने पर दरबार

साहिब में पुजारियों ने अकालियों पर बरछों और गंडासों से आक्रमण करवा दिया और ईंटें पत्थर भी फैंके। इस महंतग़र्दी में 17 सिंघ घायल हुए और कुछ पुजारियों को चोटें आईं। दूसरे दिन भाई हज़ारा सिंघ जी गांव अलदीन वाले तो शहीदी प्राप्त कर गये और अधिक चोटों के कारण 4 फ़रवरी, 1921 को भाई हुकम सिंघ जी वसाऊकोट भी स्वर्गवास हो गये। इस प्रकार ये अकाली लहर के दो पहले बलिदान थे। दूसरे दिन पुलिस अफ़सरों ने आकर अकालियों को कहा, "मुकद्दमा दर्ज़ करा दें।" परन्तु अकालियों ने कहा, "ये ग्रन्थी पुजारी हमारे ही भाई हैं, हम इन पर मुकद्दमा नहीं करेंगे।" इस बात का पुजारियों पर गहरा प्रभाव पड़ा और उन्होंने लिखती क्षमा मांगकर सारा प्रबन्ध सिंघों के हवाले कर दिया। तरन तारन कमेटी के प्रथम प्रधान स. बलवंत सिंघ रईस कुल्हा और सचिव भाई मोहन सिंघ वैद बनाये गये।[1]

स. सुन्दर सिंघ मजीठा, गवर्नर पंजाब की ऐगज़ैक्टिव कौंसिल के सदस्य हो जाने के कारण शिरोमणी कमेटी की प्रधानगी से 23 जनवरी को खारिज़ हो गए और उनके स्थान पर स. सुन्दर सिंघ रामगढ़िया प्रधान बने।

31 जनवरी, 1920 को गुरु के बाग़ के महंत सुन्दर दास ने भी शिरोमणी कमेटी की ओर से नियत की 11 व्यक्तियों की कमेटी अधीन कार्य करना मान लिया। 5 फ़रवरी को गुरुद्वारा भाई जोगा सिंघ पेशावर और 8 फ़रवरी को गुरुद्वारा केर साहिब ज़िला गुजरात का अधिकार भी सिंघों के हाथ में आ गया।

साका ननकाणा

अब अकाली सुधारकों की दृष्टि ननकाणा साहिब में हो रही कुरीतियों को दूर करने की ओर लगी हुई थी। शिरोमणी कमेटी की ओर से 5-6 मार्च, 1921 को ननकाणे में दीवान करने का निर्णय किया गया। उधर महंत भी अकालियों से लड़ाई करने हेतु बीचो-बीच तैयारी कर रहा था। ख़ासकर अक्तूबर 1920 में जब सिंघों ने सुधार करने के उद्देश्य से गांव धारोवाली में दीवान किया तो महंत नारायण दास बहुत घबराया और उसने और इस सम्बन्ध में और नये कार्य आरम्भ कर दिये। ननकाणा

---

1. फुलवाड़ी का 'तरनतारन नंबर'।

साहिब में संतों-महंतों का एक इकट्ठ बुलाया, जिसमें निर्णय किया गया कि अकालियों का डटकर मुकाबला किया जाये। इस उद्देश्य के लिए 40-50 हज़ार रुपये का चन्दा भी इकट्ठा किया गया ताकि लोगों में अपना प्रचार करने हेतु 'संत सेवक' अख़बार और अच्छी तरह चलाया जा सके। महंत नारायण दास की चरित्रहीनता की कहानियां तो पहले ही चर्चा में थी उसने शरेआम एक मिरासन वेश्या अपने घर रखी हुई थी और गुरुद्वारे को इन क्षुद्र-कार्यों का अड्डा बनाया हुआ था। इलाके में भी भारी रोष था, वे हर कीमत पर नारायण की कुरीतियों से गुरुद्वारे को पवित्र देखना चाहते थे। स. तेजा सिंघ चूहड़काणा, स. करतार सिंघ झब्बर, स. तेजा सिंघ समुन्द्री, मास्टर तारा सिंघ, भाई बूटा सिंघ आदि सज्जण इस सारी सरगर्मी की देखरेख कर रहे थे।

7 फ़रवरी को महंत नारायण दास ने फिर अपने साथियों को बुलाया और बीचो बीच आवश्यक निर्णय किये। इन में बाबा करतार सिंघ बेदी, स. मंगल सिंघ कूका और कई भट्टी मुसलमान भी आये। महंत ने मिट्टी के तेल के 14 पीपे तथा और कई तरह के शस्त्र इकट्ठे करवाये। 17 फ़रवरी को लायलपुर की सिंघ सभा में सुधारक अकालियों की बैठक हुई। महंत नारायण दास ने इलाके में यह ग़ल्त ख़बर फैला दी थी कि वह 20 फ़रवरी को लाहौर एक कान्फ्रेंस पर जा रहा है, परन्तु बीच में बात कुछ और थी। सारी स्थिति को जानकर सिक्ख-आगूओं को आदेश किया गया कि इस दिन 'कोई सिंघ ननकाणा साहिब न पहुँचे, जो दिन फिर निश्चित किया जाये, उस दिन पहुँचा जाये।' समस्त स्थानों पर सूचना पहुँचा दी गई, परन्तु स. करतार सिंघ झब्बर और स. लछमण सिंघ धारोवाली के जत्थे चल पड़े थे, उनको रोकने का इन्तज़ाम किया गया। स. करतार सिंघ झब्बर तो चन्द्र कोट की झाल पर ही रोक लिये गये थे परन्तु रोकने वालों को भाई लछमण सिंघ जी के जत्थे का कोई पता न चला। इस जत्थे में लगभग दो सौ से अधिक सिंघ थे। जत्था 20 फ़रवरी सवेरे ही ननकाणा साहिब गुरुद्वारा जन्म-स्थान पहुँचा और सब सिंघ माथा टेक कर बैठ गये। महंत नारायण दास ने प्रसाद तैयार करवाने के बहाने रखे हुए बदमाश पठानों तथा और गुंडे-बदमाशों को तैयारी का आदेश दे दिया। छतों के ऊपर से सिंघों पर गोलियां चलनी आरम्भ हुईं, सिंघ शान्तिमय बैठे हंसते हंसते गोलियां खाते रहे। भाई लछमण सिंघ धारोवाल को जंड

के वृक्ष के साथ बांधकर जला दिया गया। यह कार्य काफ़ी समय होता रहा, फिर तड़पते घायल सिंघों को नेज़ों और बरछों से मार मार कर ख़त्म किया जाने लगा। मिट्टी का तेल डालकर लकड़ों से सभी लाशें फूंककर महंत समस्त निशान मिटा देना चाहता था। जब भाई दलीप सिंघ साहोवाल ने गोलियों की आवाज़ सुनी तो वह भागे भागे गुरुद्वारे की ओर आये, तो महंत ने उनको भी वहीं पर क़त्ल करवा दिया और ईंटों की जलती भट्ठी में फेंककर जला दिया। लगभग दुपहर तक यह क़त्लेआम जारी रहा और आख़िर तड़पती लाशों और शेष लाशों पर भी मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया।

इस ख़ूनी कारे का पता लगने पर स. उत्तम सिंघ कारखाने वालों ने सरकारी अफ़सरों और सिक्ख आगूओं को जगह जगह तारें भेजीं। डिप्टी कमिश्नर मि. किंग भी उसी दिन दुपहर बाद पहुँच गया, परन्तु तुरन्त कोई कार्यवाही न की। भाई करतार सिंघ झब्बर (देहांत नवम्बर 1962) का जत्था ननकाणा साहिब पहुंच गया। फ़रवरी को मुखी सिक्ख आगू स. हरबंस सिंघ अटारी, स. महताब सिंघ, बाबा केहर सिंघ पट्टी, स. तेजा सिंघ समुंद्री और मास्टर तारा सिंघ भी ननकाणे पहुँचे।

सरकार ने ननकाणे जाने के लिए टिकटें भी बंद कर दीं तथा और भी काफ़ी रोके लगाईं, परन्तु भाईयों की शहीदियां सुनकर सिक्ख-संगत रुक न सकी। हज़ारों की गिनती में सिक्ख एकत्रित हुए। यह ख़ूनी दृश्य देखकर सिक्खों के दिल तड़प रहे थे और महंत की करतूत और सिंघों का जोश देखकर मि. किंग ने गुरुद्वारे की चाबियां सिक्ख आगूओं को दे दीं।

22 फ़रवरी की संध्या को गवर्नर मैक्लेगन भी अपने कौंसिल सदस्यों सहित ननकाणे पहुँचा और 23 फ़रवरी को समस्त शहीदों का संस्कार किया गया। शहीद हुए सिंघों की गिनती 100 से 150 के बीच अंकित की गई है। सरकारी रिपोर्ट 130 गिनती देती है। स. चरन सिंघ पुलिस इंस्पेक्टर ने मौके पर जाकर अंग अंग जोड़कर जो रिपोर्ट की, उस में 156 शहीद हुए बताए हैं। स. गुरबख़्श सिंघ शमशेर कर्ता *शहीद इतिहास* ने केवल 86 गिनती लिखी है।[1]

असलीयत यह है कि नेज़ों, गंडासों से टुकड़े टुकड़े की गईं लाशें

---

1. *अकाली,* लाहौर, 19 फ़रवरी, 1939.

और फिर मिट्टी का तेल डालकर जलाए गये टुकड़ों की ठीक गिनती की जानी कठिन थी, परन्तु सरकारी रिर्पोट में बताई गई गिनती से कम गिनती मानना ठीक नहीं, क्योंकि सरकार ने तो बदनामी से बचने के लिए स्वयं ही कम से कम बतानी ठीक समझी थी।

इस शहीदी साके की ख़बर समस्त देश में फैल गई। 3 मार्च, 1921 को महात्मा गांधी जी भी शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए ननकाणे पहुँचे। इसी तरह लाला लाजपत राय और मौलाना शौकत अली आदि और सर्व हिन्द नेता भी ननकाणे आये। सभी ने महंत की करतूतों और सरकारी नीति की निन्दा की। यह बात स्पष्ट है कि इतना ज़ुल्म और इतनी बड़ी निर्दयता महंत अकेला नहीं कर सकता था, सरकार की शह के बिना ऐसा होना असंभव था। सरकार को महंत की ओर से की जा रही समस्त तैयारी का पता था। सरकार यह चाहती थी कि कुछ अकाली नेता तो महंतों के साथ लड़ाई करवाकर ख़त्म कर दिये जायें और शेष को 'फ़सादी' ठहराकर कैद में भिजवा दिया जाये। इस प्रकार सिक्खों की बढ़ रही इन्क़लाबी लहर को बल से दबा दिया जाये। परन्तु इस साज़िश का पता लगने पर यह बात सम्पूर्ण न हो सकी। इस शहीदी कारनामे ने सिक्ख जनता में एक नये जोश की लहर पैदा कर दी और जो सिक्ख कुछ सुस्त भी थे उनके अन्दर भी क्रान्ति की आग सुलगा दी और वे महंतों और सरकार को सीधे रास्ते पर लाने के लिए तत्पर हो गये। सिक्खों ने अच्छी तरह अनुभव कर लिया कि सरकार ख़्वाहमख़्वाह टांग अड़ा कर उनकी धार्मिक आज़ादी में दख़ल-अंदाज़ी कर रही है और महंतों को सहायता देने का विश्वास दिलाकर भड़का रही है। सिक्ख सरकार के अनोचित कार्यों से तंग आकर इस प्रकार सोचने लग पड़े कि हम महंतों के साथ मुकद्दमे लड़लड़ कर काबुल से कलकत्ते तक के गुरुद्वारों का सुधार कब तक करेंगे, हमें इस बुरी सरकार को ठीक करके स्वराज्य हेतु भी संघर्ष करना चाहिए, जिससे महंतों और महंतों की पिट्ठू सरकार, दोनों का अन्त हो सके।

दूसरी ओर महात्मा गांधी जी कह रहे थे सिक्ख बहादुर हैं, 'ये अपने गुरुद्वारे तो स्वतन्त्र करवा ही रहे हैं, इनको जानना चाहिए कि हिन्दुस्तान भी एक बड़ा गुरुद्वारा है जो इनके बलिदानों से ही आज़ाद होगा।' इस वातावरण ने सिक्खों के संकल्प और पक्के कर दिये तथा वे चढ़दी कला

में रहकर अधिक सरगर्मी दिखाने लगे। शहीदों का ताज़ा बहा रक्त उनमें नया जोश उत्पन्न कर रहा था। अब शान्ति से बैठा नहीं जा सकता था। सरकारी नीति यह थी कि बढ़ रही सिक्ख शक्ति को किसी महंत या राजे महाराजे से टकराकर ख़त्म कर दिया जाये और स्वयं बीच में पड़कर समझौते की बातें की जायें। दूसरी ओर, इस लहर में ऐसे सरकारी व्यक्ति भी शामिल करने की कोशिश की गई जिससे सिक्खों को कांग्रेस की 'असहयोग' लहर से दूर रखा जा सके, परन्तु ये प्रयत्न व्यर्थ गये।

6 मार्च, 1921 को ननकाणे कमेटी की बैठक में यह निर्णय हुआ कि शहीदों के मुकद्दमे लड़ने में भी सरकार के साथ ना-मिलवर्तन ही रखा जाये। आख़िर सरकार ने 9 इंच से बड़ी कृपान और सफ़ाजंग (टकुआ) पर भी पाबंदी लगा दी, झब्बर और भुच्चर नेता गिरफ़्तार हुए और सज़ा हुई।

14 मार्च, 1921 को पंजाब कौंसिल में सरकार की ओर से यह प्रकट किया गया कि 5 अप्रैल को कौंसिल में गुरुद्वारा बिल पेश कर दिया जायेगा, ताकि शान्तिपूर्वक गुरुद्वारा सुधार का कार्य किया जा सके। शिरोमणी कमेटी ने भी 20 मार्च को बारह व्यक्तियों की एक सब-कमेटी बना दी जो बिल की अच्छी तरह देख-भाल कर सके। कमेटी ने यह भी मता पास किया कि 10 अप्रैल, 1921 तक कोई सिक्ख किसी गुरुद्वारे के प्रबन्ध में दख़ल-अंदाज़ी न करे, बिल तैयार हो जाने पर ही सारा कार्य निपटा लिया जायेगा।

सरकार ने बिल का जो ढांचा बनाया, उससे कमेटी की संतुष्टी न हुई और बाद में सरकार ऐसे ही बहाने लगाती रही। कमेटी ने कई बार चेतावनी दी परन्तु इसका कोई प्रभाव न पड़ा। 30 अप्रैल, 1921 को शिरोमणी कमेटी रजिस्टर्ड करवा ली गई। मई में कमेटी ने मता पास किया कि 15 नवम्बर, 1921 तक सरकारी नीति के विरुद्ध रोष करके काली पगड़ी बांधी जाये। ननकाणे साहिब में कड़ाहे में काला रंग उबालकर रखा हुआ था, जो भी सिक्ख वहां पर आता उसकी पगड़ी रंग दी जाती। इस समय से काली पगड़ी अकालियों का एक विशेष चिन्ह बन गया। जुलाई 1921 में शिरोमणी कमेटी का नया चुनाव हुआ और 27-28 अगस्त को अकाल तख़्त पर जनरल मीटिंग हुई, जिसमें बाबा खड़क सिंघ प्रधान और स. महताब सिंघ जनरल सैक्रेट्री चुने गये। सरदार बहादुर महताब

सिंघ (1879-1938 ई०) सरकारी वकील थे और पंजाब कौंसिल के मीत प्रधान थे, अकाली लहर की सरगर्मी देखकर आप सभी कुछ त्यागकर आये थे। लहर चलाने में आपकी बुद्धिमत्ता ने अच्छा हिस्सा डाला। इस जनरल मीटिंग ने सरकार की बेईमानी देखकर आख़िर 'असहयोग' का मता भी पास कर दिया, जिससे प्रो. जोध सिंघ और स. हरबंस सिंघ अटारी आदि मैंबर कमेटी की सदस्यता से त्याग-पत्र दे गये। 'असहयोग' लहर ज़ोरों पर आई और जगह जगह पर सरकार के विरुद्ध दीवान और मुज़ाहरे होने लगे।

चाबियों का मोर्चा

29 अक्तूबर को शिरोमणी कमेटी ने निर्णय किया कि दरबार साहिब की चाबियाँ भी कमेटी के प्रधान के पास ही होनी चाहिएं। इस समय स. सुन्दर सिंघ रामगढ़िया सरकार की ओर से सरबराह नियुक्त हुए और कमेटी की ओर से मैनेजर भी यही थे और चाबियाँ भी इनके पास ही थीं। इस स्थिति में मामला स्पष्ट नहीं था कि प्रबन्ध सरकार का है अथवा कमेटी का ? 7 नवम्बर, 1921 की रात को डी.सी. अमृतसर ने लाला अमरनाथ ई.ए.सी. को भेजकर चाबियाँ स. सुन्दर सिंघ रामगढ़िये से ले लीं, जिस पर भारी आन्दोलन आरम्भ हो गया। 15 नवम्बर को गुरु नानक साहिब के अवतार धारणे का पर्व था, इसलिए सरकार ने नये नियुक्त किये 'सरबराह' कप्तान बहादुर सिंघ को चाबियाँ देकर दरबार साहिब भेजा, परन्तु कमेटी ने उसको सरबराह मानने से इन्कार कर दिया।

26 नवम्बर को अजनाले में डिप्टी कमिश्नर ने स. दान सिंघ वछोया, स. तेजा सिंघ, स. जसवंत सिंघ और पंडित दीना नाथ सम्पादक 'दर्द' को गिरफ़्तार कर लिया और बाद में बाबा खड़क सिंघ, स. महताब सिंघ, मा. सुन्दर सिंघ लायलपुरी, स. तेजा सिंघ समुन्द्री, स. अमर सिंघ झबाल, मा. तारा सिंघ आदि लीडर भी पकड़ लिये गये। 27 नवम्बर को कमेटी ने निर्णय किया कि 4 दिसम्बर को जगह जगह पर चाबियों के मामले सम्बन्धी रोष करने हेतु, दीवान लगाये जायें। जगह जगह भारी दीवान हुए। 6 दिसम्बर को कमेटी ने मता पास किया कि कोई सिक्ख चाबियाँ वापिस लेने के मामले में न आये, जितना चिर इस झगड़े में पकड़े गये सिंघों को रिहा न किया जाये। एक और मते द्वारा प्रिंस ऑफ़ वेल्ज़ के स्वागत का भी बाईकाट किया गया।

सिक्खों ने जिस बहादुरी, निर्भयता और शान्तिमय ढंग से यह आन्दोलन चलाया, इसकी ग़ैर-सिक्खों में भी प्रशंसा हुई। वास्तव में सरकार, पंथ की ओर से चुनी गई शिरोमणी कमेटी को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी, जो कि उसकी बड़ी भूल थी। शिरोमणी कमेटी के अतिरिक्त कोई और सिक्ख स्वेच्छा से चाबियाँ संभालने को भी तैयार नहीं था, इस स्थिति में डी.सी. स्वयं कमेटी के कार्यालय में गया कि अब इस मामले को किस तरह निपटाया जाये। 11 जनवरी, 1922 को सर जॉन मेनारड ने शिरोमणी कमेटी को प्रमाणित जमात मानकर पकड़े गये सिक्खों की रिहाई का ऐलान कर दिया। 17 जनवरी को चाबियों के मोर्चे में गिरफ़्तार किये गये 193 सिंघों में से 150 छोड़ दिये गये और उनके स्वागत में 19 जनवरी को अकाल तख़्त के सामने भारी दीवान लगाया। एक सरकारी कर्मचारी चाबियाँ लेकर दीवान में आया। बाबा खड़क सिंघ जी ने खड़े होकर सिक्ख संगत से पूछा, "ख़ालसा जी ! क्या मुझे चाबियाँ लेने की आज्ञा है ?" समूह संगत ने जैकारों की गूँज में स्वीकृति दी। महात्मा गांधी जी ने सिक्खों की यह कामयाबी की सूचना सुनकर तार भेजी, "प्रथम मोर्चा जीत लिया गया है।"[1] पंडित दीना नाथ, जो इसी मामले में पकड़े गये थे, उनको रिहा नही किया गया। सिक्खों ने आन्दोलन करके आख़िर उनको भी रिहा करवाया।

चाबियों के मोर्चे की जीत ने अकालियों में उथल-पुथल मचा दी और अनजान लोग कुछ मनमानी बातें करने लगे। सरकार ने कृपान पहनने तथा ताज़ीरी चौंकियों का ख़र्च न देने के दोष में महीना मार्च 1922 के लगभग दो सप्ताहों में ही जगह जगह पर से 1700 अकाली गिरफ़्तार कर लिये। जिसके काली पगड़ी बंधी नज़र आती उसी को पकड़कर जेल भेज दिया जाता। इन गिरफ़्तारियों ने अकालियों में फिर ज़ब्त कायम कर दिया और बुरछागर्दी आती आती दूर चली गई। मास्टर तारा सिंघ *मेरी याद* में लिखते हैं, "अगर यह न होता तो शायद अकाली शिरोमणी कमेटी को उसी समय समाप्त कर देते।" 30 मार्च, 1922 को इस नई स्थिति पर विचार करने हेतु कमेटी की जनरल मीटिंग हुई। सरकार ने कहा कि गुरुद्वारा बिल बनाने के लिए कमेटी अपने प्रतिनिधि भेजे, परन्तु कमेटी ने इन्कार कर दिया। अप्रैल में बाबा खड़क सिंघ जो कि सूबा कांग्रेस

---

1. *Essays in Sikhism*, p. 200.

कमेटी के भी प्रधान थे, गिरफ़्तार हो गये। जुलाई में शिरोमणी कमेटी के ऐक्टिंग प्रधान स. महताब सिंघ और भगत जसवंत सिंघ सैक्रेट्री नियुक्त किये गये।

गुरु का बाग़

गुरु का बाग़ के गुरुद्वारे का महंत सुन्दर दास था, जिससे एक वर्ष पहले कमेटी का समझौता हो गया था और महंत ने अमृतपान करके कमेटी के अधीन सेवा करना स्वीकार कर लिया था। सिंघों पर सरकारी सख़्ती का दौर देखकर महंत ने भी अपने इरादे बदल लिये। उसने समझा कि अब फिर जायदाद अपने अधिकार में की जा सकेगी। पहले जैसे 8 अगस्त को पांच सिंघ गुरु के बाग़ की ज़मीन से, जो समझौते के अनुसार कमेटी के प्रबन्ध के नीचे आ चुकी थी, लकड़ें लेने गये, किसी ने कुछ न कहा और न ही महंत ने रिपोर्ट की। हां, इस बात की सूचना बेदी ब्रिज लाल ने पुलिस को पहुँचाई, जिस पर 9 अगस्त को पुलिस इन पांच सिंघों को गिरफ़्तार करके ले गई और 10 अगस्त को छह-छह मास की सज़ा सुना दी गई। सरकार ने ऐसा क्यों किया जब कि कमेटी के व्यक्ति गुरुद्वारे की जायदाद में से ही गुरु के लंगर के लिए लकड़ियां लाते थे, इसका सरकार को भी कोई पता नहीं था। परन्तु सरकार तो जान-बूझकर टांग अड़ा रही थी ताकि अकालियों को किसी न किसी तरह जेल भिजवाया जा सके। अगर ये कानून की उल्लंघना कर रहे थे तो महंत सुन्दर दास की रिर्पोट पर ही पुलिस को वहां पहुँचने की आवश्यकता थी। परन्तु वास्तविकता यह है कि गोरा सरकार किसी न किसी बहाने 'ना-मिलवर्तनिये' सिक्खों को दबाने-धमकाने की स्कीमें बना रही थी। आगे की घटनाएँ इस बात को और स्पष्ट करती हैं।

10 से 22 अगस्त तक पुलिस ख़ामोश बैठी रही और कोई गिरफ़्तारी न हुई, आख़िर ऊपर से आये आदेशानुसार 22 तारीख़ को गिरफ़्तारियों का सिलसिला आरम्भ हुआ। मि. डंट, डिप्टी कमिश्नर अमृतसर 25 अगस्त को शिमले से विशेष आदेश लेकर अमृतसर पहुँच गया और फिर मार-पीट का काम भी आरम्भ हो गया। 26 अगस्त, 1922 को शिरोमणी कमेटी की मीटिंग कर रहे आंतरिक सदस्य—स. महताब सिंघ प्रधान, भगत जसवंत सिंघ जनरल सैक्रेट्री, प्रो. साहिब सिंघ मीत सैक्रेट्री, स. सरमुख सिंघ झबाल

(प्रधान अकाली दल), मास्टर तारा सिंघ, बाबा केहर सिंघ पट्टी, स. रवेल सिंघ भी गिरफ़्तार कर लिये गये। सरकार ने गुरु के बाग़ में पुलिस और बढ़ा दी तथा नीति यह धारण की कि जो भी सिंघ लकड़ियां लेने या वैसे आये, उसकी लाठियों से ख़ूब मार पीट की जाये। सिंघों ने भी अकाल तख़्त के सामने भरे दीवान में ऐलान किया कि 'गुरु का बाग़ सिक्ख कौम की मलकीयत है, अगर सरकार ने अपना दख़ल देना न छोड़ा तो इसी तरह शान्तिमय सत्याग्रह जारी रहेगा।'

इस समय सिवल न-फुरमानी की लहर सरकार ने दबा दी थी, इसलिए उसको घुमंड था कि यह ख़ालसई जोश भी मार-पीट से ठंडा कर दिया जायेगा, परन्तु उसका यह अनुमान ग़ल्त निकला। 30 अगस्त को 60 के लगभग सिक्खों को गुरु के बाग़ की ओर भेजा गया। रास्ते में रात हो जाने के कारण सिंघों को वहां पर ही आराम करना पड़ गया, परन्तु पुलिस ने सो रहे जत्थे पर सख़्त मार-पीट की। 31 अगस्त को प्रत्येक दिन सौ सौ का जत्था अकाल तख़्त से अरदास करके जाने लगा। रास्ते में ही जत्थे पर सख़्त मार-पीट होती और सिक्खों के केशों को पकड़कर मार मारकर बेहोश करके फेंक दिया जाता। बाद में कमेटी की ओर से मोटरें जातीं और घायलों को हस्पताल ले जाकर उनकी सेवा-संभाल की जाती। इस समय तीन हस्पताल काम कर रहे थे, जिनका प्रतिदिन का तीन हज़ार रुपया ख़र्च आता था। परन्तु बावजूद इतनी सख़्ती के किसी सिंघ ने शान्तिमय की प्रतिज्ञा न तोड़ी। 2 सितम्बर को पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने भी सिक्खों के इस अद्वितीय सत्याग्रह को प्रत्यक्ष देखकर प्रशंसा और हमदर्दी जताई। 3 सितम्बर को मुसलमानों ने ख़ैर दीन की मस्जिद में सत्याग्रही सिक्खों से सहानुभूती करते हुए अल्ला के आगे दुआ की। 9 सितम्बर को पुलिस ने रास्ते की चौंकी उठा ली और रास्ते में की जा रही मार-पीट बंद करवा दी और जत्था सीधा गुरु के बाग़ में पहुँचा। मि. बी.टी. डिप्टी सुपरिटेंडैंट पुलिस ने ख़ूब पिटाई करवाई, परन्तु सिंघों की कुर्बानी और धार्मिक उत्साह भी अद्वितीय था। वे लाठियों की मार खाते 'वाहिगुरु वाहिगुरु' कहते और कई बार ये भी कहते, "और गफ्फे बख़्शो (और पीटो)।" सिक्खों की ऐसी भावना देखकर प्रत्येक ग़ैर-सिक्ख ने भी इनकी प्रशंसा की।

'मुस्लिम आऊट लुक' 7 सितम्बर, 1922 के अख़बार में लिखता है, जितनी देर मार पड़ती रही नग़ारा बजता रहा, अकाली ज़मीन पर बैठ

गये, उनकी पीठ, टांगें, टखनों और कई भागों पर लाठियाँ मारी गईं। ये पिटाई बहुत अधिक ज़ालिमाना और निर्दयता भरी थी, इसको देखा नहीं जा सकता था।' इसी तरह डॉ. खान चन्द देव अकालियों की मानसिक दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं, 'ये अकाली लहू हड्डियों के नहीं बने हुए थे, न ही इनमें साधारण मनुष्यों वाली आत्मा थी, इनकी शारीरिक और आत्मिक शक्ति सचमुच अंदाज़े से बाहर थी।' इसी तरह ख़िलाफ़त कमेटी के मुखी मिरज़ा याकूब बेग जिन्होंने बहुत अरसा घायलों की डाक्टरी सेवा की, लिखते हैं, 'सिक्ख पंजाब की समस्त कौमों से, सरहद्दी पठानों के अतिरिक्त, सख़्त-जान तथा शक्तिशाली हैं। अगर इतनी पिटाई किसी और कौम की हुई होती तो वे बहुत दुःख मनाती। मैंने किसी आदमी को मार पड़ते समय 'हाय ! हाय !' करते हुए नहीं देखा और न ही किसी ने मार-पीट से अपने आप को बचाने की कोशिश की। प्रत्यक्ष रूप में देखा जाए तो पुलिस में ज़ुल्म और अकालियों में परमात्मा निवास करता है।'

12 सितम्बर को पादरी सी.एफ़. एण्ड्रयूज़ ने स्वयं आकर मार-पीट होती देखी और इस सम्बधी गवर्नर पंजाब के साथ भेंट करते हुए कहा कि हज़ारों ईसा मसीह प्रतिदिन अन्याय का शिकार हो रहे हैं, जो संसार को शान्ति और साहस का नया पाठ सिखा रहे हैं।[1] 13 सितम्बर को गवर्नर सर एडवर्ड मैक्लेगन भी गुरु के बाग़ पहुँचा। उसके आदेश से आगे से मार-पीट होनी बंद हुई और गिरफ़्तारियाँ होने लगीं। अब तक 1300 के लगभग गिरफ़्तारियाँ हो चुकी थीं। पहले 20, 20 सिंघों का जत्था जाता रहा और 10 अक्तूबर से फिर सौ-सौ का जत्था प्रतिदिन जाने लगा। 25 अक्तूबर को रसालदार अनूप सिंघ की देखरेख में सौ सैनिक सिक्ख पैनशनरों का जत्था गया। दूर दूर से हिन्दु मुसलमान सिंघों के इस मोर्चे को देखने के लिए आते और सरकार को फटकारें पाकर जाते थे। सय्यद बुधू शाह की संतान ने भी इस सत्याग्रह के लिए स्वयं को पेश किया। गिरफ़्तार होने वाले सिंघों को सरकार भूखे ले जाकर दूर दूर के जेलख़ानों में भेजती जा रही थी, क्योंकि पंजाब की जेलें सरकारी ज़ुल्म से पूर्णतः भर चुकी थीं और कोई स्थान नहीं रहा था।

---

1. A new heroism, learnt through suffering, has arisen in the land. A new lesson in moral warfare has been taught to the world.
(C.F. Andrews)

साके में साका (साका पंजा साहिब)

30 अक्तूबर, 1922 को गुरु के बाग़ के मोर्चे के सिंघ कैदियों की रेलगाड़ी अटक की ओर भेजी जा रही थी। पंजा साहिब के सिंघों ने कैदी भाईयों को दूध-पानी पिलाने का विचार बनाया। स्टेशन मास्टर गाड़ी खड़ी करने को न माना, तो कई सिंघ रेल-पटड़ी पर लेट गए, उन्होंने कहा, "हमारे प्राण चाहे चले जायें, हमने अपने भूखे भाईयों की सेवा अवश्य करनी है। इंजन चलता हुआ पार कर गया और गाड़ी खड़ी हो गई। भाई प्रताप सिंघ ख़ज़ानची गुरुद्वारा पंजा साहिब और भाई कर्म सिंघ जो यात्रा के लिये आये थे, दोनों सिंघ उसी स्थान पर शहीद हो गये और छह सिंघ सख़्त घायल हुए।

इस तरह प्रत्येक स्थान पर सिंघों के मन में बलिदानों का चाव अधिक तीव्र था। इधर बी.टी. की डांगों की मार झेली जा रही थी और उधर इंजनों का मुकाबला हो रहा था। सिक्खों को प्राणों से धर्म की कीमत स्पष्ट ज़्यादा नज़र आती थी।

गुरु के बाग़ का सत्याग्रह, मार-पीट और गिरफ़्तारियों का क्रम 17 नवम्बर को समाप्त हुआ, पराजित हुई सरकार ने सर गंगा राम को कहा कि वह गुरु के बाग़ की ज़मीन ठेके पर ले लें। यह तो एक बहाना था। गंगा राम ने ज़मीन ठेके पर लिखा ली और पुलिस को कहा, 'जायें, मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं।' इस प्रकार गुरु के बाग़ का मोर्चा समाप्त हुआ। कुल 5605 कैद हुए, जिसमें 30 शिरोमणी कमेटी के सदस्य भी थे। इस मोर्चे के लिए कमेटी के पास तीन लाख रुपये का फ़ंड एकत्र हुआ, जिसमें आधा मोर्चे पर ख़र्च हुआ। 14 मार्च, 1923 को मुख्य अकाली रिहा हुए और अप्रैल-मई 1923 में इस सत्याग्रह के सभी कैदी रिहा किये गये। निर्लज्ज सरकार ने रिहाई करते समय कहा कि क्योंकि अकालियों ने अमृतसर में वैशाखी पर हिन्दु मुस्लिम फ़साद रोकने हेतु सरकार की बहुत सहायता की है, इसलिए सभी अकाली कैदी रिहा किये जाते हैं। यह था फ़िरंगी मदारी का खेल।

सरब हिन्द कांग्रेस कमेटी ने मोर्चा गुरु का बाग़ के संबंध में 17 सितम्बर, 1922 को ही एक पड़तालिया कमेटी नियत की, जिसने 352 पृष्ठों की विस्तृत रिर्पोट में प्रत्येक जगह पर सरकारी सख़्ती को निंदित किया और अकालियों के शानदार शान्तिमय आंदोलन की प्रशंसा की। रिर्पोट में लिखा है—

'अकालियों को कई तरह से उकसाया भी गया, परन्तु वे शान्तिमय और स्थिर रहे। सिक्खों जैसी फ़ौजी कौम को पुलिस की ओर से उत्तेजित करना और फिर नितांत अहिंसा पर स्थिर रहना, यह बात विशेष महत्ता रखने वाली है। हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर बिल्कुल भी संकोच नहीं कि मार-पीट हर हालत में अधिक थी। हमें यह कहने से दुःख होता है कि इतनी निर्दयता और कानून की उलंघना करके बेतहाशा मारना पहले से ही सोचा हुआ था और मनुष्यता के बिल्कुल विरुद्ध था। अन्त में हम उस शहीदी, ज़बत और शान्तिमय के जोश की अन्यन्त प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते, जो अकालियों में विद्यमान थी, और जिसने अकालियों को शान्तिमय के ऊँचे उद्देश्य पर पाबंद रखते हुए अकथ्य और असहाय कष्टों में इज़्ज़त और ईमान के साथ कामयाबी तक पहुँचाया।'

गुरु के बाग़ के इस मोर्चे में सरकार की ओर से सख़्ती करवाने वाले अफ़सर मि. डंट डिप्टी कमिश्नर, मि. जैनकनज़ कायम-मुकाम डी.सी, मि. मैक्फरसन एस.पी. और मि. बी.टी. डिप्टी सुपरिटेंडैंट और मि. लाब आदि थे। बी.टी. निर्दयता से मार मारने में अधिक बदनाम हुआ और कई वर्षों के बाद मलवई बहादुरों—बचन सिंघ लोहा खेड़ा, भोला सिंघ और स. करतार सिंघ छीनीवाल आदि ने इसको सुनाम के नज़दीक गांव चट्ठे, जहां कि इसका निवास-स्थान था, गोली का निशाना बनाकर इस कौमी अपमान का बदला लिया था। शेष मार-पीट के लिए अधिकतर डंडा पुलिस विशेष तौर पर जेहलम, शाहपुर से सूबा सरहद की ओर से भरती करके रखी गई थी और कुछ गोरखे भी थे। इस मोर्चे की फ़िल्म भी बनाई गई परन्तु सरकार ने अपनी काली करतूतों को छिपाने के लिए फ़िल्म दिखाने की अनुमति न दी।

बब्बर लहर

सिंघों ने लम्बी सबर शान्ति धारण करके यह मोर्चा तो जीत लिया, परन्तु कृपान को धारण करने वाले, तेग़ के धनी बहादुर आंतरिक रूप में क्रोध से भरे हुए थे। ग़द्दार चापलूस मुख़बरों (जासूसों) और फ़िरंगी सरकार की ओर से किये गये अत्याचारों का बदला लेने की जोश उनके अन्दर जागृत हो पड़ा था। इस जोशीले ज़ज़बे ने इस समय दुआबे में

'बब्बर अकाली लहर' का रूप धारण किया और निर्भय बहादुर सिंघों ने मौका पाकर चापलूसों का सुधार करना आरम्भ किया। बब्बरों की ज़बान पर 'सुधार करने' का भाव ख़त्म करना था। इस बब्बर लहर के आरम्भिक जत्थेदार किशन सिंघ गड़गज्ज (गांव विणग, ज़िला जालंधर) और बाबू संता सिंघ (गांव हरिओं, ज़िला लुधियाना) आदि थे। मास्टर मोता सिंघ जी भी इनकी गुप्त सहायता करते रहते थे। इन्होंने 'बब्बर अकाली दल' स्थापित करके एक साइकलो सटाइल मशीन ली और अगस्त 1922 में 'बब्बर अकाली' अख़बार निकालना आरम्भ किया। सम्पादक करम सिंघ दौलतपुर में थे। इस मशीन को 'सफरी मशीन' अथवा 'उडारू प्रैस' कहा जाता था। इस अख़बार में बड़ी जोश-पूर्ण नज़में प्रकाशित होती थीं—

हिन्दु मुसलमान ते सिंघ सूरिओ वे, वेला आ गिआ ग़दर मचावणे दा।
जुलम वेख किउँ सूरिओ! चुप बैठे, वक्त आ गिआ तेग उठावणे दा।

बब्बरों में अकालियों जैसा धार्मिक जोश और ग़दरी क्रान्तिकारियों जैसी योजनाएँ दोनों मौजूद थीं। इन्होंने मि. किंग चीफ़ कमिश्नर लाहौर, मि. करी डी.सी. शेख़ूपुरा, मि. बेरिंग एस.पी., स. सुन्दर सिह मजीठा, स. गज्जण सिंघ लुधियाना और कई सरकार-पिट्ठू महंतों को मार डालने की योजना बनाई। इस अनुसार दो तीन मास शस्त्र एकत्र करने हेतु तैयारी होती रही और दुआबे में कई सरकारी पिट्ठू मार भी दिये गये। रियासत कपूरथले में अकालियों का सबसे बड़ा विरोधी बिशन सिंघ ज़ैलदार था, इसको 10 फ़रवरी, 1923 को चार गोलियों से उसी स्थान पर मार दिया और कहा, "ये लीजिए चार मुरब्बे !" उन दिनों में सरकार मुख़बरों को मुरब्बे दे देकर बहुत उत्साहित करती थी। रियासत कपूरथला के गांव बुबेली और गांव मुंडेर में बब्बरों का अच्छा टाकरा हुआ, बुबेली में समिथ की देखरेख में लगभग दो हज़ार पुलिस थी परन्तु चार बब्बर (करम सिंघ दौलतपुर, उदय सिंघ रामगढ़ झुंगियां, बिशन सिंघ मांगट और महेन्द्र सिंघ पंडोरी) गोलियां खाते हुए सामने शहीद हो गये। किसी ने शस्त्र फैंककर प्राणों की रक्षा करने की चिन्ता न की। इस समय युद्ध का मैदान दुआबा बना हुआ था। सरकार ने 29 ताज़ीरी चौकियां पंजाब में बैठाईं, 4-5 के अतिरिक्त शेष सभी दुआबे के गांवों में थीं। शिरोमणी कमेटी और शिरोमणी अकाली दल बब्बरों से हमदर्दी तो सम्पूर्ण रखते थे, परन्तु ये सदैव इनको

शान्तिमय रहने की ताकीद करते थे। कारण यह था कि सरकार तो पहले ही बड़े बड़े अकाली नेताओं को ऐसे दंगे फ़सादों और बब्बरों की ग़ैर-कानूनी कार्यवाही के बहाने फंसाकर जेल में भेजना चाहती थी। पटियाले में सर दया किशन कौल ने कुछ बंब बनवाकर नाभे और शिरोमणी कमेटी के किसी महत्त्वपूर्ण स्थान पर धर कर अकाली लीडरों को फंसाने की योजना भी बनाई, परन्तु यह साज़िश सफल न हुई। ऐसी अवस्था में एक दो बार कमेटी ने बब्बरों के साथ हृदय से सहानुभूति रखते हुए भी इस लहर के साथ अपनी तटस्थता प्रकट की। अन्त लम्बी खोज के पश्चात् सरकार 102 बब्बर गिरफ़्तार करने में सफल हो गई। इन पर सितम्बर 1923 में लाहौर सैंट्रल जेल में मुकद्दमे चलाये गये। इन में से छह (जत्थेदार किशन सिंघ गड़गज्ज, बाबू संता सिंघ, करम सिंघ माणको, नंद सिंघ धुडियाल, दलीप सिंघ भुझंगी यामियां और धर्म सिंघ हियातपुर) 27 फ़रवरी 1926 को फांसी लगे। 13 को उमर कैद और शेष को लम्बी सज़ाएँ हुईं। पांच बब्बर जेल में ही शरीर त्याग गये थे।

इस लहर के पश्चात् भी दृढ़ता वाले बब्बर, दुश्मनों को मारते रहे, 1933 में बेला सिंघ को मारा जो वैनकोवर भाई भाग सिंघ और बदन सिंघ कुंभड़वाल को मारकर यहां आकर चार मुरब्बे प्राप्त किये बैठा था। अनूप सिंघ माणको ने बुबेली का ख़ूनी साका करके पुलिस से कई बब्बरों को मरवाया था, इसलिए 1936 में उसको भी गोली से मार दिया गया। बब्बर अकाली रतन सिंघ ने वीरता के बड़े जौहर दिखाये। अन्त बहुतों को मारकर 15 जुलाई, 1932 को वह भी शहीदों की मृत्यु मर गया।

इस समय कांग्रेस और अकाली दल शान्तिमय ढंग से सरकार विरुद्ध टक्कर ले रहे थे, परन्तु बब्बरों ने जंगी उपाय प्रयोग करके अपने जौहर दिखाये और सिंघों की पुरातन बहादुरी को चमकाया। हुकूमत ने एक बार तो यह चाल भी चली कि गुरु के बाग़ के अकालियों को रिहा करके अपनी ओर कर लिया जाये और बब्बर लहर को दबा दिया जाये, परन्तु इसमें नितांत सफलता प्राप्त न हुई, क्योंकि उस समय सिंघों का परस्पर बहुत प्यार था और वे एक दूसरे पर जान देते थे।

कार-सेवा

17 जून, 1923 को अमृतसर के सरोवर की कार-सेवा आरम्भ हुई। इस कार-सेवा कमेटी के सचिव भगत जसवंत सिंघ जी थे। इस दिन सवेरे लगभग दो-अढाई लाख सिंघों का शानदार जलूस निकला, जिसमें काली पगड़ियों का ठाठें मारता जलूस जोश में जा रहा था। कार-सेवा का समागम बड़ा ऐतिहासिक इकट्ठ था, जिसमें ग़रीब-अमीर, राजा-रंक और हिन्दु मुसलमान सभी प्रेमियों ने भी भाग लिया। महाराजा भूपेन्द्र सिंघ पटियाले वाले ने भी मिट्टी निकालने की सेवा की और चालीस हज़ार रुपये सेवा के लिए भेंट किए। इस सेवा के फलस्वरूप गुरु के बाग़ के मोर्चे के विजयी सिंघ विनम्रता और सेवा-भाव से शुद्ध होकर और बलवान् होते गये। लगभग एक मास तक सेवा का महान् यज्ञ चलता रहा।

यह कार-सेवा अभी हो ही रही थी कि सरकार ने 9 जुलाई, 1923 को महाराजा रिपुदमन सिंघ नाभा को गद्दी से उतार दिया। कारण यही था कि महाराजा कौमी मामलों में बहुत दिलचस्पी लेते थे और अकाली लहर के साथ उनकी सघन हमदर्दी थी। शुरू से ही अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध उनको सख़्त नफ़रत थी। गद्दी पर बैठते समय भी आप ने पोलिटीकल एजंट को नज़राने देने से इन्कार कर दिया था। साधारणतः ताजपोशी के समय पोलिटीकल एजंट ही बनने वाले महाराजे के सिर पर अपने हाथों से ताज रखा करता था। परन्तु आप ने ऐसा भी न किया। नानकाणे के साके के समय काली पगड़ी बांधकर आप कौमी शोक में शामिल हुए। अंग्रेज़ी सरकार को ये बातें पसन्द नहीं थीं। उन्होंने आप को गद्दी से उतारकर जलावतन करके देहरादून पहुँचा दिया यद्यपि सरकार ने सूचित यही किया कि महाराजे ने स्वयं ही गद्दी छोड़ दी है।

2 अगस्त, 1923 को शिरोमणी कमेटी ने चैलंज किया कि सरकार यह सिद्ध करे कि महाराजे ने अपनी ख़ुशी से राज-गद्दी को छोड़ा है। 5-6 अगस्त को नई चुनी गई कमेटी की मीटिंग हुई और बाबा खड़क सिंघ प्रधान बने। इस मीटिंग में महाराजा नाभा को गद्दी से उतारने की सरकारी करतूत की निंदा की गई और कमेटी ने इस धक्केशाही के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाने का निर्णय किया। 9 सितम्बर को सारे देश में 'नाभा रोस दिवस' मनाया गया और जगह जगह पर मुज़ाहरे हुए। अपनी स्थिति को स्पष्ट करने हेतु सरकार यह कह रही थी कि 'महाराजा पटियाला

और महाराजा नाभा का परस्पर झगड़ा था। जज ने महाराजा के विरुद्ध निर्णय दे दिया और महाराजा नाभा को कहा गया कि या तो गद्दी छोड़ दो या खुली अदालत में मुकद्दमा लड़ना स्वीकार करे। महाराजे ने राज-गद्दी छोड़ दी। इसलिए शिरोमणी कमेटी को राजाओं के नीजि झगड़ों को पंथक विषय नहीं बनाना चाहिए।' यद्यपि प्रत्यक्ष कारण ठीक यही था, परन्तु महाराजा नाभा को सरकार अपना वफ़ादार नहीं समझती थी, इसलिए वह उसकी कौमी सरगर्मियों के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु अवसर की तलाश में थी। यह अवसर महाराजा नाभा और महाराजा पटियाला के झगड़े के समय सरकार के शीघ्र ही हाथों में आ गया और उसको गद्दी से उतार दिया।

ऐसी अवस्था में पहले शिरोमणी कमेटी शान्तिमय तरीके से ही कोई आवश्यक कार्यवाही करना चाहती थी। अकालियों में अभी सोच-विचार हो रही थी कि मोर्चा लगाया जाये या नहीं, कुछ व्यक्ति सहमत थे और कुछ इसके विरुद्ध। स. सरमुख सिंघ झबाल प्रधान शिरोमणी अकाली दल तो रोश में आकर गांव चले गये और कह गये, "अगर मोर्चा लगाओगे तो मैं आ जाऊँगा।" इधर अभी दृढ़ निर्णय हुआ ही नहीं था और लोगों में आंदोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा था। पंथक कार्यों में हमदर्दी रखने वाले महाराजे के साथ सिक्खों की सर्म्पूणतः हमदर्दी थी और वे समझते थे कि यह भी उभर रही अकाली तहरीक पर अप्रत्यक्ष रूप में सरकारी वार हुआ है।

इसी संबंध में 14 सितम्बर, 1923 को गुरुद्वारा गंगसर जैतो में अखंड पाठ रखा गया। नाभा सरकार की बेलगाम पुलिस ने पाठ कर रहे भाई इन्द्र सिंघ पाठी को ज़बरदस्ती गिरफ़्तार कर लिया और एक तरह से पाठ खंडित कर दिया। पुलिस की इस धक्केशाही के कारण महाराजा नाभा के गद्दी से उतारने के प्रश्न के स्थान पर सिक्खों की धार्मिक मर्यादा अखंड पाठ करने का मामला सामने आ गया और इसलिए शिरोमणी कमेटी ने मोर्चा लगाने का निर्णय कर लिया। 15 सितम्बर से क्रमवार अकाल तख़्त से प्रतिदिन 25-25 सिंघों के जत्थे जैतो की ओर जाने आरम्भ हुए। ये रास्ते में शान्तिमय रहकर अखंड पाठ की आज़ादी का प्रचार करते जैतो पहुँचते। आगे सरकार नाभा बीड़ में या सैंकड़ों मील दूर कहीं ओर ले जाकर भूखों को ही जंगलों में छोड़ आती। कई सिंघ तीन तीन सौ मील

पर भी छोड़े गये। यह ज़ालिम सरकार ने एक नया तरीका निकाला था ताकि जेलों को भरने की तकलीफ़ से बचा जा सके। 21 सितम्बर को गये जत्थे के साथ पंडित जवाहर लाल नेहरू, प्रिं. गिडवानी, श्री के. संथानम आदि भी गिरफ़्तार कर लिये गये और पीछे नवम्बर 1923 में ऊपर से आये आदेश के अनुसार शीघ्र ही रिहा कर दिए गए। पंडित नेहरू जी ने जो अदालत को लिखती ब्यान दिया, उसमें अकालियों की कुर्बानी की ज़ोरदार प्रशंसा की।[1] लगभग पांच हज़ार यात्रियों को ये कष्ट झेलने पड़े। जो भी जत्था जाता, उसी को आबादी से कई कोसों दूर छोड़कर पुलिस उनसे पीछा छुड़वाती।

28 सितम्बर को शिरोमणी कमेटी ने पंजाब लेजिस्लेटिव कौंसिल में भेजे जाने वाले 12 सिक्ख सदस्यों का चुनाव किया और कोई विरोधी दल का सदस्य न आ सका। 29 सितम्बर को जनरल मीटिंग में यह मता पास किया गया कि जैतो में जाकर अखंड पाठ सम्पूर्ण किया जाये। अखंड पाठ खंडित करने की बे-अदबी का दोषी ठहराकर स. गुरदियाल सिंघ नाभा को पंथ में से निकाल दिया गया।

अकाली बाग़ी

सरकार ने 13 अक्तूबर, 1923 को शिरोमणी कमेटी और शिरोमणी अकाली दल दोनों को ग़ैर-कानूनी के विरुद्ध श्रेणियां कहकर हरेक स्थान से 60 अकाली नेताओं को दफ़ा 120-21 और 124 के तहित गिरफ़्तार कर लिया। दोष यह लगाया गया कि ये आगू शहनशाह के विरुद्ध साज़िश करके हुकूमत का सिंघासन उलटाना चाहते थे और सिक्ख-राज्य स्थापित करने का संकल्प रखते था। इनकी तकरीरें, तहरीरें, सत्याग्रह और मुज़ाहरे इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। पहले अकाली नेता अमृतसर में कैद रहे और यहां मुकद्दमा चलता रहा, बाद में मार्च 1924 में इनको लाहौर किले में नज़रबंद रखा गया और लगभग तीन वर्ष जनवरी 1926 तक यह मुकद्दमा चलता रहा। हिन्द के बड़े राजसी मुकद्दमों में से यह एक चोटी का मुकद्दमा था जो कि 'अकाली लीडर्ज़ केस' के नाम पर प्रसिद्ध है।

---

1. I was in jail when the Guru Ka Bagh—struggle was gallantly fought and won by the Sikhs. I marvelled at the courage and sacrifice of the Akalies. *(25 September, 1923, Pt. J.L. Nehru)*

जैतो का मोर्चा

इस प्रकार पंजाब में और रियासत नाभा में सिक्खों पर सरकारी सख़्ती फिर ज़ोरों पर हो गई। नाभे का ऐडमिनिस्ट्रेटर विलसन जॉनसटन सख़्ती जारी रखने पर तुला हुआ था और अकाली अपने स्थान पर अडिग थे। लीडरों की गिरफ़्तारी के बावजूद मोर्चा जारी रहा। 15 अक्तूबर, 1923 से जैतो के लिए 25-25 के जत्थे जाने आरम्भ हुए। पांच मास यह सत्याग्रह जारी रहा। 29, 30 दिसम्बर, 1923 को आंध्र प्रदेश के कोकोनाडा शहर में सरब हिन्द कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन हुआ, जिसमें कांग्रेसी नेताओं द्वारा अकाली सत्याग्रह की बहुत ही प्रशंसा की गई। श्रीमति सरोजनी नायडू ने कहा, 'म. गांधी जी को पहले संदेह था कि अकाली लड़ाके वीर, शान्तिमय का प्रण निभा सकेंगे या नहीं, परन्तु बहादुर अकालियों ने कृपानें पहनते हुए भी गुरु के बाग़ के मोर्चे में शान्तिमय सत्याग्रह कर दिखाया। अकालियों की सफलता का रहस्य एकता और संगठन है।' मौलाना मुहंमद अली ने कहा, 'बहादुर अकाली धर्म की रक्षा हेतु और कुफ्र से युद्ध कर रहे हैं। अगर अकाली लहर की मृत्यु हो गई तो याद रखें, हिन्दु और मुसलमान मत भी तहस-नहस कर दिये जायेंगे। आओ, समस्त हिन्दु मुसलमान अमृतसर के मैदाने-जंग में जायें।' डॉ. किचलू ने कहा, 'बावजूद अकाली आगूओं के जेल में होने पर भी सिक्खों ने सिवल न-फ़ुरमानी लहर पूरे ज़ोर से चालू की हुई है और इस प्रकार अकाली योद्धों ने एक तरह कौमी युद्ध लड़ने का भार अपने सिर ले लिया है, हमें चाहिए कि हम भी उनसे मिलकर सत्याग्रह करें।' इसी तरह श्री राजगोपाल आचार्य ने कहा कि अकालियों ने शान्तिमय युद्ध लड़कर यह बता दिया है कि वे भारत की शेष कौमों से अधिक वीर-बहादुर हैं।'

अन्त में एक मता पास किया गया कि 'शिरोमणी कमेटी और शिरोमणी अकाली दल के विरुद्ध सरकार की ओर से किया गया जमाती आक्रमण एक तरह समस्त स्वतन्त्रता-इच्छुक पार्टियों पर सीधा हमला है। हमें अकालियों से सम्पूर्णतः हमदर्दी है। हमारी इच्छा है कि समस्त मज़हबों वाले इस टक्कर में सिक्खों की सहायता करें।' इस तरह अकाली सत्याग्रह ने हिन्द भर में प्रसिद्धि प्राप्त की और कांग्रेस के इस इजलास पर सिंघों की ओर से गुरु का अटूट लंगर भी चलाया गया जिसका बहुत प्रभाव पड़ा।

नाभे का मोर्चा चल रहा था कि दूसरी ओर गुरुद्वारा भाई फेरू (ज़िला लाहौर) का मोर्चा लग गया। यह गुरुद्वारा 28 दिसम्बर, 1922 को कमेटी के अधिकार में आ गया था परन्तु बाद में महंत ने कब्ज़ा देने से इन्कार कर दिया, जिसमें सरकार की शरारत थी। इसलिए 15 दिसम्बर, 1923 को यह मोर्चा आरम्भ हो गया और इस मोर्चे में 20 सितम्बर, 1925 तक 4 हज़ार सिंघ गिरफ़्तार हुए।

नाभे का अंग्रेज़ शासक विलसन जॉनसटन सिक्खों पर बहुत सख़्ती कर रहा था। बहुत सारे सिंघों की ज़मीनें ज़ब्त कर ली गई थीं, बहुत भारी जुर्माने भी किये गये और बहुतों को जलावतन कर दिया गया। इस समय सरकारी इशारे पर रियासत फ़रीदकोट में भी सिंघों पर बुरी तरह की सख़्ती हुई।

7 जनवरी, 1924 को दूसरी बार बनी शिरोमणी कमेटी की जनरल मीटिंग अमृतसर में हुई, ग़ैर-कानूनी जमात करार दिये जाने के कारण ये समस्त सदस्य गिरफ़्तार कर लिये गये। मुकद्दमें चलाकर इनको कैद और जुर्माने की कड़ी सज़ाएँ हुईं। 18 फ़रवरी को कमेटी के ऐलान के अनुसार समस्त सिक्ख पंथ में अकाली कैदियों की हमदर्दी हेतु अखंड पाठ करवाए गये।

नाभा आन्दोलन पूर्ण जोर पर था। जो कौम बिना आगूओं की देख-रेख के अपने उद्देश्य के लिए लड़-मरने से पीछे न हटे और ज़ब्त निभाई तो जाये, उसको किस तरह दबाया जा सकता था। सिक्ख कौम के बच्चे बच्चे की ज़बान पर यह तराना गूँज रहा था—

नाभे नूं ज़रूर जाऊँगा, भावें सिर कट जावे मेरा।

9 फ़रवरी, 1924 को बसंत पँचमी के दिन बसंती चोले पहनकर 500 सिंघों का शहीदी जत्था जत्थेदार ऊधम सिंघ गोल्हवड़-वरपाल की अगवाई में श्री अकाल तख़्त से जैतो की ओर रवाना हुआ। जाते समय जत्थे की ओर से सिक्ख संगत को संबोधित करके एक दुःख भरा अन्तिम संदेश पढ़कर सुनाया गया जो कि उस समय के सिक्ख भावों को प्रकट करता हुआ इस प्रकार रवाना होता है—

सुणो ख़ालसा जी ! साडे कूच डेरे, असीं आख़री फ़ते बुला चले।
पाउ बी ते सांभ के फ़सल बद्ढो, असीं डोहल के रत्त पिया चले।
चोबदार दे वांग अवाज़ दे के, धौंसे कूच दे असीं वजा चले।

तुसीं आपणी अकल दा कम्म करना, असीं अपनी तोड़ निभा चले।
बेड़ा जुल्म दा अंत नूं गरक होसी, हंझू ख़ून दे असीं वहा चले।
पंथ गुरु दा आप दसमेश राखा, कंडे हूंझ के कर सफा चले।
अंग साक कबीलड़ा बाल बच्चा, बांह तुसां दे हथ फड़ा चले।
नदी नाव संजोग दे होण मेले, सति श्री अकाल गजा चले।

इस प्रकार कुर्बानी और शहीदी के गीत गाता जत्था 21 फ़रवरी, 1924 को जैतो पहुँचा। जत्था टिब्बी साहिब की ओर रवाना हो रहा था। आगे से पुलिस और फ़ौज ने दुपहर अढ़ाई बजे के करीब बे-तहाशा गोली चला दी, जिस से लगभग 50 सिंघ शहीद हुए और लगभग तीन सौ घायल हुए, परन्तु कोई सिंघ पीछे न हटा। एक बूढ़ी स्त्री भी जत्थे में थी, उसके बच्चे की छाती पर गोली लगी और वह बच्चे को धरती पर लिटाकर दौड़ती हुई जत्थे के साथ आगे आगे बढ़ती गई। जो सिंघ आगे दौड़कर टिब्बी पर पहुँच गये उन्होंने निशान साहिब लगा ही दिया। सरकार ने घायल सिंघों को बैल-गाड़ियों में भर कर जैतो के किले में भेज दिया और कोई सेवा-संभाल न की। कई बेचारे पानी न मिलने से भी तड़पते हुए प्राण दे गये।

यह सख़्ती देखकर सिंघ निढाल न हुए। महात्मा गांधी जी ने अकालियों को लिखा कि और जत्था न भेजा जाये, क्योंकि वह भी गोलियों का निशाना बन जायेगा, परन्तु सिंघ पीछे न हटे।

दूसरा अकेले नौजवानों का शहीदी जत्था 2 फ़रवरी को रवाना होकर 14 मार्च को जैतो पहुँचा। यह जत्था बिना किसी सख़्ती के गिरफ़्तार कर लिया गया, इसी तरह लगातार पांच-पांच सौ के जत्थे जाते रहे। 17 सितम्बर, 1923 से 27 जुलाई, 1925 तक पौने दो वर्ष मोर्चा लगा रहा। एक सिक्ख जत्था कैनेडा से आकर भी गया। मामला केवल इतना था कि धार्मिक स्वतन्त्रता को सरकार ने भंग किया है और हमने खंडित किया गया पाठ सम्पूर्ण करना है।

23 मई, 1924 को बाबा करतार सिंघ बेदी ने अकाल तख़्त पर हाज़र होकर पंथ से क्षमा मांगी। पांच प्यारों ने उसको ये दण्ड लगाया कि वह अमृतसर से ननकाणे की पैदल यात्रा करें और वहां जाकर पांच अखंड पाठ करायें; शहीदी फ़ंड में दस हज़ार रुपये देने की तनख़्वाह लगाई, जिसको बेदी साहिब ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया।

इस समय अप्रैल 1924 को वैकम (कोचीन) में छूत-छात के विरुद्ध सत्याग्रह हो रहा था और गांधी जी भी इसकी सहायता पर थे। इसके बावजूद मोर्चों में उलझे हुए होने के कारण अकाली आगूओं में स. लाल सिंघ बी.ए. की जत्थेदारी में एक जत्था वहां भेजा, जिसने वहां जाकर साझा लंगर चलाया और सिक्ख-धर्म का प्रचार किया। इसका अछूत जातियों पर बहुत प्रभाव पड़ा।

मई 1924 में मैल्कम हेली गवर्नर बनकर आया। हेली ने कुछ चापलूसों को इकटठ्ा करके 'सिख सुधार कमेटी' नाम रखकर पाठ करने के लिए जैतो भेज दिया, परन्तु सिक्ख कौम पर और मोर्चे पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्त में गवर्नर हेली ने कुछ शर्तें रखकर अखंड पाठ की स्वतन्त्रता और कैदियों की रिहाई का ऐलान कर दिया।

17वां शहीदी जत्था अभी पहुँचा ही नहीं था कि 21 जुलाई, 1925 को सिक्ख जत्थे ने अखंड पाठ आरम्भ कर दिया और थकी-टूटी और शरमिंदा हुई सरकार कुछ न कर सकी। शहीदी जत्थे ने पहुँचकर एक पाठ के स्थान पर 101 पाठ आरम्भ कर दिये, जिनका 6 अगस्त, 1925 को बड़े ज़ोर-शोर से भोग पाया गया। यह एक तरह सिंघों की महान् विजय थी। क्योंकि सरकार ने 20-22 सिंघों के अतिरिक्त सभी सिंघ रिहा कर दिये थे और फिर ये रिहा हुए सिंघ सारे जैतो पहुँचे हुए थे; जिस धार्मिक आज़ादी के लिए उन्होंने कुर्बानी दी थी, वह आज़ादी प्राप्त कर ली गई थी।

इस जैतो के मोर्चे के लिए अमरीका और कैनेडा से भी सिक्ख जत्थे आकर गिरफ़्तार हुए थे और इसी तरह शंघई और हांगकांग से भी जत्थे जैतो पहुँचे हुए थे। इस मोर्चे में गोलियों का निशाना बनकर या जेलों में की गई सख़्ती के कारण 150 से अधिक सिंघ शहीद हुए थे।

अखंड पाठ समाप्त कर हज़ारों की गिनती में सिक्ख संगत 9 अगस्त को अमृतसर पहुँची और 10 अगस्त को जत्थों के सिंघों को अकाल तख़्त से सिरोपाउ दिये गये।

सरकार गुरुद्वारा ऐक्ट बनाने के लिए काफ़ी समय से सिक्खों को टाल रही थी। ननकाणे के साके के समय, चाबियों के मोर्चे और गुरु के बाग़ सत्याग्रह के समय भी बहाने बनाए जाते रहे। फिर यह जैतो और भाई फेरू के लम्बे मोर्चे भी लगे, जिन में सरकार को फिर अपयश

का मुंह देखना पड़ा। इन दृढ़ सत्याग्रहों के दृश्य देखकर सरकार को होश आई कि अब आख़िर में कुछ करना ही पड़ेगा। 7 जुलाई, 1925 को शिमले पंजाब कौंसिल में 'सिक्ख गुरुद्वारा बिल' पास किया और 31 अगस्त को असैंबली ने स्वीकार किया; 1 नवम्बर से ऐक्ट लागू हुआ। उधर अकाली नेताओं पर जो बादशाह के विरुद्ध बग़ावत का मुकद्दमा चलाया गया था, सरकार उसको साबित करने में बुरी तरह असफल हुई। इस लिए सर विलीयम बर्ड वुड, जो सिक्खों का अच्छा हिमायती था और पीछे हिन्दुस्तानी सेना का कमांडर-इन-चीफ़ भी रहा, इसको सरकार ने मध्यस्थ बनाकर आगे किया। इसने किले में अकाली आगुओं से मुलाकात की और कहा कि सरकार ने गुरुद्वारा सुधार के लिए ही 'गुरुद्वारा ऐक्ट' बनाया है, इसलिए सिक्खों को मोर्चा लगाना छोड़कर गुरुद्वारों का प्रबन्ध संभाल लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में कैद किये गये सिंघ भी रिहा कर दिये जायेंगे और नेता गुरुद्वारा ऐक्ट के अनुसार कार्य करना पसंद करेंगे, उनके विरुद्ध दर्ज किये गए मुकद्दमे भी वापिस ले लिये जायेंगे। इस अन्तिम शर्त पर सिक्ख लीडरों में मतभेद हो गया। स. बहादुर महताब सिंघ की पार्टी ऐक्ट के साथ सहमत थी, इसलिए इनको 19 और सिक्ख मुखियों—बाबा हरकिशन सिंघ, प्रो. साहिब सिंघ, ज्ञानी शेर सिंघ, मास्टर महताब सिंघ, भगत जसवंत सिंघ, स. दान सिंघ वछोया आदि के साथ 25 जनवरी, 1926 को रिहा कर दिया गया। स. तेजा सिंघ समुंद्री, मास्टर तारा सिंघ, स. सेवा सिंघ ठीकरीवाला, सोहन सिंघ जोश, सरमुख सिंघ झबाल, गोपाल सिंघ कौमी आदि 16 पुरुषों ने यह शर्त स्वीकार करके रिहा होना अकाली शान के विरुद्ध समझा, इसलिए इन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस बात पर आगे दो भागों की नींव बंधी। सरदार बहादुर महताब सिंघ और ज्ञानी शेर सिंघ ने 'ख़ालसा नेशनलिस्ट पार्टी' बनाई और मास्टर तारा सिंघ (1885-1967) आदि ने अकाली दल को पक्का करना जारी रखा। आख़िर इस दल को पंथ में सत्कार मिला और ये 'अकाली पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 17 जुलाई, 1926 को स. तेजा सिंघ समुंद्री लाहौर जेल में ही स्वर्गवास हो गये और इनकी याद में शिरोमणी कमेटी के बड़े हाल का नाम 'समुंद्री हाल' रखा गया। सरकार अकाली लीडरों के विरुद्ध दर्ज केसों में कुछ भी साबित न कर सकी, इसलिए 13 सितम्बर, 1926 को पंजाब सरकार ने शिरोमणी कमेटी

और शिरोमणी अकाली दल को कानून के विरुद्ध करार देने वाला ऐलान भी वापिस ले लिया और 27 सितम्बर को गर्म दल वाले 15 अकाली आगुओं को बिना किसी शर्त के रिहा कर दिया।

2 अक्तूबर, 1926 को गुरुद्वारा ऐक्ट के अनुसार जून महीने में चुने गये 'सैंट्रल बोर्ड' की प्रथम बैठक हुई। इस बैठक ने सर्व-सम्मति से मता पास किया कि 'सैंट्रल बोर्ड' के स्थान पर 'शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' नाम ही रखा जाये, जिसको जनवरी 1927 में सरकार ने भी स्वीकार कर लिया। उम्मीदवारों का चुनाव हुआ, बाबा खड़क सिंघ प्रधान और मास्टर तारा सिंघ मीत-प्रधान चुने गये। बाबा जी इस समय जेल में ही थे। इस प्रकार सिक्ख जनता की हमदर्दी के कारण गर्म दल ने जेल से निकलते ही गुरुद्वारा प्रबन्ध पर अधिकार कर लिया और पहला—सरदार बहादुर महताब सिंघ वाला नरम दल पीछे पड़ गया। प्रथम कमेटी से ऐक्ट अनुसार बनी इस नई कमेटी ने 4 दिसम्बर, 1926 तक सारा कार्य संभाल लिया। इस प्रकार यह वर्ष शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी के अधीन कानून के अनुसार कार्य करवाता समाप्त हो गया। यद्यपि इस कानून में कई तरह की त्रुटियां थीं परन्तु इस द्वारा 700 के लगभग गुरुद्वारों, धर्मशालाओं तथा डेरों आदि का प्रबन्ध व्यक्तिगत मलकीयत के स्थान पर पंचायती संस्था—शिरोमणी कमेटी के अधीन आ गया। अकाली लहर का ज़ोर अक्तूबर 1920 से अक्तूबर 1925 तक रहा और नवम्बर 1925 से ऐक्ट लागू हो गया।

इस गुरुद्वारा सुधार के संग्राम ने सिक्ख कौम में एक नई क्रान्तिकारी जोश जागृत किया जो पहले लुप्त हो चुका था और वह यह कि विदेशी ग़ुलामी का वस्त्र उतारने हेतु स्वतन्त्रता के युद्ध में अकाली निर्भय होकर आगे बढ़ें। 'आ गई फ़ौज अकाली, डेरे कर दियो ख़ाली,' का गीत गायन करने वाले अकाली, महंतों से डेरे तो ख़ाली करवा चुके थे और अब फ़िरंगी से भारतीय डेरा ख़ाली करवाना उनका शेष कार्य रह गया था। जहां आगे साधारण तौर पर सिक्खों में सरकारी वफ़ादारी का अंश अधिक पाया जाता था, वह कहीं उड़कर चला गया और अकालियों ने लड़लड़ कर, मर-मर कर कौम में नया रक्त संचार किया। इस लहर में पांच सौ शहीद और हज़ारों घायल हुए और 30 हज़ार जेल मे गये। सिक्खों को कुल 15 लाख रुपया जुर्माना देना पड़ा, सात सौ को नौकरी से हाथ

धोना पड़ा। पांच वर्ष कुर्बानी की यह अखंड धारा बहती रही, जिसमें कौमी आत्मा धुलकर और ग़ुलामी की अंग्रेज़ी कालिख उतारकर शुद्ध हो गई। अकाली लहर का यह एक बहुत बड़ा शानदार प्रशंसनीय कार्य था, जिसने सिक्खों को अपने कौमी फ़र्ज़ का स्मरण करा कर स्वतन्त्रता युद्ध के मैदान की ओर बढ़ाया। 5-6 वर्षों में ही उन्होंने विदेशी सरकार के होश ठिकाने लगाकर हुकूमत को बतला दिया कि सिक्ख बड़े युद्ध लड़ने वाले शस्त्रधारी सिपाही ही नहीं, अपितु शान्तिमय रहकर भी बहुत कुछ कर सकते हैं।

•

स्वराज्य युग

(1925-1980 ई०)

संता मानउ दूता डानउ, इह कुटवारी मेरी ।।
दिवस रैनि तेरे पाउ पलोसउ, केस चवर करि फेरी ।।

(रामकली कबीर, पन्ना 969)

असथिर रहहु डोलहु मत कबहू, गुर बचनि अधारि ।।
जै जै कारु सगल भू मंडल, मुख ऊजल दरबार ।।

(धनासरी महला ५, पन्ना 678)

याही काज धरा हम जनमं ।।
समझ लेहु साधू सभ मनमं ।।
धरम चलावन संत उबारन ।।
दुसट सभन को मूल उपारन ।।

(पातशाही दसवीं)

स्वराज्य युग

(1925-1980 ई०)

महात्मा गांधी जी ने सिक्खों को संबोधित करते हुए कहा था कि 'जिस प्रकार आप ने अपनी वीरता और अद्वितीय कुर्बानी द्वारा गुरुद्वारे स्वतन्त्र करवा लिये हैं, उसी प्रकार हिन्दुस्तान जो कि एक बड़ा गुरुद्वारा है, इसको भी आप ने ही स्वतन्त्र करवाना है।' अतः सिक्खों ने लम्बे शान्तिमय सत्याग्रहों द्वारा गुरुद्वारा प्रबन्ध तो अपने हाथ में ले लिया, अब फ़िरंगी के पंजे से मुक्ति प्राप्त करके देश स्वतन्त्र करने का सब से आवश्यक कार्य कौम के सामने था। 'इनक़लाब जिंदाबाद' के नारों से वातावरण गूँज रहा था। सिक्ख सांस्कृतिक और ऐतिहासिक तौर पर हिन्दुओं के नज़दीक थे और राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस के नज़दीक थे। इसलिए वे देश की आज़ादी के लिए फ़िरंगी के विरुद्ध संग्राम में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने लगे। डॉ. सैफुद्दीन किचलू ने 'सिक्ख लीग' के ऐतिहासिक सम्मेलन में, जब सिक्खों ने 'ना-मिलवर्तन' का मता पास किया, तो कहा था, 'ख़ुदा का शुक्र है कि आज बरतानवी सरकार का हाथ कट गया है और अब यह आज़ादी प्राप्त करने वाली कांग्रेस का दायना हाथ बन गया है।'

इस अवस्था में अंग्रेज़ नीति ने पंजाब के मुस्लिम बहुमत और रियासतों में सिक्ख राजाओं को सिक्ख इनक़लाबी शक्ति को दबाने हेतु प्रयोग किया। यह उनका बड़ा उपयोगी शस्त्र था। चूंकि पंजाब में मुसलमानों का बहुमत था, इसलिए हिन्दु-सिक्ख दोनों को उनके दबाव का शिकार होना पड़ता था, इसी कारण सिक्ख संग्रामिये देश के आज़ाद होने तक बीस वर्ष मुस्लिम धक्के-शाही और फिरंगी कूटनीति के विरुद्ध लड़ते रहे, सिक्खों की प्रमुख पंथक जत्थेबन्दी शिरोमणी अकाली दल का यही प्रोग्राम था। हिन्दुओं और कांग्रेस का उद्देश्य भी यद्यपि अंग्रेज़ों को निकालकर देश में स्वराज्य स्थापित करना था, इसलिए सिक्ख सरगर्मी कांग्रेस

से कंधे से कंधा मिलाकर चलती रही। परन्तु जब राज-सत्ता कांग्रेस के हाथ में आ गई, पंचायती ढंग से ही हिन्दु बहु-सम्मति सारी शक्ति की मालिक बन गई तो सिक्खों को फिर मुस्लिम बहुमत के दबाव के नीचे आना पड़ा। अतः अंग्रेज़ों के जाने पर स्वराज्य प्राप्त होने के पश्चात् भी राजनीतिक असंतुष्टता के कारण इस आंदोलन को सांस लेने का अवसर न मिला।

स्वराज्य से पूर्व (1927-1947 ई०)

अंग्रेज़ी सरकार के अत्याचारों से तंग हुई तथा अकाली लहर के शान्तिमय सत्याग्रहों की कुठाली में ढलकर कुंदन बनी सिक्ख कौम हर तरह के क्रान्तिकारी आंदोलन में सम्मिलित होने के लिए तैयार थी। अंग्रेज़ी वफ़ादारी की केंचुली (कुंज) इस भूझंगी सिक्ख कौम के शरीर से उतर चुकी थी। हालत यह थी कि अंग्रेज़ी भक्ति का दावेदार चीफ़ ख़ालसा दीवान कोई जीती-जागती श्रेणी नहीं रह गई थी, कारण स्पष्ट था कि 1920 से 1925 तक सिक्खों पर सख़्त जुल्म होते रहे, गोली चली, लाठियों द्वारा पीटा गया, जेलों में सख़्ती की गई और हज़ारों के घर-बार ज़ब्त हुए परन्तु चीफ़ ख़ालसा दीवान के कानों पर एक जूँ तक न सरकी। अमरीका, कैनेडा और हांगकांग तक से तो मोर्चे लगाने हेतु जत्थे पहुंचे, परन्तु चीफ़ ख़ालसा दीवान ने 'हाय' तक का भी नारा न लगाया। बल्कि यह सरकारी इनामों का पात्र बना रहा। स. सुन्दर सिंघ मजीठा को 1920 में सी.आई.ई. का ख़िताब दिया गया और जनवरी 1929 में 'सर' की उपाधि प्राप्त हुई। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि सरदार साहिब ने अपने ढंग से पंथक भलाई के लिए कई कार्य किये, परन्तु इनक़लाबी रवायतों वाली सिक्ख कौम उनकी अंग्रेज़ वफ़ादारी को किसी तरह भी पसन्द नहीं कर सकती थी। यही मूल कारण है कि जहां सिक्ख-गुरुद्वारों को स्वतन्त्र करवाने में अकालियों ने असीम सफलता प्राप्त की, वहां आगे के राजनीतिक क्षेत्र में भी उनका टाकरा लेने वाला कोई और सिक्ख जत्था न रहा; जो अकाली करते, वहीं सिक्ख पंथ की समूची आवाज़ बन जाता था।

गुरुद्वारा सुधार लहर की सफलता में संत अतर सिंघ मसतूयाणा (देहांत 31 जनवरी, 1927), जिन्होंने 20-25 वर्ष नाम-वाणी का प्रचार करके अकाली लहर के लिए सिक्खी सिदक और भरोसे की सामग्री जुटाई, भाई

हीरा सिंघ रागी (देहांत 2 सितम्बर, 1926 ई०), भाई मूल सिंघ गरमूला, भाई लाल सिंघ गुजरांवालिया, पंडित गुरबख़्श सिंघ पटियाला, पंडित इन्द्र सिंघ वैद्याचार्य, पंडित करतार सिंघ दाखा (1888-1958) आदि विद्वानों, गुणी ज्ञानी पुरुषों का आदरणीय हिस्सा है।

जैसा कि हम पीछे वर्णित कर आये हैं कि नवम्बर 1925 से गुरुद्वारा ऐक्ट लागू हुआ और 1926 में इस अनुसार कमेटी ने गुरुद्वारे अधिकार में ले लिये। अभी कुछ सिक्ख नेता जेल में ही थे। उनको रिहा नहीं किया गया। 9 जनवरी, 1926 को पंजाब कौंसिल के सिक्ख सदस्यों ने निर्णय किया कि जितना समय सरकार कैदियों को रिहा न करे, कोई सिक्ख वज़ीर बनना स्वीकार न करे, परन्तु जोगिन्द्र सिंघ खेतीबाड़ी के वज़ीर बन गये जो 1936 तक इस पद पर रहे। उधर कौंसिल के सिक्ख सदस्यों का व्यवहार यह था, उसने कैदी न छोड़े जाने के रोष में सदस्यता से भी त्याग-पत्र दे दिया। यह था स्वाभिमानी अकालियों का चरित्र।

बाबा खड़क सिंघ (1878-1963) जेल में बैठे ही शिरोमणी कमेटी के प्रधान नियुक्त किये गये थे, 1927 में रिहा होकर आये। उन्होंने पंजाब भर का दौरा किया और आप को सिक्ख संगत की ओर से पंथ का 'बेताज बादशाह' कहकर हरेक जगह पर सम्मानित किया गया। इस समय बाबा जी की इच्छा त्रुटियों भरे गुरुद्वारा ऐक्ट को तोड़ने की थी, परन्तु कोई बात न बन सकी। अक्तूबर 1927 मे शिरोमणी कमेटी ने ननकाणा साहिब के शहीदों की याद मे 'शहीद सिक्ख मिशनरी कालेज, अमृतसर' स्थापित किया ताकि सिक्ख धर्म के प्रचार हेतु आवश्यक गुणी प्रचारक तैयार किये जा सकें। यह विद्यालय यद्यपि लगातार तो न चल सका, परन्तु फिर भी इस कालेज से हज़ारों विद्यार्थियों ने गुरमति शिक्षा प्राप्त की और प्रचार का कार्य किया। यह प्रचारक श्रेणी उत्पन्न करने का सेहरा प्रिंसीपल गंगा सिंघ जी (1896-24.12.1961 ई०) के सिर पर है जिनकी सुन्दर भाषण कला, विद्वता और सहृदता सदैव शिक्षार्थियों को अगुवाई और भरपूर प्रेरणा देती रही है।

इस समय अकाली दल एक जत्थेबंद शक्तिशाली ताकत थी, जिस से फ़िरंगी सरकार भय खाती थी और जिसका सिक्ख जनता आदर करती थी; किसी नरम दल तथा नीम सरकारी जत्थे के लिए कोई स्थान नहीं था। अब मोर्चों के विजेताओं को शान्तिपूर्वक बैठना नहीं भाता था, वे चाहते थे कि एक दम अंग्रेज़ों को देश से निकाला जाये और स्वराज्य

स्थापित किया जाये, परन्तु अंग्रेज़ नीतिवान् था, उसने पिछले 5-6 वर्षों के अनुभव से सही निष्कर्ष निकाला था कि सिक्ख-इनक़लाबी शक्ति के साथ सीधी स्वयं टक्कर न ही ली जाये तो अच्छा है। इसीलिए उसने अपने दो मोहरे—रियासती महाराजे और शक्तिशाली मुसलमान, समय समय आगे लाकर सिक्खों को कार्य में व्यस्त रखा। 1927 से 1947 तक के बीस साल फ़िरंगी कूटनीति के विरुद्ध किये आंदोलन के वर्ष थे, जिस कारण अन्त में फ़िरंगियों को यहां से जाना पड़ा।

पटियाला आन्दोलन

महाराजा भूपेन्द्र सिंघ चतुर राजा था और उसको अपनी इस चतुराई का अभिमान भी था। उसकी विलासता और प्रजा-विरोधी कार्यों की हरेक स्थान पर चर्चा थी। लोगों को यह बात भी भली-भान्ति मालूम हो गई कि महाराजा नाभा को गद्दी से उतारने में भी म. भूपेन्द्र सिंघ ने काफ़ी योगदान दिया है। फिर जब राज्य-विरोधी साज़िश में पकड़े 60 अकाली नेता आगे-पीछे करके पंजाब सरकार ने रिहा कर दिये तो स. सेवा सिंघ ठीकरीवाले को महाराजा पटियाले ने लाहौर से पटियाला जेल में लाकर बंद कर दिया, रिहा न किया। महाराजा अंग्रेज़ी सरकार को यह बताना चाहता था कि आप ने क्षमा किये बिना ही अकाली छोड़ दिये हैं और मैं क्षमा मंगवाकर छोड़ूँगा। इस बात को अकाली आगुओं ने बुरी तरह महसूस किया। बाबा खड़क सिंघ प्रधान शिरोमणी कमेटी और मास्टर तारा सिंघ उप-प्रधान, दोनों ने यह बात कही—या तो हम स. सेवा सिंघ ठीकरीवाले को छुड़वाकर लायें या फिर हम स्वयं जेल में जायें। इस लिए महाराजा पटियाला के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ। पत्रों और जलसों द्वारा बहुत भारी प्रापेगंडा हुआ। अकाली नेता मोर्चा लगाने पर सहमत नहीं थे, वे डरते थे कि कहीं सरकार बहाना बनाकर महाराजा पटियाले को गद्दी से ही न उतार दे। इसलिए उनका समस्त ज़ोर प्रापेगंडे पर था। इन दिनों मास्टर तारा सिंघ 'अकाली' उर्दू और गुरमुखी (पंजाबी) दोनों के सम्पादक थे। आप ने पत्र में तलवार की तरह कलम चलाई। आख़िर 1931 में महाराजे ने पश्चाताप करके अकालियों के साथ समझौता किया और स. सेवा सिंघ ठीकरीवाला को रिहा किया। स. सेवा सिंघ संग्रामिये अकाली नेता थे, जिन्होंने जनवरी 1929 में रियासती प्रजा मंडल की नींव

रखी और राजे महाराजों की धक्केशाही के विरुद्ध आंदोलन चलाकर रियासती जनता में जागृति पैदा की। आप ने अपनी हिम्मत से लुधियाना, शिमला, संगरूर आदि स्थानों पर प्रजामंडल की बहुत कामयाब कानफ्रेंस की। यह सरगर्मी महाराजा पटियाला को बहुत चुभती थी। 1933 में आप को गिरफ़्तार कर लिया गया, जहां पर रियासती बदसलूकी के विरुद्ध आप ने नौ मास भूख-हड़ताल रखने के पश्चात् जेल में ही 19 जनवरी, 1935 को अपने प्राणों का बलिदान दे दिया।

नेहरू रिपोर्ट

इस समय सम्प्रदायिक फ़सादों ने देश की शान्ति भंग की हुई थी। कांग्रेस ने सम्प्रदायिक गुत्थी को सुलझाने के लिए बंबई सरब पार्टी कानफ्रेंस बुलाई। इसमें सिक्खों की ओर से स. मंगल सिंघ, मास्टर तारा सिंघ और स. ब. महताब सिंघ सम्मिलित हुए। पंडित मोती लाल नेहरू की प्रधानगी में एक सब-कमेटी बनी जिसने अपने सुझाव की रिपोर्ट तैयार की, जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें दर्जा नौ-आबादीआत वाली आज़ादी की मांग की गई थी और हिन्दु मुसलमानों के लिए एक दूजे की बहु-गिनती के प्रांतों में आरक्षित सीटें नियत की गई थीं परन्तु सिक्ख अधिकारों की रक्षा हेतु कोई विशेष सुझाव नहीं दिया गया था। इसलिए सिक्खों ने इसकी ज़ोरदार विरोधता की। यद्यपि स. मंगल सिंघ नेहरू रिपोर्ट पर हस्ताक्षर कर आये थे, इसलिए उन्होंने इसका विरोध न किया। यहां आकर स. मंगल सिंघ अकाली पार्टी से अलग हो गये और 'उर्दू अकाली' जिसके पहले वह सम्पादक थे, को भी छोड़ गये। बाद में कांग्रेस ने लखनऊ और फिर कलकत्ते के सम्मेलन में सिक्ख नेताओं को बुलाया, परन्तु तसल्ली प्राप्त न की जा सकी। कलकत्ते में कांग्रेसी लीडरों ने अपनी चौधर में स. ब. महताब सिंघ की कोई बात न सुनी। इसलिए सिक्खों ने 'नेहरू रिपोर्ट' के विरुद्ध सख़्त आन्दोलन जारी रखा। कल, जो सिक्ख, कांग्रेस के लिए प्राण देते थे, आज वे इसका ज़ोरदार विरोध कर रहे थे। स. करतार सिंघ झब्बर जैसे गर्म विचारों वाले अकालियों ने एक 'आकड़ भन्न दल' (अकड़ तोड़ने वाला दल) बनाया जिसका मंतव, कांग्रेसी हैंकड़बाज़ों का मान तोड़ना था। अब जब पं. जवाहर लाल नेहरू की प्रधानगी में दिसम्बर 1929 को लाहौर में कांग्रेस का समागम हुआ तो

जहां 'मुकम्मल आज़ादी' का मता पास किया गया तो उस समय सिक्ख नेताओं को प्रसन्न करने हेतु यह भी पास किया गया कि कांग्रेस देश की ऐसी कोई राज्य-रूप रेखा स्वीकार नहीं करेगी, जिसमें अल्प-संख्यकों की सम्पूर्णतः तस्सली न हो सके। इससे सिक्ख कुछ शान्त हो गये, परन्तु वायसराय ने 'नेहरू रिपोर्ट' की मांगें ही अस्वीकार कर दीं, जिस पर ये रिपोर्ट और इसकी विरोधता दोनों ही समाप्त हो गईं।

इस समय सिक्ख नेता तीन भागों में विभाजित हो गये। स. मंगल सिंघ रिपोर्ट के पक्ष में थे, मास्टर तारा सिंघ विरोध में, बाबा खड़क सिंघ बहुत ही नाराज़ थे और वह कांग्रेस का ही बाईकाट करना चाहते थे। मास्टर जी की राय थी कि समस्त हिन्द की राजसी श्रेणी के साथ बाईकाट करना उचित नहीं, 'नेहरू रिपोर्ट' का विरोध अवश्य करना चाहिए, परन्तु बाबा जी अपने स्थान पर डटे रहे और कुछ सरकार की पूजा करने वालों की चाल में आकर कांग्रेस-विरोधी हो गये।

दूसरी बार मार्च 1930 में म. गांधी जी ने सिवल न-फुरमानी की लहर चलाई। शिरोमणी अकाली दल ने पांच हज़ार अकाली, लहर में भेजने का निर्णय लिया। गांधी जी ने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से समुद्र तट के एक गांव 'डंडी' की ओर कानून भंग करके नमक बनाने हेतु मार्च किया। इसलिए यह 'नमक सत्याग्रह' के नाम से प्रसिद्ध है। विदेशी वस्तुओं के बाईकाट की लहर ज़ोर से चली, बहुत गिरफ़्तारियां हुईं। सूबा सरहद के देश-भक्त नेताओं की गिरफ़्तारी के विरुद्ध रोष प्रकट करने हेतु 23 अप्रैल, 1930 को पेशावर के किस्साखानी बाज़ार में पठान इकत्रित हुए और पुलिस ने गोली चला दी, जिससे 30 व्यक्ति मरे और इससे दुगने घायल हुए। पठानों से हमदर्दी प्रकट करने हेतु 20 मई, 1930 को मास्टर तारा सिंघ सौ सिंघों का जत्था लेकर रवाना हुये और रास्ते में पकड़कर गुजरात जेल में भेज दिये गये, जहां और सिक्ख नेता भी गिरफ़्तार हुए थे। 12 नवम्बर, 1930 को लंडन में गोलमेज़ कान्फ्रेंस हुई। गांधी जी ने हिंसा-अहिंसा के भेद पर सत्याग्रह वापिस ले लिया और 4 मार्च, 1931 को गांधी-इरवन समझौता हुआ।

स. भगत सिंघ

सिक्खों में ही नहीं अपितु ग़ैर-सिक्खों में भी म. गांधी जी की नीति के लिए पूर्ण भरोसा नहीं रहा था, गर्म विचारों वाले नौजवान तो

इस अहिंसावाद को नितांत ही पसंद नहीं करते थे। इसलिए देश-भक्त नौजवानों ने मिलकर 'नौजवान भारत सभा' बनाई, जिसके जनरल सैक्रेट्री स. भगत सिंघ थे। इनके पिता स. किशन सिंघ और चाचा अजीत सिंघ दोनों क्रान्तिकारी विचारों वाले थे। स. अजीत सिंघ तो अपने साथी सूफा अम्बा प्रसाद के साथ भेस बदलकर विदेश रवाना हो गये थे और अपनी आयु का बहुत भाग उन्होंने जलावतनी में ही बिताया। दूसरे विश्व युद्ध के समय (1939-45) वह इटली चले गये और वहां से रेडियो द्वारा हिन्दुस्तानियों के नाम 'इनक़लाब' का संदेश भेजते रहे। 'मुहिबाने-वतन' आप की एक उर्दू रचना है, जिसमें देश-भक्ति का पाठ दृढ़ कराया गया था। इसलिए स. भगत सिंघ जी ने अपनी ख़ानदानी परम्परा के अनुसार अंग्रेज़ विरोधी सरगर्मी तेज़ की। जून 1928 में 'सायमन कमीशन' लाहौर आया तो लोगों ने लाला लाजपत राय की अगुवाई में उस के विरुद्ध सख़्त मुज़ाहरे किये और पुलिस ने लाठी-चार्ज करके भीड़ को खदेड़ा। इस समय लाला लाजपत राय जी के कहीं लाठी लगी, जिस कारण वह 17 नवम्बर, 1928 को स्वर्गवास हो गये। इस बात से नौजवानों में बहुत रोष उत्पन्न हुआ कि हमारे नेता को अंग्रेज़ शासकों ने बिना किसी कारण मरवा दिया है। इसी के विरोध में आकर 8 अप्रैल, 1929 को दिल्ली के असेंबली हाल में दो बंब फैंके गये, जिस पर स. भगत सिंघ और बटकेशवर दत्त को उमर कैद हुई। इस 'नौजवान भारत सभा' के सदस्यों ने अपने प्रोग्राम अनुसार लाला लाजपत राय जी की मृत्यु का बदला लेने के लिए लाहौर मि. सांडरस को मि. स्काट समझकर गोली मारकर मार दिया क्योंकि मि. स्काट के आदेश अनुसार ही सख़्त लाठी-चार्ज किया गया था। अब सरकार को अवसर मिल गया कि वह नौजवान क्रान्तिकारियों को इस साज़िश में फंसाकर अपनी मनमर्ज़ी की कारवाई कर सके। जेल के बुरे व्यवहार के विरुद्ध 13 दिन की भूख हड़ताल के बाद बाबू जितेन्द्र नाथ (बंगाली) तो जेल में ही 13 सितम्बर को प्राण त्याग गये थे।

7 अक्तूबर, 1930 को मुकद्दमे का निर्णय सुनाया गया तो स. भगत सिंघ, पं. राजगुरु और सुखदेव और सात अन्य नौजवानों को उमर कैद की सज़ा हुई। स. भगत सिंघ ने सरकार को लिखा, 'क्योंकि हम सरकार के विरुद्ध युद्ध करने के दोषी हैं, इसलिए हमें जंगी कैदी समझकर गोली से मार दिया जाये।' 23 मार्च, 1931 का इन नौजवानों को लाहौर सैंट्रल जेल में फांसी लगा दिया गया। यह बात याद रहे कि सांडरस का वध

स. भगत सिंघ ने नहीं किया था परन्तु देश-भक्ति के जज़बे में उसने इससे इन्कार भी न किया, जैसा कि भगत सिंघ ने स्वयं भाई साहिब रणधीर सिंघ जी (1878-16 अप्रैल, 1961 ई०) को जेल में बताया जो कि ग़द्दर लहर में कैद थे और 4 अक्तूबर, 1930 को लाहौर से रिहा होने वाले थे। भगत सिंघ का एक अन्य साथी चन्द्र शेखर आज़ाद 27 फ़रवरी, 1931 को इलाहाबाद पुलिस से मुकाबला करता शहीद हो गया था। पंजाब के और हिन्द के दूसरे भागों में देश-भक्त लोगों में सख़्त रोष था कि महात्मा गांधी जी ने गोलमेज़ कान्फ्रेंस के समय और न ही 'गांधी इरवन पैक्ट' के समय स. भगत सिंघ जैसे नौजवान क्रान्तिकारी के बारे में सरकार के साथ कोई बातचीत की।

1931 में बाबा खड़क सिंघ जी ने डसके का मोर्चा छेड़ दिया। झगड़ा कुछ दुकानों के संबंध में था, और पंथक नेता मोर्चा लगाने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु बाबा जी का पंथ में बहुत आदर था, इसलिए मास्टर तारा सिंघ जी भी जत्था लेकर गिरफ़्तार हो गये। जेल में दोनों नेताओं ने मिलकर चलने का निश्चय किया, परन्तु अधिक समय तक न निभ सका। शिरोमणी कमेटी का नया चुनाव हुआ, जिसमें जेल में बैठे मास्टर तारा सिंघ जी को ही प्रधान चुन लिया गया।

साम्प्रदायिक निर्णय

इस समय देश की बड़ी समस्या साम्प्रदायिक उलझन को सुलझाने की थी, इसका कोई सन्तोषजनक समाधान नज़र नहीं आ रहा था। सरकार ने अक्तूबर 1931 में लंडन में दूसरी गोलमेज़ कान्फरेंस भी की, परन्तु कोई समाधान न हो सका। अन्त में गांधी जी ने बरतानवी वज़ीर-ए-आज़म मि. रामज़े मैक्डानल्ड को सालिस मान लिया और उसने 17 अगस्त, 1932 को साम्प्रदायिक निर्णय (कम्यूनल ऐवार्ड) का ऐलान कर दिया। इससे पंजाब में सदैव मुस्लिम बहुसम्मति का राज्य मज़बूत हो गया। मुसलमानों ने कौमी लहर की विरोधता करके जो सरकारी सेवा की थी, उसका उनको इनाम दे दिया गया। दूसरे, जो जोशीले सिक्ख प्रतिदिन मोर्चे लगाकर और सत्याग्रह करके अंग्रेज़ सरकार को कष्ट में डाले रखते थे, उनको मुस्लिम ग़ुलामी के नीचे फेंक कर लड़ाई का पासा पक्के तौर पर पलट दिया गया। सरकार ने सोचा कि सिक्ख मुसलमानों के साथ

लड़ते स्वयं कमज़ोर पड़ जायेंगे और सीधा बरतानवी शहनशाहीयत के विरुद्ध सिर नहीं उठा सकेंगे। उस समय अन्तरराष्ट्रीय नीति की दृष्टि से भी सरकार मुसलमानों को प्रसन्न करना आवश्यक समझती थी।

साम्प्रदायिक निर्णय में अछूतों को अलग प्रतिनिधिता दी गई थी, परन्तु महात्मा गांधी जी ने सितम्बर 1932 में मरनवृत रखकर इस पर रोक लगा दी और अछूतों को 'पूना पैक्ट' के अनुसार हिन्दुओं वाले भाग में से ही प्रतिनिधिता देनी स्वीकार हुई। सिक्खों ने इस साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध ज़ोर से आन्दोलन आरम्भ किया और दोनों दल कुछ समय के लिए मिलकर कार्य करने लगे। 'गुरसेवक सभा' के सूझवान सिक्ख आगू व्यक्तियों ने निवेदन किया कि दोनों दलों के आगू—मास्टर तारा सिंघ और ज्ञानी शेर सिंघ कुछ समय के लिये पार्टी के कार्यों से अलग हो जाएं ताकि तनाव कम हो जाए। मास्टर जी बनवास लेकर पांवटे और फिर बरमा चले गये, परन्तु जब 1935 में स. सेवा सिंघ ठीकरीवाले की जेल में स्वर्गवास हो जाने की सूचना मिली तो आप से रहा न गया और आकर फिर महाराजा पटियाला के विरुद्ध आन्दोलन चलाया और अकाली कैदियों को रिहा करवाया। साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध आन्दोलन काफ़ी समय तक चलती रही। कांग्रेस ने तो 'न सहमति न असहमति' का मता पास करके अन्त में इस निर्णय को एक तरह स्वीकार ही कर लिया था। 1937 में कांग्रेस ने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए यह मता भी पास किया कि इस के विरुद्ध कोई आन्दोलन न किया जाये, सिक्ख बुरी तरह उलझन में फँसें। कल जिस कांग्रेस के लिए वे मरे थे, आज उसी कांग्रेस ने उनको मुस्लिम बहु-सम्मति का पराधीन बनाकर दूर फेंक दिया।

साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार पंजाब विधान सभा की 175 सीटों में से 86 मुसलमानों को, 43 हिन्दुओं को, 32 सिक्खों को, 2 ईसाईयों और एक एक ऐगलों इंडियनज़ एवं यूरोपियनज़ को और दस सीटें साझी रख ली गई थीं। यह निर्णय 1935 में 'ऐक्ट' बन गया और इस अनुसार चुनाव करवाने का प्रोग्राम बना। सरकार को आशा थी कि इस चुनाव में अकाली पार्टी को पराजित करके सिक्ख सरदारों की रईस पार्टी को आगे लाया जाये।

शहीद गंज आन्दोलन

शहीद गंज लाहौर के अधिकार के सम्बन्ध में शिरोमणी कमेटी का

महंतों के साथ मुकद्दमा चल रहा था। निर्णय कमेटी के पक्ष में हुआ, जिस अनुसार कमेटी ने मार्च 1935 में अधिकार कर लिया। इमारत पुरातन थी, इसलिए इसको गिराकर नया गुरुद्वारा बनाने की योजना बनाई गई, इस तोड़-फोड़ में मिस्तरी मेला सिंघ की मृत्यु हो गई, जिसका सिंघों ने जलूस निकालकर संस्कार किया। मुसलमानों ने यह चर्चा छेड़ दी कि यह जगह वास्तव में मसीत की है, इसलिए 'काफ़िर' को मरना पड़ा है, हमारी मसीत हमें वापिस दी जाये। जज़बाती नारों और छेड़खानी ने आपस में काफ़ी खिचाव उत्पन्न कर दिया। 20 जुलाई, 1935 को मुसलमानों ने शहीद गंज पर धावा बोल दिया। जिस पर पुलिस ने गोली चलाई और दस हमलावरों की मृत्यु हुई, परन्तु कुछ समय के पश्चात् यह ज़ोश ढीला पड़ गया। मुसलमानों ने शहीद गंज को मस्जिद साबित करने के लिए ज़ोरदार मुकद्दमा लड़ा परन्तु सफलता प्राप्त न हो सकी। 25 मई, 1936 को हाई कोर्ट लाहौर ने भी सिक्खों के पक्ष में निर्णय दिया। फिर मुसलमानों ने दूसरों के कहने में आकर प्रिवी कौंसिल में भी यह मुकद्दमा लड़ा, परन्तु हार प्राप्त हुई।

गवर्नर पंजाब को रोष था कि उसके कहने पर सिक्खों ने शहीद गंज की पुरानी इमारत को गिराना बंद नहीं किया था। इसलिए उसने हिन्दुओं-मुसलमानों को कृपान रखने की स्वतन्त्रता दे दी ताकि यह छूट अकेले सिक्खों को ही प्राप्त न हो। इसके बाद सरकार ने पाबंदी लगा दी कि कोई सिक्ख बड़ी कृपान लेकर लाहौर शहर में न घूमे। सिक्खों ने मोर्चा लगा दिया, जिसने कृपान पहनी होती उसको गिरफ़्तार कर लिया जाता। पाबंदी की अवधि (समय) समाप्ति के साथ मोर्चा भी समाप्त हो गया।

सर्व हिन्द सिक्ख मिशन

यह बात 13 अप्रैल, 1936 ई० की है, जब वैशाखी को अकाल तख़्त के सामने एक भारी सर्व हिन्द शिरोमणी प्रचार कान्फ्रेंस हुई। इसमें सिक्ख नेताओं के अतिरिक्त डॉ. अम्बेदकर, मि. आर.एल. बिस्वास प्रधान आल इन्डिया शैडयूलड कास्टस लीग और साधू एक्यानन्द आदि भी शामिल थे। मुख्य समस्या 7 करोड़ अछूतों को सिक्ख धर्म में सम्मिलित करने की थी। मालाबार और यू.पी. से काफ़ी अछूत पहुँचे हुए थे, जिनको वहां

अमृतपान कराया गया। जगत् गुरु शंकराचार्य ने पंचवटी नासिक से कान्फ्रेंस के नाम संदेश भेजा, 'दलित जाति के सिक्ख धर्म में प्रवेश करने से वे छूतछात की बीमारी से तो बच जायेंगे परन्तु हिन्दु धर्म से भी नहीं अलग होंगे। हिन्दु मत का बुरा कलंक धुल जायेगा और वीर योद्धों की गिनती बढ़ने से देश को अधिक लाभ होगा। यदि सिक्ख हिन्दुओं से अलग हैं तो केवल इस बात से कि उनमें भारत और मानवता के लिए अधिक जोश है।' आर.एल. बिस्वास ने कहा, 'दलित जातियों वाले जिस वस्तु की तलाश में थे, वे उनको सिक्ख पंथ में से मिल गई है। अगर पूर्ण प्रयत्न किया जाये तो सिक्ख 20 वर्ष में धार्मिक तौर पर समस्त हिन्द पर जीत प्राप्त कर सकते हैं।'

इस प्रकार कान्फ्रेंस से प्रभावित होकर 'सर्व हिन्द सिक्ख मिशन' की स्थापना की गई। डॉ. अम्बेदकर ने बंबई ख़ालसा कालेज बनाने के लिए कहा ताकि उधर प्रचार केन्द्र स्थापित किया जा सके। कमेटी ने कालेज तो बना दिया परन्तु डॉ. अम्बेदकर अपने वचन की पालना न कर सके। वैसे मिशन ने यू.पी., सी.पी. आदि की ओर काफ़ी प्रचार का कार्य किया और लाखों की गिनती में लोग सिंघ सजते गये।

असेम्बली चुनाव

1935 के नये ऐक्ट के अनुसार जो प्रांतिक ख़ुदमुख़्तारी दी गई, उसके अनुसार 1937 में असेम्बली का चुनाव हुआ, कांग्रेस ने चुनाव में जीत प्राप्त करके कई प्रांतों में मंत्रिमंडल बनाये। इस चुनाव में अकाली अधिक संख्या में जीते। सर सुन्दर सिंघ मजीठा तो रुपये-पैसे के ज़ोर और सरकारी मेल-मिलाप के कारण जीत गये, परन्तु उनकी नई बनाई 'ख़ालसा नैश्नलिसट पार्टी' बुरी तरह पराजित हुई। सर सिकन्दर हयात ने यूनियनिस्ट पार्टी बनाकर वज़ारत बना ली और स. सुन्दर सिंघ जी को वज़ीर ले लिया। अब ख़ालसा नैश्नलिसट पार्टी को शक्तिशाली करने और अकालियों को पीछे धकेलने के लिए कई तरह के कार्य किये जाने लगे। शिरोमणी कमेटी, शिरोमणी अकाली दल, दरबार साहिब कमेटी, सिक्ख मिशनरी कालेज, सर्व हिन्द सिक्ख कमिशन आदि के कार्यालयों की तलाशी ली गई ताकि किसी न किसी तरीके से अकालियों को फंसाकर जेल में भेजा जाये। फिर सियालकोट के एक चापलूस सरदार ख़ज़ान सिंघ की ओर से अकालियों

पर कई मुकद्दमे चलाये गये जो सब ख़ारिज होते गये। एक मुकद्दमा यह भी था कि शिरोमणी कमेटी ने अपने अधिकार से अधिक सिक्खी प्रचार के लिए रुपये ख़र्च किये। यह मुकद्दमा रद्द करते हुए न्यायाधीशों ने लिखा, 'शिरोमणी कमेटी की सफ़ेद चादर पर कोई भी दाग़ नहीं।" ऐसे ही अकालियों की बे-ग़रज़ी, निष्कामता और नियम-प्रस्ती इनको विजय प्राप्त कराती रही। यद्यपि सिक्खों की परस्पर फूट ने कोई विशेष कार्य तो न करने दिया, परन्तु अकाली अपने क्रान्तिकारी आंदोलन के लिए डटे रहे। इस समय ज्ञानी शेर सिंघ और स. अमर सिंघ शेर-ए-पंजाब वाले अपने पत्रों द्वारा अकालियों के विरुद्ध प्रापेगंडा करते ख़ालसा नैश्नलिस्ट पार्टी की हिमायत पर थे, परन्तु अकाली पार्टी का लोगों में सत्कार कायम रहा।

जुलाई 1938 में सरकारी जबर के विरुद्ध अमृतसर में भारी किसान सम्मेलन हुआ, जिसमें जत्थेदार उधम सिंघ नागोके आदि अकालियों ने विशेष भाग लिया। *अकालियों की कोशिश से ही लाहौर में 1938 में* 'सिक्ख नैश्नल कालेज' बना।

यूनियनिस्ट सरकार जैसे कैसे अकालियों को दबाने के यत्न में थी। मुट्ठी भर चापलूस रईस सिक्खों की सहायता के सहारे इस मुस्लिम सरकार ने सिक्ख अधिकारों को पूर्णतः ओझल किया हुआ था और इससे मुस्लिम लोगों को भी भड़काया हुआ था, जिसके कई बुरे परिणाम निकले।

ज़िला कैमलपुर के गुरुद्वारा कोट भाई थान सिंघ में रह रहे सिंघों पर मुसलमानों ने धावा बोल दिया, जिसमें भाई निर्मल सिंघ शहीद हुए तथा कई और सिक्ख घायल हुए। इसी तरह मुसलमानी गुण्डों ने गांव आहला ज़िला गुजरात के एक दीवान पर जाते हुए रागी सुन्दर सिंघ जैसे गुणवान रागी को क़त्ल कर दिया। बाद में एक अन्य निहंग सिंघ को क़त्ल किया गया और गुजरांवाले में सरदार अवतार सिंघ जी को इसी मुस्लिम जुल्म का शिकार होना पड़ा।

अकाली सदस्यों की ओर से झटके की स्वतन्त्रता, गुरुद्वारा तरमीमी बिल और पंजाबी हिन्दी प्रचार हेतु कई तरह के बिल पेश किये जाते रहे, परन्तु सिकन्दर सरकार ने कोई भी पास न होने दिया। इस तरह सिकन्दर वज़ारत अहरारों, ख़ाकसारों, व्यापारियों और किसानों की तहरीक को बल या नीति से दबाने में तो सफल हो गई, परन्तु अकालियों को न दबा सकी। ख़ाकसारों के मुकाबले अकालियों ने अप्रैल 1939 में 'अकाल सेना' खड़ी कर दी और अधिकारों हेतु संघर्ष तीव्र रखा।

1939 में गुरुद्वारा चुनाव हुआ, अकाली फिर जीत गये और पहले की तरह मास्टर तारा सिंघ प्रधान बने। सितम्बर 1939 में संसार का दूसरा बड़ा युद्ध आरम्भ हो गया, जो 1945 में समाप्त हुआ। इस समय सिक्ख अजीब राजनीतिक अड़चन में फंस गये। अगर वे अंग्रेज़ों की सहायता करते थे तो उनकी समस्त क्रान्तिकारी रवायतों और देश-भक्ति पर पानी फिरता था। अब तक वे कांग्रेस के साथ काम करते आये थे, यद्यपि कांग्रेस ने 'नेहरू रिपोर्ट' और 'साम्प्रदायिक निर्णय' के समय उनके लिए कुछ भी नहीं किया था। दूसरी ओर अगर वे अंग्रेज़ विरुद्ध होकर सेना में भरती नहीं होते थे तो सारी सैनिक शक्ति मुसलमानों की बनती थी और सिक्खों की सैनिक शक्ति कम होती थी। सिकन्दर की योजना थी कि सिक्खों को इस अवसर पर कुचल दिया जाये और मुस्लिम सैनिक शक्ति हर पहलू से मज़बूत की जाये ताकि युद्ध के पश्चात् अगर स्वतन्त्रता प्राप्त हो तो यह शक्ति समय पर काम आ सके।

इसलिए अकालियों ने 'ख़ालसा डीफैंस लीग' बनाकर फ़ौजी भरती देने की हिमायत की ताकि सिक्खों की सैनिक-शक्ति बने और देश में गड़बड़ी के समय रक्षा के लिए काम आ सके। कांग्रेसी नेता सिक्खों को 'देश सेवक' कहकर और अंग्रेज़ 'जंग बहादुर' कहकर अपना अपना काम निकालना चाहते थे, परन्तु अकालियों ने ऐसी नाज़ुक स्थिति में वही पोज़ीशन ली जो सिक्खों जैसी छोटी कौम के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती थी। इसलिए उन्होंने फ़ौजी भरती के पक्ष में या विरोध में कोई ऐलान न किया, फिर भी अपनी सैनिक मज़बूती के लिए यथायोग्य यत्न जारी रखे, परन्तु अकालियों का एक दल इस कार्य को पसन्द नहीं करता था। उनका विचार था कि किसी तरह भी अंग्रेज़ों को भरती के द्वारा सहायता नहीं देनी चाहिए, परन्तु अधिक तौर पर ये कौम-प्रस्त अकाली नज़रबंद थे।

1 अक्तूबर, 1939 को शिरोमणी अकाली दल ने और अन्य पंथक नेताओं ने एकत्रित होकर मता पास किया—

'चूकि संसार युद्ध की लपेट में आ चुका है, इसलिए यह कान्फ्रेंस मौजूदा युद्ध की ज़िम्मेंदारी के प्रश्न को न छेड़ती हुई पूर्णतः कांग्रेस की इस मांग की पुष्टि करती है कि अंग्रेज़ी सरकार हिन्दुस्तान की राजसी अवस्था के बारे में और भविष्य के इरादों का शीघ्र ऐलान करे।'

पाकिस्तानी स्कीम

मार्च 1940 में मुस्लिम लीग ने लाहौर, पाकिस्तान स्कीम वाला मता पास कर दिया, जिस के जवाब में 28 मार्च को शिरोमणी अकाली दल ने यह मता पास किया—

"दल की वर्किंग कमेटी, मुस्लिम लीग के पाकिस्तानी निर्णय को, जिसके अधार पर मि. जिन्नाह और उसके साथी पंजाब तथा अन्य मुसलमानी बहु-गिनती वाले प्रांतों में मुस्लिम राज्य स्थापित करना चाहते थे, देश की स्वतन्त्रता और प्रांतों में रहने वाले अल्पसंख्यकों के लाभ के विरुद्ध समझती है और इसका तीव्र निषेध करती है।"

इस स्कीम के विरुद्ध जिस द्वारा सिक्खों पर पूर्णतः मुस्लिम ग़ुलामी थोपने की योजना बनाई गई थी, अकालियों ने ज़ोरदार ऐजीटेशन चलाई और अन्त तक इसका विरोध करते रहे। परन्तु कांग्रेस ने मुस्लिम लीग की चापलूसी और ख़ुशामद का ग़ल्त रास्ता चुना, जिसके निष्कर्ष बुरे निकले।

13 मार्च, 1940 का दिन था, जिस दिन स. ऊधम सिंघ सुनाम वालों ने, जो राम मुहम्मद सिंघ नाम रखकर सात वर्षों से इस दाव में लंडन में रह रहे थे, सर माईकल ओडवायर (रिटा. गवर्नर पंजाब) को इण्डिया आफ़िस में गोली मारकर मारा, इसके फलस्वरूप आपको 31 जुलाई 1940 को फांसी पर लटकाया गया।

17 जुलाई, 1940 को 21 नंबर रसाले के जवानों ने समुद्र पार जाकर अंग्रेज़ों के लिए लड़ने से इन्कार कर दिया, जिस पर 26 जुलाई को नायक गुरचरन सिंघ रुमावां, बिशन सिंघ बुट्टर, साधू सिंघ ददेहर और आसा सिंघ नंदपुर, चारों को फांसी हुई। 117 को कैद किया गया और 70 के नाम रद्द किये गये।

सिक्खी मर्यादा को पुनः जागृत करने के लिए सितम्बर 1940 को छेहरटा साहिब में एक अकाली सत्संग कैंप खोला गया, जिसमें अकाली नेताओं ने निरोल सेवाभाव में एक मास बिताया। पाकिस्तान के विरुद्ध प्रापेगंडा ज़ोरों पर था। अप्रैल 1941 में मा. तारा सिंघ जी की प्रधानगी में कराची में एक विशाल 'ऐंटी पाकिस्तान कान्फ्रेंस' की गई। 1, 2 जून, 1941 को अलीगढ़ में एक भारी प्रचार कान्फ्रेंस हुई, जिसमें लगभग 25 हज़ार यू.पी. के व्यक्तियों ने अमृतपान किया। यह प्रचार-दृश्य बहुत ही

आश्चर्यजनक और अद्वितीय था। इसी वर्ष कांग्रेस ने बरतानवी सरकार के विरुद्ध सिवल न-फ़ुरमानी लहर चलाई, जिसमें अनेकों अकाली गिरफ़्तार हुए।

मार्च 1942 में सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स एक स्कीम लेकर आया। इस स्कीम में पाकिस्तानी स्कीम की झलक थी, इसलिए अकालियों ने इसको ठुकरा दिया और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने भी इसको अस्वीकार कर दिया। 2 अप्रैल, 1941 को सर सुन्दर सिंघ मजीठा के स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् एक तरह सिकन्दर वज़ारत, प्रतिनिधि सिक्ख वज़ीर के बिना अधूरी थी, सिकन्दर अकाली विरोध से मुक्ति चाहता था। साथ ही युद्ध ने जो नये हालात उत्पन्न कर दिये थे, उसने सरकार को मजबूर किया कि कुछ हद तक अकालियों की तसल्ली करवाई जाये। इसलिए जून 1942 में 'सिकन्दर बलदेव सिंघ पैक्ट' हुआ, जिसकी विशेष शर्तें ये थीं— (1) कोई मतभेद वाला मता पास न किया जाये; (2) झटके की छूट और गऊ-मांस पर पाबंदी लगाई जाये; (3) हिन्दी और पंजाबी की शिक्षा के लिए स्कूलों में योग्य प्रबन्ध हो; (4) मज़हबी कानून केवल उस मज़हब के प्रतिनिधियों की वोटों से ही बने। यह पैक्ट एक तरह अकालियों की जीत थी, इस अनुसार स. बलदेव सिंघ वज़ीर बने और अकालियों ने इसकी पुष्टि की। महाशय अख़बारों ने इस समझौते की विरोधता आरम्भ कर दी, हालांकि अकालियों ने समझौता करते समय हिन्दु मांगों का बराबर ध्यान रखा था।

सिकंदर ने 1942 की गड़बड़ी के समय कई अफ़वाएं फैलाकर अकालियों को फंसाने के प्रयत्न किये। यह भी कहा गया कि अकालियों ने महाराजा पटियाला से पचास हज़ार बन्दूकें प्राप्त की हैं। परन्तु यह सब प्रापेगंडा ऐसे ही व्यर्थ ही गया।

'हिन्द छोड़ो'

इस समय क्रिप्स स्कीम के साथ कोई तसल्ली न होने के कारण हिन्द भर में बेचैनी थी। 7 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने बंबई में 'कुइट इण्डिया' (हिन्द छोड़ो) का मता पास किया। देश भर में गिरफ़्तारियां हुईं और सरकार विरोधी भावना की ज़ोरदार तहरीक चली। गेहूं-संकट के कारण बंगाल में भारी अकाल पड़ा और 30-35 लाख व्यक्ति भूख से दू:खी होकर मक्खियों की तरह मर गये। अंग्रेज़ों के विरुद्ध जज़बा

ज़ोर पकड़ता गया। तोड़-फोड़ और आग लगाने की नीति आंधी की तरह चली और सरकार ने भी पूर्णतः सख़्ती से काम लिया। पंजाब में इस लहर का ज़ोर कम ही पड़ा, इसका कारण अकालियों की दोहरी नीति थी। जत्थेदार उधम सिंघ आदि अकाली नेता गिरफ़्तार कर लिये गये और दूसरा नरम दल बाहर घूंमता रहा जो कि अकाली रवायतों के प्रतिकूल बात थी।

सितम्बर 1942 में उदोवाली वहीला कलां ज़िला लायलपुर में तीसरी वार्षिक कान्फ्रेंस हुई जिसमें पाकिस्तानी स्कीम की मार से बचने के लिए 'आज़ाद पंजाब' का मता पास किया गया। शिरोमणी कमेटी के जनरल इजलास से भी इसकी पुष्टि करवाई गई। इस स्कीम का निशाना इतना ही था कि अगर पाकिस्तान बने तो अधिक से अधिक पंजाब के हिन्दु सिक्ख इलाके को हिन्द के साथ रखा जाये। ज्ञानी शेर सिंघ जी भी इस समय फिर अकाली पार्टी से मिलकर कार्य करने लगे।

आज़ाद हिन्द फ़ौज

जब 1941 के अन्त में जापान ने मलाया पर आक्रमण किया तो सयाम देश अपने आप ही जापान के अधीन हो गया। सयाम में काफ़ी हिन्दुस्तानी (अधिकतर सिक्ख) भी रहते थे, इनमें ज्ञानी प्रीतम सिंघ सिक्ख मिशनरी, बाबू अमर सिंघ सहौली और स्वामी सत्यानन्द, आदि ने जापान के साथ मिलकर हिन्द को आज़ाद करवाने के लिए कुछ प्रयत्न आरम्भ किये। इन दिनों अलोर स्टार के मोर्चे पर 14 और 16 पंजाब रेजीमेंट और 9 नंबर जाट रेजीमेंट आदि जापान के विरुद्ध लड़ रही थीं। अंग्रेज़ अपनी गोरा फ़ौज पीछे रखकर हिन्दुस्तानियों को आगे भेज देते थे। फिर जापान आदि के मुकाबले शस्त्रों का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं था, इसलिए चौदह पंजाब रेजीमेंट के कैप्टन मोहन सिंघ और कैप्टन मुहंमद अकरम ने शस्त्र फेंककर जापानियों के साथ समझौता कर लिया। ज्ञानी प्रीतम सिंघ जो कि सिक्ख मिशनरी कालेज के पढ़े थे, इस समझौते के बानी थे, इनके जापानियों के साथ अच्छे सम्बन्ध थे। सभी ने मिलकर 15 दिसम्बर, 1941 को 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' का निर्माण किया। अलोर स्टार में बड़ा कैंप बना; 31 दिसम्बर को सारे हिन्दी जंगी कैदी भी जनरल मोहन सिंघ को सौंप दिये गये। जनवरी 1942 में पीनांग में आज़ाद हिन्द रेडियो आरम्भ किया। 17 फ़रवरी, 1942 को सिंगापुर में अंग्रेज़ों ने शस्त्र फेंक दिये।

गोरा फ़ौज को चांगी जेल में बंद करके हिन्दुस्तानी सेना को फैरर पारक में एकत्रित किया गया जहां कि जनरल मोहन सिंघ ने जवानों को जोशीला भाषण दिया। कैद अंग्रेज़ कर्नल हंट ने टेलीफोन पर कहा, 'मैं हिन्दुस्तानी फ़ौज को जापानियों के अधीन करता हूँ।" आगे जापानी मेजर फयूजीवारा ने इस फ़ौज को जनरल मोहन सिंघ के अधीन कर दिया। 1 मार्च, 1942 को सिंगापुर में मुख्य फ़ौजी अफ़सरों की मीटिंग हुई और निर्णय किया गया कि पूर्वी एशिया में से जगह जगह से पैसे और व्यक्ति एकत्र करके आज़ाद हिन्द फ़ौज को बड़े पैमाने पर जत्थेबन्द किया जाये, मलाया निवासी इस सरगर्मी में सबसे आगे थे। कार्यालय ईपो और फिर कुआललम्पुर लाया गया। ज्ञानी प्रीतम सिंघ अमन कमेटी बनाकर जगह जगह पर लोक-राय संगठित कर रहा था।

जापान सरकार के साथ आवश्यक बातें करने के लिए जनरल मोहन सिंघ, कर्नल निरंजन सिंघ गिल्ल, ज्ञानी प्रीतम सिंघ, कैप्टन मुहंमद अकरम और स्वामी सत्यानन्द टोकियो रवाना हुए। बताया जाता है कि जिस जहाज़ में ज्ञानी प्रीतम सिंघ, स्वामी सत्यानन्द और मुहंमद अकरम थे वह रास्ते में हादसे का शिकार हो गया और ये पुरुष 12 मार्च, 1943 को स्वर्गवास हो गये। जरनैल साहिब को ज्ञानी प्रीतम सिंघ जी जैसे साहसी मित्रों के बिछुड़ने का बहुत भारी खेद हुआ। आप 28, 29 मार्च को कान्फ्रेंस करके टोकियो से वापिस आ गये। जून 1942 को बैंकाक में हिन्दुस्तानियों की एक विशाल कान्फ्रेंस हुई जहां कि श्री रास बिहारी बोस की प्रधानगी में 'आज़ाद हिन्द लीग' बनाई गई और आज़ाद हिन्द फ़ौज का जनरल आफ़ीसर कमांडिंग सरदार मोहन सिंघ जी को स्वीकार किया गया। इस समय कुल 15 हज़ार सेना थी और लगभग 21 हज़ार अन्य वालंटियर थे। कई मास की लम्बी मेहनत से जनरल साहिब ने इस सेना को सुशिक्षित और संगठित किया। अपनी इच्छा अनुसार जापानी इस सेना को बर्मा के मोर्चे पर भेजना चाहते थे, परन्तु जनरल साहिब इस बात से सहमत नहीं थे। उन्होंने सेना तोड़ दी। आख़िर रास बिहारी बोस जापानी हाथों में कठपुतली बना हुआ था, उसने लाभ-हानि देखे बिना मोहन सिंघ को निकाल दिया और जापानियों ने आप को 29 दिसम्बर, 1942 को एक जज़ीरे में कैद कर दिया, इसलिए आप युद्ध के समय नज़रबंद ही रहे।

2 जुलाई, 1943 को सुभाष चन्द्र बोस जर्मन से सिंगापुर आये और

उन्होंने दुबारा 26 अगस्त, 1943 को आज़ाद हिन्द फ़ौज को जत्थेबंद किया। अक्तूबर 1943 में आज़ाद हिन्द सरकार स्थापित की गई। लगभग 20 करोड़ रुपया एकत्रित किया। फ़ौज की गिनती 40 हज़ार तक हो गई, यह फ़ौज सयाम, बर्मा के मोर्चों पर कई स्थानों पर अच्छी लड़ी। अैम्फल पर भी अधिकार करके तिरंगा झण्डा लहराया, परन्तु मौसम की ख़राबी, सामान की कमी और जापानियों की अधूरी सहायता के कारण सफलता प्राप्त न हुई। 18 अगस्त, 1945 को सुभाष चन्द्र बोस हवाई हादसे का शिकार होकर सदा के लिए बिछुड़ गये। जंग का पासा पलट जाने के कारण जापान हार गया और इस फ़ौज के मुख्य अफ़सर, मेजर जनरल शाह नवाज़, कर्नल गुरबख़्श सिंघ ढिल्लों और कैप्टन सहगल सेना के साथ गिरफ़्तार कर लिए गये। लाल किले में मुकद्दमा चला और अन्त 3 जनवरी, 1946 को ये रिहा हुए। 4 मई, 1946 को जनरल मोहन सिंघ को भी रिहा कर दिया गया।

अंग्रेज़ी योजनाएं

जैसा कि हम पीछे बता चुके हैं कि 1942-43 में देश भर में गड़बड़ रही, जब जंगी हालात ने पलटा खाया तो अंग्रेज़ सरकार ने जुलाई 1944 में कांग्रेसी नेताओं को रिहा कर दिया, अब देश की स्वतन्त्रता का प्रश्न फिर सामने था, परन्तु कांग्रेस और लीग का कोई समझौता न होने के कारण अंग्रेज़ों के लिए एक अच्छा बहाना बना हुआ था। अगस्त 1944 में श्री राजगोपाल आचार्य ने 'राजा-गांधी फ़ार्मूला' पेश किया, जिसकी सिक्खों ने 20 अगस्त को पंथक इकट्ठ बुलाकर ज़ोरदार निंदा की। साथ ही सिक्ख स्टेट की मांग की गई, जिस के मोहरी आगू ज्ञानी करतार सिंघ (देहांत 10 जून, 1974 ई०) और ज्ञानी शेर सिंघ (देहांत 7 अक्तूबर, 1944 ई०) थे। इस फ़ार्मूले के अनुसार कांग्रेस ने कुछ सीमा तक एक तरह लीग की पाकिस्तानी मांग स्वीकार कर ली थी, केवल सीमाओं के सम्बन्ध में कुछ मतभेद था। 25 नवम्बर, 1944 को जंडियाले सिल्वर जुबली अकाली कान्फरेंस हुई। फिर सिक्खों ने 'सपरू कमेटी' के समक्ष भी अपनी तज़वीज़ रखी कि पंजाब सिक्खों का होमलैंड है, इसको कैसे पाकिस्तानी मार से बचाया जाये, परन्तु कोई बात न बनी। लार्ड वेवल ने कौमी सरकार बनाने के लिए 25 जून, 1945 को शिमला में हिन्दी नेताओं की कान्फ्रेंस

बुलाई, मास्टर तारा सिंघ सिक्खों की ओर से शामिल हुए, परन्तु मि. जिन्नाह की ज़िद कि मुस्लिम प्रतिनिधि नामज़द करने का अधिकार केवल लीग को ही है, यह कान्फ्रेंस भी बुरी तरह फ़ेल हो गई।

14 अगस्त, 1945 को दूसरा विश्व युद्ध समाप्त होने के पश्चात् सितम्बर में इंग्लैंड में चुनाव हुआ। मिस्टर चर्चल के स्थान पर मि. ऐटले की लेबर पार्टी सफल हुई। लेबर सरकार ने हिन्द भर में भी चुनाव करवाने का ऐलान कर दिया। अकालियों ने पहली बार पंथक टिकट पर चुनाव लड़ा, जिसमें उनको भारी सफलता प्राप्त हुई। पहले अकाली कांग्रेस के साथ मिलकर ही चुनाव लड़ा करते थे, परन्तु कांग्रेस की 'लीग-नवाज़' झुकाव नीति ने सिक्खों में नाराज़गी की लहर उत्पन्न कर दी। हिन्द की राजसी गुत्थी सुलझाने के लिए लेबर सरकार ने लार्ड पैथक लारंस की अगुवाई में 'कैबनिट मिशन' भेजा, जिसके क्रिपस और ए.वी. एलेगज़ैंडर दो और सदस्य थे। इन्होंने बात-चीत के पश्चात् 16 मई, 1946 को अपनी योजना का ऐलान कर दिया, जिसमें समस्त हिन्द को तीन भागों में विभाजित करके एक तरह पाकिस्तानी ढांचे की पुष्टि की गई थी तथा दूसरी तरफ़ कांग्रेस को प्रसन्न करने के लिए यह भी कहा गया था कि पाकिस्तानी मांग असंभव है। सिक्ख इस स्कीम के अनुसार सदैव के लिए मुस्लिम ग़ुलामी के अधीन कर दिये गये थे। इन तज़वीज़ों के सम्बन्ध में विचार करने हेतु जत्थेदार साहिब अकाल तख़्त की ओर से हुक्मनामा जारी करके 9 जून, 1946 को भारी पंथक कन्वैंशन बुलाई गई, जिसने वज़ारती मिशन की योजनाओं की ज़ोरदार निन्दा की। इस तरह के गंभीर अवसर पर अकालियों ने सूझ से काम लेते हुए शेष सिक्ख जत्थेबन्दियों को भी साथ लेकर 'प्रतिनिधि पंथक बोर्ड' की स्थापना की, जिसके प्रधान कर्नल निरंजन सिंघ गिल नियुक्त किये गये।

कांग्रेस और लीग ने उपरोक्त योजना को स्वीकार कर लिया। जब इस योजना के अनुसार संविधान सभा का चुनाव हुआ तो कांग्रेस को 211 और लीग को 73 सीटें प्राप्त हुईं, मिस्टर जिन्नाह इस परिणाम से बहुत घबराये। उन्होंने प्रथम स्वीकृति वापिस लेकर 16 अगस्त, 1946 को 'डायरैक्ट ऐक्शन' दिवस मनाने का ऐलान कर दिया, इसी बात पर फ़साद आरम्भ हुए। इस समय देश में अशान्ति का बीज बोया जा चुका था, और अंग्रेज़ हर तरह लीग को ख़ुश करने के लिए देश-विभाजन की योजनाएं

बनाए बैठे थे, और आगे कांग्रेस शस्त्र फेंक कर बैठी थी। पंजाब में कोलीशन वज़ारत थी, बंगाल में लीग वज़ारत और सरहद तथा सिंध में वहां के गवर्नर उग्रवादी लीगिओं की हिमायत के लिए सभी कुछ कर रहे थे।

हिन्दु मुस्लिम फ़साद

सबसे पहले लीग वज़ारत वाले बंगाल प्रांत में 16 आगस्त, 1946 को कलकत्ता में फ़साद आरम्भ हुए। यहां हसन शहीद सुहरावर्दी वज़ीर-ए-आज़म थे, इसने कलकत्ता शहर में 24 पुलिस स्टेशनों में विशेष तौर पर मुस्लिम थानेदार लगाकर और सात सौ गेलन पैट्रोल विभाजित करके समस्त बरबादी की नींव रखी। 16-17 अगस्त को जगह जगह पर हिन्दु दुकानों को आग लगाई गई और क़त्लेआम की गई। पांच छह हज़ार का जानी नुक्सान हुआ। सिक्खों ने अपनी सेवक परम्पराओं के अनुसार शहर में पांच रिलीफ़ केन्द्र खोले। अकेले गुरुद्वारा जगत् सुधार में ही 60 हज़ार हिन्दु शरणार्थी थे। सिक्खों के सेवा-भाव से प्रभावित होकर गुजराती सुसाइटी ने पांच हज़ार रुपये लंगर के लिए भेंट किये तथा इसी तरह कई और दानी पुरुषों ने इसमें हिस्सा डाला। यही बात नहीं कि सिक्खों ने केवल हिन्दुओं को ही बचाया, बल्कि टैक्सियों और मोटरों के सिक्ख ड्राईवरों ने बिना किसी भेद-भाव के मुसलमान परिवारों को भी कोई किराया लिये बिना सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया। हाजी ग़ुलाम मुहंमद ने धन्यवाद करते हुए सिंघ सभा कलकत्ते को 500 रुपये और हाजी अली ने 1000 रुपये भेंट किये, इसलिए कि इन सिक्खों ने हमारे परिवार को फ़सादों की मार से बचाया है। एक मुख्य अध्यापक ए.एम. रहीम का कथन है कि सिक्ख ड्राईवरों ने जिस तरह मुस्लिम औरतों और बच्चों की जानें बचाईं इस तरह की हमें कोई आशा नहीं थी। बाद में मि. सुहरावर्दी ने भी इस बात पर सिक्खों की प्रशंसा की कि उन्होंने बिना पक्षपात के 5 हज़ार मुसलमानों की रक्षा की है।[1]

---

1. I have been in constant touch with the Sikh leaders and I am absolutely convinced regarding their bonafides and the attempts that they are making to keep themselves neutral.....
More than that they have saved as many as 5000 Muslims from dangerous areas and carried these Muslims to safe places.
(The Statesman Daily, Calcutta Edition, 1.10.1946)

कलकत्ता के बाद त्रिपुरा और नोआखली में फ़साद हुए, जहां मुसलमानों की बहु-संख्या थी, 15 हज़ार हिन्दु बेघर किये गये। गवर्नर ने विशेष तौर पर वहां सेना भेजी और महात्मा गांधी जी भी वहां पहुँचे, जिनके साथ आज़ाद हिन्द फ़ौज के सौ सिक्ख जवान थे। इस तरह सिक्खों ने बंगाल में फ़सादों के समय शान्ति स्थापित करने में बहुत हिस्सा डाला।

2 सितम्बर, 1946 को लार्ड वेवल ने अस्थाई कौमी सरकार बनाई, जिसमें कांग्रेस और लीग के बराबर बराबर प्रतिनिधि लिए गये। सिक्खों ने इस अस्थाई कौमी सरकार और आईनसाज़ असेम्बली का पूर्णतः बाइकाट किया। बाद में कांग्रेस की प्रेरणा से सिक्ख प्रतिनिधि शामिल हुए ताकि देश में आज़ादी लाने में उनके कारण कोई बाधा न पड़ जाये। परन्तु लीग और कांग्रेस एक साथ न चल सकी। बंगाल के फ़सादों की प्रतिक्रिया होनी आवश्यक थी। बिहार के जोशीले लोगों ने बिहार में मुसलमानों पर धावा बोल दिया, काफी मुसलमान मारे गये। यह चिंगारी अब बुझने वाली नहीं थी। दिसम्बर 1946 में पंजाब में हरीपुर हज़ारे की ओर फ़साद की अग्नि उत्पन्न हो गई, जिसकी चिंगारियां सूबा सरहद की ओर भी फैलती गईं।

22 जनवरी, 1947 को आईनसाज़ असेम्बली में पंडित नेहरू का यह मता पास हो गया कि हिन्द एक स्वतन्त्र गणतन्त्र है। 20 फ़रवरी, 1947 को मिस्टर ऐटले ने यह ऐलान किया कि जून 1947 में समस्त शक्ति हिन्दुस्तानियों के हवाले कर दी जायेगी।

पंजाब की राजसी स्थिति यह थी कि 1946 के चुनाव में 175 सीटों में से 75 सीटें मुस्लिम लीग ने प्राप्त कर ली थीं। परन्तु वज़ारत दूसरों के साथ मिलकर खिज़र हयात ख़ान ने बनाई थी। बहु-सम्मति में जीतकर भी लीग का इस प्रकार उपेक्षित किये जाना मुसलमानों को भाता नहीं था, उनकी दृष्टि से खिज़र ग़द्दार था। 24 जनवरी, 1947 को राष्ट्रीय संघ और मुस्लिम नेशनल गार्डज़ ग़ैर-कानूनी करार दिये गये और लीग से सम्बन्धित व्यक्ति पकड़े जाने लगे।

इस प्रकार जनवरी, फ़रवरी 1947 में लाहौर की स्थिति बिगड़ गई। खिज़र वज़ारत के विरुद्ध जलूस निकलने लगे। 3 मार्च, 1947 को खिज़र ने त्याग-पत्र दे दिया, जब कि समस्त लाहौर में लीग के गुण्डों ने अन्धेर मचा रखा था तो मास्टर तारा सिंघ जी ने असेम्बली के आगे 'पाकिस्तान

मुर्दाबाद' का नारा लगाया और हिन्दु सिक्ख सदस्यों के साथ मिलकर जलूस निकाला। इस साझी बिपत्ता के समय हिन्दु-सिक्खों ने मिलकर 'डीफैंस कौंसिल' बनाई, जिसके प्रधान मास्टर तारा सिंघ बनाये गये। 5 मार्च से जगह जगह पर फ़सादों की आग भड़क उठी; लाहौर अमृतसर छुरेबाज़ी, बंबों तथा आग से नष्ट होने लगे। पोठोहार और सरहद के इलाकों पर जगह जगह पर ज़ुल्म के पहाड़ गिरने लगे। मार्च 1947 में ही लार्ड वेवल विलायत चले गए तथा लार्ड माऊँटबेटन वायसराय बनकर आये। इन्होंने आकर गांधी और जिन्नाह की ओर से अमन की अपील निकलवाई। 13 अप्रैल, 1947 को वैशाखी के समय सिक्ख आगू अकाल तख़्त पर एकत्रित हुए और 'शहीदी दल' बनाकर जगह जगह पर राष्ट्रीय रक्षा का प्रोग्राम बनाया। लार्ड माऊँट ने 17 मई, 1947 को एक कान्फ्रेंस बुलाई जो 2 जून तक मुल्तवी कर दी गई। फिर वे लंडन गये और अपनी सरकार के साथ सलाह करके 'माऊँटबेटन स्कीम' लाये, जिसके अनुसार उन्होंने 3 जून, 1947 को देश के विभाजन का ऐलान कर दिया।

1888 में सर सय्यद अहमद ने यह बात कही थी कि 'हिन्द में दो कौमें हैं। जब अंग्रेज़ गये तो यह राज्य अवश्य विभाजित होगा।' उसका अनुमान ठीक निकला। 23 जून को पंजाब असेम्बली दो स्थानों में विभाजित हुई, 30 जून को सीमाबंदी कमीशन नियुक्त हुआ, जिसके अध्यक्ष मि. रैडक्लिफ थे। 4 जुलाई, 1947 को मि. ऐटले ने लंडन की संसद में हिन्द की आज़ादी का बिल पेश किया जो 15 जुलाई को पास हो गया। 15 अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ, 18 अगस्त को सीमाबंदी कमीशन ने अपने निर्णय द्वारा पंजाब और बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया। पंजाब के 17 ज़िले पाकिस्तान में चले गये और 12 ज़िले हिन्द में रहे। देश स्वतन्त्र तो हो गया, परन्तु नष्ट होकर। विशेष तौर पर सिक्खों के लिए यह स्वतन्त्रता बहुत महंगी साबित हुई।

यह पाकिस्तानी घल्लूघारा राजनीतिक शिकारियों की साज़िश का परिणाम था, जिन्होंने अपने विशेष मंतव्यों के लिए मज़हब का नाम प्रयोग करके लोगों को फंसाया और यहां बड़े पैमाने पर क़त्लेआम करवाकर, अन्त दोष 'मज़हब' के माथे पर लगाया। मि. जिन्नाह और लीग के सामने स्पष्ट था कि आबादी का तबादला होगा, क्योंकि वे बार बार कह रहे थे, "पाकिस्तान की आबादी दस करोड़ होगी और ये सारी की सारी

मुसलमान होगी।" अतः यह अदला-बदली ख़ूनी क़त्लेआम के भयानक दैंत को लाये बिना नहीं हो सकती थी, किसने अपनी जायदाद और घरबार प्रसन्नतापूर्वक छोड़ने के लिए तैयार होना था। सर फ़ीरोज़ ख़ां नून ने कहा था, 'हम चंगेज़ और हलाकू ख़ां को मात पाने वाली तबाही करेंगे।' अतः ऐसी क़त्लेआम के लिए पहले ही छुरेबाज़ी, आग लगाने, और तोड़-फोड़ की विशेष शिक्षा दी गई। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार अप्रैल 1947 में मुस्लिम नैशनल गार्ड के लगभग 49 हज़ार सदस्यों ने यह शिक्षा प्राप्त कर ली थी। पुलिस और सेना की ओर से रक्षा करने का प्रश्न ही नहीं उठता, प्रत्येक स्थान पर मुसलमानों का ज़ोर था। अगस्त 1947 की गणना के अनुसार पुलिस सिपाहियों की कुल गिनती 24131 थी, जिसमें 17884 मुसलमान थे, अर्थात् 78 प्रतिशत, जबकि पंजाब में मुसलमानों की संख्या 57 प्रतिशत थी। ऐसी अवस्था में वही कुछ हुआ जो लीग की योजना थी। 70 लाख के लगभग हिन्दु सिक्ख बे-घर हुए, जिन में 20-25 लाख सिक्ख थे।

इस पाकिस्तानी घल्लूघारे (महाविनाश) के समय शहीद हुए सिक्खों की गिनती एक लाख के लगभग है। कई स्थानों पर बड़ी अलौकिक घटनाएँ हुईं, जैसे थोहा ख़ालसा के कुएँ में 93 स्त्रियों ने छलांगें लगाकर अपने धर्म और इज़्ज़त की रक्षा की, कई स्थानों पर सिंघों ने अपनी पुत्रियों, बहनों तथा पत्नियों को अपने हाथों से क़त्ल किया ताकि इनकी कोई इज़्ज़त न लूट सके। ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ एक अलग पुस्तक का विषय हैं।[1] इन शहीदियों के अतिरिक्त अरबों का आर्थिक नुकसान हुआ। 175 से अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारे पाकिस्तान में रह गये, जिनकी जायदाद की कीमत 12 करोड़ रुपये के लगभग है। परन्तु इस समस्त बरबादी को जिस सन्तोष, धैर्य और साहस के साथ सिक्ख कौम ने झेला, उसकी उदाहरण भी कहीं और कम ही मिलती है।

स्वराज्य के पश्चात् (1947-1979)

श्री बाल गंगाधर तिलक ने कहा था, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध

1. (क) प्रिं. गुरचरन सिंघ तालिब, *मुस्लम लीगीआं दे अतिआचार*।
   (ख) ज्ञानी प्रताप सिंघ, *पाकिस्तानी घल्लूघारा*।

अधिकार है, और प्रत्येक मनुष्य इसका बराबर का अधिकारी है।' परन्तु स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् जिस तरह की ख़ुशी होनी चाहिए थी, समूचे तौर पर वह सिक्खों को नसीब न हुई। इसका बड़ा कारण उनके प्रिय वतन पंजाब का विभाजन था। जहां उनको अपने मित्रों, रिश्तेदारों का क़त्लेआम, घर-बार तथा ज़मीन जायदाद को छोड़ना, पवित्र ऐतिहासिक गुरुधामों से जुदाई और आर्थिक संकट का शिकार होना पड़ा, वहां राजनीतिक असंतुष्टता भी उनके ज़ख़्मों पर नमक लगाती थी; साधारणतः लोग हँसी से कहते थे—

हिन्दूआं नूं मिलिआ हिन्दुस्तान,
मुसलमानां ने लिआ पाकिस्तान,
सिक्खां दे हथ्थ रह गई कृपान।

यह बात सत्य थी, राजनीतिक संसार के लेखे-जोखे के अनुसार हर कौम स्टेट का अधिकार रखती है, परन्तु इस हिसाब से सिक्ख वंचित ही थे, अगर किसी को वज़ारत या कोई और पद मिल भी गया तो यह व्यक्तिगत प्राप्ति से अधिक नहीं माना जाता था। वास्तविकता यह है कि सिक्ख स्वाभाविक तौर पर देश-भक्ति और कौम-प्रस्ती के भावों से पूर्ण थे, उन्होंने कभी राजनीतिक भिन्नता की बात ही नहीं सोची थी। अगर उन्होंने 'आज़ाद पंजाब' या 'सिक्ख स्टेट' की एक आधी बार बात चलाई भी तो केवल पाकिस्तानी मनसूबे का मुकाबला करने के लिए। वैसे वे समूचे तौर पर देश की ओर से की जा रही जद्दो-जहद में निष्काम रहकर बराबर भाग लेते रहे और भारत की जय बुलाते रहे। स्वतन्त्रता संग्राम में कुल 1035 शहीद हुए तथा उनमें से 579 सिक्ख थे जबकि सिक्खों की संख्या हिन्दुस्तान में केवल एक प्रतिशत थी। जब देश के बंटवारे का धमाका पड़ा तो इस ख़ूनी हत्या की मार सर्वाधिक सिक्खों को झेलनी पड़ी। अतः 1947 के बाद तो तीन वर्ष सिक्ख जनता पर पूर्णतः बेदिली छाई रही। उस समय शरणार्थियों के पुनर्वास की समस्या मुख्य थी। 20-25 लाख सिक्ख घर से बेघर होकर नये घरों और नये काम-काज की तलाश में भटक रहे थे।

सर फ्रांसिस टकर ने लिखा है, 'इस्लाम मि. जिन्नाह का एहसानमंद है जिसने समय पर ख़तरा अनुभव करके अपने भाईयों की रक्षा की और हिन्दुस्तान में इस्लामी सभ्यता को बचा लिया।' कुछ ऐसी बात की ही

कमी थी, जिसके कारण सिक्खों की भरपाई न हुई। शिरोमणी अकाली दल सिक्खों की मुख्य जत्थेबन्दी थी, इसके मुखी नेता थे—मास्टर तारा सिंघ। आगे अकाली दल के दो भाग थे, एक जत्थेदार उधम सिंघ नागोके का दल तथा दूसरा ज्ञानी करतार सिंघ का। अब राज-पाट की प्राप्ति के लालच में दोनों दलों की यह धारणा थी कि शीघ्र कांग्रेस में शामिल हो जाना चाहिए। मास्टर जी कहते थे, 'कांग्रेस में जाएं परन्तु अगर शिरोमणी अकाली दल कहे तो वापिस आ जायें।' यह बात निभाना कठिन था। नित्य जत्थेबन्दियों का परिवर्तन कोई मामूली काम नहीं था। मास्टर जी इस बात पर ज़ोर देते थे, 'आज़ाद पंथक हस्ती स्थिर रहनी चाहिए, पंथ की इज़्ज़त स्थिर रखनी चाहिए। पंथ अपने भले-बुरे का निर्णय स्वयं करने वाला होना चाहिए, अन्य श्रेणी नहीं। दूसरा, धर्म और राजनीति अलग नहीं, जैसे कि हाकिम जमात दर्शाना चाहती है।' इस तरह मास्टर जी ने पंथक स्वाभिमान का नगाड़ा बजाए रखा।

20 अगस्त, 1948 को रियासत पटियाला, नाभा, संगरूर, फ़रीदकोट, कपूरथला, मलेर कोटला, कलसिया और नालागढ़, आठ रियासतों ने मिलकर पैप्सू बनाया और बाद में 1956 में यह पैप्सू पंजाब के साथ मिला दिया गया। पैप्सू का अस्तित्व सिक्खों के अहसास को कुछ सहारा देता था, परन्तु यह बहुत देर तक स्थिर न रह सका। अन्तः इतिहास ने अपने पग आगे ले जाने थे।

21 फ़रवरी, 1949 को दिल्ली में अकाली कान्फ्रेंस होनी निश्चित हुई, परन्तु सरकार यह नहीं चाहती थी। दिल्ली की स्वागत-कमेटी ने सरकारी चाल में आकर कान्फ्रेंस स्थगित कर दी, परन्तु अकालियों ने कान्फ्रेंस करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। अमृतसर से स्पैशल गाड़ी चली जिसमें मास्टर तारा सिंघ भी थे। दिल्ली के कुछ ही फ़ासले पर नरेला स्टेशन पर मास्टर जी को गिरफ़्तार कर लिया तथा कुछ अन्य अकाली नेता भी गिरफ़्तार हुए। मास्टर जी को मेरठ, बनारस, अलमोड़े और फिर सीतापुर जेल में रखा गया। आप आठ महीने कैद में रहे और बवासीर के कारण काफ़ी बीमार पड़ गये। 2 मार्च को मास्टर जी के स्वास्थ्य के लिए जगह जगह पर सिक्खों ने पाठ और अरदास की। जब श्री दरबार साहिब में सिक्ख संगत इस उद्देश्य के लिए एकत्रित हुई तो पुलिस ने आंसू-गैस प्रयोग करके उनको बिखेरना चाहा, कुछ संगत परिक्रमा की

ओर गई तो उधर भी आंसू-गैस के गोले फेंके गए, लाठीचार्ज भी किया गया जिससे सिक्खों में काफ़ी नाराज़गी फैली। रिहा होने के पश्चात् मास्टर जी ने शिरोमणी अकाली दल से यह मता पास करवाया कि जो सदस्य कांग्रेस में चले गये हैं वे लौट आयें। इस पर परस्पर खींच-तान बढ़ती गई। ज्ञानी करतार सिंघ वज़ारत में थे, मास्टर जी को दफ़ा 124 के तहित फिर गिरफ़्तार किया गया, शिरोमणी अकाली दल के प्रधान स. हुकम सिंघ जी ने मुकद्दमा लड़ा, क्योंकि यह गिरफ़्तारी कानून के अनुसार अनोचित्य थी, इसलिए सरकार को रिहा करना पड़ा। जिस समय मास्टर जी जेल में थे तो ज्ञानी करतार सिंघ जी ने मुकाबले का शिरोमणी अकाली दल बना लिया परन्तु सिक्खों ने इसकी नकली या 'जापानी दल' कहकर निन्दा की और यह चल न सका। पटियाले में गुरमति सम्मेलन किया गया, ज्ञानी करतार सिंघ फिर अकालियों में आ गये और फिर मेहनत तथा सूझ के साथ कार्य करके खो चुकी पोज़ीशन बना ली और शिरोमणी अकाली दल के जनरल सचिव बना दिये गये।

1952 में अकाली दल के सदस्यों के बल पर स. ज्ञान सिंघ राड़ेवाला ने पैप्सू वज़ारत बना ली जो समस्त हिन्द में केवल एक ही ग़ैर कांग्रेसी वज़ारत थी। परन्तु जब स. ज्ञान सिंघ के चुनाव को अदालत में चुनौती दी गई तो वे सदस्य न रहे, कांग्रेस ने धक्के से पैप्सु असेम्बली ही भंग कर दी। 1954 में आम चुनाव हुआ, परन्तु अकालियों को बहुत ज़्यादा जीत प्राप्त न हो सकी। फिर शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी का चुनाव हुआ तो 132 सीटों में से 106 अकाली, 18 कम्यूनिस्ट तथा 7 शिरोमणी ख़ालसा दल के सदस्य जीते जो अकाली दल के मुकाबले पर सरकारी प्रेरणा तथा नई मौसमी जत्थेबन्दी खड़ी की गई थी। इस जीत से अकालियों के हौसले बढ़े तथा आम सिक्खों में उत्साह उत्पन्न हुआ।

जैसा कि हमने पीछे बताया है कि सिक्खों की राजनीतिक असंतुष्टता का कोई परिणाम नज़र नहीं आ रहा था। इसका मतलब यह भी नहीं कि स्वराज्य प्राप्त होने पर सिक्खों को कुछ भी नहीं प्राप्त हुआ था, राज-पाट में उनको कुछ न कुछ हिस्सा अवश्य मिलता रहा, परन्तु राजनीतिक भाषा में ठोस प्राप्ति कोई स्पष्ट नज़र नहीं आती थी। वे अल्पसंख्यक थे। सांझा चुनाव होने के कारण आरक्षित अधिकार तो नितांत समाप्त हो गये थे और सिक्ख रियासतें अपना विशेष अस्तित्व समाप्त कर बैठी थीं,

और फिर बर्बादी के कारण आर्थिक हानि की भारी चोट भी कौम को बरदाश्त करनी पड़ रही थी।

पंजाबी सूबा

ऐसे हालात थे कि जब भारत सरकार ने हिन्द भर में भाषा के आधार पर सूबों की सीमा निश्चित करने हेतु कमीशन बनाया, तो अकाली दल ने सिक्खों की राजनीतिक संतुष्टता हेतु 'पंजाबी बोली का प्रांत' बनाये जाने की मांग रखी और यह लोकराज्य ढंग की बड़ी उचित मांग थी। ज़िला रोहतक, गुड़गाओं, महेन्द्रगढ़ तथा कुछ और हिन्दी बोलती तहसीलें दिल्ली के साथ मिलाकर शेष 35185 वर्ग मील और सवा करोड़ आबादी का पंजाबी भाषाई प्रांत रह जाता था, जिसमें पंजाबी भाषा तथा पंजाबी सभ्यता अधिक सुविधा और सुख शान्ति से विकसित हो सकती थी और इससे कुछ सिक्खों को भी लाभ पहुँचता था। दूसरी बात यह भी थी कि हिन्दी बोलते इलाकों के लोग स्वयं चाहते थे कि उनको दिल्ली के साथ मिलाकर 'हरियाणा प्रांत' बना दिया जाये। कारण यह था कि 57 के ग़द्दर के पश्चात् सज़ा के तौर पर कुछ इलाकों को पंजाब के साथ जोड़ा गया था, जिसकी अब शोध करनी उचित थी और यह लोगों की मांग के अनुसार थी। परन्तु कांग्रेस सरकार ने यह बात स्वीकार न की और शिरोमणी अकाली दल ने इसके लिए इजलास और जलूसों द्वारा ऐजीटेशन आरम्भ कर दी। सरकार तथा हिन्दु प्रैस इसका विरोध कर रहे थे कि अगर यह पंजाबी सूबा बनाया गया तो यह एक तरह 'सिक्ख स्टेट' ही बन जायेगी। यह दोष ग़ल्त था, क्योंकि यह पंजाबी सूबा भारतीय यूनियन का ही एक सूबा रहना था, अलग स्टेट नहीं। श्री जय प्रकाश नारायण ने तो एक बार यह भी कहा था कि अगर हिन्द भर में सारे सूबे हिन्दु बहु-सम्मति वाले हैं तो अगर पंजाबी सूबा बहु-सम्मति वाला बन जाये तो इसमें कौन सी बुरी बात है। परन्तु कांग्रेस सरकार ने इस ओर ध्यान देना उचित न समझा; अकाली आंदोलन करते रहे। दूसरी ओर हिन्दुओं की तरफ़ से रुकावट पाने के लिए 'महां पंजाब' की मांग भी दोहराई जाती रही।

छोटा मोर्चा

इस समय श्री भीम सेन सच्चर पंजाब के मुख्यमंत्री थे, आप ने

'पंजाबी सूबा ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने पर भी पाबंदी लगा दी, इस पाबंदी को तोड़ने के लिए 10 मई, 1954 को अमृतसर में मास्टर तारा सिंघ जत्थे सहित 'पंजाबी सूबा ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते हुए गिरफ़्तार हो गये। मोर्चा लगा दिया तथा इस मोर्चे में दस-बारह हज़ार सिक्ख गिरफ़्तार हुए। सच्चर साहिब इस आंदोलन की गर्मी न सहार सके, उन्होंने यह पाबंदी 12 जुलाई 1954 को वापिस ले ली तथा 15 सितम्बर को मुकद्दमे वापिस लेकर अकाली कैदी रिहा कर दिये। इस अवसर पर हदबन्दी कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित भी हो गई, जिसमें मराठी और पंजाबी सूबा नहीं माना गया था; शेष सभी भाषा के अनुसार सूबे बनाने स्वीकार कर लिये गये थे। इस पर 11 अप्रैल, 1956 को पंथक कन्वेंशन अमृतसर में बुलाई गई और पंजाबी सूबे की मांग ज़ोर के साथ दोहराई गई।

अब हिन्द सरकार ने यह सोचा कि सिक्खों जैसी बहादुर कौम को धक्के तथा सख़्ती के साथ दबाना आसान नहीं, इसलिए समझौते द्वारा बात को हल करना उचित है। नतीजे के तौर पर सरकार द्वारा आमंत्रित करने पर अक्तूबर 1955 में मास्टर तारा सिंघ की देखरेख में स. हुकम सिंघ, ज्ञानी करतार सिंघ, स. ज्ञान सिंघ राड़ेवाले तथा भाई जोध सिंघ—पांच पुरुषों का वफ़द पंडित नेहरू, मौलाना आज़ाद तथा पंडित पंत आदि को मिला। देश के बड़े फ़ायदों का वासता पाकर सिक्ख नेताओं को यह कहा गया कि पंजाबी सूबे के स्थान पर 'रिजनल फ़ार्मूला' मानकर बात निपटा ली जाये। यह बात फ़रवरी 1956 की है। जनवरी 1956 में प्रताप सिंघ कैरों मुख्यमंत्री बन गये थे।

इन दिनों में ही 1956 में अमृतसर में कांग्रेस का वार्षिक सेशन हुआ, इस समय माझे में घूमकर ज्ञानी करतार सिंघ कहा करते थे कि 'अमृतसर में कांग्रेस ने तंदूर गर्म किया हुआ है परन्तु इस तंदूर में रोटियां पंथ ने तैयार करनी हैं।' इस समय यहां 'अकाली कान्फ्रेंस' की गई तो इसके भव्य अकाली जलूस, इजलास और ज़ब्त के सामने 'सर्व हिन्द कांग्रेस सेशन' फीका पड़ गया।

फिर फ़ार्मूले के सम्बन्ध में विचार करने हेतु शिरोमणी अकाली दल ने समस्त सिक्ख नेताओं को अमृतसर बुलाया। ज्ञानी करतार सिंघ ने कहा, 'यह फ़ार्मूला शगुन है और पंजाबी सूबा-विवाह, जो बाद में बन ही जायेगा। हरियाणा के लीडर श्री राम शर्मा तथा चौधरी श्री चन्द आदि ने भी कहा

कि यह मांग स्वीकार कर ली जाए, इसके साथ हमारा भी कुछ न कुछ बन जाएगा। अन्त में मास्टर तारा सिंघ ने कहा, 'हमे यह फ़ार्मूला अज़माइश के लिए मान लेना चाहिए। सरकार हम पर विश्वास नहीं करती लेकिन हमें विश्वास करके देख लेना चाहिए।' इस प्रकार 'रिजनल फ़ार्मूले' के छल में आकर अकाली नेताओं ने आंदोलन धीमा कर दिया परन्तु सरकार का व्यवहार शिष्टता और ईमानदारी के स्थान पर चालाक नीतिवानों वाला ही था। रिजनल फ़ार्मूले की धाराएँ लागू न हुईं।

स. हुकम सिंघ डिप्टी स्पीकर बने; 2 अक्तूबर, 1956 को अकाली सदस्य कांग्रेस पार्टी में शामिल हुए। 1 नवम्बर, 1956 में पैप्सू तथा पंजाब का एकीकरण हुआ।

इस समय पंजाबी-विरोधी हिन्दुओं ने 'हिन्दी ऐजीटेशन' चला दी जो मई 1957 से जनवरी 1958 तक चलती रही। अकालियों ने भी यह समझ लिया कि रिजनल फ़ार्मूले को पंजाब सरकार व्यवहार में नहीं ला रही और न ही हिन्द सरकार जिसने संधिनामा किया है, वह इस ओर ध्यान दिला रही है। इस स्थिति में 23 अगस्त, 1958 को शिरोमणी अकाली दल ने फिर पंजाबी सूबे की मांग का मता दोहराया और आंदोलन आरम्भ कर दिया।

बड़ा मोर्चा

17 जनवरी, 1960 को गुरुद्वारा चुनाव हुआ। अकाली दल ने 'पंजाबी सूबे' के नारे पर यह चुनाव लड़ा। 140 सीटों में से 136 अकालियों ने जीतीं, सरकारी पार्टी की ओर से बनाये कैरों के 'साध संगत बोर्ड' को केवल तीन सीटें ही प्राप्त हुईं। अकालियों की इस बड़ी जीत ने उनके हौसले बढ़ा दिए। मास्टर तारा सिंघ फिर शिरोमणी कमेटी के प्रधान चुने गये, परन्तु शीघ्र ही आप ने त्यागपत्र दे दिया ताकि पंजाबी सूबा आंदोलन के लिए अधिक कार्य किया जा सके। 22 मई, 1960 को अमृतसर पंजाबी सूबा कन्वेंशन पंडित सुन्दर लाल की प्रधानगी में हुई और इसका उद्घाटन प्रसिद्ध देश-भक्त डाक्टर सैफ़ुद्दीन किचलू ने किया। अधिक गिनती में ग़ैर-सिक्ख नेताओं ने ही पंजाबी सूबे के सम्बन्ध में भाषण दिया और अन्त सर्व-सम्मति से पंजाबी सूबा बनाये जाने का मता पास हुआ।

कन्वेंशन में हुए निर्णय के अनुसार लोग-राय का मुज़ाहरा करने

हेतु 12 जून, 1960 को दिल्ली में भारी जलूस निकालने की योजना बनाई गई। इस मंतव के लिए 29 मई को मास्टर तारा सिंघ जी की अगुवाई में जत्था अकाल तख़्त से रवाना होना था परन्तु सरकार ने 25 मई को ही मास्टर तारा सिंघ जी को गिरफ़्तार कर लिया और धर्मशाला ले जाकर नज़रबन्द कर दिया। शेष अकाली नेता भी शीघ्र ही गिरफ़्तार कर लिये गये और इस प्रकार मोर्चा आरम्भ हो गया। अकालियों के दोनों अख़बारों 'प्रभात' तथा 'अकाली' को बन्द कर दिया गया और शेष अख़बारों को भी यह कहा गया कि पंजाबी सूबे के सम्बन्ध में कोई ख़बर प्रकाशित न की जाये। संत फतह सिंघ, जिनको मास्टर जी मोर्चे का डिक्टेटर स्थापित कर गये थे और ज्ञानी हरचरन सिंघ, जनरल सैक्रेटरी शिरोमणी अकाली दल को गिरफ़्तार न कर सकी। प्रोग्राम के अनुसार जत्था 29 मई को प्रिंसीपल इकबाल सिंघ की अगुवाई में अकाल तख़्त से रवाना हुआ और सिक्ख संगत की भारी भीड़ इसके साथ थी। दफ़ा 144 नहीं लगी हुई थी, इसलिए जत्थों की गिरफ़्तारी की बात नहीं बनती थी परन्तु फिर भी गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में दफ़ा 144 लगा दी गई। 8 जून को सारे शहर में हड़ताल हुई। 12 जून को सरकार के रोकने के बावजूद दिल्ली में भारी जलूस निकला, जो कि 'धन्य गुरु नानक', 'सतिनाम, वाहिगुरु' का जाप करता हुआ जा रहा था। पुलिस ने आंसू-गैस प्रयोग करके और लाठीचार्ज करके इसको रोकने की कोशिश की और हज़ारों गिरफ़्तार भी किये गये, परन्तु सिक्ख पीछे न हटे। कई निर्दोष यात्री सिक्खों को निर्दयता से पीटा गया, सैंकड़ों की गिनती में सिक्ख घायल हुए और दस से अधिक शहीद हुए। शान्तिमय जलूस पर ऐसा अत्याचार और सख़्ती करनी सचमुच ही राम-राज्य के लिए लज्जा की बात थी। प्रसिद्ध अंग्रेज़ी पत्र *बलिटज़* ने लिखा है कि सरकार को पाबंदी लगाने की क्या आवश्यकता थी ? 'अगर 12 जून, 1959 को केरल की कम्यूनिस्ट सरकार का सिंहासन उलटाने के लिए गिरजों से निकाले गये जलूस उचित थे और जिसमें कांग्रेस स्वयं भी शामिल थी तो गुरुद्वारों में से निकाले गये सिक्खों के जलूस क्यों अनुचित हो गये ?'

सरकार ने मोर्चे को फ़ेल करने के लिए कई प्रयत्न किये परन्तु संत फतह सिंघ, ज्ञानी हरचरन सिंघ हुडियारा, ज्ञानी अजमेर सिंघ, प्रो. सतिबीर सिंघ और प्रो. भरपूर सिंघ जो कि दरबार साहिब में निवास रखते थे, आदि के साहस और बुद्धिमत्ता से यह मोर्चा चलता रहा। पंजाब सरकार

के पास अब जेलों में कैदी रखने की जगह नहीं थी, इसलिए यू.पी सरकार को कहा गया। उन्होंने कहा कि हम 10 रुपये प्रति कैदी लेंगे। यह ख़र्च झेलना मुश्किल था, इसलिए कैदियों को जेलों में ठूंस ठूंसकर भरा जाने लगा। फंसी हुई कैरों सरकार कुछ को रिहा भी कर देती, परन्तु जब सरकार ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि अकाली क्षमा मांगकर रिहा हो रहे हैं, तो अकालियों ने जेलों में से बाहर जाने से इन्कार कर दिया, जब तक कि रिहाई का प्रमाण-पत्र न दिया जाये। कुछ ऐसी सरकारी अनीति के कारण ही 9 अक्तूबर को बठिंडा जेल में गोली चलाई गई, जिस कारण चार सिंघ शहीद हुए और दर्जनों घायल हुए तथा 11 अक्तूबर को पटियाले में गोली चली, जिस में 2 सिंघ शहीद हुए।

इस मोर्चे में 56 हज़ार से अधिक गिरफ़्तार हुए, परन्तु सरकार अपना सख़्ती का व्यवहार चलाती रही। अन्त में संत फतह सिंघ जी ने 29 अक्तूबर को गुरुद्वारा मंजी साहिब से मरण व्रत रखने का ऐलान कर दिया और इसी दिन संत जी ने सरकार की सख़्ती तथा अकालियों के शान्तिमय सत्याग्रह के सम्बन्ध में पंडित नेहरू को पत्र लिखा। इस प्रकार 18 दिसम्बर, 1960 को सुबह नौ बजे संत जी ने व्रत रखा जो 9 जनवरी, 1961 को पं. नेहरू के भरोसा दिलाने पर खोला गया। जब संत जी की दशा गंभीर हो रही थी तो 4 जनवरी को मास्टर तारा सिंघ जी को जेल से रिहा किया गया। आप अपनी इज़्ज़त को ख़तरे में डालकर हवाई जहाज़ द्वारा 7 जनवरी को भावनगर पहुँचे और पंडित नेहरू को जाकर मिले ताकि संतों के अमुल्य प्राण बचाए जा सकें, परन्तु पंडित नेहरू जी न माने। मास्टर जी 8 जनवरी को दिल्ली पहुँच गये और पहुँचकर यह बयान दिया कि अगर संत जी प्राण त्याग गये तो मैं भी मरण व्रत रखूँगा। यह ख़बर पढ़कर पंडित नेहरू ने प्रैस को यह बयान दिया, 'पंजाबी सूबे की स्थापना के सम्बन्ध में भाषा के आधार पर सूबा बनाने के नियम को पूर्ण तौर पर लागू किया जायेगा और सिक्खों के साथ कोई भेदभाव द्वैध वाली बात नहीं की जायेगी।'

जब यह बयान दिल्ली में मास्टर जी ने पढ़ा तो आप ने संत जी को व्रत खोलने हेतु फ़ोन पर निवेदन किया और 9 जनवरी, 1961 को सुबह 8 बजे व्रत खोल दिया। मास्टर जी ने 9 जनवरी को दिल्ली में बयान दिया कि 'हमने स्वयं कोई मोर्चा नहीं लगाया था, हम तो शहरी स्वतन्त्रता पर लगाई गईं रोकों को हटाने के लिए लड़ रहे थे। अब सरकार

ने चूँकि पाबंदी स्वयं हटा ली, इसलिए मोर्चा समाप्त हो गया है।' इसके बाद संत जी की सेहत अच्छी हो जाने पर पं. नेहरू के साथ आपकी दो तीन मुलाकातें भी हुईं, परन्तु पंडित जी अपने वचन की पालना न कर सके, उन्होंने पंजाबी सूबे की मांग को अस्वीकार कर दिया। मास्टर जी ने इस सम्बन्धी ख़ेद के साथ कहा, 'पंडित नेहरू ने हमारी भी राय नहीं मानी और न ही अपनी कोई बताई। यह व्यवहार भावनगर से दिये गये बयान के नितांत प्रतिकूल है।' बाद में धीरे धीरे अकाली कैदी रिहा किये गये।

इस समय दौरान मास्टर तारा सिंघ सम्बन्धी कई नेताओं ने यह दोष लगाये कि वह सिक्ख स्टेट चाहते हैं और प्रधान अयूब के साथ गांठ-सांठ करके गुरीला युद्ध करने के लिए तैयारी कर रहे हैं परन्तु इन बातों का कोई आधार नहीं था। संत जी को पंडित नेहरू ने कहा कि हम मास्टर तारा सिंघ जैसे ग़ैर-ज़िम्मेंदार नेता के हाथ पंजाबी सूबा देकर गड़बड़ी नहीं डालना चाहते। मास्टर जी ने इसके उत्तर में कहा, 'पंजाबी सूबा एक लोकतांत्रिक मांग है, यह बना दें, मैं अपना वतन भी छोड़ सकता हूँ।'

इस मोर्चे का यह एक अच्छा नतीजा हुआ कि रिजनल फ़ार्मूले पर कुछ कुछ अमल होना आरम्भ हुआ। पटियाले में 24 जून, 1962 को पंजाबी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई और ज़िला स्तर पर कार्यालय के कार्य-व्यवहार हेतु अक्तूबर 1962 से पंजाबी लागू हुई। परन्तु इस लोकतांत्रिक-युग में लोगों के फ़ायदे की बातें मनवाने के लिए अगर 50-60 हज़ार व्यक्तियों को जेल जाना पड़े और बूढ़े लीडरों को मरण व्रत रखने पड़ें, ये बातें कोई शोभा नहीं देती थीं।

17 मई, 1961 को शिरोमणी अकाली दल की बैठक हुई, जिसमें संत फतह सिंघ और मास्टर तारा सिंघ जी ने फिर से मरण व्रत रखने की बात चलाई। मास्टर जी ने कहा, 'मरणव्रत शान्तिमय सत्याग्रह का अन्तिम रास्ता है, अवश्य करके देखा जायेगा।' अन्त कई बार चितावनी देने के बावजूद मास्टर तारा सिंघ जैसे 77 वर्ष की आयु के देश-भक्त आगू ने 15 अगस्त, 1961 को मरणव्रत रखा जो 1 अक्तूबर, 1961 को संध्या के सात बजे 48वें दिन खोला गया। इस समय भी सरकार की तरफ़ से यही भरोसा दिलाया गया कि एक निष्पक्ष कमीशन बैठाकर सिक्खों के विरुद्ध भेद-भाव वाली बात की जांच कराई जाएगी और पंजाबी सूबे का मसला भी विचाराधीन किया जा सकेगा। मास्टर जी का बड़ा

एतराज़ यह था कि पंजाबी सूबा न बनाना ही सिक्खों के प्रति भेदभाव का बड़ा प्रमाण है। व्रत खोलते समय कमीशन के सदस्यों के जो नाम बताये गये थे, उनमें से एक भी न रखा गया। 'दास कमीशन' ने 28 नवम्बर, 1961 को जांच का कार्य आरम्भ कर दिया, परन्तु इस अवस्था में शिरोमणी अकाली दल ने कमीशन का बाइकाट कर दिया।

'गुरु पंथ' का निर्णय

मास्टर जी के मरणव्रत खोलने का निर्णय यद्यपि शिरोमणी अकाली दल की वर्किंग कमेटी ने किया था, परन्तु बाद में इस व्रत को खोलने के बारे में अकाली नेताओं में कुछ मतभेद हो गये। मामला पांच प्यारों के सपुर्द हुआ, जिसमें जत्थेदार अच्छर सिंघ, जत्थेदार अकाल तख़्त, ज्ञानी शरम सिंघ, जत्थेदार श्री केसगढ़ साहिब, ज्ञानी भूपेन्द्र सिंघ मुख्य ग्रंथी दरबार साहिब, ज्ञानी चेत सिंघ तथा ज्ञानी कृपाल सिंघ जी शामिल थे। 29 नवम्बर, 1961 को इन्होंने पंथक निर्णय देकर मास्टर तारा सिंघ, संत फतह सिंघ तथा शिरोमणी अकाली दल की वर्किंग कमेटी के सदस्यों की निम्नलिखित अनुसार तनख़्वाह (दण्ड) लगाई।

'मास्टर तारा सिंघ एक अखंड पाठ तथा सवा सौ रुपये का कड़ाह प्रसाद करवाएं। एक मास तक नितनेम के अतिरिक्त जापु साहिब का भी पाठ करें, पांच दिन संगत के जोड़े तथा जूठे बर्तन साफ़ करें। संत फतह सिंघ जी को भी नितनेम के अतिरिक्त जपुजी साहिब का एक मास तक पाठ करने तथा पांच दिन संगत के जूठे बर्तन साफ़ करने की तनख़्वाह (दण्ड) लगाई गई। वर्किंग कमेटी के दो सदस्यों को दो दिन दरबार साहिब की परिक्रमा में झाड़ू लगाना तथा दो दिन संगत के बर्तन साफ़ करने की सेवा लगाई गई। इस अनुसार सभी अकाली नेताओं ने अमल किया तथा यह बात लोगों के प्रति अच्छी तरह प्रकट हुई कि सिक्ख पंचायती जीवन में व्यक्ति के लिए उतनी महान्ता नहीं, जितनी कि पंचायती जत्थेबन्दी अर्थात् गुरु पंथ की है। यह सिक्खों की सुनहरी परम्परा के चमत्कार का परिणाम था।

जैसा कि हमने पीछे कहा था कि सिक्खों की राजनीतिक असंतुष्टता दूर करने हेतु शिरोमणी अकाली दल तथा अन्य सिक्ख जत्थेबन्दियों ने 'पंजाबी सूबा' बनाने का आंदोलन किया था। इसमें दो बड़े मोर्चे भी लगे,

प्रथम मोर्चे में 10 हज़ार से अधिक तथा दूसरे बड़े मोर्चे में 56 हज़ार से अधिक सिक्खों ने गिरफ़्तारियां दीं। यह शान्तिमय सत्याग्रह इस ढंग से चला कि कोई हिंसक कार्यवाही न हुई। बाद में दो अकाली नेताओं ने लम्बे मरणव्रत भी रखे, परन्तु इसका भी सरकारी नीति पर कोई गहरा प्रभाव न पड़ा।

5 अप्रैल, 1946 को पं. नेहरू ने एक बार कहा था, 'प्रांतों की नई सीमाबन्दी करना अत्यन्त आवश्यक है। मैं तो ऐसे प्रांतों के पक्ष में हूँ जो किसी सीमा तक ख़ुदमुख़्तार भी हों। अगर सिक्ख ऐसा एक सूबा बनाकर कार्य करना चाहते हों तो मैं कहूँगा कि वे पंजाब में ही एक ऐसा नीम-मुख़्तार प्रांत ले लें ताकि उनको भी स्वतन्त्रता का अनुभव हो सके। 6 जुलाई, 1946 को उन्होंने कांग्रेस के कलकत्ता सेशन में भी यह बात दोहराई परन्तु वे बाद में यह ऐलान करने से पीछे हट गये। सिक्ख सूबा तो कहां, उनके लिए पंजाबी सूबा भी बनाना असहनीय हो गया।

एक बात नोट करने वाली है कि इस राजनीतिक संग्राम के समय सिक्खों की मानसिक दशा दुविधा में रही है। अपना वतन, अपनी सरकार अपने लोग, यह अनुभव करके वे हर जद्दो-जहद करते समय देश के हालात तथा लाभों को सामने रखते रहे हैं, जान-बूझकर गड़बड़ी वा़ली स्थिति उत्पन्न करना उनका उद्देश्य न रहा, परन्तु अगर वे अपने लिए कुछ उचित अधिकार मांगते हैं तो 'देश सेवक' नहीं, देश के 'ग़द्दार' तक कहे जाते हैं। अगर नहीं मांगते, इसके लिए जद्दो-जहद नहीं करते तो बहु-सम्मति का बोझ उनको नीचे ले आता है और वे 'पंथ सेवक' नहीं रह जाते। यह तो वे जानते हैं कि राजसी-सत्ता की अनुपस्थिति बड़े बड़े धर्मों को मार चुकी है, इसलिए वे कुछ कुछ निवेदन करते रहे, परन्तु देश के हितों को सामने रखकर। अतः न तो वे संग्राम छोड़ सकते हैं और न ही पूर्ण उत्साह के साथ कर सकते हैं, क्योंकि उनके सावधान होकर किये गये प्रयत्न भी 'ग़द्दारी' का फतवा प्राप्त कर चुके थे। बड़ी अद्‌भुत स्थिति है—

> सितम है या करम समझा न जाए, सू-ए-मंज़ल कोई रास्ता न जाए,
> घुटा जाता है गो इस भीड़ में दम, मगर इस भीड़ को छोड़ा न जाए।

केन्द्र की सिक्ख-घातक नीति को अधिक आसानी से मुख्यमंत्री द्वारा लागू किया जा सकता था, जितना समय प्रताप सिंघ कैरों इस पदवी

पर रहे, उन्होंने अपने राजसी विरोधियों के विरुद्ध हर उचित-अनुचित बात की। पंजाबी सूबे का मोर्चा मई 1960 से अक्तूबर 1961 तक चलता रहा। कैरों अकाली लहर के इतिहास और अकालियों के आचरण से परिचित होते हुए भी कई अनुचित बातें करता रहा। सिक्ख सत्याग्रह करने पर साधारणत: पिता गुरु गोबिन्द सिंघ और वासी अनंदपुर' लिखा दिया करते थे, परन्तु पंजाब सरकार ने 19 जुलाई, 1960 को गवर्नर की ओर से विशेष रूप से अध्यादेश जारी करवाया कि यदि कोई अपनी वलदीयत या निवास ठीक नहीं लिखायेगा, उसको तीन वर्ष की कैद और भारी जुर्माना देना पड़ेगा। आख़िर अतिक्रमण का अन्त बुरा होता है। कैरों की तानाशाही के विरुद्ध लहर ज़ोर पकड़ गई। दास कमीशन ने उसको दोषी ठहराया और 14 जून, 1964 को उसको विवश होकर त्याग पत्र देना पड़ा। 27 मई, 1964 को पं. नेहरू के देहांत के पश्चात् श्री लाल बहादुर शास्त्री प्रधान मंत्री बने। सिक्खों के प्रति व्यवहार में कुछ परिवर्तन आया।

जनवरी 1965 में गुरुद्वारा कमेटी का चुनाव हुआ, संत फतह सिंघ का जत्था सफल हुआ, मास्टर तारा सिंघ अज्ञातवास लेकर चले गये। कुछ समय के पश्चात् फिर अकाली संगठित होकर पंजाबी सूबे के लिए संघर्ष करने लगे। सितम्बर 1965 में हिन्द-पाकिस्तान युद्ध हुआ। हिन्दुस्तानी सेना ने पाकिस्तानी सेना के दांत खट्टे किये; इसमें सिक्ख सेना ने विशेष तौर पर हिस्सा डाला तथा पंजाब की सिक्ख जनता ने सीमा के नज़दीक वैसे भी बहुत ही सहायता पहुँचाई। इसका प्रधान मंत्री पर विशेष तौर पर प्रभाव पड़ा और केन्द्र सिक्खों का मामला हमदर्दी से विचारने लगा। परन्तु परमात्मा को कुछ और ही मंजूर था। 11 जनवरी, 1966 को शास्त्री जी का ताशकंद में देहांत हो जाने के पश्चात् 19 जनवरी, 1966 को श्रीमति इंदिरा गांधी प्रधान मंत्री बनी। संत फतह सिंघ ने कहा, 'अब हम और इंतज़ार नहीं करेंगे, मरणव्रत का मार्ग धारन करेंगे।' समस्त स्थिति को सामने रखकर सरब हिन्द कांग्रेस ने 9 मार्च, 1966 को पंजाबी सूबे का मता पास किया। 15 अगस्त को 'पंजाब रिआर्गेनाईजेशन ऐक्ट' स्वीकार हुआ तथा 1 नवम्बर, 1966 को पंजाबी सूबा बन गया। इस समय केन्द्र में गृह मंत्री गुलजारी लाल नन्दा, फिरकाप्रस्ती का पुतला था। उसने पंजाबी सूबे को हर तरह से पंगु करने की कोशिश की। पंजाबी बोलते कई इलाके—चण्डीगढ़, अम्बाला, करनाल, सरसा, गंगानगर आदि उसने बाहर निकाल दिये। केवल 11 ज़िले रखे, जिनका क्षेत्रफल 50225

वर्ग किलोमीटर तथा जनसंख्या 1 करोड़, 11 लाख, 47 हज़ार के लगभग थी।

1967 के चुनाव में कांग्रेस की पराजय हुई तथा कई प्रांतों में ग़ैर-कांग्रेसी मंत्रीमंडल बने। 22 नवम्बर, 1967 को मास्टर तारा सिंघ जी का देहांत हुआ जो सारी उम्र पंथक हस्ती को स्वतन्त्र कराने के लिए संघर्ष करते रहे। 1968 में अकालियों के दोनों दल फिर एक हो गये तथा 1969 का चुनाव जीत गये। स. गुरनाम सिंघ मुख्य मंत्री बने, जिन्होंने अकालियों को केन्द्र सरकार के अधिक नज़दीक लाने के प्रयत्न किये। नवम्बर 1969 में गुरु नानक साहिब की पंचम शताब्दी के प्रकाश-उत्सव के समय गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर की स्थापना हुई, जिस से 46 कालेज सम्बन्धित किये गये। चंडीगढ़ की प्राप्ति के लिए सरदार दर्शन सिंघ फेरूमान ने 15 अगस्त, 1969 को मरणव्रत रखा और 74वें दिन वह 27 अक्तूबर, 1969 को कठिन प्रतिज्ञा की पालना करते हुए शहीदी प्राप्त कर गये। पंजाब का वातावरण अशान्ति वाला था और व्रतों का नया तजुर्बा बल पकड़ रहा था।

21 जनवरी, 1970 को संत फतह सिंघ जी ने चण्डीगढ़ के लिए ही मरणव्रत रखा और अन्त निर्णय यह हुआ कि फ़ाज़िलका और अबोहर हरियाणा को देकर चण्डीगढ़ पंजाब को दे दिया जायेगा। यह ग़लत फ़ैसला था क्योंकि यह तो सभी इलाके पंजाब के ही थे और 550 वर्ग मील देकर फिर 35 वर्ग मील का चण्डीगढ़ लेना या देना, दोनों अनुचित थे।

संतों का मरणव्रत छुड़वाने के लिए यह समझौता सरदार गुरनाम सिंघ ने करवाया था परन्तु इसके साथ उनकी राजनीतिक स्थिति को धक्का लगा। 27 मार्च, 1970 को प्रकाश सिंघ बादल मुख्यमंत्री बने, परन्तु खींचातानी चलती रही। दिसम्बर 1971 में हिन्दुस्तान को फिर पाकिस्तान के साथ युद्ध करना पड़ा और पूर्वी बंगाल की स्वतन्त्रता के लिए भारतीय सेना वहां पहुँची। कुछ सप्ताह में ही पाकिस्तानी सेना ने शस्त्र डाल दिये और 91 हज़ार पाकिस्तानी फ़ौजी जंगी कैदी बनाकर हिन्द लाए गये, तथा एक करोड़ के लगभग शरणार्थी जो भारत आ गये थे फिर बंगला देश पहुँचाए गये। इस ग़रीब नवाज़ कार्य से जहां भारतीय लोगों की शोभा हुई, वहां प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी को भी अच्छी प्रसिद्धि मिली। शेख़ मुजीबुर्रहमान को गद्दी पर बैठाकर भारतीय सेना ने एक पुण्य का कार्य

किया, यद्यपि यह राजनीतिक पक्ष से भी लाभदायक था।

कभी पाकिस्तान वालों ने देश का बंटवारा करवाया था और अब पाकिस्तान स्वयं टुकड़े टुकड़े हो गया। इस सारी मुहिंम के फौज़ी आगू लैफ़्टीनैंट जनरल जगजीत सिंघ अरोड़ा थे और सिक्ख सेना भी काफ़ी थी, इसलिए इस कारनामे की प्रसिद्धि सिक्ख जगत् को भी प्राप्त हुई।

1972 में आम चुनाव हुआ और हर जगह कांग्रेस को बहु-सम्मति प्राप्त हुई और पंजाब में भी कांग्रेस बहु-सम्मति के कारण ज्ञानी ज़ैल सिंघ मुख्यमंत्री बने। 30 अक्तूबर, 1972 को संत फतह सिंघ का देहांत हुआ। अकालियों ने 'पंजाबी सूबा' तो इसलिए बनाया था कि राजपाट के हिस्सेदार बनेंगे परन्तु हालात ने कोई पेश न जाने दी—

मिला जो प्यार तो हम प्यार के काबिल न रहे।
खिज़ां में पल के भी हम बहार के काबिल न रहे।

ताकत के नशे ने इंदिरा गांधी को तानाशाह बना दिया, उसने अपनी इच्छा का प्रयोग करके कई अनुचित कार्य किए, जिस कारण अनेकों कांग्रेसी भी इसके विरुद्ध हो गये और मंहगाई ने ऐसा नाक में दम किया कि साधारण जनता प्रदर्शन करने पर उतर आई। श्री जय प्रकाश नारायण नेता बनकर आगे आये। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 12 जून, 1975 को श्रीमति गांधी के चुनाव को अनुचित करार देकर 6 वर्ष के लिए निकाल दिया। लेकिन इंदिरा ने पद न छोड़ा, बल्कि उसने कानून को ज़बरदस्ती अपने अधिकार में करने के लिए अनुचित प्रयत्न किये। 25 जून को रामलीला मैदान दिल्ली में भारी रोष जलसा हुआ, सर्व हिन्द नेता इंदिरा की तानाशाही के विरुद्ध पूर्ण दृढ़ता से बोले। यह हालात देखकर इंदिरा गांधी ने 26 जून, 1975 को ऐमरजैंसी लगाकर देश भर में सारे आगू गिरफ़्तार कर लिए, प्रैस पर पूर्ण पाबंदी लगा दी और कानून को भी अपना ग़ुलाम बना लिया। 42वां संशोधन पास होने से समस्त ताकतें प्रधान मंत्री के अधीन आ गईं, ऐसे संकट-काल में शिरोमणी अकाली दल ही एक वाहद जमात थी, जिसने ऐमरजैंसी के अत्याचारों और इंदिरा की तानाशाही के विरुद्ध नियमित रूप से मोर्चा लगाया। पहले पांच आगु, स. गुरचरन सिंघ टोहरा, जगदेव सिंघ तलवंडी, प्रकाश सिंघ बादल, आत्मा सिंघ और बसंत सिंघ ख़ालसा, अकाल तख़्त पर अरदास करके और जलियांवाला बाग़ के शहीदों को प्रणाम करके जेल गये। फिर जुलाई से नियमित रूप से जत्थे जाने लगे। फ़रवरी 1977 तक कुल 43472 सिक्खों ने गिरफ़्तारी

दी। यह अद्वितीय कारनामा सिक्ख परम्पराओं के अनुसार था, जिस द्वारा सिक्खों ने जबर और अन्याय के विरुद्ध अकेले तौर पर लड़ाई लड़ी। इंदिरा गांधी ने वज़ारत की पेशकश करके सिक्खों को इस रास्ते से हटाना भी चाहा परन्तु वे अपने आदर्श से पीछे न हटे।

इस समय अमरीका में चुनाव हुआ, कार्टर राष्ट्रपति चुने गये। पाकिस्तान में मिस्टर जुल्फ़कार अली भुट्टो भी चुनाव का ऐलान कर दिया था। इस स्थिति में इंदिरा ने चुनाव करवाने का निर्णय किया। उसने एकदम सारे कैदी रिहा कर दिये, जिनका जनता ने भव्य स्वागत किया। 20 मई, 1977 को देश भर में चुनाव हुआ। इंदिरा के साथ साथ बड़े बड़े कांग्रेसी भी हार गये। लोकसभा में जनता पार्टी के 275 और कांग्रेस के मुश्किल से 150 सदस्य चुने जा सके और पंजाब में दस सीटें अकाली दल ले गया। नतीजे के तौर पर प्रकाश सिंघ बादल पंजाब के मुख्यमंत्री बने और सुरजीत सिंघ बरनाला केन्द्रीय मंत्री बनाये गये। ऐसा होने से अकाली राज-पाट के हिस्सेदार तो हो गये, परन्तु सिक्ख मामलों का पूर्ण निपटारा न हो सका।

चण्डीगढ़ का मामला ही इतना पेचीदा बन गया कि पंजाब अपनी राजधानी का भी किरायेदार बनकर रह गया। एक हज़ार वर्ष पूर्व किसी पंजाबी ने कहा था कि उस पुत्र के जन्म होने का क्या लाभ और मरे की क्या हानि, जिसके पिता की ज़मीन ओरों के पैरों तले पिसती जाती हो—

पुत्ते जाइ कवण गुण, अवगुण कवण मुएण,
जा बप्पू की भूंइड़ी, चंपि जइ अवरेण।

यह भी सत्य है कि अकाली 'राजनीतिक चतुराई' से अधिक 'मोर्चों के सूरमे' रहे हैं। शान्ति के समय निरोल विकासशील कार्यों में इनका मन कम लगता है। यद्यपि इनका क्षेत्र राजसी है, परन्तु क्योंकि शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की मालिकी भी बहुत समय इनके पास ही रही, इस द्वारा सिक्खों के सांस्कृतिक तथा धार्मिक विकास के लिए बहुत कुछ किया जाना चाहिए था जो न हो सका।

अग्रगामी सिक्ख

संस्था की सरप्रस्ती के अतिरिक्त भी सिक्खों ने सांस्कृतिक, सामाजिक, विद्यक तथा राजसी क्षेत्र में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है और

अपनी अग्रगामी परम्पराओं तथा गुणों के अनुसार प्रत्येक क्षेत्र में सम्मान प्राप्त किया है। इन गुणों का चमत्कार शायद यहां नज़र न आ सके; बर्मा, मलाया, अफ़रीका, इंग्लैंड, कैनेडा तथा कैलेफोरनीया (अमरीका) आदि में निवास करते सिक्खों की चढ़दी कला तथा आर्थिक ख़ुशहाली को देखकर यह निश्चय होता है कि गुरु के बख़्शे गुण इनको सदैव आगे बढ़ाते रहे हैं। इनके दूर से दिखाई देते गुरुद्वारे यहां प्रत्येक यात्री के लिए विश्राम घर हैं, वह हर हिन्दुस्तानी सरगर्मी का केन्द्र भी रहे हैं और इनकी विलक्षण नज़र आती ऊँची पगड़ी भारत का सिर ऊँचा करती आई है। अमेरीका के एक भाग में सिक्ख-धर्म के लिए बढ़ रही दिलचस्पी इस दहाके की नई प्राप्ति है जिससे 5 लाख अमरीकन सिक्ख बन चुके हैं, और वहां 'सिक्ख धर्म ब्रदरहुड' लहर को अच्छी तरह संगठित किया गया है। इसका ज़्यादा सेहरा सरदार हरिभजन सिंघ योगी जी के सिर पर है, जिसको अकाल तख़्त साहिब की ओर से 13 जनवरी, 1974 को 'भाई साहिब' की उपाधि देकर सम्मानित भी किया गया है।

यद्यपि देश-विभाजन के कई बुरे प्रभाव पड़े, परन्तु यह बात काफ़ी प्रभावशाली हुई कि सिक्ख अपनी हिम्मत, व्यापारिक और कारोबारी सूझ के फलस्वरूप हिन्द भर के प्रसिद्ध शहरों में फैल गये हैं और अपनी योग्यता का कमाल दिखा रहे हैं। हिन्द की सीमाओं पर जब जब भी चीन या पाकिस्तान की ओर से भयानक आक्रमण हुए तो भारतीय सेना के सिक्ख बहादुरों ने सूरमगति से युद्ध करके सिक्ख कौम की शान को और चमकाया है। अतः हम कह सकते हैं जहां अकाली जत्थेबन्दी ने पंथक हस्ती को स्थिर रखने के लिए संघर्ष किया, वहां सैनिक सिक्ख योद्धों ने अपनी बहादुरी तथा कुर्बानी से देश में सम्मान-योग्य स्थान बनाया है। यह बात बताती है कि चाहे सिक्खों को सीधे तौर पर राजनीतिक प्रशंसा न भी दी गई हो, फिर भी वे अपने गुणों और पराक्रम के फलस्वरूप हिन्द भर में कीर्ति और सम्मान प्राप्त करते रहेंगे।

एक बात और, साधारणतः सिक्खों को 'योद्धे तलवारिये' कहा जाता है, दो विश्व युद्धों में सिक्खों की बहादुरी देखकर इनके इस गुण को सर्व-सम्मति के साथ स्वीकार किया गया है, परन्तु सिक्ख केवल अच्छे सैनिक ही नहीं, अपितु उन्होंने जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी शोभा प्राप्त की है। यदि कलम और कला के क्षेत्र में प्रो. पूर्ण सिंघ, सेंट निहाल

सिंघ, भाई कान्ह सिंघ नाभा, प्रो. तेजा सिंघ, भाई वीर सिंघ, अमृता शेरगिल, शोभा सिंघ, एस.जी. ठाकुर सिंघ, महंत गज्जा सिंघ, भाई समुंद सिंघ, ज्ञान सिंघ अलमस्त जैसे प्रसिद्ध नाम प्राप्त होते हैं और क्रीड़ा (खेल) के क्षेत्र में ज. चन्दा सिंघ, दारा सिंघ, बलबीर सिंघ, बिशन सिंघ बेदी तथा मिलखा सिंघ जैसे नौजवान मौजूद हैं। यदि संत अतर सिंघ, अकाली कौर सिंघ, भाई रणधीर सिंघ और भक्त पूर्ण सिंघ जैसे तपस्वी, त्यागी और परोपकारी पुरुषों ने राष्ट्रीय आचरण को बलवान् बनाने में बहुत हिस्सा डाला है, तो जनरल कुलवंत सिंघ, जनरल हरबख़्श सिंघ, मलक हरदित्त सिंघ, डॉ. महेन्द्र सिंघ रंधावा और डाक्टर त्रिलोक सिंघ आदि ने प्रबन्धक योग्यता में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त सिक्खों के विकास और प्रसार के लिए संतों, गुणी-ज्ञानियों, लेखकों, ढाडियों, कविशरों और कवियों की ओर से डाला हिस्सा भी विशेष तौर पर प्रशंसनीय है।

सिक्खी कर्म-योग, ज्ञान-योग और भक्ति-योग का सुन्दर संगम है। इसलिए सिक्ख ज्ञान-योगी और कर्म-योगी होता हुआ भी भजन करने वाला राज-योगी है। वह अच्छा हल चलाता है, मोटर चलाता है, तलवार चलाता है और अच्छी कलम भी चलाता है। नये युग की तकनीकी शिक्षा का शौक उसको आगे बढ़ा रहा है। दूसरा, सिक्ख मेहनत करके, बांटकर खाने के नियमों को धारण करने वाला है, इसलिए मेहनतकशों की शान के युग में उसकी चढ़दी-कला को राजसी सीमा में बांधकर किसी तरह रोका नहीं जा सकता। उसका धर्म वैज्ञानिक और सम्पूर्ण है। मनुष्य की नवीनतम् खोजों ने जो मानव कल्याण के लिए नियम ढूंढें हैं, वे पहले ही दूर-दर्शी गुरुजनों द्वारा बताई इस जीवन जाच में मौजूद हैं। सम्पूर्ण और उचित धर्म की यही शान है कि वह स्वयं अच्छी तरह जीवन व्यतीत करे तथा दूसरों को भी अच्छे और ख़ुशहाल जीवन का अवसर दिला सके। धर्म का कार्य न मारना है और न ही मरना, यह तो एक आदर्शक जीवन-जाच है जो परमानन्द प्राप्त करने का रास्ता खोलती है। सिक्ख धर्म के अनुसार मन का सच्चा उपचार नाम-स्मरण है और तन का उपचार मेहनत की कमाई करके फिर बांटकर खाना है। पहले जाबर लोग ग़रीबों से देग छीनकर ले जाते थे, गुरुओं ने इसकी रक्षा के लिए तेग़ पकड़वाई। यही सिक्ख धर्म और यही सिक्ख राजनीति है। आधुनिक पदार्थवादी साम्यवाद, यद्यपि बांटकर खाने पर बल दे रहा है, परन्तु वह अध्यात्मवाद का रास्ता छुड़वाकर मनुष्य को पदार्थक तृष्णा के वनों में भटकने से बचा

नहीं सका। इसी प्रकार जैसे आज राजनीतिक शैतानों के हाथों जमहूरीयत देवी का सतीत्व भंग हो रहा है, राष्ट्रवादी 'संगठित अहंकार' बनकर देशों की लड़ाई करा रहा है, अंतराष्ट्रीय तोड़-फोड़ ग़रीब कौमों को नष्ट कर रही है। तानाशाही के नतीजे लोगों ने देख ही लिए हैं। पहले धर्म वाले मरते रहे, उनके हाथों में राज-सत्ता की तलवार नहीं थी, अब राजनीति वाले मर रहे हैं, क्योंकि वे धर्म से वंचित हैं। इस राज-योग की सन्धि सिक्ख धर्म करवाता है। अतः पश्चिम के ऐटमवाद या पूर्व के अहिंसावाद के स्थान पर संत-सिपाहीवाद ही इस युग का उचित धर्म है।

इसलिए सिक्ख धर्म और सिक्खों दोनों का भविष्य उज्ज्वल है। इनमें नया इतिहास निर्माण करने की शक्ति है। इन गुणों के फलस्वरूप ही सिंघ स्वाभिमान से प्रतिदिन गुज़ारा करते हैं—

राज करेगा ख़ालसा, आकी रहै न कोइ।
खुआर होइ सभ मिलैंगे, बचै सरन जो होइ।

वर्तमान का सिक्ख संकट

पंजाब के इतिहास-खोजियों ने यह अनुमान लगाया है कि अगर स्वतन्त्रता संग्राम में 123 लोग फांसी लगे तो इसमें 93 सिक्ख थे और अगर 2346 उम्र कैद हुए तो इन में 2147 सिक्ख थे, जलियांवाले बाग़ के हत्या-काण्ड में 799 सिक्ख शहीद हुए, बजबज घाट के साके में 67 सिक्ख शहीद हुए। कूका लहर में 91 सिक्ख शहीद हुए और अकाली लहर में 500 सिक्ख शहीद हुए। बम्बई विश्वविद्यालय के विद्यमान् प्रोफ़ैसर गिलब्रट लोबो ने सभी अंकड़े गिनकर यह तत्व निकाला कि हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता संग्राम में प्राण देने वालों में 75 प्रतिशत सिक्ख थे, और उम्र कैद काटने वाले व्यक्तियों में 80 प्रतिशत सिक्ख थे। वह यह भी कहता है कि 1984 में जो देश का अन्न भंडार इकट्ठा हुआ उसमें 86 प्रतिशत भाग पंजाब ने दिया था।[1] इसका अर्थ यह है कि पंजाबी, संग्राम में प्राण देते हैं और आराम में अन्न दान देते हैं। ऐसा देश भक्त कौन हो सकता है। इसीलिए सिक्ख कई बार अंदाज़ से कह देते हैं—

अगर शामिल हो न किस्सा हमारा। तुम्हारी दासतां कुछ भी नहीं है।

---

1. *The Dalip*, Bombay-56, 20 Nov., 1984.

लेकिन जो कुछ चालीस वर्षों में इनके साथ सलूक हुआ, वह सारी कारगुज़ारी के बिलकुल उलट है।

मिला जो प्यार तो हम प्यार के काबिल न रहे।
ख़िज़ां में पल कर भी हम बहार के काबिल न रहे।

देश के बंटवारे के बाद एक लोकोक्ति आम प्रचलत हुई थी :

हिन्दुओं को मिला हिन्दुस्तान, मुसलमानों को पाकिस्तान,
सिक्खों के हाथ में रह गई सिर्फ कृपान।

इसका एक बड़ा सा भाव यह था कि सिक्ख बेचारे राजनीतिक शक्ति से वंचित रह गए, जबकि डेढ़ प्रतिशत गिनती होते हुए भी आज़ादी के लिए सिक्खों ने 70-80 प्रतिशत कुर्बानियां कीं। पश्चिमी पंजाब में 180 ऐतिहासिक गुरुद्वारे और अरबों-खरबों की ज़मीन जायदाद छोड़कर लाखों लोग शरणार्थी बने और हज़ारों ने जान भी गंवाई लेकिन किसी ने कदर न पाई। सबसे बड़ा गिला सिक्खों को कांग्रेस के साथ था जिसने स्वतन्त्रता-संग्राम के समय उनसे कई वादे किए और जो 40-45 साल से राज-पाट की मालिक भी रही लेकिन उसने कोई वादा ईमानदारी से पूरा नहीं किया। इसीलिए संविधान बनते समय सिक्खों के प्रतिनिधियों स. हुकम सिंघ और स. भूपेन्द्र सिंघ ने संविधान पर हस्ताक्षर भी न किए। इसका अर्थ साफ़ है कि सिक्ख इस संविधान को कबूल नहीं करते, जिसमें सिक्ख अधिकारों की रक्षा के लिए एक भी स्तर नहीं डाली गई। जबकि कांग्रेस पार्टी द्वारा इस प्रकार वादे किए गए थे :

(1) 26 मई, 1929 को हुए लाहौर के सालाना इजलास में कुल हिन्द कांग्रेस ने यह मता पास किया था :

'कांग्रेस पार्टी सिक्खों को यह आश्वासन दिलाती है कि भविष्य में ऐसा कोई भी संविधान मंजूर नही किया जाएगा जो सिक्खों की पूरी तरह तसल्ली न करवाता हो।'

(2) फिर मार्च 1931 में गुरुद्वारा सीस गंज दिल्ली में सिक्ख संगत को संबोधन करते हुए महात्मा गांधी जी ने कहा था :

'मै आप को विनती करता हूँ कि आप मेरे शब्दों और कांग्रेस द्वारा मंजूर किए गए मतों पर पूरा-पूरा एतबार कीजिए। आप की कौम के साथ तो क्या, हम किसी एक व्यक्ति के साथ भी विश्वासघात नहीं करेंगे।

यदि कांग्रेस ने कभी ऐसा किया तो वह अपनी तबाही को स्वयं बुलावा देगी। मैं आप को फिर विनती करता हूँ कि आप अपने दिलों से यह संदेह निकाल दें। आप के, मेरे और कांग्रेस के बीच परमात्मा साक्षी है कि हम अपने वादों पर पूरा उतरेंगे। मेरे विचार में कांग्रेस का अहिंसा में विश्वास हमारी नेकनीयत की गारंटी है। इसलिए सिक्ख भाईयों के मनों में यह तौखला रहना कि कांग्रेस उनके साथ विश्वासघात करेगी, इसकी कोई गुंजाइश नहीं। अगर कांग्रेस ने ऐसा करने की कोशिश की तो वह ख़ुद अपनी और देश की तबाही का कारण बनेगी।'

यह तकरीर सुनकर भाई मधूसूदन सिंघ जी ने खड़े होकर दुबारा सवाल उठाया कि महात्मा जी ! अगर कांग्रेस अपने वादों से हट गई तो हम क्या करेंगे ? इसके जवाब में गांधी जी ने कहा :

'मुझे मालूम है कि सिक्ख लोग बहादुर हैं, अगर कभी ऐसा अवसर बन भी जाए तो यह अपने अधिकारों की रक्षा शस्त्रों से भी करना जानते हैं।'

'Moreover the Sikhs are a brave people. They knew how to safeguard their rights by the exercise of arms. If it should ever come to that.'

(Young India, Dated 19th March, 1931)

(3) जुलाई 1946 को कलकत्ता में कांग्रेस का इजलास हुआ तो प्रैस कान्फ्रेंस को संबोधन करते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू जी ने कहा :

'पंजाब की बहादुर सिक्ख कौम विशेष ध्यान की पात्र है। मुझे इसमें कोई भी ग़लत बात नहीं लगती अगर देश के उत्तरी हिस्से में एक ऐसा इलाका और प्रबंध बनाया जाए जहाँ कि सिक्ख भी आज़ादी का जलवा महसूस कर सकें।'

'The brave Sikhs of Punjab entitled to special consideration. I see nothing wrong in an area a set up in the North, wherein the Sikhs can also experience, the glow of freedom.' *(The Statesman Calcutta, 7.7.1946)*

फिर पंडित जी ने आईनसाज़ असेम्बली के 9 दिसम्बर 1946 के इजलास में यह मता भी पास किया था :

'देश के सभी अल्पसंख्यकों को कानूनी सुरक्षा दी जाएगी। यह दुनियाँ के सामने हमारा ऐलान, हमारा वचन, हमारी ज़िम्मेदारी है, लाखों

लोगों से अहदनामा है। एक तरह की सौगन्ध है जिसे हमने निभाना है।'

जनवरी 1947 में कुल हिन्द कांग्रेस पार्टी ने फिर यह दोहराया कि पंजाब में सिक्ख अधिकारों को कोई ठेस नहीं लगनी चाहिए।

ऐसे दर्जनों वादे किए गए जो कांग्रेस पार्टी और सरकारी रिकार्ड में आज भी मौजूद हैं लेकिन राजसी ताकत आने पर यह वादे छिक्के पर टांग दिए गए।

सिक्ख जंग-ए-आज़ादी लड़ने में सबसे आगे थे और तेज़ भी थे लेकिन राजनीतिक दौड़ में सचमुच भोले ही थे जो सांपों का हार गले में डालते रहे और आज तक पछता रहे हैं:

जिन्हों को हार समझा था, गला अपना सजाने को।
वो काले नाग बन बैठे, मेरे ही काट खाने को।

बनिया-साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष

इन हालात में सिक्ख दोबारा शान्तिमय जद्दो-जहद करने पर मजबूर हुए, अनेकों बार लाखों की संख्या में कैद हुए और हज़ारों की तादाद में देसी सरकार के हाथों शहीद भी हुए। ऐसी मायूसी की हालत में ही पंजाबी सूबे की मांग उठी, लेकिन सिक्ख नहीं चाहते थे कि देश का और बंटवारा हो, बंटवारों के करूर नतीजों से वह अच्छी तरह वाकिफ़ थे लेकिन फिर भी उनको इसी में कुछ निजात दिखाई दी और उन्होंने सूबे की भाषा के आधार पर नई सीमा निर्धारित करने के लिए संघर्ष किया। जबकि बाकी हिन्द में भाषा के आधार पर सूबे बना दिए गए थे। परन्तु सरकार ने यहाँ ऐसा करना परवान नहीं किया। फिर लम्बी ऐजीटेशन हुई, पंजाबी सूबा (1966) बनाया गया लेकिन इसकी कांट-छांट हाकिम श्रेणी ने इस तरह की कि यह किसी काम का न रहे। हरियाणा और हिमाचल को अच्छे इलाके और अच्छी मदद देकर उठाया गया और पंजाबी सूबे के पंजाबी इलाके छीनकर और चण्डीगढ़ को केन्द्र की निगरानी में रखकर सिक्ख स्वाभिमान को तिरस्कारा गया।

ऐसी सौतेली मां वाले बुरे व्यवहार के बावजूद सिक्खों ने देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाने में ज़रा भी संकोच न किया। जब जब भी पाकिस्तान और चीन के साथ चार जंग हुए, सिक्खों ने सदा ही देश

की सुरक्षा के लिए मोहरी होकर प्राण कुर्बान किए और सीमाओं की रक्षा करते हुए अनोखे कारनामे किए, जिसकी प्रशंसा के साथ सेना का रिकार्ड भरा पड़ा है। इस सच्चाई की पुष्टि इस बात से ही हो जाती है कि इन सभी-युद्धों में परमवीर चक्कर, महांवीर चक्कर, वीर चक्कर और अशोक चक्कर आदि से सम्मान पाने वाले सबसे अधिक सिक्ख ही थे। इसके इलावा यह बात और भी सम्मान योग्य हो जाती है कि लड़ाईयों में पंजाब के साधारण गांवों की जनता ने भी बहुत हिस्सा डाला। सैंकड़ों सिविलियन ड्राईवरों ने जानें हूलकर सैनिकों को सामान पहुँचाया और गांवों के लोगों ने सीमाओं पर लड़ने वाले वीरों को तरह तरह का ताज़ा खाना खिलाकर तृपत्या। यह सिक्ख ही थे जिन्होंने इस तरह की दलेरी और कुर्बानियां करके पाकिस्तानी सेना को मार भगाया और देश की सीमा को बचाया। लेकिन दिल्ली बैठी बनिया सरकार ने इसका कौड़ी मुल्य न पाया और पंजाब के विकास में हर समय बाधा डाली।

फिर भी हम से गिला है कि हम वफ़ादार नहीं,
हम वफ़ादार नहीं तो तू भी तो दिलदार नहीं। *(डॉ. इक्बाल)*

सिक्खों की इस देश सेवा और गौरव को श्री लाल बहादुर शास्त्री जी ने कुछ कुछ महसूस किया लेकिन उस भले पुरुष की उम्र ने वफ़ा न की। आख़िर इंदिरा गांधी का ज़माना आ गया जिसमें 'त्रिया हठ' के साथ साथ 'राज्य हठ' भी शामिल हो गया। उस मुँहज़ोर जोरू ने दो बड़ी भूलें कीं. पहली यह कि अकालियों के सालों के शान्तिमय सत्याग्रहों की कोई परवाह न की और न ही कोई मांग कबूल की। ग़ुस्सा बढ़ता गया, बेचैनी फैल गई, सारा देश तानाशाही का शिकार हो गया। आख़िर इंदिरा ने गद्दी कायम रखने के लिए ऐमरजैंसी (1975-1977) लगा दी, जिसका विरोध करते हुए शिरोमणी अकाली दल ने 42 हज़ार सिक्ख कैद करवाए, लेकिन सत्याग्रह न छोड़ा, जबकि हिन्द भर में कोई पार्टी ऐसा न कर सकी। इंदिरा और ज़्यादा अकालियों के ख़िलाफ़ होती गई। सच्च पूछो तो साका नीला तारा नीली पगड़ी वाले अकालियों को मार-मुकाने का कारा था, क्योंकि यही पंजाब के अधिकारों के लिए लड़ने वाले पहले संग्रामियें थे। एशियाई खेलों के समय हर सिक्ख की पगड़ी उतारी गई, यह जलती पर तेल डालने वाली बात थी। लोकतन्त्र में लोगों की उमंगों और मांगों को ठुकराना कोई न्यायसंगत नहीं, आख़िर इसका प्रतिक्रम भी होता है।

दूसरी भूल, इंदिरा गांधी से यह हुई कि राष्ट्रीय नेता बनने के जोश में और ताकत की हैंकड़ में आकर भारत का अरबों रुपया लगाकर और लाखों सेना चढ़ाकर (1971) उस पड़ौसी देश पाकिस्तान को खंडित करके 'बंगला देश' बनाया। हम अपने देश की एकता और अखंडता का नारा बुलंद करते हुए नहीं थके लेकिन दूसरी ओर पड़ौसी पाकिस्तान की हस्ती को खंडित करके ख़ाहमख़ाह एक आफ़त अपने गले में डाल ली। पाकिस्तान कमज़ोर था, वह भारतीय सेना से टाकरा नहीं कर सकता था, लेकिन उसने बंगला देश का बदला लेने के लिए असंतुष्ट और बेचैन सिक्ख जवानों को वरगलाया और जैसे तैसे इमदाद देने का धंधा रचा, जिसमें चीन भी शामिल हो गया। इस तरह पंजाब में बद-अमनी और हिंसक गड़बड़ का दौर शुरू हुआ, जो लगातार पांच साल चलता रहा। इसलिए दिल्ली की बदगुमानी, पाकिस्तान की शरारत के कारण पंजाब की और ख़ासकर सिक्खों की जो हानि हुई वह बेहिसाब है। उनको आंतकवादी और अलगाववादी कहकर जगह-जगह बदनाम किया गया।

इस तरह आंतकवाद के थोहर को जान-बूझकर पाला गया। आंतकवाद ग़ैर-मुहज़्ज़ब मुल्कों का ख़ासा है जिसको साम्राज्य पीठ थपथपाकर उठाता है, मुंडीहर को मूर्ख बनाता है और सत्ता का झांसा देकर आगे लाता है और मुहज़्ज़ब लोगों को लहू से नहलाता है। सिक्ख धर्म और इतिहास की रिवायतें इसकी कोई हामी नहीं भरतीं। लेकिन दूसरी ओर हिन्द सरकार के कान पर जूँ तक नहीं सरकी कि वह पंजाब की वाजिब मांगों की पूर्ती का एकतरफ़ा ही ऐलान कर दे ताकि कुदरत की कालिख कम हो और जन-साधारण सुख की सांस ले।

दूसरी ओर पाकिस्तान जो इस सारी शरारत की जड़ है, उस पाकिस्तान सरकार के साथ हिन्द सरकार ने किसी तरह के राजनीतिक, व्यापारिक या सिफ़ारती तअल्लुकात तोड़ने की तर्फ़ कोई कदम नहीं उठाया, क्योंकि बनिया सरकार को केवल वण्ज व्यापार प्यारा है। लोग चाहें कुएँ में जाएं, इनका सामान बिकना चाहिए। इनका कौमी नारा यह है—बी इंडियन, बाइ इंडियन, अर्थात 'हमारा माल ख़रीदें और (सच्चे) हिन्दोस्तानी बनें।'

इस तरह का स्वार्थी सौदागर सरकार साधारण जनता के लाभ के लिए असाधारण कारनामे क्या कर सकती है। आज बुल्ले शाह का कथन फिर दोहराया जा रहा है—'दर खुल्ला हशर अज़ाब दा, बुरा हाल होया पंजाब दा।' रोज़ाना दर्जनों पंजाबियों की जानें जातीं, हिन्दु भी मरते और

सिक्ख भी मारे जाते रहे लेकिन दिल्ली सरकार पर कोई असर नहीं। बयानबाज़ी अवश्य सत्य और अहिंसा की है लेकिन राजनीतिक मनशा कूड़, कुसत्य और कुहज से भरी है। सरकार का फ़र्ज़ लोगों की जान माल की रक्षा करना है लेकिन इसमें वह बुरी तरह असफल रही थी और कितने ही बेशुमार नौजवानों की गर्दनें मरोड़नें और माल बटोरने में लगी हुई है:

बाणीया तेरी बाण, देखी सुनी न कहूँ कबी,
पाणी पीवहि छाण, अणछाणो लोहू पीवहिं।

पुरानी पंजाबी लोकोक्ति सत्य हो रही है:

जट्ट मुहस्सल, बाह्मण शाह, बाणीया हाकम, कहर ख़ुदा।

पंजाब की गुत्थी सुलझाने की कोई ख़्वाहिश नहीं लगती, बल्कि किसी ख़ास उद्देश्य के साथ उसको और उलझाया जा रहा है। सरकार के दिमाग़ में यह नहीं आता कि इस सीमावर्ती सूबे को इतना ख़ुआर करके देश का बचाव कैसे संभव है। इसी उदासीनता में किसी शायर ने कहा है:

बहुत मुश्क्लि है कि पंजाब की गुत्थी सुलझे,
अहले सियासत ने बड़ी सोच कर उलझाई है।

इन पांच वर्षों में 30 हज़ार सिक्ख जान से हाथ धो बैठे, 20 हज़ार बंदीख़ानों में कैद या घरों से बे-घर होकर भटक रहे हैं। 25-30 करोड़ रुपये के विदेशी हथियार कौड़ियों के भाव नष्ट किए हैं। धर्म-स्थानों की बेअदबी और सिक्खों की आन शान को जो दाग़ लगा है, वह कहने से बाहर है। यह सब कुछ सरकार के ख़ाते में डालकर बात ख़त्म नहीं होती, अपने गिरेबान में झांकने की आवश्यकता है:

तारीख़ की गहराईयों ने, वुह सफ़ा भी देखा है।
लमहों ने ख़ता की है, सदियों ने सज़ा पाई है।

मुख्य धारा

सिक्खों में नर्म-ख़्याली नेताओं का वजूद और विश्वास सरकार ने अहदनामे भंग करके ख़त्म कर दिया है और गर्म-ख़्याली नौजवानों को दो बातें बार-बार कही जा रही हैं—पहली यह कि आप मुख्य धारा में शामिल हो जाएं, दूसरे संविधान के चौखटे में रहकर बात करें। कुछ

शान्तिपसंद बज़ुर्ग भी इस राय के हैं कि सिक्खों को मेन स्ट्रीम अर्थात हिन्दु राष्ट्र की धारा के साथ चलना चाहिए, फिर कोई मसला नहीं रहेगा परन्तु यह काम मुश्किल लगता है क्योंकि सिक्ख मान्यताओं और हिन्दु मान्यताओं में कुछ बुनियादी मतभेद हैं जिन्हें आँखों से दूर नहीं किया जा सकता। यह दिखावे वाली नहीं बल्कि विलक्षणता वाली बात है। धार्मिक आज़ादी का सवाल है, इसको निष्पक्षता से देखना योग्य है।

सिक्ख हिन्दुस्तानी समाज का निरोल भाग हैं, उनकी बहादुरी ने 18वीं सदी में पंजाब को अफ़ग़ानिस्तान का भाग होने से बचाया और 20वीं सदी में पंजाब को पाकिस्तानी मार से बचाकर, इन्होंने इसे अपनी ओर रहने दिया। गंगा वाले तो यमुना तक देने को तैयार थे। अब भी हम देश के लिए हर प्रकार की कुर्बानी देने को तैयार हैं लेकिन अपनी आज़ाद धार्मिक हस्ती को कुर्बान नहीं कर सकते, यह धार्मिक हस्ती सिर्फ़ एक अकाली विश्वास और अलग क़िस्म की आचरणक रहिरास (Code of Conduct) पर आधारित है, इसको बदला नहीं जा सकता।

(1) हम एक परमात्मा के पुजारी हैं, तेतीस करोड़ देवी देवताओं को नहीं पूज सकते और न ही गुप्त अंगों की पूजा हमारे समाज को कबूल है।

(2) हम राजे रानियों को रूहानी पुरुष या अवतार मानकर पूज नहीं सकते।

(3) हम मूर्ति-पूजा और बुत-प्रस्ती में विश्वास नहीं रखते।

(4) हम चूँकि "मानस की जात सबै एकै" के कायल हैं और जाति-पाति के बंटवारे को नहीं मानते, इसलिए वर्ण-आश्रम मर्यादा भी नहीं निभा सकते।

(5) हम वहम, भ्रम, मंत्र, जंत्र, तंत्र और ऐसे वैसे कर्म-काण्ड में बिल्कुल विश्वास नहीं रखते।

(6) हम वेद और ब्राह्मण की सर्वोच्चता परवान नहीं करते, चाहे वेद हमारे पुरुषों द्वारा ही कहे गए हैं।

(7) हम सामाजिक कर्म-योग के हिमायती मज़दूर लोग हैं, प्लायनवादी भगौड़े नहीं।

(8) मेहनत कर बांट खाना, हमारा जीवन सिद्धान्त है, मांगकर खाना विवर्जित है।

(9) हम दुनियादार होते हुए, दीनदार भी हैं, लेकिन नास्तिक नहीं हो सकते।

(10) हम ऋषियों, गुरुओं के पैरोकार, केशों की बे-अदबी नहीं कर सकते।

(11) हम पगड़ी पहनते हैं, पगड़ी उतारकर टोपी या टोप नहीं पहन सकते।

(12) हमने सिग्रेटनोशी को विषपान मानकर इसका त्याग किया हुआ है जबकि आज सारा जगत् इसे फ़ैशन मानकर इस बुरी आदत का शिकार है।

जहां तक संविधान द्वारा बातचीत करने का विचार है इस पर नौजवान एतबार नहीं करते, क्योंकि पिछले चालीस वर्षों में सरकार ने ख़ुद ही एतबार ख़त्म कर लिया है। साथ ही वह यह भी पूछते हैं, हमें जो संविधान का उपदेश दिया जाता है, इसे ख़ुद इस सौ साल की बूढ़ी कांग्रेस ने कहां तक निभाया है। जिस भारत की अखंडता का यह दावा करते नहीं थकते, सत्ता की हवस में इन्होंने ख़ुद इसके टुकड़े किए, और ख़ान बादशाह, वीर सावरकर और मास्टर तारा सिंघ जैसे स्वतन्त्रता संग्रामियों को धोखा दिया। यह कहते थे कि हमारी लाश पर पाकिस्तान बनेगा लेकिन भारत माता की लाश पर इन्होंने अपना तख़्त लगाया। हम पूछते हैं :

(1) क्या सिक्खों के साथ किये वादों से मुनकर होना संविधान के अनुसार है ?

(2) क्या किसी उच्च धार्मिक स्थान को ग़ज़नवी ढंग से गिराना संविधान के अनुसार है ?

(3) क्या सिक्ख रैफ्रैन्स पुस्तकालय जैसे देश के कला और ज्ञान के भंडार को आग लगाना संविधान के अनुसार है। इसमें ढाई हज़ार बीड़ें तथा पांच सौ अन्य हस्त-लिखित ग्रंथ थे। इसके इलावा 18 जिल्दों में कई ऐतिहासिक दस्तावेज़ संभाले हुए थे, जैसे कि 65 हुक्मनामों की नकलें, 29 गुरुओं द्वारा लिखित निशानों के फ़ोटो और कई किस्म के ऐतिहासिक चित्र आदि थे।

(4) क्या किसी धार्मिक स्थान पर चोरी-चोरी सैंकड़े हथियार पहुँचाना और फिर फ़ौजी हमले जैसी कमीनी साज़िश करवाना संविधान के अनुसार है ?

फिर 'काली गरज' की कारवाई भी बताती है कि इसमें कई काली भेड़ें थीं, कुछ पाकिस्तानी गुमाशते थे और कुछ दिल्ली दरबार के दलाल, बदनामी सारी सिक्ख कौम की ही की जा रही है।

(5) क्या 1984 में दिल्ली, कानपुर, बोकारो आदि में बेगुनाह सिक्खों का क़त्लेआम संविधान के अनुसार था ?

(6) क्या ऐसे हत्यारों को सज़ा न देना संविधान के अनुसार है जबकि कई ग़ैर-सिक्ख जमहूरी जत्थेबन्दियों की रिपोर्ट के अंत में उन दो सौ दोषियों के नाम और पते दिए गए हैं। फिर हिन्द के साबका चीफ़ जस्टिस एस.एम. सीकरी की प्रधानगी में बने कमीशन की रिपोर्ट भी इनकी पुष्टि करती है।

(7) क्या ऐसे दोषियों को देश के मंत्री-मंडल में शामिल करना संविधान-संगत है ?

(8) इस समय हिन्दी धनाढ्य सेठों का कई हज़ार करोड़ रुपया यूरोप के बैंकों में जमा है, क्या यह हमारी आर्थिकता ज़ख़्मी करने वाली कारवाई संविधान के अनुसार है ? इसकी जांच करनी भी कठिन है क्योंकि यह रकम करीब दास की है और वहां ग़रीब दास के नाम जमा है।

(9) भारत देश अरबों, खरबों का करज़ाई है। छः हज़ार करोड़ डालर करंट अकाऊंट इस वर्ष का ही कर्ज़ा है। कुल 26650 मिलियन डालर कर्ज़ा है, 82267 करोड़ रुपए देसी और 23000 करोड़ रुपए विदेशी कर्ज़ा है। क्या देश को क़र्जाई बनाना और इसकी स्वतन्त्रता को गिरवी रखना क्या संविधान के अनुसार है ?

(10) देश की सुरक्षा के लिए जो साज़ो-सामान बाहर से ख़रीदा गया है, उसमें बोफ़ोर्स तोपों की ख़रीद में 65 करोड़ रुपए की रिश्वत लिए जाना स्पष्ट है, क्या यह संविधान के अनुसार है ?

(11) लोक सभा चुनाव के लिए करोड़ों रुपए ख़र्च करने वाली हाकिम श्रेणी यह काला धन कैसे और कहां से लाती है ? हवाला केस क्या कुछ बताते हैं, क्या यह संवैधानिक विधि है ?

(12) क्या किसी राज्य की राजधानी पिछले बीस वर्ष से हथियाना संविधान के अनुसार है। क्या पंजाब के इलावा अन्य किसी प्रांत की राजधानी ऐसे धक्के की शिकार है ?

(13) क्या किसी प्रांत के दरियाई पानी को ज़बरदस्ती दूसरे को देकर वोटें हासिल करना संविधान के अनुसार है ? जबकि रिपेरीअन स्टेट

ही दरियाई पानी की मालिक होती है। अब रावी और ब्यास का पानी 25 प्रतिशत पंजाब को और बाकी 75 प्रतिशत हरियाणा, राजस्थान और दिल्ली को दिया जाता है, जिसकी सालाना आमदन 2500 करोड़ रुपया बनती है लेकिन हमें एक पैसा नहीं मिलता। चलो, अगर ज़्यादा पानी हो तो दिया जा सकता है; जैसे आसाम मिट्टी का तेल देता है, बिहार कोयला देता है, और उसकी कीमत भी लेता है, इसी तरह पंजाब को इस दिए हुए पानी की रायलटी मिलनी चाहिए, क्या यह जल-डाका संविधान के अनुसार है ?

(14) पंजाब के पानी से पैदा हुई बिजली भी आगे मन चाही कीमत पर मुफ़्त में दी जा रही है, (दिल्ली को 25-30 पैसे प्रति यूनिट और हमें एक रुपया), क्या बिजली-दान संविधान के अनुसार है ?

(15) भाखड़ा डैम बोर्ड का प्रबन्ध सीधा केन्द्र सरकार के पास है, क्या किसी अन्य प्रांत का डैम भी केन्द्र सरकार के अधीन है ? अगर नहीं तो यह क्यों ?

(16) राष्ट्रीय एकता के नाम पर सिक्ख संस्कृति और सिंघ स्वरूप को औरों से मिलाकर मिटा देने की साजिश, संविधान के मूल अधिकारों की क्या उल्लंघना नहीं ?

देश भर में हिन्दु मुस्लिम दंगों की बढ़ रही संख्या यह बताती है कि कोई भी अल्प-संख्यक सुरक्षित नहीं। हिन्दु फाशीवाद सब को फांसी लगाने पर तुला हुआ है, साधारण तौर पर शक्तिशाली सरकारें दो ही तरीके काम में लाती हैं, औरंगज़ेब प्रणाली और जलेबी प्रणाली। इन्हें हम बुच्चड़वाद और कुच्छड़वाद भी कह सकते हैं। बुच्चड़वाद प्रणाली वह है कि औरंगज़ेब की तरह ग़ैर-मज़हब वालों को मौत के घाट उतार दिया जाए। जैसे कि किसी ज़माने में ब्राह्मणों के हाथ सत्ता आने के समय बोधियों को आग लगाकर जला दिया गया था और ज़ालिम मुस्लिम बादशाह तो यह तरीका बहुत काम में लाते थे। दूसरी कुच्छड़वाद की प्रणाली यह है कि किसी को भी अपनी बाँहों में उठाकर उसका गला दबा देना। ब्राह्मणों ने बोधियों के साथ ऐसा ही किया। महात्मा बुद्ध को चौबीस अवतारों में गिन लिया और फिर बुद्ध ग्रन्थों का पाली से संस्कृत में उलथा कर लिया गया। इस तरह पहले अपनापन पैदा करने के बाद बुद्धमत को देश भर में से ख़त्म कर दिया गया। डॉ. राधा कृष्णन ने बहुत काम

की बात कही है कि ब्राह्मणवाद ने अपने भाईचारे की गलवकड़ी में लेकर बोधियों को बुरी तरह मारा। उनके शब्द हैं :

"It is said, not without truth, that Brahamanism killed Budhism by a fraternal embrace ?"

सिक्खों को मारने के लिए हिन्दु सरकार ने उपर्युक्त दोनों तरीके इस्तेमाल किए हैं। एक तरफ़ यह कहा जाता है कि सिक्ख हिन्दुओं में से निकले हैं, वो एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते। दूसरी तरफ़ मारू तरीके अपनाकर हज़ारों बेगुनाह नौजवानों का क़त्ल किया जा रहा है। नीला तारा आपरेशन के समय सरकारी जानकारी थी कि अकाल तख़्त पर 43 आतंकवादी छिपे हुए हैं लेकिन मौतें इससे 20 गुना ज़्यादा हुईं, दस गुना कैद भी किए गए। दिल्ली का क़त्लेआम इसका प्रत्यक्ष सबूत है, जिसमें पाँच हज़ार सिक्ख नौजवान मारकर तैमूर और नादर के क़त्लेआम को मात दे दी गई।

फिर लंका में सिक्ख सेना इसलिए भेजी गई कि वो वहां प्राण देकर तामिलों की स्टेट बना दें। इस तरफ़ सिक्ख नौजवान इस कारण प्राण गंवा रहे थे क्योंकि वो आज़ाद स्टेट की मांग कर रहे थे। यह मांग भी सिक्ख नौजवानों के दिलों में एकदम नहीं आई बल्कि चालीस वर्षों से बनी हुई बनिया सरकार का अन्याय-पूर्ण रवैया देखकर पैदा हुई है। सिक्ख इंसाफ़ चाहते थे, अपने शहरी अधिकार और विशेष सुरक्षा की गारंटी चाहते थे ताकि वह अपनी विलक्षण संस्कृति और स्वरूप को बरकरार रख सकें। आनंदपुर मते का भाव भी पंजाब को ज़्यादा से ज़्यादा हक्क लेकर देना था जिसके सरकार की तरफ़ से उलट अर्थ निकाले गए।

भारत सरकार के लिए यह कोई कठिन बात नहीं यदि वे निरछल रास्ता अपनाए और देश के लिए इतनी शानदार कुर्बानियां करने वाली सिक्ख कौम की पूरी पूरी तसल्ली करवाए। संविधान में 59 तरमीमें हो चुकीं हैं, यदि सिक्खों के हक्कों की रक्षा के लिए 60वीं तरमीम भी कर ली जाए तो यह घर का मामला घर में ही समाप्त हो सकता है। आवश्यकता राजनीतिक उदारता और दानाई दिखाने की है। मनोविज्ञान कहता है कि यदि किसी की योग्य मांग भी न मानी जाए तो वह अयोग्य मांग कर दृढ़ खड़ा हो सकता है। इसलिए ईमानदारी, शान्ति तथा सूझ बूझ ही समस्या को सुलझा सकती है।

लोकतंत्र कि ठोकतंत्र ?

दूसरी तरफ़ सिक्खों को भी चाहिए कि वह जत्थेबन्दक एकता का सबूत दें। उनका राजसी निशाना एक होना चाहिए और उसको प्राप्त करने का साधन भी एक ही होना चाहिए। सिक्ख राजनीति और रणनीति दोनों रास्ते से भटकी हुई हैं। इस समय गंभीर समस्या यह है कि किस विधि को अपनाया जाए, लोकतंत्र या ठोकतंत्र ? पहले हमें बहुत ही सहनशीलता के साथ बीते हुए पांच छे वर्षों की कारगुज़ारी का जायज़ा लेना योग्य होगा कि दूसरों के कहे पर हमने क्या पाया और क्या खोया। निर्दोष ग़रीबों का क़त्लेआम कभी राज-पाट का सम्मान नहीं दिलाता। यह धर्म और इतिहास की शिक्षा है। यह सच्च है कि पिछले वर्षों में बड़े कड़वे तजुर्बे हुए, इंदिरा गांधी की मारू कारवाईयों ने सिक्ख नौजवानों में बहुत तलख़ी पैदा की तथा वह बहुत उतावले हो गये कि इस उतावलेपन में वह श्री गुरु ग्रंथ साहिब की हिदायतों और सिक्ख पंथ की मानववादी श्रेष्ठ रिवायतों को भी दूर फेंकते गए। यह अति दुर्भाग्यपूर्ण दुःखांत है।

हमारी परंपरा कट्टरवादी नहीं, हिंसावादी नहीं, लूटमार या क़त्लोग़ारत हमारे धर्म के अंग नहीं, हम तो उदारवादी हैं और सरबत्त के भले में विश्वास रखते हैं लेकिन हथियार के अहंकार ने ग़ुबार पैदा करके दिमाग़ी संतुलन गंवा दिया है। सिक्ख लीडरशिप भयभीत और बेहाल है, दूसरा किनारा भयानक विकराल बना हुआ है परन्तु सिक्खी भयमुक्त संकल्प है जिसका ज़ाबता शान्त मार्ग का संकेत करता है। सो बड़ी सूझ-बूझ से विचार करने के बाद ही अगला कदम उठाना बनता है।

पर का बुरा न राखहु चीत ॥ तुम कउ दुखु नही भाई मीत ॥

(आसा म: ५, पन्ना 5)

•

अंतिका-1

सिक्ख-घटनावली

गुरु युग

15 अप्रैल	1469	ई॰ —	जन्म श्री गुरु नानक देव जी
	1501	ई॰ —	प्रचार आरम्भ
22 सितम्बर	1539	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
31 मार्च	1504	ई॰ —	जन्म श्री गुरु अंगद देव जी
14 जून	1539	ई॰ —	गुरिआई
29 मार्च	1552	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
1 जून	1509	ई॰ —	जन्म श्री गुरु अमरदास जी
29 मार्च	1552	ई॰ —	गुरिआई
1 सितम्बर	1574	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
24 सितम्बर	1534	ई॰ —	जन्म श्री गुरु रामदास जी
1 सितम्बर	1574	ई॰ —	गुरिआई
1 सितम्बर	1581	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
15 अप्रैल	1563	ई॰ —	जन्म श्री गुरु अर्जुन देव जी
1 सितम्बर	1581	ई॰ —	गुरिआई
30 मई	1606	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
15 जून	1590	ई॰ —	जन्म श्री गुरु हरिगोबिन्द जी
25 मई	1606	ई॰ —	गुरिआई
3 मार्च	1644	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
26 फ़रवरी	1629	ई॰ —	जन्म श्री गुरु हरिराय जी
8 मार्च	1644	ई॰ —	गुरिआई
6 अक्तूबर	1661	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
7 जुलाई	1652	ई॰ —	जन्म श्री गुरु हरिकृष्ण जी
7 अक्तूबर	1661	ई॰ —	गुरिआई
30 मार्च	1664	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
1 अप्रैल	1621	ई॰ —	जन्म श्री गुरु तेग़ बहादुर जी
30 मार्च	1664	ई॰ —	गुरिआई
11 नवम्बर	1675	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
18 दिसम्बर	1661	ई॰ —	जन्म श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी
8 जुलाई	1675	ई॰ —	गुरिआई
7 अक्तूबर	1708	ई॰ —	ज्योति ज्योत समाए
अगस्त	1601	ई॰ —	आदि गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन

30 मार्च	1699	ई॰	— पंथ साजना
7 अक्तूबर	1708	ई॰	— ग्रंथ पंथ को गुरिआई

ख़ालसई युग

14 मई	1710	ई॰	— बंदा सिंघ की जत्थेदारी में सरहंद-विजय
7 दिसम्बर	1715	ई॰	— गुरदास नंगल गढ़ी में से गिरफ़्तारियाँ
9 जून	1716	ई॰	— बाबा बंदा सिंघ बहादुर की शहीदी (दिल्ली)
	1726	ई॰	— भाई तारा सिंघ डल्लवां जूझकर शहीद हुआ
	1727	ई॰	— सिंघों के सिरों के इनाम रखे गए तथा गिरफ़्तारियां
	1733	ई॰	— नवाबी और जागीर ख़ालसे के चरणों में
24 जून	1734	ई॰	— शहीदी भाई मनी सिंघ जी
जुलाई	1734	ई॰	— तरुणा दल और बुढ्ढा दल की स्थापना
बसन्त पंचमी	1735	ई॰	— हकीकत राय धर्मी की शहादत
	1739	ई॰	— नादरशाह की लुटेरा फ़ौज की सोध
	1740	ई॰	— अणखीले बीर भाई बोता सिंघ की शहादत
1 जुलाई	1745	ई॰	— भाई तारू सिंघ जी की शहीदी (लाहौर)
14 अक्तूबर	1745	ई॰	— पंथक संगठन, २५ सिंघ-जत्थे बने
फ़रवरी	1746	ई॰	— भाई सुबेग सिंघ और शहबाज़ सिंघ की शहीदी
मई	1746	ई॰	— काहनूंवान के छंभ के नज़दीक छोटा घल्लूघारा
30 मार्च	1747	ई॰	— अमृतसर 'राम रौणी' किला बनाया
29 मार्च	1748	ई॰	— सिक्ख मिसलों की साजना
	1752	ई॰	— मीर मन्नू द्वारा सिक्खों पर दमन-चक्र
	1754	ई॰	— 'भूरिआं वाले, राजे बनने लगे, 'राखी' की रीति शुरू हुई
11 नवम्बर	1757	ई॰	— बाबा दीप सिंघ जी की कुर्बानी
14 जनवरी	1761	ई॰	— पानीपत के मैदान में मराठों की हार
नवम्बर	1761	ई॰	— सिंघों ने लाहौर पर कब्ज़ा किया और सिक्का चलाया
5 फ़रवरी	1762	ई॰	— कुप्परहीड़े के मैदान में बड़ा घल्लूघारा
14 जनवरी	1764	ई॰	— सरहंद विजय
फ़रवरी	1765	ई॰	— यमुना पार गंगदुआब पर हमले
16 अप्रैल	1765	ई॰	— लाहौर पर दुबारा कब्ज़ा, सिंघों ने सिक्का चलाया
7 अगस्त	1765	ई॰	— बाबा आला सिंघ का देहांत
	1775	ई॰	— दरबार साहिब अमृतसर की दुबारा उसारी
	1780	ई॰	— तैमूर शाह के हमलों का मुँह-तोड़ जवाब
	1783	ई॰	— स. जस्सा सिंघ आहलूवालिए का देहांत
मार्च	1783	ई॰	— स. बघेल सिंघ की कमान में दिल्ली मारी (जीत ली)

31 मार्च 1785 ई० — सिंघों तथा मराठों का अहदनामा
1793, 1794, 1796, 1798 ई० — शाहज़मान के असफल चार हमले
7 जुलाई 1799 ई० — महाराजा रणजीत सिंघ का लाहौर पर कब्ज़ा
25 अप्रैल 1809 ई० — महाराजा रणजीत सिंघ-अंग्रेज़ अहदनामा, फूलकीयां रियासतें अंग्रेज़ी सुरक्षा के हवाले
2 जून 1818 ई० — मुल्तान विजय
1819 ई० — कश्मीर फ़तह
14 मार्च 1824 ई० — नौशहरा में अकाली फूला सिंघ की शहीदी, अफ़ग़ानों को हार
1836 ई० — जमरौद के किले पर केसरी झण्डा
30 अप्रैल 1837 ई० — स. हरी सिंघ नलवे की शहीदी
27 जून 1839 ई० — महाराजा रणजीत सिंघ का देहांत
5 नवम्बर 1840 ई० — देहांत महाराजा खड़क सिंघ और कंवर नौनिहाल सिंघ
15 सितम्बर 1843 ई० — महाराजा शेर सिंघ गोली का निशाना बना, ध्यान सिंघ का क़त्ल
18 दिसम्बर 1845 ई० — मुदकी की लड़ाई
21 दिसम्बर 1845 ई० — फेरू की लड़ाई
10 फ़रवरी 1846 ई० — सभरावां की जंग
16 दिसम्बर 1847 ई० — भरोवाल का अहदनामा
19 अगस्त 1847 ई० — महारानी जिन्दां शेखूपुरे के किले में नज़रबंद
22 नवम्बर 1848 ई० — सिक्खों और अंग्रेज़ों की दूसरी लड़ाई (राम नगर)
13 जनवरी 1849 ई० — चिलियां वाले की जंग
21 फ़रवरी 1849 ई० — गुजरात युद्ध
29 मार्च 1849 ई० — पंजाब पर अंग्रेज़ों का पूर्ण अधिकार
अप्रैल 1854 ई० — महाराजा दलीप सिंघ को विलायत भेज दिया गया
5 जुलाई 1856 ई० — भाई महाराज सिंघ का जेल में देहांत (सिंगापुर)

पुर्नजागृति युग

1854 ई० — निरंकारी लहर रावलपिंडी से शुरू
1863 ई० — नामधारी लहर ज़ोरों पर
17 जनवरी 1872 ई० — मलेरकोटले के पास 66 कूकों को तोपों से उड़ाया गया, बाबा राम सिंघ जलावतन
29 जुलाई 1873 ई० — पहली सिंघ सभा की स्थापना (अमृतसर)
2 नवम्बर 1879 ई० — सिंघ सभा लाहौर
1883 ई० — ख़ालसा दीवान अमृतसर, ख़ालसा दीवान लाहौर
1892 ई० — ख़ालसा कालेज, अमृतसर

30 अक्तूबर	1902	ई०	— चीफ़ ख़ालसा दीवान की स्थापना
13 अप्रैल	1907	ई०	— पंच ख़ालसा दीवान, भसौड़
21 अप्रैल	1913	ई०	— ग़द्दर पार्टी की स्थापना (सानफ्रांसिस्को)
	1914	ई०	— रकाब गंज दिल्ली, बजबज घाट का मामला
21 फ़रवरी	1915	ई०	— हिन्द में ग़द्दर करने के लिये तय की गई तारीख़
14 नवम्बर	1915	ई०	— करतार सिंघ सराभा को साथियों समेत फांसी
13 अप्रैल	1919	ई०	— जलियांवाला बाग़ का हत्या-काण्ड
मई	1920	ई०	— अकाली अख़बार, अकाली लहर का आरम्भ
16 नवम्बर	1920	ई०	— शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की स्थापना
14 दिसम्बर	1920	ई०	— शिरोमणी अकाली दल की स्थापना
20 फ़रवरी	1921	ई०	— नानकाणे का साका
नवम्बर	1921	ई०	— चाबियों का मामला
9 अगस्त	1922	ई०	— गुरु के बाग़ का मोर्चा शुरू
9 अगस्त	1922	ई०	— बब्बर अकाली लहर
30 अक्तूबर	1922	ई०	— पंजा साहिब दीआं शहीदीआं
17 जून	1923	ई०	— अमृतसर सरोवर की कार सेवा शुरू
9 जुलाई	1923	ई०	— महाराजा नाभा गद्दी से उतारे, जैतो का मोर्चा
12 अक्तूबर	1923	ई०	— शिरोमणी कमेटी और शिरोमणी अकाली दल ग़ैर-कानूनी करार, गिरफ़्तारियां
15 दिसम्बर	1923	ई०	— भाई फेरू का मोर्चा
1 नवम्बर	1925	ई०	— गुरुद्वारा ऐक्ट लागू
27 फ़रवरी	1926	ई०	— छह बब्बर अकाली फांसी लगे
अक्तूबर	1927	ई०	— शहीद सिक्ख मिशनरी कॉलेज, अमृतसर
मार्च	1930	ई०	— सिवल ना-फ़ुरमानी लहर
23 मार्च	1931	ई०	— भगत सिंघ साथियों समेत फांसी लगा
19 जनवरी	1935	ई०	— स. सेवा सिंघ ठीकरीवाला का जेल में देहांत
जुलाई	1935	ई०	— शहीद गंज ऐजीटेशन
अप्रैल	1936	ई०	— 'सर्व हिन्द सिक्ख मिशन' की स्थापना
	1937	ई०	— सूबाई प्रांतिक असेम्बलियों का चुनाव
	1938	ई०	— किसान आंदोलन, सिक्ख नैशनल कॉलेज, लाहौर
1-2 जून	1940	ई०	— अलीगढ़ प्रचार कान्फ्रेंस, 25 हज़ार अमृतधारी
15 दिसम्बर	1941	ई०	— आज़ाद हिन्द फ़ौज का श्री गनेश
7 अगसत	1942	ई०	— 'हिन्द छोड़ो' की तहरीक, 'आज़ाद पंजाब' लहर
	1943	ई०	— 'सिक्ख स्टूडैंटस फ़ैडरेशन' की स्थापना
	1946	ई०	— पंथक टिक्ट पर असेम्बली चुनाव लड़े
9 जून	1946	ई०	— प्रतिनिधि पंथक बोर्ड की स्थापना

16 अगस्त 1946 ई॰ — कलकत्ता में फ़साद शुरू
4 मार्च 1947 ई॰ — पाकिस्तानी घल्लूघारा शुरू (साड़-फ़ूक और क़त्लेआम)
15 अगस्त 1947 ई॰ — देश का बंटवारा, आज़ादी मिली, पंजाब के दो हिस्से
20 अगस्त 1948 ई॰ — आठ रियासतें मिलकर पैप्सू बना
10 मई 1955 ई॰ — पंजाबी सूबे के लिये छोटा मोर्चा, 10 हज़ार गिरफ़्तारियां हुईं
अक्तूबर 1956 ई॰ — पैप्सू और पंजाब का एकीकरण
1957 ई॰ — रिजनल फ़ार्मूला लागू
मई 1960 ई॰ — पंजाबी सूबे के लिये बड़ा मोर्चा, 56 हज़ार ने गिरफ़्तारियां दीं
18 दिसम्बर 1960 से लेकर 9 जनवरी 1961 तक संत फतह सिंघ जी का मरणव्रत
15 अगस्त 1961 से 1 अक्तूबर 1961 तक मास्टर तारा सिंघ जी का मरणव्रत
1962 ई॰ — हिन्द चीन युद्ध, सिंघों की विशेष कुर्बानियाँ
24 जून 1962 ई॰ — पंजाबी विश्वविद्यालय की स्थापना
जनवरी 1965 ई॰ — गुरुद्वारा चुनाव
सितम्बर 1965 ई॰ — भारत-पाकिस्तान युद्ध, सिक्खों की विशेष बीरता
1 नवम्बर 1966 ई॰ — पंजाबी सूबे की स्थापना
22 नवम्बर 1967 ई॰ — मास्टर तारा सिंघ जी का देहांत
27 अक्तूबर 1969 ई॰ — स. दर्शन सिंघ फेरूमान व्रत रखकर शहीद हुए
24 नवम्बर 1969 ई॰ — गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर की स्थापना
दिसम्बर 1971 ई॰ — हिन्द-पाक युद्ध, बंगला देश आज़ाद
जुलाई 1975 ई॰ — ऐमरजैंसी के ख़िलाफ़ मोर्चा, 43472 सिक्ख गिरफ़्तार
मई 1977 ई॰ — आम चुनाव, जनता पार्टी की जीत
13 अप्रैल 1978 ई॰ — अमृतसर में नकली निरंकारियों का विरोध कर रहे सिक्ख जत्थे के 13 सिंघ शहीद
31 मार्च 1979 ई॰ — गुरुद्वारा चुनाव, अकालियों की बहुमत में जीत
9 सितम्बर 1981 ई॰ — लाला जगत नारायण की हत्या
20 सितम्बर 1981 ई॰ — संत जरनैल सिंघ की महता में गिरफ़्तारी
15 अक्तूबर 1981 ई॰ — संत जरनैल सिंघ की रिहाई
जुलाई 1982 ई॰ — धर्म युद्ध मोर्चा आरम्भ
4-5-6 जून 1984 ई॰ — दरबार साहिब अमृतसर में सरकारी हमला, जिसमें एक हज़ार से अधिक सिक्ख शहीद हुए

31 अक्तूबर	1984 ई॰	—	इंदिरा गांधी की हत्या
1-2-3 नवम्बर	1984 ई॰	—	दिल्ली तथा अन्य बड़े शहरों में सिक्ख विरोधी दंगे, जिसमें हिन्द भर में लगभग पांच हज़ार बेगुनाह सिक्ख शहीद किए गए।
24 जुलाई	1985 ई॰	—	राजीव-लौंगोवाल समझौता, जो अब तक लागू नहीं हुआ
20 अगस्त	1985 ई॰	—	संत हरचंद सिंघ लौंगोवाल की शहीदी
सितम्बर	1985 ई॰	—	चुनावों में शिरोमणी अकाली दल ने 73 सीटें जीतीं, स. सुरजीत सिंघ बरनाला मुख्यमंत्री बने
30 अप्रैल	1985 ई॰	—	श्री दरबार साहिब में पुलिस कारवाई
फ़रवरी	1992 ई॰	—	चुनावों का अकालियों की तरफ़ से बाइकाट, स. बेअंत सिंघ मुख्यमंत्री बने
फ़रवरी	1997 ई॰	—	चुनावों में शिरोमणी अकाली दल की दो-तिहाई सीटों से जीत हुई, स. प्रकाश सिंघ बादल मुख्य मंत्री; विश्व सिक्ख कौंसिल की स्थापना
	1998 ई॰	—	शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की पहली स्त्री प्रधान—बीबी जगीर कौर
अप्रैल	1999 ई॰	—	तीन सौ साला ख़ालसा जन्म शताब्दी बहुत धूम-धाम से मनाई गई, लेकिन इस अवसर पर अकाली दल की फूट ने सिक्ख नेताओं को अलग कर दिया।

अंतिका–2

सिक्ख–पुस्तकावली

1. *आदि श्री गुरु ग्रंथ साहिब* (संपादित श्री गुरु अर्जुन साहिब)
2. *वारां ते कवित्त सवईए*—भाई गुरदास
3. *श्री सतिगुरु जी दे मुहै दीआं साखीआं*
4. *पुरातन जन्म साखी*—भाई पैड़ा मोखा
5. *गोष्ठि गुरु बाबे नानक जी की, गोष्ठि गुरु अमरदास जी की*—सोढी मेहरबान
6. *जन्म साखी भाई बाले की*
7. *गोष्ठां मिहरबान जी कीआं*—हरि जी
8. *जन्म साखी गुरु नानक शाह जी की*—संत दास
9. *दसम ग्रंथ*—गुरु गोबिन्द सिंघ
10. *विद्या सागर* (दरबारी कवियों की रचना)
11. *रहतनामे*—चौपा सिंघ, नंद लाल, दया सिंघ, प्रहलाद सिंघ, देशा सिंघ
12. *श्री गुरु सोभा*—सैणा सिंघ
13. *पंज सौ साखी*—भाई राम कुइर
14. *जंगनामा गुरु गोबिन्द सिंघ*—अणी राय
15. *श्री सरबलोह ग्रंथ*—अज्ञात महान सिंघ कवि
16. *परम सुमार्ग*
17. *गुर रतन माल* (सौ साखी)—साहिब सिंघ
18. *सिक्खां दी भगतमाल* (गिआरहवीं वार की व्याख्या)
19. *ज्ञान रतनावली*—ज्ञानी सूरत सिंघ चनयोट
20. *गुर प्रणालियां*—केसर सिंघ, सौंधा सिंघ, गुलाब सिंघ, राम सिंघ, आदि
21. *परची पातशाही १०*—सेवादास उदासी
22. *बंसावलीनामा दसां पातशाहियां का*—केसर सिंघ छिब्बर 1769 ई॰
23. *कथा गुरु जी के सुतन की*—दुन्ना सिंघ
24. *श्री गुर महिमा प्रकाश*—बावा स्वरूप दास भल्ला 1776 ई॰
25. *गुरबिलास पातशाही १०*—कोइर सिंघ कलाल 1754 ई॰
26. *गुरबिलास पातशाही १०*—सुखा सिंघ 1797 ई॰
27. *गुरबिलास पातशाही छेवीं*—कवि भगत सिंघ
28. दौरे दी *साखी*—साधू दयाल दास
29. *परची कन्हया जी, परची सेवा राम और साखियां भाई अड्डण कीआं, पोथी आसावरियां*—सहिज राम
30. *श्री गुरु नानक प्रकाश, गुर प्रताप सूरज ग्रंथ*—संतोख सिंघ
31. *श्री मत नानक विजय, उदासी बोध*—बावा संतरेण

32. *गुरकीरति प्रकाश, सिंघ सागर*—बीर सिंघ बल
33. *श्री गुर पंथ प्रकाश*—भाई रतन सिंघ भंगू
34. *पंथ प्रकाश, तवारीख़ गुरु ख़ालसा, शमशेर ख़ालसा, राज ख़ालसा, निरमल पंथ प्रदीपका, गुरधाम संग्रह, इतिहास रियासत बागड़ियां, तवारीख़ श्री अमृतसर, तवारीख़ लाहौर*—ज्ञानी ज्ञान सिंघ
35. *गुर सागर रतन प्रकाश*—गुरबख़्श सिंघ रोहटी
36. *गुर पद प्रेम प्रकाश*—बावा सुमेर सिंघ 1882 ई॰
37. *पुरातन वहियां*—1. भट वहियां, 2. पंडा वहियां
38. *संत रतनमाल*—संत लाल चन्द
39. *गुरमति निर्णय सागर, गुर तीर्थ संग्रह, गुरु गिरारथ कोश* (दो भाग)—पं. तारा सिंघ नरोतम
40. *श्री गुरु नानक चंद्र चंद्रिका*—पं. रतन हरि उदासी
41. *श्री गुरु नानक सूर्योदय, श्री गुर बंस बिनोद, शसि बंस बिनोद*—गणेशा सिंघ बेदी
42. *गुरु नानक बंस प्रकाश*—सुखवासी राय
43. *फतहनामा गुरु ख़ालसा जी का*—गणेश दास
44. *शहीद बिलास*—सेवा सिंघ भट्ट (संपादित ज्ञानी गरजा सिंघ)
45. *जंगनामा सिंघां ते फ़िरंगियां*—शाह मुहंमद
46. *जंगनामा लाहौर*—कान्ह सिंघ बंगा
47. *श्री जस्सा सिंघ बिनोद, श्री फते सिंघ प्रताप प्रभाकर, श्री भाग सिंघ चंद्रोदय*—राम सुख राय
48. *फूल बंस प्रकाश, रानी राजेंद्रमती चरित्र*—साहिब सिंघ म्रिगिंद
49. *राज नामा सिध्धुआं*—भगवान सिंघ बनूड़ी
50. *बैराड़ चमन*—हजूरा सिंघ नाभा
51. *गुरबिलास बाबा साहिब सिंघ जी का*—शोभाराम अड्डणशाहिया
52. *गुर उदासीन मत दर्पण*—ब्रह्मानंद (दो भाग)
53. *इतिहास निरमल भेख, भारत मत दर्पण*—महंत गणेशा सिंघ
54. *निरमल पंथ दर्शन*—महंत दयाल सिंघ, *निरमल पंथ बोध*—बलवंत सिंघ
55. *शहीद बिलास, नामधारी पंथ प्रकाश*—काला सिंघ
56. *सिक्खी प्रभाकर, निरमल प्रभाकर*—पं. निहाल सिंघ लाहौरी
57. *गुरु चरित्र चंद्रिका*—संत हरिभजन सिंघ
58. *श्री मुख वाक सिद्धांत ज्योति, गुर सिखिया प्रभाकर, गुर सिद्धांत रवि*—पं. साधू सिंघ
59. *गुरमति दिग विजै*—पं. ईशर सिंघ
60. *गुरमति सिद्धांत सार*—पं. गुरदित्त सिंघ
61. *गुरदर्शन शास्त्र* (उत्तरी मीमांसा)—भाई अवतार सिंघ वहीरिया

62. *ख़ालसा धर्म शास्त्र* (पूरबी मीमांसा)—भाई अवतार सिंघ वहीरिया
63. *बिबेक बारधि*—पं. भगवान सिंघ (३७ रहतनामों का संकलन)
64. *गुरु सिंघ इतिहास*—पं. भानू दत्त
65. *नकली सिक्ख प्रबोध, दुर्गा प्रबोध, दंभ विदारण*—ज्ञानी दित्त सिंघ
66. *बाणी ब्योरा, शब्द ब्रिती प्रकाश*—डॉ. चरन सिंघ
67. *श्री गुर शब्द रतनाकर प्रकाश*—अकाली कौर सिंघ
68. *खड़ग ख़ालसा, गुरु पदार्थ निर्णय*—पं. करतार सिंघ दाखा
69. *गुरमति सिद्धांत ब्योरा*—संत संपूर्ण सिंघ
70. *गुरपुरब निर्णय, कत्तक कि विसाख, अमर ख़ालसा, बंदा बहादुर, बाबा आला सिंघ, ऐतिहासिक लेख*—करम सिंघ हिसटोरीयन
71. *गुरमति प्रभाकर, गुरमति सुधाकर, गुरमति मारतंड, महान् कोश, हम हिन्दू नहीं, गुरछन्द दिवाकर, गुर शब्दालंकार*—कान्ह सिंघ नाभा
72. *सिक्ख ते गुरुद्वारे, पंजाब ते सिक्ख, बहादुर सिंघनियां, गुरु पद निर्णय*—सेवा सिंघ
73. *गुरमति निर्णय, गुरु साहिब ते वेद*—भाई जोध सिंघ
74. *गुरु नानक चमत्कार, कलगीधर चमत्कार, अष्ट गुरु चमत्कार, देवी पूजन पड़ताल*—वीर सिंघ
75. *मेरी याद, किउ वरनी किव जाणा*—मास्टर तारा सिंघ
76. *सिक्ख धर्म, आरसी, शाब्दांतिक लगां मात्रां, शब्दार्थ*—प्रिं. तेजा सिंघ
77. *गुरबाणी व्याकरण, श्री गुरु ग्रंथ दर्पण, आदि बीड़ बारे, धार्मिक लेख, जीवन वृत्तांत गुरु नानक, जीवन गुरु गोबिंद सिंघ*—प्रो. साहिब सिंघ
78. *जेल चिट्ठियां, गुरमति नाम अभ्यास कमाई, क्या श्री गुरु ग्रंथ साहिब की पूजा बुतप्रस्ति है ? गुरमति लेख*—भाई साहिब रणधीर सिंघ
79. *जीवन अकाली फूला सिंघ, म. रणजीत सिंघ, स. हरी सिंघ नलूआ, कंवर नौनिहाल सिंघ, नवाब कपूर सिंघ, ख़ालसा राज दे उसरईए* (दो भाग), *ख़ालसा राज दे बदेशी कारिंदे*—बाबा प्रेम सिंघ होती
80. *प्राचीन बीड़ां, वेदिक कुर्बानियां, सिक्ख धर्म उदय, गुरमुखी दा जनम ते विकास*—जी. बी. सिंघ
81. *शहीदी जीवन*—गुरबख़्श सिंघ शमशेर (1938)
82. *कूकिआं दी विथिआ, म. कौड़ा मल, स. शाम सिंघ अटारी वाला, सिक्ख इतिहास बारे, सिक्ख इतिहास वल्ल, पंजाब उत्ते अंग्रेज़ां दा कब्ज़ा, स. जस्सा सिंघ आहलूवालिया, हुकमनामे, नंद लाल ग्रंथावली*—गंडा सिंघ
83. *लैक्चर महां चानण, सिक्ख धर्म फ़िलासफ़ी, बंदी छोड़*—प्रिं. गंगा सिंघ
84. *जीवन कथा गुरु नानक, जीवन कथा श्री गुरु गोबिंद सिंघ, सिक्ख इतिहास, सिक्ख धर्म बारे*—प्रो. करतार सिंघ
85. *गुरमति सिद्धांत* (दो भाग)—बाबा सावण सिंघ
86. *गुरमति दर्शन, विचारधारा, विचारमाला, मरन पिछों*—डॉ. शेर सिंघ

87. *नावां थावां दा कोश*—म. महिताब सिंघ
88. *नामधारी इतिहास*—नाहर सिंघ
89. *गुरमति फ़िलासफ़ी, गुरमति लैक्चर, सिक्ख ऐतिहासिक लैक्चर, भगत दर्शन, अकाली लहर, पाकिस्तानी घल्लूघारा*—ज्ञानी प्रताप सिंघ
90. *पंजाब दीआं लहरां, पंजाब दा संखेप इतिहास, सिक्खी ते सिक्ख इतिहास, सिक्ख राज दा अंत, प्राचीन जंगनामे*—शमशेर सिंघ अशोक
91. *उदासी सिक्खां दी विथिआ, दसम ग्रंथ दा इतिहास, सिक्ख इतिहास दे प्रत्यक्ष दर्शन, गुर प्रणालियां, दसम ग्रंथ शब्दार्थ*—रणधीर सिंघ
92. *तवारीख़ गुरु ख़ालसा पंथ, गुरमति निर्णय भंडार*—ज्ञानी लाल सिंघ संगरूर
93. *पटिआला राज दीआं प्रसिद्ध बीबीआं, भाई मनी सिंघ, दरबार पटिआला अते सरकार अंग्रेज़ी, पैप्सू दा इतिहास*—आत्मा सिंघ
94. *गुरद्वारे दर्शन*—ठाकर सिंघ
95. *गुरतीर्थ दर्शन*—नानक सिंघ
96. *जीवन भाई मोहन सिंघ वैद*—मुनशा सिंघ दुखी
97. *वीहवीं सदी दे शहीद, जीवन वृत्तांत मास्टर मोता सिंघ, बाग़ी जरनैल*—ज्ञानी गुरमुख सिंघ मुसाफ़र
98. *सिक्ख धर्म दर्शन, ननकाणे दा साका, शहीद करतार सिंघ सराभा*—सरदूल सिंघ कवीशर
99. *मेरीआं ऐतिहासिक यादां*—ज्ञानी हीरा सिंघ दर्द
100. *जागृत ख़ालसा*—संत सूरज सिंघ
101. *सिक्ख मिसलां, सरदार घराणे, सिक्ख राज किवें गया, सिक्खां राज किवें लिया, पैप्सू दा इतिहास, पंजाब का उजाड़ा*—सोहण सिंघ सीतल
102. *फ़रीदकोट इतिहास बारे*—प्रो. हरबंस सिंघ
103. *सिध्धू बैराड़ां दा इतिहास*—बलवंत सिंघ सिध्धू
104. *मालवे दा इतिहास* (दो भाग)—संत विसाखा सिंघ
105. *बब्बर अकाली लहर दा इतिहास*—सुंदर सिंघ
106. *बब्बर अकाली*—गुरबचन सिंघ
107. दरबार *तरनतारन, सिंघ सभा लहर, अकाली लहर*—डॉ. जगजीत सिंघ
108. *ग़दर पार्टी लहर*—जगजीत सिंघ (1955)
109. *ग़दर पार्टी दा इतिहास*—गुरचरन सिंघ सैंहसरा (1961)
110. *आज़ादी दीआं लहरां*—ज्ञानी नाहर सिंघ
111. *अमर गाथा—शचिंद्र नाथ, सानिआल क्रित 'बंदी जीवन' दा अनुवाद* (अनुवादक ज्ञानी गुरदित्त सिंघ)
112. *शहीदी जीवन*—पंछी
113. *सिक्ख राज पिछों*—रवेल सिंघ
114. *अकाली मोर्चे ते झब्बर*—नरैण सिंघ (1959)

115. *अकाली मोर्चे दा इतिहास*—सोहण सिंघ जोश
116. *बाबा राम सिंघ, बाबा गुरदित्त सिंघ कामागाटा*—जसवंत सिंघ जस
117. *साची साखी, सपत स्रिंग, बहु विसतार, पुंद्रीक*—कपूर सिंघ
118. *चक्रकौर सिंघ दे पाकिस्तान दे सफ़र, सिक्खां दी सेवा, पंजाब दा बंटवारा*—कृपाल सिंघ
119. *श्री गुरु ग्रंथ दा साहित्यक इतिहास, दसम ग्रंथ : रूप ते रस*—तारन सिंघ
120. *पंजाब दा ख़ूनी इतिहास*—नरिंद्र सिंघ सोच
121. *सुलेख रतनावली, वैदिक गुरमति*—प्रिं. धर्मानंत सिंघ
122. *जलियांवाला बाग़*—वी. अैन. दत्त
123. *जीवन-यात्रा मा. तारा सिंघ*—प्रिं. निरंजन सिंघ
124. *मा. तारा सिंघ—जीवन संघर्ष ते उद्देश्य*—जसवंत सिंघ
125. *फ़ौजीयां दी आज़ादी नूं देण*—जनरल मोहन सिंघ
126. *ग़दर पार्टी ते भारत का कौमी आंदोलन, बंदा बहादुर, स. अजीत सिंघ, शहीद भगत सिंघ*—डा. गुरदेव सिंघ दिउल
127. *भाई महाराज सिंघ*—एम. एल. आहलूवालिया
128. *पंजाब दा इतिहास, पंजाब दी वीर परंपरा*—पंजाबी विश्वविद्यालय
129. *बाबा खड़क सिंघ अभिनंदन ग्रंथ*
130. *भाई जोध सिंघ अभिनंदन ग्रंथ*
131. *भाई वीर सिंघ अभिनंदन ग्रंथ*

संस्कृत

1. *श्री गुर सिद्धांत पारिजात*—पं. हरा सिंघ
2. *गुर चंद्रोदय कौमदी*—पं. चेत सिंघ
3. *गुरु कौमदी*—पं. कौर सिंघ
4. *स्रोत मुनी चरितामृत*—पं. गंगेश्वरानंद
5. *निराकार मीमांसा दर्शन, श्रीमद गुरु नानक गीता*—पं. केशवानंद
6. *श्री गुरु स्त्रोत सुधाकर*—पं. कृष्ण दास
7. *श्री गुरु स्त्रोत रतनाकर*—पं. कृष्ण दास
8. *श्री गुरु नानक सहस्र नामा*—पं. कृष्ण दास
9. *वाहिगुरु मंत्रार्थ प्रकाश*—पं. ईशर सिंघ
10. *जपु निबंध गूढारथ दीपिका* (जपुजी दा संस्कृत टीका)—पं. निहाल सिंघ थोहा
11. *जपु संहिता*—हरिप्रसाद वैदिक मुनी
12. *श्री केशव दिग विजय सार*—स्वामी अचलानंद
13. *श्री गुरु गोबिंद सिंघ चरितं*—सतब्रत शास्त्री

हिन्दी

1. *इतिहास गुरु ख़ालसा*—पं. गोबिंद सिंघ निरमले (1899)
2. *गुरु कुल*—मैथलीशरण गुप्त
3. *भारती बीरता*—रजनीकांत
4. *सिक्खों के दस गुरु*—जुआलादत्त शर्मा
5. *धर्म इतिहास रहस्य*—राम चंद्र तोताराम
6. *गुरु गोबिंद सिंघ*—जसवंत सिंघ
7. *पंजाब केसरी रणजीत सिंघ, सिक्खों का उत्थान और पतन, पंजाब हरण व दलीप सिंघ*—नंदकुमार देव
8. *अकाली दर्शन*—शिव नारायण मिशर (1923)
9. *श्री गुरु ग्रंथ साहिब, एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण*—मनमोहन सहगल
10. *श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, नानक बाणी*—जयराम मिश्र
11. *सिक्ख इतिहास*—ठाकुर देसराज
12. *सिक्खों का परिवर्तन*—डॉ. गोकुलचन्द नारंग

फ़ारसी रचनाएं

1.	*दबिस्तानि-ए-मज़ाहब*—मुहसन फानी	1644
2.	*खुलासातुल तवारीख़*—सुजान राय भंडारी	1695
3.	*फ़तहनामा, ज़फ़रनामा*—गुरु गोबिन्द सिंघ	1705
4.	*तौसीफ़ो सना, ज्योति विगास, दीवानि गोया*—भाई नन्द लाल	
5.	*अमरनामा*—गुमनाम ढाडी	
6.	*इबरत नामा*—मुहंमद कासिम लाहौरी	1720
7.	*मुंतख़िब लुबाब*—ख़ाफ़ी ख़ां	1729
8.	*तवारीख़े मुहंमदशाही*—ख़ुशहाल चन्द	1741
9.	*तज़करा-ए-अनंद राम मुख़लिस*—अनंद राम	1748
10.	*ज़फ़रनामा-ए-मुइनुलमुलक*—ग़ुलाम मुहयुद्दीन	1750
11.	*तवारीख़े अहमदशाही*—.........	1754
12.	*मुआसरुल उमरा* (तीन जिलदें)—शाहनिवाज़ ख़ां	1758
13.	*तवारीख़े आलमगीर सानी...*	1759
14.	*चहार गुलशन*—राय चतरमन	1759
15.	*ख़ज़ान-ए-आमिरा*—ग़ुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी	1762
16.	*जंगनामा*—काज़ी नूरमुहंमद	1765
17.	*तज़करा-ए-तहमस मसकीन*—तहमस ख़ां मसकीन	1780
18.	*सियरुल मुताख़रीन*—सय्यद ग़ुलाम हुसैन	1782
19.	*शाहनामा-ए-अहमदिया*—निज़ामुद्दीन इशरत सियालकोटी	
20.	*हकीकते बिनाअ व अरूज़े फ़िरका-ए-सिक्खां...*	

21. *चहार गुलज़ार*—हरचरन दास 1784
22. *रिसालए नानकशाह*—बुध सिंघ लाहौरी
23. *शाह आलमनामा*—ग़ुलाम अली लाहौरी 1788
24. *बयाने वाकए*—अबदुल करीम कश्मीरी
25. *तवारीख़े हुसैन शाही*—इमामुद्दीन हुसैनी 1798
26. इबरतनामा—फ़कीर ख़ैर दीन मुहंमद 1806
27. *असरारि समदी, अहवाले अदीना बेग ख़ां* 1806
28. *ख़ालसा नामा*—दीवान बख़्त मल्ल 1807
29. *तवारीख़े शाह आलम*—मुन्ना लाल 1811
30. *किताबे तवारीख़े पंजाब*—ख़ुशवक्त राय 1812
31. *तवारीख़ हिन्द*—अहमद शाह बटालवी 1818
32. *अहवालि ख़ानदान सरकार पटिआला*—गोपाल सिंघ 1820
33. चहार *चमन*—दौलत राय 1820
34. *तवारीख़े ख़ानदान राजहाए फूलकियां...* 1823
35. *तवारीख़ सलातीने अफ़गानां*—अहमद यदग़ार 1835
36. *ख़ालसानामा*—रतन चन्द 1843
37. *शाहनामाए रणजीत सिंघ*—मौ. अहमद यार
38. *ज़फ़रनामाए रणजीत सिंघ*—अमरनाथ
39. *उमदातुल तवारीख़*—सोहन लाल सूरी
40. *तवारीख़े पंजाब*—ग़ुलाम मुहयुद्दीन (बूटेशाह) 1848
41. *रसालए साहिबनुमा या चहार गुलशनि पंजाब*—
गणेशदास वडेहरा 1849
42. *इबरतनामा*—मुफ़ती अलीउद्दीन 1854
43. *गुलग़शतए पंजाब*—तोता राम 1864
44. *गुलाबनामा*—कृपा राम 1875
45. *अख़्बाराति दरबारि मुअल्ला* (सरकारी फ़ारसी अख़बारें)

उर्दू

1. *तवारीख़े ग़ोशाए-पंजाब*—राधा किशन **1861**
2. *शेर-ए-पंजाब*—कली राय और तुलसी राम
3. *तवारीख़े गुलशनि पंजाब*—देवी प्रसाद
4. *तवारीख़े पंजाब*—भा. परमानंद
5. *तवारीख़े पंजाब*—निहाल सिंघ लाहौरी
6. *तवारीख़े मख़ज़ने पंजाब*—मुफ़ती ग़ुलाम सरवर
7. *तवारीख़े राजगानि जम्मू व कश्मीर*—कान्ह सिंघ
8. *तवारीख़े रऊसाए-पंजाब*—हादी हुसैन ख़ां

9. *तवारीख़े रऊसाए-पंजाब*—भगवानदास
10. *तवारीख़े पटिआला*—ख़लीफ़ा मुहंमद हुसैन
11. *तवारीख़े सिध्धू बैराड़ां*—सर अतर सिंघ
12. *तवारीख़े राजपूतानए पंजाब*—कान्ह चन्द
13. *तवारीख़े सिक्खां, दस्तूरुल अमल मुलकि महफ़ूज़*—स्वरूप लाल
14. *तवारीख़ गुरु ख़ालसा, शमशेर ख़ालसा, राज ख़ालसा*—ज्ञानी ज्ञान सिंघ
15. *तहकीकाते चिशती*—नूर अहमद चिशती
16. *आईनए बैराड़ बंस*—वलीअल्ला सदीकी
17. *स्वानिउमरी गुरु गोबिंद सिंघ*—दौलतराम
18. *तवारीख़े पंजाब*—रायबहादुर कन्हया लाल
19. *तज़करा जनाब बाबा नानक साहिब*—सूफ़ी ग़ुलाम कासिम
20. *कारनामाए नलवा*—गोपालदास भंडारी
21. *ख़ुरशीद ख़ालसा*—निहाल सिंघ
22. *म. रणजीत सिंघ*—प्रो: सीता राम कोहली
23. *बंदा कौन था*—करम सिंघ हिसटोरीअन
24. *माख़ज़ि तवारीख़ि सिक्खां, नानकशाही जंत्री*—गंडा सिंघ

अंग्रेज़ी रचनाएं

1. *ए जरनी फ़्राम बंगाल टू इंग्लैंड*—जार्ज फ़ारस्टर 1783
2. *हिस्टरी आफ़ दी उरिजिन ऐंड प्रोग्रैस आफ़ दी सिक्खज़*—जेमज़ ब्राऊन 1787
3. *स्कैच्च आफ़ दी सिक्खज़*—जौहन मैलकम 1812
4. *दी उरिजिन आफ़ दी सिक्ख पावर इन दी पंजाब*—ऐच.टी. प्रिंसप 1834
5. *ट्रैवलज़ इनटू बुख़ारा*—अलैगज़ैंडर बर्नज़ 1834
6. *ट्रैवलज़ इन दी हिमालियन प्राविनसज़ आफ़ हिन्दुस्तान ऐंड दी पंजाब*—मूर क्राफ़ट 1837
7. *दी कोर्ट ऐंड कैंप आफ़ रणजीत सिंघ*—औज़बोर्न 1840
8. *दी पंजाब*—स्टेनबैक 1845
9. *ट्रैवलज़ इन कश्मीर ऐंड दी पंजाब*—चार्लस हिऊगल 1845
10. *ए हिस्टरी आफ़ दी पंजाब* (दो जिलदें)... 1846
11. *दी हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़*—मैकग्रेगर 1846
12. *ए हिस्टरी आफ़ दी रेनिंग फ़ैमिली आफ़ लाहौर*—मेजर समिथ 1847
13. *ए हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़*—जे.डी. कनिंघम 1848
14. *नैरिटिव आफ़ दी सैकिण्ड सिक्ख वार*—थैक्कवेल 1851
15. *थर्टी फ़ाइव यीअरज़ इन दी ईसट*—होनिंग ब्रगर 1852
16. *दी सिक्खज़*—सी.आर. स्टूपैंगल

17. *रैमिनसैनसज़ आफ़ ४३ यीअरज़ इन इंडिया*—जार्ज लारंग 1874
18. *साखी बुक (१८७३), ट्रैवलज़ आफ़ गुरु तेग बहादुर ऐंड गुरु गोबिंद सिंघ*—सर अतर सिंघ 1876
19. *दी आदि ग्रंथ*—अरनैस्ट ट्रम्प 1877
20. *हिस्टरी आफ़ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इटस ओन हिस्टोरिअनज़*—इलीअट (1867-77)
21. *अरली रीकार्डज़ आफ़ ब्रिटिश इंडिया*—वील्लहर 1878
22. *अनैकसेशन आफ़ दी पंजाब*—ईवन बैल्ल 1882
23. *अनैकसेशन आफ़ दी पंजाब*—जार्ज कैम्पबल
24. *मैन ऐंड इवेंटस आफ़ माई टाइम इन इंडिया*—रिचर्ड टैंपल 1882
25. *दी लैंड आफ़ फ़ाइव रिवरज़*—डवस रोस 1883
26. *महाराजा दलीप सिंघ ऐंड दी गवर्नमैंट...* 1884
27. *ए हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़ इन दी पंजाब*—हैनरी कोर्ट 1883
28. *पंजाब नोटस ऐंड कुइरीज़ (1883-86), काइनज़ आफ़ दी नेटिव चीफ़स आफ़ दी पंजाब*—रिचर्ड टैंपल 1889
29. *सर जौहन लौगन ऐंड दलीप सिंघ*—लेडी लौगिन 1890
30. *राजाज़ आफ़ पंजाब, दी पंजाब चीफ़स*—लैपल ग्रिफ़न 1870
31. *चीफ़स ऐंड फ़ैमिलीज़ आफ़ नोट*—सी. ऐफ़ मैसी 1870
32. *ए हिस्टरी आफ़ दी पंजाब*—मुहम्मद लतीफ़ 1891
33. *हैंड बुक औन सिक्खज़*—आर. डबल्यू फ़ैकन 1896
34. *दी सिक्खज़ ऐंड दी सिक्ख वारज़*—लार्ड गफ़ा ऐंड इनेज़ 1897
35. *लिंगुइस्टिक ऐंड ओरीऐंटल ऐसेज़*—आर. ऐन. कस्ट
36. *दी सिक्खज़*—जौहन गौरडन 1904
37. *दी पंजाब इन पीस ऐंड वार*—थौरबरन 1904
38. *दी सिक्ख रिलीजन* (छः जिलदें)—मैकालिफ़ 1909
39. *दी फ़स्ट ऐंड दा सैकिण्ड सिक्ख वार्ज़*—बरटन 1911
40. *दी ट्रांसफार्मेशन आफ़ सिक्खिज़म*—गोकल चन्द नारंग 1912
41. *दी रिलीजन आफ़ दी सिक्खज़*—डोरथी फ़ील्ड 1914
42. *हिस्टरी ऐंड फ़िलासफ़ी आफ़ दी सिक्ख रिलीजन*—ख़ज़ान सिंघ 1914
43. *दी पंजाब नार्थ वैस्टरन फ्रंटीयर प्राविनसज़ ऐंड कश्मीर*—जेमज़ डूई 1916
44. *रैवोलिऊशनरी कानस्पिरेसीज़ इन दी पंजाब*—रोलट 1918
45. *ऐन अकाऊंट आफ़ ग़द्दर कानस्पिरेसी*—आइसमौंगर और सलैटरी 1919
46. *म. रणजीत सिंघ, कैटालाग आफ़ ख़ालसा दरबार रिकार्डज़ सनसैट आफ़ दी सिक्ख ऐम्पाइअर*—प्रो. सीता राम कोहली 1919
47. *ए ग्लौसरी आफ़ दी ट्राइबज़ ऐंड कास्टस आफ़ दी पंजाब ऐंड* N.W.F.P.—ऐच. ऐ. रोज़ ऐंड मैकलेगन 1919

48. *सिक्ख मारटर्ज़, गुरु गोबिंद सिंघ, ऑटोबाइऑगरॉफ़ि*—
भगत लछमण सिंघ 1923

49. *सिखिज़म इट्स आइडलूज़ ऐंड इनूस्टिट्यूशॅनूज़, ऐंसेज़ इन सिखिज़म, गुरुद्वारा रीफ़ॉर्म मूवमैण्ट ऐंड दी सिक्ख अॅवेकनिंग*—
प्रो. तेजा सिंघ 1924

50. *सिक्ख स्ट्रॅगल फ़ार गुरुद्वारा रीफ़ॉर्म*—जी.आर. सेठी 1925

51. *सट्रॅगल फ़ार रीफ़ार्म इन सिक्ख श्राइनूज़*—रुची राम साहनी 1925

52. *इंडिया ऐज़ आई नो इट*—सर माइकल ओडवायर

53. *दी स्पिरिट् आफ़ ऑरिऐन्टॅल पोइट्रि, स्पिरिट् बॉर्न पीपल, दी बुक आफ़ टैंनू मास्टर्ज़*—पूर्ण सिंघ 1926

54. *दी लैंड आफ़ फ़ाइव रिवरज़*—ट्रैवैसकिस 1928

55. *दी पंजाब ऐज़ ए सॉवरिन् स्टेट*—गुलशन राय चोपड़ा 1928

56. *युअरपीअन् अॅडवैनचरज आफ़ नारदर्न इंडिया*—सी. ग्रे 1929

57. *रिलिजन ऐंड दी शार्ट हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़*—जी.बी. सकाट

58. *ए शार्ट हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़*—सी.ऐच. पेन 1930

59. *डिवाइन मास्टर*—सेवाराम सिंघ 1930

60. *रणजीत सिंघ*—एस.एच. बैनरजी 1931

61. *दी मिरॅकल आफ़ सिखिज़म, सिक्ख सरमनीज़,*
दॅस स्पोक गुरु नानक—सर जुगिन्द्र सिंघ 1934

62. *बैटलज़ आफ़ गुरु गोबिंद सिंघ*—सुन्दर सिंघ 1935

63. *ऐवोल्युशन् आफ़ दी ख़ालसा*—इंदू भूषण बैनरजी 1936

64. *रणजीत सिंघ (1933), राइज़ आफ़ दी सिक्ख पावर*—
एन. के. सिन्हा 1936

65. *सिक्ख स्टॅड्डिज़, इंडिया'ज़ फ़ाइट फ़ार फ़्रीडम*—
सरदूल सिंघ कवीशर 1937

66. द *लाहौर दरबार*—आर.आर. सेठी 1940

67. *हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़ (तीन जिलदें), पंजाब ऑन दी फस्ट ईव आफ़ सिक्ख वार, स्टॅड्डिज़ इन लेट्अॅर मुग़ल हिस्टरी आफ़ दी पंजाब*—हरी राम गुप्ता 1939, 1944

68. *फ़िलॉसऑफ़ि आफ़ सिखिज़म*—डॉ. शेर सिंघ 1944

69. *दी पंजाब-होमलैंड आफ़ द सिक्खज़*—हरनाम सिंघ 1945

70. *दी सिक्खज़*—जौहन सी. आरचर 1946

71. *बिट्रेल आफ़ दी सिक्खज़*—सरसफ़ीलड 1946

72. *दी सिक्खज़ डिमाण्ड देअर होमलैंड*—साधु सरूप सिंघ 1946

73. *इंडीयन इंडीपैंडैंस मूवमैंट इन ईस्ट एशिया*—ज्ञानी केसर सिंघ 1947

74. *गुरु नानक पर्सनैलिटि ऐंड विज़न, मुस्लिम लीग अटैक ऑन दी सिक्खज़ ऐंड हिन्दूज़ इन दी पंजाब*—प्रिं. गुरबचन सिंघ तालिब 1950

75. *ए शार्ट हिस्टरी आफ़ दी सिक्खज़*—तेजा सिंघ और गंडा सिंघ 1950

76. *दी गॉस्पॅल आफ़ गुरु ग्रंथ साहिब*—डंकन ग्रीनलीज़ 1952
77. *हिस्टरी आफ़ दी पंजाब*—कृपाल सिंघ नारंग 1953
78. *आऊट आफ़ दी ऐशज़*—महेन्द्र सिंघ रंधावा 1954
79. *ट्रिनिटी आफ़ सिखिज़म, हैरिटिज आफ़ सिक्ख कलचर*—प्रीतम सिंघ 1975
80. *दी हैरिटिज आफ़ दी सिक्खज़, गुरु नानक, गुरु गोबिंद सिंघ*—
प्रो. हरबंस सिंघ
81. *प्राशर प्रश्न, सिखिज़म फ़ार माडरन मैन*—कपूर सिंघ
82. *लाइफ़ आफ़ बंदा सिंघ बहादुर* (1935), *हिस्टरी आफ़ गुरुद्वारा शहीद गंज* (1935), *दी पटिआला ऐंड ईस्ट पंजाब स्टेटस यूनिअॅन, दी पंजाब इन* 1839-40, *प्राईवेट कारिस्पानडॅन्स रीलेटिंग टू दी ऐङगलो सिक्ख वारज़* (1955), *दी ब्रीफ़ अकाऊंट आफ़ दा सिक्ख पीपल* (1957), *अहमद शाह दुरानी* (1959), *जंगनामा, महाराजा दलीप सिंघ*—गंडा सिंघ
83. *गुरु तेग बहादुर ऐंड आसाम प्रदेश*—अर्जुन सिंघ 1959
84. *दी पोइट्रि आफ़ दी दसम ग्रंथ*—धर्म पाल अश्टा 1959
85. *ए क्रिटिकॅल स्टॅडी आफ़ आदि ग्रंथ*—सुरेन्द्र सिंघ कोहली
86. *दी सेक्रिड राइटिंगज़ आफ़ दा सिक्खज़*—यूनैसको 1960
87. *दी इंगलिश ट्रांसलेशन आफ़ गुरु ग्रंथ साहिब, दस स्पेक टैनॅथ मास्टर, हिस्टरी आफ़ दी सिक्ख पीपल*—गोपाल सिंघ दर्दी
88. *सिक्ख श्राइनज़ इन वैस्ट पाकिस्तान*—ख़ान मुहंमद वलीउल्ला 1961
89. *ट्रांसलेशन आफ़ उमदातुल तवारीख़* (तीसरा दफ़्तर)—
विद्यिया सागर सूरी
90. *डिवाइड ऐंड क्विट*—पैंडरल मून 1961
91. *दी सिक्खज़* (1953), *दी सिक्खज़ टूडे* (1959), *म. रणजीत सिंघ* (1963), *ए हिस्टरी आफ़ सिक्खज़* (दो भाग)—खुशवंत सिंघ
92. *दी सीकर्ज़ पाथ*—सोहन सिंघ
93. *दी रिअॅल रणजीत सिंघ*—फ़कीर सय्यद वहीउद्दीन 1965
94. *मिनारिटी पालिटिक्स इन पंजाब*—बलदेव राज नय्यर
95. *दा सिक्खज़ ऐंड पंजाब पालिटिक्स*—सटीफनज़
96. *किवनटैंसअॅन्स आफ़ सिखिज़म*—डॉ. गोबिंद सिंघ
97. *लाइफ़ आफ़ गुरु नानक देव, लाइफ़ आफ़ गुरु गोबिंद सिंघ, रीकिंडलिंग आफ़ दी सिक्ख हार्ट*—प्रो. करतार सिंघ
98. *दी मैसिज आफ़ सिखिज़म*—हरबंस सिंघ
99. *दी आरमी आफ़ म. रणजीत सिंघ*—बलवंत सिंघ
100. *सिक्ख रिलिजन—करम ऐंड ट्रांसमाइग्रेशन*—हरनाम सिंघ
101. *सम स्टॅड्डिज़ इन सिखिज़म, लाइफ़ आफ़ गुरु अमरदास, 33 सवईआं दा तरजमा*—प्रिं. जोध सिंघ

102. *गुरु नानक'ज़ व्यू आफ़ लाइफ़, रूटस आफ़ हिन्दू सिक्ख यूनिटी, दी जाप आफ़ दी नेम*—नारायण सिंघ
103. *मिलिटरि सिस्टम आफ़ सिक्खज़, कूका मूवमैंट, ऐमेंइनण्ट फ्रीडॅम फ़ाइटर्ज़ आफ़ पंजाब, गुरु तेग बहादुर, गुरु अमरदास, हिसटारिअनज़ ऐंड हिसटारिओग्राफ़ी आफ़ दी सिक्खज़*—फ़ौजा सिंघ
104. *गुरु नानक इन हिस्टरी, गुरु नानक टू रणजीत सिंघ, अकालीज़ : ए शार्ट हिस्टरी, कनटैसटिंग इनटरप्रिट्रेशनज़ आफ़ दी सिक्ख ट्राडीशनज़*—जे. ऐस. गरेवाल
105. *डाकूमण्टस रिलेटिंग टू भाई महाराज सिंघ*—नाहर सिंघ
106. *ऐंथ्इकस् आफ़ दी सिक्खज़*—अवतार सिंघ
107. *अकाली मूवमैंट*—महेन्द्र सिंघ
108. *अकालीज़ : पास्ट ऐंड प्रैंज़अन्ट*—कैलाश चन्द्र गुल्लहाटी
109. *पंजाबी सूबा*—अजीत सिंघ सरहद्दी
110. *सिक्ख पॉलिटी, हिस्टरी आफ़ सिक्ख मिसलज़*—भगत सिंघ
111. *ऐंनसाइक्लोपीडिआ आफ़ सिक्ख मिसलज़*—पंजाबी यूनीवर्सिटी
112. *दी सिक्खज़*—पतवंत सिंघ
113. *हिस्टारीकल सिक्ख श्राइनज़*—मेजर गुरमुख सिंघ
114. *सिखिज़म : ए कॅमपैरऑटिव स्टॅड्डी, सिक्ख आइडलोजी*—दलजीत सिंघ
115. *दी सिक्ख रैंवअलूशॅन*—जगजीत सिंघ
116. *सिक्ख मैटाफ़िज़िक्स*—शशी बाला
117. *डाकट्रिन ऐंड डैनामिक्स आफ़ सिखिज़म*—जसबीर सिंघ आहलूवालिया
118. *दी आर्टस आफ़ सिक्ख किंगडमज़*—सूसन सटरौंग
119. *गोइंदवाल पोथीज़*—गुरिन्द्र सिंघ मान
120. *सिखिज़म ऐंड पोस्ट-माडरन थाट*—गुरभगत सिंघ
121. *वैसटॅर्न इमेज आफ़ सिखिज़म*—दर्शन सिंघ
122. *सिक्खज़ इन हिस्टरी*—भगत सिंघ
123. *सिक्ख रैफ़रैंस बुक*—हरजिंदर सिंघ दिलगीर
124. *जपुजी दे अंग्रेज़ी तरजमे*—प्रो. पूरन सिंघ, प्रो. जोध सिंघ, प्रो. तेजा सिंघ, सर जोगिन्दर सिंघ, गुरदर्शन सिंघ बेदी, खुशवंत सिंघ आदि
125. *जापु दा अंग्रेज़ी तरजमा*—सोढी ब्रिजेंद्र सिंघ, डा. त्रिलोचन सिंघ
126. *सुखमनी (सॉंग आफ़ पीस), आसा दी वार*—प्रिं. तेजा सिंघ
127. *बलिस्स इटरनल (अनंद), पीस इटरनल (सुखमनी)*—शेर सिंघ M.Sc.
128. *ज़फ़रनामे दा अंग्रेज़ी तरजमा*—गुरशरन सिंघ बेदी, निरंजन सिंघ नूर
129. *पंजाब दे ज़िलिआं दे गज़टीअर, ते सरकारी चिट्ठी—पत्र आदिक*

अंतिका-3

समकालीन हाकिमों की नामावली

दिल्ली के बादशाह

(लोधी घराना)

1. बहलोल ख़ां लोधी—1450-1489 ई॰
2. सिकन्दर लोधी—1489-1517
3. इब्राहीम लोधी—1517-1526

(मुग़ल तथा सूरी घराना)

4. बाबर—21 अप्रैल, 1526-25 दिसम्बर, 1530
5. हमायू—29 दिसम्बर, 1530-मई 1540, दिल्ली से भाग गया
6. शेर शाह सूरी—मई 1540-मई 1545
7. सलेम शाह सूरी—मई 1545-अप्रैल 1554
8. आदल शाह अदली—मई 1554-मार्च 1555
9. इब्राहीम शाह सूरी—मार्च 1555-मई 1555
10. सिकन्दर शाह सूरी—मई 1555-जुलाई 1555
11. हमायू—जुलाई 1555-जनवरी 1556
12. अकबर—फ़रवरी 1556-अक्तूबर 1605
13. जहांगीर—अक्तूबर 1605-अक्तूबर 1627
14. शाहजहां—नवम्बर 1627-1658 में कैद कर लिया गया
15. औरंगज़ेब—जुलाई 1658-फ़रवरी 1707
16. बहादुर शाह—अप्रैल 1707-फ़रवरी 1712
17. जहांदार शाह—जून 1712-दिसम्बर 1712, फ़रवरी 1713 में कत्ल कर दिया गया।
18. शमसुदीन और निक सियर—फ़रवरी 1719-सितम्बर 1719
19. मुहंमद शाह रंगीला—सितम्बर 1719-अप्रैल 1748
20. अहमद शाह—अप्रैल 1748-जून 1754
21. आलमगीर सानी—जून 1754-नवम्बर 1759
22. शाह आलम सानी—दिसम्बर 1759-अगस्त 1788, अंधा कर दिया गया, देहांत 1806
23. अकबर शाह सानी—नवम्बर 1806-सितम्बर 1837
24. बहादुर शाह सानी—सितम्बर 1837-1857 ग़दर के कारण गद्दी से उतारा गया

अठारहवीं सदी के लाहौर के हाकिम

1. असलम ख़ां } बंदा सिंघ बहादुर की पहली चढ़त के समय
2. ज़बरदस्त ख़ां
3. अबदुल समद ख़ां—1713-1723
4. ज़करिया ख़ां—1723-1745
5. यहिया ख़ां—1745-1747
6. शाह निवाज़ खां—1747-1748
7. मीर मुइनल मुल्क (मीर मनूं)—1748-1753
8. मुहंमद अमीन ख़ां—1753-1754
9. मुराद बेगम (मुगलाणी बेगम)—1754-1756
10. तैमूर शाह—अप्रैल 1757
11. अदीना बेग—मई-सितम्बर 1758
12. मिर्ज़ा अहमद ख़ां—अक्तूबर 1758
13. करीमदाद ख़ां—अक्तूबर 1758
14. *ख़ुआजा अबीद ख़ां—1761—64*
15. काबली मल्ल—1764-65
16. मिसल भंगियां का कब्ज़ा—16 अप्रैल 1765

काबुल के हाकिम

1. अहमद शाह दुरानी—1747-1772
2. तैमूर शाह—1773-1793
3. शाह ज़मान—1793-1800
4. शाह महमूद—1800-1802
5. शाह शुजा—1803-1810
6. शाह महमूद—1810-1818
7. शाह अयूब—1818-1826
8. दोस्त मुहम्मद ख़ां—1826-1839
9. शाह शुजा—1839-1842
10. दोस्त मुहम्मद ख़ां—1842-1865

अंग्रेज़ गवर्नर जनरल

1. विलियम बैटिंक—1828—1835
2. आकलैंड—1836—1842
3. हारडिंग—1844—1848
4. चारलस मैटकाफ़—1835—1836
5. ऐलनबरा—1842—1844
6. डलहौज़ी—1848—1856